नंबर वन अंतर्राष्ट्रीय बेस्टसेलर

ख़ालदि हुसैनी

द काईट रनर

‘हृदय-विदारक’
-डेली टेलीग्राफ़

‘अविस्मरणीय’
-इज़ाबेल अलेंदे

‘दिल दहला देने वाला’
-द टाइम्स

‘बार-बार याद आने वाला’
-इंडिपेंडेंट

ख़ालिद हुसैनी के इस पहले उपन्यास को मिलीं कुछ ज़बरदस्त तारीफ़ें

"इतनी ज़बरदस्त किताब कि इसे पढ़ने के बाद फिर लम्बे अरसे तक मैंने जो कुछ भी पढ़ा, वह बेमज़ा मालूम होता रहा।"

–इसाबेल अलेंदे

"शानदार और क़दम-क़दम पर चौंकाने वाला कथानक इस किताब को न सिर्फ़ एक सियासी दस्तावेज़ के तौर पर बल्कि एक ऐसी गहरी ज़ाती दास्तान के रूप में भी यादगार बनाता है, जो बताती है कि कैसे बचपन में किए गए फैसले वयस्क जीवन को प्रभावित करते हैं। अगर हम सिर्फ़ किरदारों की बारीक और दिलचस्प बुनावट पर ही गौर करें-फिर चाहे वो आमिर के किरदार की संवेदनशीलता और भावनात्मक असुरक्षा का ताना-बाना हो या फिर उसके बाबा के किरदार की अच्छाई और बुराई, कुर्बानी और झूठ-फरेब के बहुरंगी धागों से की गई परतदार बुनावट हो, जो उस वक़्त जाकर पूरी तरह उजागर होती है, जब आमिर वापस अफ़ग़ानिस्तान लौटता है और यह जानता है कि उसकी ज़िन्दगी का सच क्या था और कैसे उसने अमेरिका और अफ़ग़ानिस्तान दोनों जगह उसकी ज़िन्दगी को प्रभावित किया था- तो भी इसे किसी लेखक की पहली ही किताब के तौर पर काबिल-ए-तारीफ़ काम कहा जाएगा। लेखक ने हमारे हाथों में एक ऐसी उत्तम साहित्यिक रचना सौंपी है, जो उस देश की संस्कृति को सफलतापूर्वक उजागर करती है, जो अब तक दुनिया के ज़्यादातर लोगों के लिए गुमनाम था, मगर अब इस नई सदी की वैश्विक राजनीति में एक महत्त्वपूर्ण बिंदु बन गया है। किसी पुस्तक का एक साथ इतनी समसामयिक और इतनी उच्च साहित्यिक गुणवत्ता वाली होना वाक़ई दुर्लभ बात है।"

–पब्लिशर्स वीकली (तारांकित समीक्षा)

"आमिर की अपने बाबा के नौकर के बेटे हसन के साथ गहरी दोस्ती की दास्तान, जो शुरुआत में महज़ दो लोगों के बीच की निजी कहानी मालूम होती है, आगे चलकर पूरे कथानक को आपस में बाँधने वाला धागा साबित होता है। इधर उनके मुल्क में ज़िन्दगी का वह तौर-तरीक़ा ख़त्म होना शुरू होता है, जिस तरीक़े से वे अब तक जीते आए थे, औ र उधर उनके रिश्ते की डोर की कमज़ोरी/मज़बूती –जिसे दोनों के साथ-साथ मिलकर पतंग उड़ाने के माध्यम से दर्शाया गया है– परखी जानी शुरू होती है। हुसैनी ने अंतहीन संघर्षों में उलझने से पहले के अफ़ग़ानिस्तान का जो चित्रण किया है उसमें वहाँ की ख़ुशहाली, समृद्धि, लोक-परंपरा, गर्मजोशी और हँसने-हँसाने के माद्दे के साथ-साथ विभिन्न जातीय समूहों के बीच मौजूद तनाव भी साफ़-साफ़ नज़र आता है।"

–द न्यू यॉर्क टाइम्स

“कथानक का आधार जीवन की कभी न रुकने वाली लय है। ख़ालिद हुसैनी की साहित्यिक प्रतिभा ने पहले 1970 के दशक के अफ़ग़ानिस्तान और बाद में अमेरिका की पृष्ठभूमि में लिखे गए इस उपन्यास को सार्वभौमिक रुचि वाली रचना बना दिया है। लेखक ने उपन्यास को जिस तरह ख़त्म किया है; वह सराहनीय है। जिस ख़ूबसूरती और निर्मम तरीक़े से उन्होंने यह दर्शाया है कि ज़िन्दगी आख़िरकार हमें वही लौटाती है, जो हमने ज़िन्दगी को दिया होता है। यह उनके लेखकीय कौशल को उजागर करता है। बेहद बारीक बुनावट वाली एक ऐसी साहित्यिक रचना, जिसमें वह उपचारक क्षमता है, जो बहुत ही कम रचनाओं में देखने को मिलती है।

– द बफ़ेलो न्यूज़

“ख़ालिद हुसैनी ने अपने शब्दों के माध्यम से अपनी जन्मभूमि का बहुत ही सजीव और संवेदनशील चित्रण किया है। उन्होंने अपने घर, अपने वतन को छोड़ने का शोक मनाते और अमेरिका में नए सिरे से नयी ज़िन्दगी में ढलने के लिए संघर्ष कर रहे अफ़ग़ान शरणार्थियों द्वारा संजोई जाने वालीं अफ़ग़ान परम्पराओं औए रीति-रिवाज़ों का बहुत अच्छा वर्णन किया है। द काइट रनर के रूप में हुसैनी ने पाठकों को एक ऐसी विचारोत्तेजक रचना दी है, जो यह दर्शाती है कि अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए कभी-कभी हमें अपनी ख़ुशी को दरकिनार करना पड़ता है।”

–हूयस्टन क्रॉनिकल

“यह असाधारण उपन्यास इतिहास के एक भयानक दौर में आम लोगों द्वारा रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में भोगी गईं, ज़ाती दुश्वारियों को दर्शाता है।”

–पीपुल

“विचारोत्तेजक…धारदार और यथार्थपरक…। द काइट रनर की सबसे बड़ी ख़ूबियों में से एक है, अफ़ग़ान लोगों और अफ़ग़ान संस्कृति का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण। हुसैनी ने अफ़ग़ानिस्तान और उसके लोगों के बारे में बहुत ही दिल से लिखा है, जिसमें उनका अफ़ग़ानिस्तान और वहाँ के लोगों के साथ प्रगाढ़ परिचय झलकता है…। बहुत ही विस्तार से लिखी गई और आसानी से पढ़ी जा सकने वाली रचना।”

–शिकागो ट्रिब्यून

“एक ज़बरदस्त किताब…कोई तामझाम नहीं, कोई बकवास नहीं, बस सीधी-सच्ची बात…। परिवार और दोस्ती, विश्वासघात और प्रायश्चित की एक ऐसी अंतरंग कथा, जो दुनिया के तमाम कोनों में रहने वाले और तमाम भाषाएँ बोलने वाले पाठकों को समान रूप से बाँधकर रखने और उनका ज्ञानवर्धन करने में सक्षम है। द काइट रनर के कुछ हिस्से पढ़ने में बहुत मर्मभेदी और यातनादाई मालूम होते हैं, मगर कुल मिलाकर यह बहुत ही प्यारी किताब है। इस किताब से स्पष्ट होता है कि हुसैनी अपने बचपन के

अफ़ग़ानिस्तान से उतनी ही मुहब्बत करते हैं, जितनी नफ़रत उन्हें उस अफ़ग़ानिस्तान से है, जो उसे अब बना दिया गया है।”

–द वाशिंगटन पोस्ट बुक वर्ल्ड

“यह किताब किस्सा-गोई के लिए मुहब्बत और साहित्यिक लेखन के प्रति सम्मान; दोनों ही समान रूप से प्रदर्शित करती है। एक बड़े दिल वाली किताब, जिसमें सफल होने के बहुत सारे गुण हैं। इस उपन्यास का सबसे आकर्षक पहलू है, इसका पढ़ने में सरल होना है। यह मुहब्बत, सियासत और नस्ल-बिरादरी के मसलों पर आधारित उपन्यास ‘वेटिंग’ की तरह, द काइट रनर भी पाठकों को सरल किस्सा-गोई का मज़ा देती है।”

–क्लीवलैंड प्लेन डीलर

“एक दिलचस्प और मार्मिक रचना, जो पाठकों को एक आश्चर्यजनक पुरस्कार प्रदान करती है; अफ़ग़ानिस्तान के लोगों के मर्म की समझ और उनकी हालत के प्रति हमदर्दी...। इस उपन्यास की सबसे बड़ी ताक़त है, हुसैनी की अफ़ग़ान संस्कृति को किताब के पन्नों पर जीवंत करने की क्षमता...एक बार पढ़ना शुरू करने के बाद रुकने का मन ही नहीं करता।”

–आयोवा सिटी प्रेस

“हुसैनी दिखाते हैं कि पाठकों को बाँधकर रखने वाला उपन्यास कैसे शुरू होता है – सरल और उत्कृष्ट लेखन के साथ, जो पाठक को पन्ने दर पन्ने बिना रुके पढ़ते जाने के लिए मजबूर कर देता है।”

द काइट रनर

ख़ालिद हुसैनी

SANAGE
PUBLISHING HOUSE

Copyright © 2025 Sanage Publishing House LLP

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced, distributed, or transmitted in any form or by any means, including photocopying, recording, or other eletronic or mechanical methods, without the prior written permission of the publisher, except in the case of brief quotations embodied in critical reviews and certain other noncommercial uses permitted by copyright law. For permission requests, write to the publisher, addressed "Attention Permissions Coordinator," at the address below.

Paperback: 978-936205501-9
eBook: 978-936205697-9

Any references to historical events, real people, or real places are used fictitiously. Names, characters, and places are products of the author's imagination.

Sanage Publishing House LLP
Mumbai, India

sanagepublishing@gmail.com

यह पुस्तक समर्पित है
मेरी आँखों के नूर
हैरिस और फ़राह को,
और अफ़ग़ानिस्तान के सभी बच्चों को।

10वीं वर्षगांठ संस्करण के लिए लेखकीय

मार्च 2001 में जब मैंने ‘द काइट रनर’ (काइट रनर का मतलब होता है, कटी पतंगें लूटने के लिए उनके पीछे भागने वाला) लिखना शुरू किया, तब मेरा मक़सद ख़ुद से वह कहानी कहना था, जो लम्बे अरसे से मेरे दिमाग़ में जड़ें जमाए बैठी थी और जिसके केंद्र में थे दो बालक; एक, जो भावनात्मक और नैतिक आधार पर द्वन्द में था, उलझन में था और इसके चलते एक लम्बे अरसे तक सच्चाई, अच्छाई और वफ़ादारी से मुँह मोड़े रहा और भीतर ही भीतर घुटता रहा; और दूसरा, जो इन दोनों ही मामलों में एकदम सुलझा हुआ था और इसीलिए जिसकी जड़ें सच्चाई, अच्छाई और वफ़ादारी की ज़मीन में गहरे जमी हुईं थीं और आख़िर तक जमी रहीं। मैं जानता था कि इन दोनों की दोस्ती को ग्रहण लगना ही था, और यह भी कि इसका उन दोनों की ही ज़िंदगियों पर बहुत गहरा असर पड़ने वाला था। पर यह सब क्यों हुआ और कैसे हुआ, यह जानने और कहने की ललक ने ही मुझे इस कहानी को लिखने के लिए प्रेरित (या कहें कि मजबूर) किया। मुझे पता था कि कभी न कभी मुझे ‘द काइट रनर’ लिखनी पड़ेगी, मगर लिखते हुए मुझे ऐसा लगा, जैसे कि मैं इसे ख़ुद के लिए लिख रहा था।

और इसलिए इस किताब को दुनिया भर के लोगों से मिले ज़बरदस्त प्रतिसाद (रिस्पांस) ने मुझे सचमुच हैरत में डाल दिया है। भारत, दक्षिण अफ़्रीक़ा, तेल अवीव, सिडनी, लंदन, और अर्कांसस जैसी जगहों से आने वाले पाठकों के ख़त पढ़कर और यह जानकर कि इस कहानी ने उन्हें कितने गहरे तक प्रभावित किया है, मैं जितना रोमांचित होता हूँ, उतना ही सुखद आश्चर्य से भी भर जाता हूँ। इन ख़तों के ज़रिए कितने ही लोग अफ़ग़ानिस्तान पैसे भेजने की पेशकश करते हैं, और कई तो ऐसे हैं, जो किसी अनाथ अफ़ग़ानी बच्चे को गोद लेना चाहते हैं। इन ख़तों को पढ़कर मुझे समझ आता है कि फिक्शन (काल्पनिक साहित्य) में लोगों को जोड़ने की अद्भुत क्षमता है, और यह भी कि शर्मिंदगी, अपराध-बोध, अफ़सोस, दोस्ती, प्यार, माफ़ी, और पछतावा जैसी भावनाएँ दुनिया के सभी इंसानों में समान रूप से मौजूद हैं।

मेरा बचपन कई मायनों में आमिर के बचपन जैसा ही रहा है, इसलिए मुझे काफी पहले से यह तो पता था कि किस तरह ज़िन्दगी के असल अनुभव काल्पनिक कहानियों को जन्म एवं आकार देने में सहायक होते हैं, मगर इस किताब के पूरा होने (और प्रकाशित होने) के बाद से मुझे यह पता चलना शुरू हुआ कि किस तरह काल्पनिक कहानियाँ असल ज़िन्दगी को (पढ़ने वालों की भी और लिखने वालों की भी) प्रभावित करने की क्षमता रखती हैं। मार्च 2003 में, जबकि इस उपन्यास की प्रूफरीडिंग पूरी हो चुकी थी और यह प्रकाशन के लिए जा चुका था, मेरी 27 साल बाद काबुल वापसी हुई। हालाँकि ‘द काइट रनर’ का शुरुआती दो-तिहाई हिस्सा मेरे

परिवार की असल ज़िन्दगी के अनुभवों (पहले अफ़ग़ानिस्तान में रहते हुए और फिर कैलीफोर्निया में) के आधार पर लिखा गया है, मगर इसका बाद वाला एक-तिहाई हिस्सा जो है, जिसमें उपन्यास का हमारा नायक लम्बे अरसे बाद अपने घर अफ़ग़ानिस्तान लौटता है, वो मैंने ख़ुद अफ़ग़ानिस्तान लौटने से पहले ही लिख दिया था। मतलब, यहाँ ज़िन्दगी ने कल्पना को नहीं, बल्कि कल्पना ने ज़िन्दगी को आकार दिया। मैंने जब अफ़ग़ानिस्तान छोड़ा था तब मैं ग्यारह बरस का एक दुबला-पतला सा, सातवीं कक्षा में पढ़ने वाला बच्चा था; और अब मैं एक अड़तीस बरस के डॉक्टर, राइटर, पति, और दो बच्चों के बाप के रूप में वापस लौट रहा था। आप समझ सकते हैं कि दो हफ़्तों का मेरा यह काबुल प्रवास मेरे लिए कितना विलक्षण अनुभव रहा होगा, क्योंकि मैं अब हर दिन उन जगहों और चीज़ों को साक्षात देख रहा था, जिन्हें अब तक मन की आँखों से (आमिर की आँखों से) देखता आया था। इस अनुभव से गुज़रते हुए अचानक ही आमिर के ख़याल मेरे ख़याल बन गए और 'द काइट रनर' की ये पंक्तियाँ मेरे ज़ेहन में उभर आईं: "अचानक मेरे भीतर अपनी पुरानी सरज़मीं से जुड़ाव का जज़्बा उमड़ आया...मैं ख़ुद हैरान रह गया। मुझे लगता था कि मैं इसे भूल चुका हूँ। मगर नहीं भूला था...। और शायद अफ़ग़ानिस्तान भी मुझे नहीं भूला था।" लेखन के सन्दर्भ में आम तौर पर यही कहा जाता है कि आप वही लिखते हैं, जिसे अनुभव कर चुके होते हैं। मगर मैं वह अनुभव करने जा रहा था, जो मैं पहले ही लिख चुका था।

जल्दी ही आमिर और मेरी यादों के बीच की रेखा धुंधली पड़नी शुरू हो गई। पहले 'द काइट रनर' के पन्नों पर आमिर ने मेरी यादों को जिया था, और अब मैं उसकी यादों को जी रहा था। मगर शायद कल्पना और हक़ीक़त का सबसे अद्भुत मिलन तब हुआ, जब मैं खोजते-खोजते वज़ीर अकबर खान इलाके में अपने बाबा के उस पुराने घर पहुँचा जहाँ मेरा पूरा बचपन बीता था, ठीक उसी तरह जैसे आमिर ने उसी मोहल्ले में अपने बाबा का पुराना घर खोजा था! पूरे तीन दिन भटकने के बाद मैं इसे खोज पाया था, क्योंकि एक तो मुझे इसकी ठीक-ठीक लोकेशन पता नहीं थी और दूसरा यह था कि बीते सत्ताईस बरसों में उस जगह का नक्शा ही बदल चुका था। मगर मैंने अपनी तलाश जारी रखी, और जैसे ही मुझे घर के दरवाज़ों के ऊपर बनी चिर-परिचित मेहराब दिखाई पड़ी, मैं रोमांचित हो उठा।

जो किसी ज़माने में मेरा घर हुआ करता था, अभी वह पंजशीरी लड़ाकों की रिहाइशगाह बन चुकी थी। मगर मेरी कहानी सुनने के बाद उन लोगों ने बड़ी उदारता दिखाई और मुझे उस घर के चप्पे-चप्पे को देखने और बचपन की यादों को ताज़ा करने का पूरा-पूरा मौका दिया। मुझे भी अपना घर वैसी ही बदहाली में मिला जैसा आमिर को मिला था; रंग-रोगन उड़ चुका था, बाग़ीचे के नाम पर सूखी घास के सिवाय कुछ भी नहीं बचा था, और दीवारें इतनी जर्जर हो चुकी थीं कि लगता था, अब गिरीं के तब गिरीं। आमिर की तरह मैं भी यह देखकर हैरान था कि बचपन की यादों के सहारे मैंने अपने ज़ेहन में इस घर की जो कल्पना की हुई थी, हक़ीक़त में यह घर उससे बहुत छोटा था। और उससे भी ज़्यादा हैरत की बात यह हुई कि जब मैं बाहर वाले गेट से

भीतर दाख़िल हुआ तो मुझे भी ड्राइव-वे पर तेल का वैसा ही निशान दिखाई दिया, जैसा कि आमिर को अपने बाबा के घर के ड्राइव-वे पर दिखा था (यह बात सौ-फ़ीसदी सच है)! आख़िर में जब मैं लड़ाकों को धन्यवाद देकर चलने को हुआ तो मैंने महसूस किया कि इतने बरसों बाद फिर एक बार अपने बचपन के घर को देखने पर मेरे भीतर जो भावनात्मक ज्वार उठा था, उसकी तीव्रता कई गुना अधिक होती अगर मैं 'द काइट रनर' न लिख चुका होता। मतलब यह कि चूँकि 'द काइट रनर' लिखते समय मैं इस अनुभव से पहले भी एक बार गुज़र चुका था, इसलिए दूसरी बार में भावनात्मक तीव्रता उतनी नहीं रही। जब आमिर अपने बाबा के घर के लोहे के गेट के सामने खड़े होकर अपने खो चुके बचपन को याद कर रहा था, तब मैं भी उसके पहलू में मौजूद था। जब वह उस घर की बेरंग और ढहने को आतुर दर-ओ-दीवारों को हाथों से छू-छूकर देख रहा था, तब भी मैं वहीं मौजूद था। और उस घर की दरकती हुई छत और जर्जर हो चुकीं सीढ़ियों को भी हमने साथ-साथ ही देखा था। उस दृश्य को लिखते समय मैं जिस भावनात्मक अनुभव से गुज़रा था, उसने आगे चलकर लिए गए वास्तविक अनुभव की तीव्रता को कम कर दिया था। कह सकते हैं कि यहाँ कला ने ज़िन्दगी के रोमांच को चुरा लिया था।

'द काइट रनर' को प्रकाशित हुए दस बरस बीत गए हैं। और अब भी यह किताब मुझे उतनी ही पसंद है। मैं इसे वैसे ही पसंद करता हूँ, जैसे कोई माँ-बाप अपने ज़िद्दी, बेढब, बात न मानने वाले, हरदम तंग करने वाले, अजीब-सा बर्ताव करने वाले, मगर नेकदिल और रहमदिल बच्चे को करते हैं। और प्रकाशन के बाद से अब तक दस बरसों में दुनिया भर के लोगों से इसे जो प्यार मिला है, उससे भी मैं अभी तक अभीभूत हूँ। जब मेरे पाठक 'द काइट रनर' की कहानी को लेकर, कथानक में आने वाले उतार-चढ़ावों को लेकर, अपराध-बोध से ग्रस्त आमिर को लेकर, और नेकदिल मगर बदकिस्मत हसन को लेकर सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ देते हैं तो बतौर लेखक मेरा रोमांचित हो उठना लाज़मी है। जब मेरे पाठक कहते हैं कि मेरी इस किताब के ज़रिए उन्हें असल अफ़ग़ानिस्तान को देखने-जानने का मौका मिला है और यह समझ आया है कि अफ़ग़ानिस्तान का मतलब सिर्फ़ तोरा-बोरा की गुफाएँ, पोस्ता के खेत (पॉपी फ़ील्ड्स) और ओसामा-बिन-लादेन नहीं है, तो एक अफ़ग़ान के तौर पर मैं ख़ुद को गौरवान्वित महसूस करता हूँ। पाठकों का यह कहना वाक़ई मेरे लिए इज़्ज़त की बात है कि इस उपन्यास ने उन्हें अफ़ग़ानिस्तान की आत्मा से रूबरू होने में मदद की है, जिसके चलते अब वे मेरी सरज़मीं को एक लम्बे अरसे से समस्या-ग्रस्त जगह और हमेशा दुखों से घिरे रहने वाले बदकिस्मत लोगों की सरज़मीं के तौर पर देखने की बजाए अपने ही जैसे लोगों की दुनिया के रूप में देखने लगे हैं। उम्मीद करता हूँ कि इस उपन्यास को पढ़ चुकने के बाद आप भी ऐसा ही महसूस करेंगे।

आपके सहयोग और हौसला-अफ़ज़ाई के लिए मैं हमेशा आपका शुक्रगुज़ार रहूँगा।

ख़ालिद हुसैनी

एक

दिसंबर *2001*

1975 की सर्दियों के एक बादलों से ढँके आसमान वाले दिन जो घटा, उसने मुझे वह बना दिया, जो आज मैं हूँ। मुझे वो पल बहुत अच्छे से याद है, जब मैं जमे हुए बर्फ़ीले नाले से लगी सड़क की एक गली के मोड़ पर एक ढहती हुई मिट्टी की दीवार के पीछे डरा-सहमा सा खड़ा था और चोरों की तरह गली में झाँक रहा था। यह बहुत पहले की बात है, मगर इतने बरसों में मुझे यह समझ आया है कि हम अपने अतीत से दूर जाने की लाख कोशिश कर लें, मगर वह कभी हमसे दूर नहीं होता, वह किसी न किसी बहाने हमें अपने पंजों में जकड़ ही लेता है। आज जब मैं उस गुज़रे हुए पल के बारे में सोचता हूँ तो लगता है कि वो गुज़रा ही कब था, सच तो यह है कि मैं पिछले छब्बीस बरसों से लगातार चोर नज़रों से उस गली में ही झाँक रहा हूँ।

पिछली गर्मियों में एक दिन पकिस्तान से मेरे दोस्त रहीम ख़ान का फोन आया। वह चाहते थे कि मैं उनसे मिलने आऊँ। अपनी रसोई में खड़ा मैं जब रिसीवर कान से लगाकर उनसे बात कर रहा था तो मुझे महसूस हो रहा था कि दूसरी ओर रिसीवर पर सिर्फ़ रहीम खान नहीं बात कर रहे थे, उनके रूप में मेरे प्रायश्चित-हीन पापों का अतीत भी बात कर रहा था। फ़ोन रखने के बाद मैं गोल्डन गेट पार्क के उत्तरी छोर पर बनी स्प्रेकल्स झील के किनारे टहलने चला गया। दोपहर से थोड़ा पहले का वक़्त हुआ था। सूरज की किरणें जहाँ झील के पानी को सोने की तरह दमका रही थीं, वहीं झील के सीने पर ढेरों छोटी-छोटी नावें तेज़ हवा का दामन थामकर मज़े से तैर रही थीं। तभी मेरी नज़र आसमान की तरफ़ गई और मैंने देखा कि दो पतंगें साथ-साथ उड़ रही थीं। नीले रंग की लम्बी-सी दुम वाली लाल पतंगें। पार्क के पश्चिमी छोर पर खड़ीं पवन चक्कियों और पेड़ों के झुरमुट के ऊपर अगल-बग़ल हवा में झूमतीं-लहरातीं वे दो पतंगें ऐसी लग रही थीं, जैसे एक जोड़ी आँखें आसमान से सैन फ़्रांसिस्को (जिसे मैं अब अपना घर कहता हूँ) को ताक रही हों। और तभी अचानक मेरे ज़ेहन में हसन की आवाज़ गूँज उठी: “आपकी ख़ातिर, एक बार नहीं हज़ारों बार!” हसन, लबकटा ‘काईट रनर’। कटे होंठ वाला वह लड़का, जो मेरे लिए कटी हुईं पतंगें लूटता था।

मैं एक विलो पेड़ की छाँव में पड़ी पार्क बेंच पर बैठ गया। मेरे ज़ेहन में फिर से वह बात घूमने लगी, जो रहीम ख़ान ने फोन रखने से ठीक पहले कही थी – “फिर से अच्छा बनने का एक रास्ता है।” मेरी नज़र फिर से आसमान में उड़तीं उन पतंगों पर जा टिकी। और फिर मेरे ख़याल भी उन पतंगों के साथ-साथ सुदूर अतीत के आसमान में

ऊँची उड़ानें भरने लगे। मैं हसन के बारे में सोचने लगा। बाबा के बारे में। अली के बारे में। काबुल के बारे में। 1975 की उन गर्मियों से पहले की ज़िन्दगी के बारे में, जिसके बाद सबकुछ हमेशा-हमेशा के लिए बदल गया और मैं वो बन गया, जो आज हूँ।

दो

बचपन में, मैं और हसन मेरे बाबा के घर के ड्राइव-वे में खड़े चिनार के पेड़ों पर चढ़ जाते थे और काँच के छोटे-छोटे टुकड़ों की मदद से सूरज की रोशनी को पड़ौसियों के घरों में चमकाकर उन्हें परेशान होते देखने का मज़ा लेते थे। हम दोनों पेड़ों पर ख़ूब ऊपर चढ़ जाते और फिर आमने-सामने की दो टहनियाँ देखकर एक-दूसरे के आमने-सामने पैर नीचे लटकाकर बैठ जाते। हमारे निक्करों की जेबें शहतूत और अखरोट से भरी रहतीं। शहतूत और अखरोट खाते और एक-दूसरे पर फेंकते, हँसते-खिलखिलाते, हम बारी-बारी से पड़ौसियों को परेशान करने का मज़ा लेते। मेरे ज़ेहन में पेड़ पर बैठे उस हसन की छवि अब भी उतनी ही स्पष्ट है; अब भी मुझे पेड़ की पत्तियों से छनकर आती धूप में चमकता उसका गोलाकार चेहरा उतनी ही अच्छी तरह याद है। उसका वह चेहरा जो हार्डवुड से तराशी गईं चीनी गुड़ियाओं की तरह लगता था, जिस पर एक चपटी-चौड़ी नाक और बाँस की पत्तियों की तरह की छोटी-छोटी तिरछी आँखें थीं, वे आँखें जो उन पर पड़ती रोशनी के मुताबिक़ कभी हरी, कभी सुनहरी, तो कभी नीली दिखाई पड़ती थीं। मुझे अभी भी याद हैं उसके चेहरे पर थोड़े नीचे की ओर लगे हुए बहुत छोटे-छोटे से कान और उसकी वह किसी पेड़ के नुकीले ठूँठ की तरह की ठुड्डी, जिसे देखकर लगता था मानो बनाने वाला पहले उसे चेहरे की मूल संरचना में शामिल करना भूल गया था और बाद में भूल का अहसास होने पर उसने उसे अलग से जोड़ा था। और उसका वह कटा हुआ ऊपरी होंठ। बीचों-बीच से थोड़ा सा बाईं ओर। मानो उस चीनी गुड़िया को बनाने वाले कारीगर की छैनी ज़रा सी फिसल गयी हो वहाँ पर, या शायद काम करते-करते वह थक गया हो और इसलिए असावधानीवश यह चूक हो गई हो उससे।

पेड़ पर बैठकर शरारत करते हुए कभी-कभी मैं हसन को एक अखरोट लेकर अपनी गुलेल से पड़ौसी के काने जर्मन शेफर्ड को निशाना बनाने के लिए कहने लगता। हसन कभी भी ऐसा नहीं करना चाहता था, मगर मेरे पीछे पड़ जाने पर आख़िर-कार उसे ऐसा करना पड़ता; वह मुझे कभी किसी चीज़ के लिए मना नहीं करता था। और गुलेल का उसका निशाना अचूक होता था। हसन के बाबा अली अक्सर हमें ये शरारतें करते हुए रंगे हाथों पकड़ लेते थे और गुस्सा होते थे, उनके जितना सौम्य व्यक्ति जिस हद तक किसी पर गुस्सा हो सकता था, उतने होते थे। जब वह हमें पेड़ पर चढ़ा हुआ देखते तो उंगली दिखाकर हमें नीचे उतरने का इशारा करते। फिर हमारे हाथ से काँच का टुकड़ा ले लेते और कहते कि शीशा चमकाकर लोगों को तंग करना शैतान का काम है, जो इबादत के वक़्त मुस्लिमों का ध्यान भटकाने के लिए ऐसा करता है। साथ ही हसन की ओर देखकर यह भी जोड़ते कि “ऐसा करते समय वह कहकहे भी लगाता है।” यह बात उन्हें उनकी वालिदा (माँ) ने बताई थी।

“जी, बाबा,” हसन सिर झुकाकर अपने पैरों की ओर देखते हुए हौले से बुदबुदाता। मगर उसने कभी उन्हें यह नहीं बताया कि शीशा चमकाने या गुलेल से अखरोट मारने का आईडिया हमेशा मेरा होता था, मैं ही हसन को ऐसा करने के लिए मजबूर करता था।

लाल ईंटों से बने ड्राइव-वे में एक ओर लाइन से चिनार के ढेर सारे पेड़ खड़े थे। ड्राइव-वे के बाहर वाले सिरे पर दो पल्लों वाला बड़ा-सा लोहे का गेट था, जबकि भीतर वाला सिरा मेरे बाबा के आलीशान कोठीनुमा मकान तक ले जाता था। मकान के पीछे की ओर खासा बड़ा बाड़ा (बैकयार्ड) भी था।

हर किसी का यही मानना था कि पूरे वज़ीर अकबर खान इलाके में (काबुल के उत्तरी भाग में विकसित हुआ एक नया और समृद्ध इलाका) मेरे बाबा से ज़्यादा सुन्दर और आलीशान मकान किसी और ने नहीं बनाया था। कुछ लोगों की राय में तो पूरे काबुल में इससे ज़्यादा ख़ूबसूरत मकान ढूँढना मुश्किल था। और लोगों का ऐसा सोचना बेबुनियाद भी नहीं था। घर के सामने जो बड़ा-सा बाग़ीचा था, उसमें तमाम किस्म के गुलाब खिले रहते थे। घर के भीतर संगमरमर का फर्श था और दीवारों में बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ निकाली गईं थीं। घर में कुल चार बड़े-बड़े गुसलखाने थे, जिनमें डिज़ाइनर मोजेक टाइल्स लगे हुए थे। ये टाइल्स बाबा इस्फ़हान से ख़ुद पसंद करके लाए थे। दीवारों पर सोने की कढ़ाई वाली टेपेस्ट्रीज़ (कपड़े पर कसीदाकारी करके बनाए गए चित्र) टाँगी गई थीं, जो कि बाबा कलकत्ता से लाए थे। गुंबददार छत से एक क्रिस्टल का झूमर लटका हुआ था।

ऊपर की मंज़िल पर मेरा बैडरूम, बाबा का बैडरूम, और बाबा का पढ़ने का कमरा था। बाबा के पढ़ने के कमरे को ‘स्मोकिंग रूम’ के तौर पर भी जाना जाता था और यह हमेशा ही तम्बाखू और दालचीनी की गंध से आबाद रहता था। रात को खाना खाने के बाद बाबा और उनके दोस्त इसी कमरे में बैठक जमाते थे। बैठक की शुरुआत अपने-अपने पाइप्स में तम्बाखू और दालचीनी भरकर उनको सुलगाने से होती थी और फिर वे सब अपने तीन पसंदीदा विषयों पर बहस-मुबाहिसा शुरू करते थे। ये तीन विषय थे: राजनीति, व्यापार, और सॉकर। कई बार मैं बाबा से कहता कि मुझे भी उस बैठक में आने दें, मगर बाबा दरवाज़े में अड़कर खड़े हो जाते और कहते, “चलो जाओ यहाँ से। यह बड़ों के मिल-बैठने का टाइम है। तुम जाकर अपनी कहानियों की किताबें पढ़ो।” इतना कहकर वह मेरे मुँह पर दरवाज़ा बंद कर देते और मैं यही सोचता रह जाता कि बाबा के पास हमेशा बड़ों के लिए ही टाइम क्यों होता है, वे कभी बच्चों के लिए टाइम क्यों नहीं निकालते? अक्सर मैं बंद दरवाज़े के बाहर सटकर बैठ जाता और अन्दर चल रहीं बातों और ठहाकों को सुनता रहता। मेरे दरवाज़े के बाहर की ये बैठकें कभी एक घंटा चलतीं, तो कभी दो घंटे।

नीचे की मंज़िल पर जो बैठक का कमरा था, उसकी एक दीवार घुमावदार थी, जिसे कई खानों वाली अलमारी की शक्ल दी गई थी। इन खानों में पारिवारिक तस्वीरों

को फ्रेम करवाकर लगाया गया था। इनमें से एक बहुत पुरानी ब्लैक एंड वाइट तस्वीर मेरे दादाजी और राजा नादिर शाह की थी। यह तस्वीर 1931 में खींची गई थी, नादिर शाह के क़त्ल के दो साल पहले। इस तस्वीर में वे दोनों कंधे पर बंदूकें टाँगकर और घुटनों तक आने वाले शिकारिओं वाले जूते पहनकर एक मरे हुए हिरन पर पैर रखकर खड़े थे। एक तस्वीर मेरे बाबा और मेरी वालिदा (माँ) की थी, निकाह वाले दिन की। इसमें बाबा काले रंग के सूट में ख़ूब फब रहे थे और मेरी वालिदा सफ़ेद रंग की पोशाक में बिल्कुल शहज़ादी लग रही थीं। एक और तस्वीर में बाबा अपने सबसे जिगरी दोस्त और व्यापारिक साझीदार रहीम खान के साथ खड़े थे, हमारे इसी घर के बाहर। तस्वीर खिंचाते हुए दोनों में से किसी ने भी मुस्कराने की कोशिश नहीं की थी। उल्टा बाबा के चेहरे पर खासी थकान और गंभीरता छाई हुई थी। वैसे, इस तस्वीर में, मैं भी था। एक छोटे से बच्चे के रूप में। बाबा की गोद में। मैं था तो बाबा की गोद में, मगर मैंने रहीम खान की छोटी उंगली पकड़ रखी थी।

इस घुमावदार दीवार के परले सिरे पर खाने का कमरा था, जिसके बीचों-बीच महोगनी की लकड़ी से बनी एक बड़ी सी डाइनिंग टेबल रखी हुई थी। बड़ी मतलब इतनी बड़ी कि एक साथ तीस लोग आराम से बैठकर खाना खा सकते थे। और चूँकि बाबा को आलीशान दावतें देने का शौक था, इसलिए हफ्ते में कम से कम एक बार तो यह टेबल इतने मेहमानों से आबाद हो ही जाती थी। डाइनिंग रूम के एक सिरे पर संगमरमर का बना एक बड़ा-सा फायरप्लेस (आग जलाने की जगह) था, जो सर्दियों के मौसम में पूरा समय आग की लपटों से जगमगाता रहता था।

काँच का एक बड़ा सा स्लाइडिंग दरवाज़ा आधे चाँद के आकार के टैरेस में खुलता था, जहाँ से दो एकड़ में फैला बाड़ा (बैकयार्ड) दिखाई देता था। बाड़े के दोनों ओर चेरी के पेड़ों की लम्बी-लम्बी कतारें थीं। बाबा और अली ने इस बाड़े की पूरब की तरफ़ की दीवार के किनारे-किनारे सब्जियों का एक छोटा-सा बाग़ीचा तैयार किया था, जिसमें उन्होंने टमाटर, पुदीना, मिर्च वग़ैरह के साथ-साथ मकई भी बोई थी। बाक़ी सब सब्ज़ियाँ तो बहुत अच्छी फलती थीं मगर पता नहीं क्यों मकई कभी ठीक से नहीं पनप पाई, और इसीलिए हसन और मैं इस बाग़ीचे को ‘बीमार मकई की दीवार’ कहने लगे थे।

इसी बाड़े के दक्षिणी सिरे पर लोकाट के एक पेड़ की छाया में मिट्टी का एक छोटा-सा कोठरीनुमा घर था, जिसमें हसन अपने बाबा अली के साथ रहता था।

इसी कोठरीनुमा घर में हसन पैदा हुआ था, 1964 की सर्दियों में; मेरी वालिदा के मुझे पैदा करते ही गुज़र जाने के ठीक एक बरस बाद।

ज़िन्दगी के अट्ठारह बरस जो मैंने इस जगह बिताए, उस दौरान मैं गिनती के दो-चार बार ही हसन की कोठरी में गया होऊँगा। शाम को सूरज ढलने के साथ जैसे ही हम लोगों का खेलना-कूदना ख़त्म होता था, वैसे ही हम लोगों के रास्ते जुदा हो जाते थे। मैं अपने बाबा की आलीशान कोठी की ओर चल देता था और हसन अपनी मिट्टी की

कोठरी की ओर बढ़ जाता था। मुझे याद है कि उस छोटी-सी कोठरी में नाममात्र का सामान था, मगर वह हमेशा साफ़-सुथरी रहती थी और रात को केरोसीन के दो लैंप उसमें हल्की-हल्की रोशनी का इंतज़ाम करते थे। सामान के नाम पर उस कोठरी में दो अलग-अलग दीवारों से लगकर दो गद्दे डले थे, बीच में एक फटा-पुराना सा हेराती गलीचा बिछा था, एक तीन पायों वाला स्टूल था, और एक कोने में लकड़ी की एक मेज़ रखी थी जहाँ बैठकर हसन चित्रकारी करता था। दीवारें खाली-खाली थीं, सिवाए मोतियों को जोड़-जोड़कर 'अल्लाह-उ-अकबर' की कसीदाकारी की गई एक टेपेस्ट्री के। वह टेपेस्ट्री बाबा मशहद से अली के लिए लाए थे।

इसी कोठरी में हसन की वालिदा सनौबर ने 1964 की सर्दियों के एक सर्द दिन उसे पैदा किया था। जहाँ मेरी वालिदा प्रसव के दौरान बहुत ज़्यादा ख़ून बह जाने के चलते मुझे पैदा करते समय ही गुज़र गई थीं, वहीं हसन भी अपनी पैदाइश के तक़रीबन एक हफ्ते बाद ही अपनी वालिदा से जुदा हो गया था। मगर वह जिस वजह से जुदा हुआ था उस वजह को अफ़ग़ान लोग मौत से भी बदतर मानते थे। हसन की वालिदा नाचने-गाने वाले खानाबदोश लोगों के एक कबीले के साथ भाग गई थीं।

हसन ने कभी अपनी वालिदा के बारे में कोई बात नहीं की, मानो उसके लिए उनका कोई वजूद था ही नहीं। मैं हमेशा सोचता था कि क्या मेरी तरह वह भी ख़्वाबों में अपनी वालिदा को देखता होगा, कल्पना करने की कोशिश करता होगा कि वह कैसी दिखती होंगी, कहाँ होंगी? क्या मेरी तरह वह भी अपनी उस माँ के लिए तड़पता होगा जिसे उसने कभी देखा ही नहीं? एक दिन हम दोनों ने ज़ैनब टॉकीज़ जाकर वहाँ चल रहा एक नया ईरानी सिनेमा देखने का प्रोग्राम बनाया और वहाँ पहुँचने के लिए इस्तिकलाल मिडिल स्कूल के पास सेना की बैरकों से होकर जाने वाला शॉर्टकट रास्ता पकड़ा। हालाँकि बाबा ने हमें सख्त हिदायत दे रखी थी कि हम भूलकर भी उस रास्ते से न जाएँ, पर चूँकि उस समय बाबा रहीम खान के साथ पाकिस्तान गए हुए थे, इसलिए हमने उनकी नाफ़रमानी करने की जुर्रत कर डाली। हमने बैरकों के इर्द-गिर्द बनी बाड़ फांदी, एक छोटी-सी खंदक लांघी, और उस खुले मैदान में पहुँच गए जहाँ पुराने कबाड़ हो चुके टैंक पड़े-पड़े धूल खा रहे थे। उन्हीं में से एक टैंक की छाया में फौजियों की एक टुकड़ी बैठी सिगरेट के कश लगाते हुए ताश खेलने में मशगूल थी। जब हम उस मैदान को पार कर रहे थे, तभी उनमें से एक फ़ौजी की नज़र हम पर पड़ गई। उसने अपने पास बैठे साथी को कोहनी मारी, और फिर हसन को इंगित करके आवाज़ लगाई।

"ऐ, तू!" उसने चिल्लाकर कहा। "मैं तुझे जानता हूँ।"

हम लोगों ने उसे पहले कभी नहीं देखा था। वह छोटे कद का, भद्दा-सा दिखने वाला, पूरी तरह गंजा आदमी था, जिसके चेहरे पर हल्की-हल्की दाढ़ी भी थी। उसने जैसी शिकारी नज़रों से हमें देखा था और जैसी शैतानी मुस्कान उसके चेहरे पर आई थी, उससे मैं भीतर ही भीतर सहम गया था। "चुपचाप चलते रहो," मैंने फुसफुसाते हुए

हसन से कहा।

“तू! हज़ारा! मैं तुझसे बात कर रहा हूँ! मेरी तरफ़ देख!” अबकी बार उसने और भी ज़ोर से चिल्लाकर कहा। उसने अपनी सिगरेट बग़ल में बैठे साथी को पकड़ाई, अपने एक हाथ की पहली उंगली और अंगूठे को मिलाकर गोले की आकृति बनाई, और दूसरे हाथ की बीच वाली उंगली को उस गोले में घुसा दिया। घुसाया, फिर निकाला। फिर वह उसे लगातार अन्दर-बाहर करने लगा। “मैं तेरी माँ को जानता था, पता है तुझे? बहुत ही अच्छी तरह जानता था। वो उस खंदक में ही तो मैंने उसकी ली थी।”

इस बात पर सारे फ़ौजी मिलकर बेहद भद्दे ढंग से हँसने लगे और तरह-तरह की अश्लील आवाजें निकालने लगे। मैं हसन को लगातार कहता रहा कि वो उनकी तरफ़ देखे बिना चुपचाप चलता रहे।

“हाय, कितनी कसी हुई और मीठी-रसीली चूत थी उसकी यार!” वह गंजा फ़ौजी हँस-हँसकर अपने साथियों से हाथ मिलाते हुए बके जा रहा था।

जैसे-तैसे हम लोग टॉकीज़ पहुँचे। अन्दर जब फिल्म शुरू हुई और अँधेरा हो गया तो थोड़ी देर में मुझे बग़ल में बैठे हसन के सुबकने की आवाज़ आई। मैंने उसकी ओर देखा तो पाया कि उसका चेहरा आँसुओं से भीगा हुआ था। मैं उसकी ओर खिसका, अपनी बाँह उसकी गर्दन के गिर्द डाली और उसे अपने क़रीब खींच लिया। उसने अपना सिर मेरे कंधे पर रख दिया। “वह तुम्हें कोई और समझ बैठा था, उसे कोई गलतफहमी हुई थी,” मैंने उसके कान में फुसफुसाते हुए कहा।

मुझे हमेशा यही बताया गया था कि सनौबर के इस तरह भाग जाने से किसी को भी हैरानी नहीं हुई थी। हैरानी तो लोगों को तब हुई थी जब अली जैसे मज़हबपरस्त इंसान (जिसने पूरी कुरआन कंठस्थ कर रखी थी) ने अपने से उन्नीस साल छोटी सनौबर से निकाह किया था। सनौबर देखने में जितनी ख़ूबसूरत थी, उसका चाल-चलन उतना ही बदनाम था। लोग उसे बदचलन और बेहया औरत के तौर पर ही जानते थे। और उसने अपनी इस बदनामी पर खरा उतरकर भी दिखा दिया था। अली की तरह वह भी एक शिया मुस्लिम और जाति की ‘हज़ारा’ थी। रिश्ते में वह उसकी सबसे बड़ी चचेरी बहन होती थी और इसलिए निकाह के लिए स्वाभाविक विकल्प थी। मगर इन बातों के अलावा उन दोनों में और कुछ भी एक जैसा नहीं था। खासकर दिखने-दिखाने के मामले में तो उनमें ज़मीन-आसमान जितना फर्क था। जहाँ सनौबर की जादुई हरी आँखें और मनमोहक चेहरा किसी भी बा-ईमान शख़्स को बे-ईमान बनाने की काबिलियत रखता था, और अगर अफवाहों को सच मानें तो वह अनगिनत मर्दों को बदकारी (व्यभिचार) करने को उकसा भी चुका था, वहीं अली के चेहरे के निचले हिस्से (नाक से नीचे) की माँसपेशियाँ जन्म से ही लकवाग्रस्त थीं, जिसके चलते वह मुस्करा नहीं सकता था और हमेशा मुर्दों की तरह का चेहरा लिए घूमना उसकी नियति बन गया था। उसके चेहरे से यह पता करना नामुमकिन था कि वह ख़ुश है या दुखी। इस

बात का पता सिर्फ़ उसकी तिरछी भूरी आँखों को देखकर ही लगाया जा सकता था, जो ख़ुशी में चमकने लगती थीं और दुःख में डबडबा जाती थीं। लोग जो कहते हैं कि आँखें आत्मा की खिड़कियाँ होती हैं, वो बात अली से बेहतर किसी और पर लागू होते मैंने नहीं देखी। अली के पास उसकी आँखें ही एकमात्र ज़रिया था ख़ुद को ज़ाहिर कर पाने का।

मैंने सुना है कि पतली कमर, मांसल जाँघों, और चौड़े व भारी नितम्बों वाली सनौबर इस अदा से चलती थी कि उसे देखकर हर उम्र के मर्द बदनीयती पर उतर आते थे। दूसरी तरफ़ अली पोलिओग्रस्त था, जिसके चलते उसका दाहिना पैर अविकसित रह गया था। वैसे उस पैर को पैर कहना भी सही नहीं था, वह एक सूखी, पतली और टेढ़ी लकड़ी की तरह था; हड्डी और खाल के बीच में सिवाए माँसपेशियों की एक काग़ज़ जितनी पतली परत के और कुछ भी नहीं था। मुझे याद है कि एक बार, जब मैं आठ साल का था, अली मुझे नान ख़रीदने के लिए अपने साथ बाज़ार ले गया था। वह आगे-आगे चल रहा था और मैं पीछे-पीछे। मैं अपनी मस्ती में था, कुछ गुनगुना रहा था, और साथ ही अली के चलने की नक़ल उतारने की कोशिश कर रहा था। जैसा कि पोलिओग्रस्त लोगों के साथ होता है, अली का पैर घुटने से मुड़ता नहीं था और दायीं ओर घूमा हुआ था, तो वह उसे अर्धवृत्ताकार घुमाकर आगे बढ़ाता था, और इस क्रम में उसका पूरा शरीर इस हद तक दायीं ओर झुक जाता था कि इसे चमत्कार ही कहा जाएगा कि वह गिरता नहीं था। उसकी चाल की नक़ल करने के चक्कर में, मैं तो उस दिन गटर में गिरते-गिरते बचा था। अली को उस तरह चलते देखकर मुझे हँसी आ गई। मेरी हँसी सुनकर अली ने पीछे मुड़कर देखा और मुझे अपनी नक़ल करते रँगे हाथों पकड़ लिया। मगर कुछ कहा नहीं। न तब, न कभी और। वह चुपचाप मुड़ा और पहले की तरह चलता रहा।

अली का चेहरा और चाल देखकर आस-पड़ौस के कई सारे छोटे बच्चे तो डर जाते थे। मगर जो बड़े बच्चे थे, वे डरने की बजाए उसका मज़ाक बनाते थे। जब भी अली सड़क पर निकलता तो बच्चों का हुजूम उसके पीछे लग जाता और जब वह हिचकोले खाते हुए चलता तो सारे बच्चे ऊँची आवाज़ में उसे चिढ़ाने लगते। कुछ तो उसे तरह-तरह के अपमानजनक नामों से भी पुकारते, जैसे कि 'बबालू' या 'बूगीमैन' (नरपिशाच)।

"ओए बबालू! आज किसको खाया तूने?" वे एक स्वर में चिल्लाकर कहते और फिर ठठाकर हँसने लगते। "चपटी नाक वाले बबालू! आज किसको खाया तूने?"

वे उसे 'चपटी नाकवाला' कहकर चिढ़ाते थे क्योंकि अली का (और हसन का भी) नाक-नक्श मंगोल हज़ारा नस्ल का था। बरसों तक हज़ारा नस्ल के बारे में मेरी समझ बस इतनी ही थी कि वे मुगलों के वंशज थे, और यह कि वे कुछ-कुछ चीनी लोगों जैसे दिखते थे। हमारी स्कूल की किताबों में उनके बारे में न के बराबर उल्लेख मिलता था और उनके पूर्वजों की जानकारी भी बहुत नाकाफी थी। मगर एक दिन जब मैं बाबा की

स्टडी में घुसकर उनकी चीज़ों को उलट-पुलट रहा था, तो मेरे हाथ मेरी वालिदा की पुराने ज़माने की इतिहास की किताबें लग गईं। ये किताबें किसी खोरामी नाम के ईरानी लेखक ने लिखी थीं। मैंने उन पुस्तकों की धूल झाड़ी और ले जाकर अपने कमरे में छिपा दिया। रात को जब मैं सोने के लिए बिस्तर पर गया, तब मैंने इन किताबों को खोलकर पढ़ना शुरू किया। यह देखकर मैं हैरान रह गया कि उनमें से एक किताब में 'हज़ारा' नस्ल के इतिहास पर पूरा एक अध्याय दिया गया था! हसन के लोगों पर पूरा एक अध्याय! इस अध्याय में, मैंने पढ़ा कि किस तरह हमारे लोगों ने, यानी कि पश्तूनों ने हज़ाराओं को हद से ज़्यादा सताया था, उन पर हद से ज़्यादा अत्याचार किए थे। मैंने पढ़ा कि उन्नीसवीं सदी में हज़ाराओं ने पश्तूनों के ख़िलाफ़ उठ खड़े होने की कोशिश की थी, मगर पश्तूनों ने बेहिसाब हिंसा और बर्बरता के साथ उनके विरोध को कुचल दिया था। उस किताब में लिखा था कि किस तरह मेरे लोगों ने हज़ाराओं का ख़ून बहाया था, उन्हें उनकी ज़मीनों से बेदखल किया था, और उनकी औरतों को बेचा था। किताब में बताया गया था कि पश्तूनों के हाथों हज़ाराओं के दमन का एक कारण यह भी था कि पश्तून सुन्नी मुसलमान थे जबकि हज़ारा शिया मुसलमान। इस अध्याय में ऐसी बहुत सी बातें पढ़ने को मिलीं जिनके बारे में मुझे कुछ भी पता नहीं था, जिनका मेरे शिक्षकों ने कभी कोई उल्लेख नहीं किया था। और जिनके बारे में बाबा ने भी कभी कुछ नहीं बताया था। हालाँकि इसमें बताई गईं कुछ बातें मुझे पहले से पता थीं, जैसे कि हमारे लोगों का हज़ाराओं को 'चूहे खाने वाला', 'चपटी नाकवाला', और 'बोझा ढोने वाला खच्चर' कहकर पुकारना। मैंने कई बार आस-पड़ौस के बच्चों को हसन को इन नामों से पुकारते सुना था।

अगले हफ्ते, क्लास के बाद, मैंने अपने टीचर को वो किताब दिखाई और उनसे हज़ाराओं के इतिहास वाला अध्याय पढ़ने को कहा। उन्होंने दो-चार पन्ने उलटे-पलटे, मज़ाक उड़ाने के अंदाज़ में मुस्कराए, किताब मुझे लौटाई, और अपना सामान समेटते हुए बोले, "यही एक काम है जो शिया लोग बड़ी अच्छी तरह करते हैं, ख़ुद को 'शहीद' साबित करना।"

'शिया' शब्द बोलते समय उन्होंने ऐसे नाक सिकोड़ी जैसे कि यह किसी किस्म की बीमारी हो।

सनौबर ख़ुद भी 'हज़ारा' थी, मगर जब आस-पड़ौस के बच्चे अली को चिढ़ाते और सताते थे तो उनका विरोध करने की बजाए वह उन्हीं में शामिल हो जाती थी! लोग बताते हैं कि अली की जिस्मानी हालत को लेकर सनौबर के मन में जो हिकारत का भाव था, उसे वह कभी छिपाती नहीं थी बल्कि खुलकर ज़ाहिर करती थी।

"यह शौहर है?" वह अक्सर ताना मारते हुए कहती। "इससे तो अच्छा होता कि मेरी किसी बूढ़े खच्चर से शादी करा दी जाती।"

आख़िर में लोगों ने यह मान लिया कि यह शादी असल में अली और उसके चचाजान, सनौबर के बाबा, के बीच किसी किस्म का कोई समझौता था। उन्हें लगता

था कि शायद अली ने यह शादी अपने चचाजान की रही-सही आबरू को बचाने की गरज़ से की थी, हालाँकि अली ख़ुद ही पाँच साल की उम्र में यतीम हो गया था और उसके पास ऐसा कुछ भी नहीं था जिससे किसी की इज़्ज़त बढ़ सकती।

अली ने कभी भी तंग करने वालों को कोई जवाब नहीं दिया, न ही कभी कोई पलटवार करने की कोशिश की। मुझे लगता है कि इसकी एक वजह तो यही हो सकती है कि अपने पोलियोग्रस्त पैर के चलते वह भागकर किसी को पकड़ने की हालत में ही नहीं होता था। मगर हक़ीक़तन यह उतनी बड़ी वजह नहीं थी। बड़ी वजह यह थी कि अली लोगों की बदसलूकियाँ झेलने का आदी हो चुका था और उसने उनसे अच्छे बर्ताव की उम्मीद करना ही छोड़ दिया था। और फिर जब सनौबर ने हसन को जन्म दिया तो मानो अली को सबकुछ मिल गया। हसन उसके लिए लोगों की बदसलूकियों से मिले ज़ख्मों का मरहम बन गया। हसन ने पैदा होने में ज़रा भी नखरा नहीं किया था, सबकुछ बहुत ही आसानी से हो गया था। न अस्पताल की ज़रूरत पड़ी, न किसी प्रसूती-विशेषज्ञ डॉक्टर की, न किसी दवा की, और न ही किसी और तामझाम की। अली की कोठरी में एक गंदे-से गद्दे पर लेटी सनौबर ने अली और एक दाई की मौजूदगी में बिना किसी परेशानी के आराम से हसन को पैदा कर दिया था। हसन ने पैदा होते वक़्त भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ा था। वह किसी को तकलीफ़ दे ही नहीं सकता था। सनौबर ने थोड़ा-सा कराहा, थोड़ा-सा ज़ोर लगाया, और मुस्कराता हुआ हसन बाहर आ गया।

हसन की पैदाइश के वक़्त मौजूद दाई ने बाद में पड़ौस की एक नौकरानी को बताया (जिसने बाद में इस बात को पूरे इलाके में फैला दिया) कि सनौबर ने जैसे ही अली की बाँहों में मौजूद हसन के कटे हुए होंठ को देखा, वह एक कसैली हँसी हँस दी और फिर ज़हरबुझे स्वर में बोली, “लो, अब तुम्हारे पास तुम्हारे बदले मुस्कराने के लिए तुम्हारी अपनी नामाकूल औलाद भी आ गई!”

उसने हसन को गोद में लेने तक से साफ़ इंकार कर दिया था, और उसे पैदा करने के पाँच ही दिन बाद वह गायब हो गई।

बाबा ने हसन को पालने के लिए भी उसी धाय (नर्स) को रखा जिसने मेरी वालिदा की मौत के बाद मुझे पाला-पोसा था। अली ने ही हमें बताया था कि वह एक नीली आँखों वाली हज़ारा औरत थी, जो बामियान (बुद्ध की विशालकाय प्रतिमा वाला शहर) की रहने वाली थी। अली के मुताबिक़ उसकी आवाज़ बहुत ही मीठी थी और वह बहुत अच्छा गाती थी।

जब-जब यह बात निकलती, मैं और हसन हमेशा अली से पूछते कि वह क्या गाती थी। हालाँकि हमें पता होता था, अली हमें अनगिनत बार बता चुका था, मगर हम इस बहाने अली को गाते हुए सुनना चाहते थे।

अली खँखारकर अपना गला साफ़ करता और गाता,

“एक ऊँचे पहाड़ पर खड़े होकर मैंने अली का नाम पुकारा –
ओ अल्लाहों के अल्लाह! ओ भगवानों के भगवान! ओ इंसानों के
बादशाह! हमारे दुखी दिलों में ख़ुशी जगाओ!”

फिर अली हमें याद दिलाता कि एक ही माँ का दूध पिए हुए लोगों के बीच भाई-भाई का रिश्ता होता है, एक ऐसी नातेदारी होती है जिसे वक़्त भी नहीं तोड़ सकता।

हसन और मैंने एक ही माँ का दूध पिया था। हम दोनों ने इसी चारदीवारी के इसी बाग़ीचे में पहली बार चलना शुरू किया था। और हम दोनों के ही मुँह से पहला शब्द भी इसी छत के नीचे निकला था।

मेरे मुँह से निकला पहला शब्द था ‘बाबा’।

हसन के मुँह से निकला पहला शब्द था ‘आमिर’। मेरा नाम।

आज जब पीछे मुड़कर देखता हूँ तो लगता है कि 1975 की सर्दियों में जो हुआ, और उसके बाद जो कुछ हुआ, उसकी बुनियाद हम दोनों के मुँह से निकले इन पहले शब्दों ने ही रख दी थी।

तीन

ऐसी किंवदंती है कि एक बार मेरे बाबा की बलूचिस्तान में एक काले भालू से भिड़ंत हो गई थी और बाबा ने सिर्फ़ अपने बाहुबल से ही उसे चारों खाने चित्त कर दिया था। अगर यह बात किसी और के बारे में कही गई होती तो इसे 'गप्प' मानकर खारिज कर दिया जाता, क्योंकि लोगों ने यह माना हुआ है कि हर बात को बढ़ा-चढ़ाकर बताना अफ़ग़ानियों के ख़ून में शामिल है। और उनका ऐसा मानना गलत भी नहीं है; यह एक तरह से अफ़ग़ानिस्तान की 'राष्ट्रीय बीमारी' है। अफ़ग़ानिस्तान में कोई अगर यह कहकर शान बघारे कि उसका बेटा तो डॉक्टर था, तो ज़्यादातर संभावना इसी बात की होगी कि उसके बेटे ने कभी हाईस्कूल में बायोलॉजी की कोई परीक्षा पास की होगी। मगर बाबा के बारे में कही-सुनी जाने वाली किसी भी कहानी की सच्चाई पर किसी को कभी कोई शक नहीं रहा। और अगर इस भालू वाली कहानी पर किसी को कभी कोई शक हुआ भी हो तो बाबा की पीठ पर भालू के पंजे से बने गहरी खरोंच के निशान उसे यकीन दिलाने के लिए काफी थे। बाबा की भालू के साथ फ्रीस्टाइल कुश्ती कैसी रही होगी इसको मैं अनगिनत बार अपनी कल्पना में देख चुका था। अक्सर मुझे इसके सपने भी आते थे। और इन सपनों में, मैं देखता था कि बाबा और भालू में अंतर करना मुश्किल था, बल्कि बाबा हर मायने में भालू से इक्कीस ही ठहरते थे।

बाबा 'तूफ़ान आगा' के निकनेम से मशहूर थे। यह नाम रहीम खान का दिया हुआ था, जो आगे चलकर हर किसी की जुबान पर चढ़ गया था। और यह नाम उन पर एकदम फिट बैठता था। मेरे बाबा सचमुच एक ज़बरदस्त तूफ़ान ही थे। छह फुट पाँच इंच का ताड़ जैसा ऊँचा कद, पहाड़ जैसा चौड़ा सीना, बड़े से रौबीले चेहरे पर घनी-घनी दाढ़ी, पीछे की ओर काढ़े हुए घने भूरे घुंघराले बाल, किसी विलो पेड़ को उखाड़ फेंकने के काबिल मालूम होने वाले मोटे-मोटे बाज़ू, और रहीम खान के शब्दों में कहें तो "ऐसी असरदार नज़र कि अगर शैतान को भी घूरकर देख लें तो वो भी घुटनों के बल बैठकर दया की भीख माँगने लगे।" कुल मिलाकर वो ऐसी असरदार शख्सियत के मालिक थे कि जहाँ भी जाते थे, लोगों की नज़रें ख़ुद-ब-ख़ुद यूँ उनकी तरफ़ घूम जाती थीं ज्यों सूरजमुखी के फूल सूरज की दिशा में मुड़ जाते हैं।

बाबा को नज़रअंदाज़ करना नामुमकिन था, यहाँ तक कि जब वह सो रहे हों तब भी। रात को मैं अपने कानों में रुई घुसा लेता था और कम्बल को सिर के ऊपर खींच लेता था, मगर तब भी बाबा के खर्राटों की आवाज़ उनके और मेरे कमरों के बीच की दीवारों को पार करते हुए न सिर्फ़ मेरे कानों में घुस जाती थी बल्कि ऐसा आभास देती थी मानो किसी ट्रक का इंजन चालू हो। और यह तब था जब मेरे और बाबा के सोने के कमरे हॉल के अलग-अलग सिरों पर थे। मुझे आज तक समझ नहीं आया है कि मेरी

वालेदा उनके साथ एक कमरे में कैसे सो लेती थीं। अगर मैं कभी उनसे मिला होता तो बाक़ी बातों के अलावा यह बात भी ज़रूर पूछता।

1960 के दशक के आख़िरी सालों में, जबकि मैं पाँच या छह बरस का रहा होऊँगा, बाबा ने एक यतीमखाना बनाने का फैसला किया। इसकी कहानी भी मैंने रहीम खान के मुँह से सुनी थी। रहीम खान के हिसाब से बेशक बाबा ने आर्किटेक्चर में कोई तालीम नहीं ली थी और न ही उन्हें इस काम का कोई तजुर्बा था, मगर फिर भी उन्होंने तय किया कि वह यतीमखाने की इमारत को ख़ुद ही डिज़ाइन करेंगे। उनके इस फैसले से नाख़ुश लोगों ने उन्हें यह बेवक़ूफ़ी न करने और कोई अच्छा सा आर्किटेक्ट रख लेने की बात कही, मगर बाबा ने साफ़ इंकार कर दिया। लोगों को यकीन था कि बाबा इस अच्छे-खासे प्रोजेक्ट का सत्यानाश करके ही दम लेंगे। मगर बाबा तो बाबा थे, उन्होंने इस एकदम नए काम को भी इतने बढ़िया तरीक़े से अंजाम दिया कि उनके सभी आलोचक भौचक्के रह गए। बाबा ने काबुल नदी के दक्षिण में जादेह मेवांड की मुख्य पट्टी से कुछ ही दूरी पर बन रहे इस दो मंज़िला यतीमखाने को बनाने का पूरा खर्चा ख़ुद उठाया था। रहीम खान ने बताया था कि बात चाहे इंजीनियरों, इलेक्ट्रीशियनों, प्लम्बरों और मज़दूरों को पैसे देने की हो या फिर रिश्वतखोर सरकारी मुलाज़िमों की मुट्ठी गर्म करने की, सारा खर्च बाबा ने अपनी जेब से किया था।

इस यतीमखाने को बनने में तीन साल लगे थे। उस वक़्त मैं आठ साल का था। जिस दिन यतीमखाने को शुरू होना था, उसके ठीक पहले का वह दिन मुझे बहुत अच्छे से याद है जब बाबा मुझे काबुल के उत्तर में कुछ मीलों की दूरी पर बनी घरघा झील लेकर गए थे। बाबा ने मुझसे हसन को भी साथ ले चलने के लिए कहा था, मगर मैंने झूठ बोल दिया था कि उसे दस्त लग रहे थे और इसलिए वह नहीं चल पाएगा। मैं बाबा को किसी के साथ बाँटना नहीं चाहता था। हालाँकि इसकी एक और वजह भी थी। एक बार जब हम दोनों बाबा के साथ घरघा झील गए थे, तब वहाँ हम दोनों में इस बात को लेकर मुकाबला शुरू हो गया था कि किसका फेंका हुआ पत्थर झील में ज़्यादा बार टप्पे खाएगा। हसन का फेंका हुआ एक पत्थर पानी में आठ बार टप्पे खाया, जबकि मेरा फेंका हुआ कोई भी पत्थर पाँच से ज़्यादा बार नहीं उचक सका। बाबा वहीं बैठकर हमारे इस मुकाबले को देख रहे थे। हसन की कामयाबी पर उन्होंने उठकर न सिर्फ़ उसकी पीठ थपथपाई, बल्कि उसके कन्धों के गिर्द अपनी बाँह भी डाली थी।

बहरहाल, झील पहुँचकर हम (सिर्फ़ बाबा और मैं) किनारे पर अपनी पिकनिक टेबल जमाकर बैठ गए और साथ लाए खाने-उबले अंडे और कोफ्ता सैंडविच (मीटबॉल्स और तरह-तरह के अचारों को नान में लपेटकर तैयार किया गया व्यंजन)-का मज़ा लेने लगे।

झील का गहरा नीला पानी एकदम शीशे की तरह साफ़ था, जिस पर पड़कर सूरज की किरणें सोने जैसी चमक रही थीं। शुक्रवार के दिन अमूमन वहाँ लोगों की काफी भीड़ रहती थी; सप्ताहांत पर काफी लोग सपरिवार दिन भर की पिकनिक

मनाने और धूप सेंकने वहाँ आते थे, मगर उस दिन गुरुवार होने के चलते वह जगह लगभग सुनसान थी। मेरे और बाबा के अलावा सिर्फ़ दो और लोग वहाँ थे। वे सैलानी मालूम हो रहे थे और उनके लम्बे-लम्बे बाल और लम्बी-बेतरतीब दाढ़ी थी। इस तरह के लोगों को हमारे यहाँ 'हिप्पी' कहा जाता था। वे दोनों सैलानी हिप्पी डॉक पर बैठे थे, पानी में पैर डालकर और हाथों में मछली पकड़ने का काँटा लेकर। मैंने बाबा से पूछा कि ये हिप्पी लोग दाढ़ी इतनी बड़ी क्यों कर लेते हैं? मगर बाबा ने कोई जवाब नहीं दिया, बस एक हल्का सा 'हूँ!' करके रह गए। असल में वह अगले दिन यतीमखाने की ओपनिंग के वक़्त दी जाने वाली स्पीच को फाइनल टच देने में व्यस्त थे। उनके हाथ में कुछ काग़ज़ थे, जिन पर हाथ से कुछ इबारत लिखी हुई थी। बाबा उसी को पढ़ने, उसमें कुछ चीज़ें जोड़ने-घटाने तथा इस तरह फाइनल स्पीच तैयार करने में लगे हुए थे। मैंने अंडा खाते-खाते एक नया सवाल बाबा की ओर उछाला: "स्कूल में एक लड़का कह रहा था कि अगर हम गलती से अंडे का छिलका खा लें, तो हमें उसे पेशाब के ज़रिए बाहर निकालना पड़ता है। क्या यह सच बात है?" बाबा ने इस बार भी मेरे सवाल का कोई जवाब नहीं दिया और बस एक हल्की सी 'हूँ!' करके रह गए।

मैं सैंडविच खाने लगा। तभी मैंने देखा कि डॉक पर बैठे उन सुनहरे बालों वाले सैलानियों में से एक ज़ोर से हँसा और उसने अपने बग़ल में बैठे दूसरे सैलानी की पीठ पर एक धौल जमा दी। झील के उस पार एक ट्रक मंथर गति से पहाड़ी सड़क पर चला जा रहा था। सूरज की रोशनी उसके साइड-व्यू मिरर पर पड़कर चकाचौंध पैदा कर रही थी।

"मुझे लगता है मुझे कैंसर हो गया है," मैंने कहा। आख़िर-कार बाबा ने हवा में फड़फड़ाते काग़ज़ों पर से नज़र उठाई। फिर बोले, "सोडा कार की डिक्की में रखा है, जाकर ले लो।"

अगले दिन यतीमखाने के बाहर लोगों की इतनी भीड़ जमा थी कि बैठने के लिए कुर्सियाँ कम पड़ गईं थीं। बहुत से लोगों को तो खड़े-खड़े ही प्रोग्राम देखना पड़ा। यतीमखाने की इमारत के ठीक सामने एक छोटा-सा मंच बनाया गया था। मैं उस मंच पर बाबा के ठीक पीछे बैठा था। बाबा ने हरे रंग का सूट पहन रखा था और सर पर उनके एक कराकुल टोपी थी। उस दिन हवा बहुत तेज़ चल रही थी, इसलिए जब बाबा खड़े होकर स्पीच दे रहे थे तो बीच में हवा का एक तेज़ झोंका आया और बाबा की टोपी को उनके सर से उड़ाकर मंच पर गिरा दिया। यह देखकर वहाँ मौजूद सभी लोग हँस पड़े। बाबा ने झुककर अपनी टोपी उठाई और मुझे थमा दी। मैंने ख़ुशी-ख़ुशी ले ली, क्योंकि मुझे लगा कि इससे सभी लोगों को मालूम हो जाएगा कि वह मेरे बाबा हैं। मुझे टोपी देकर बाबा दोबारा माइक पर पहुँचे और बोले कि मैं उम्मीद करता हूँ कि मेरे पीछे खड़ी यह इमारत मेरी टोपी से ज़्यादा मज़बूत होगी। उनकी इस बात पर एक बार फिर वहाँ मौजूद लोग ज़ोरों से हँस पड़े। बाबा की स्पीच ख़त्म होने पर सभी लोगों ने खड़े होकर देर तक तालियाँ बजाईं और जमकर उनकी तारीफ़ की। इसके बाद लोगों ने एक-एक करके उनसे हाथ मिलाया। कुछ लोगों ने प्यार से मेरे बाल सहलाए

और कुछ ने तो मुझ से भी हाथ मिलाया। मैं अपने बाबा पर इतना फख्र महसूस कर रहा था कि बता नहीं सकता।

मगर बाबा की तमाम कामयाबियों के बाद भी लोग उनकी काबिलियत पर शक करना बंद नहीं करते थे। जब बाबा ने बिज़नेस करने का फैसला किया था तो लोगों ने कहा था कि बिज़नेस चलाना उनके बस की बात नहीं हो सकती और उन्हें अपने बाबा की ही तरह क़ानून की पढ़ाई करनी चाहिए। इस पर बाबा ने उन सभी को गलत साबित करने की ठान ली और न केवल एक कामयाब कारोबार खड़ा किया बल्कि काबुल के सबसे दौलतमंद व्यापारियों में भी उनका शुमार होने लगा। बाबा ने रहीम खान के साथ मिलकर कालीन एक्सपोर्ट करने का बेहद कामयाब बिज़नेस खड़ा किया, दो दवा कम्पनियाँ शुरू कीं, और एक रेस्तरां भी खोल लिया।

इसके बाद जब लोगों ने यह कहकर बाबा को नीचा दिखाने की कोशिश की कि भले उन्होंने पैसा कमा लिया हो, पर किसी अच्छे घराने में उनकी शादी होना नामुमकिन थी क्योंकि उनकी रगों में शाही ख़ून नहीं दौड़ रहा था, तब उन्होंने मेरी वालिदा, सोफ़िया अकरमी, से शादी करके एक बार फिर उन सभी को मुँहतोड़ जवाब दिया। मेरी वालिदा बेहद पढ़ी-लिखी औरत थीं, जिनका शुमार काबुल की सबसे इज़्ज़तदार, सबसे ख़ूबसूरत, और सबसे ज़हीन औरतों में होता था। वह यूनिवर्सिटी में फारसी साहित्य पढ़ाती थीं। इतना ही नहीं, वह शाही परिवार की वंशज भी थीं। इसके चलते बाबा सबके सामने उन्हें 'मेरी शहज़ादी' संबोधित करके उन आलोचकों के ज़ख्मों पर नमक रगड़ने से नहीं चूकते थे जो उन्हें शाही ख़ून न होने का ताना दिया करते थे।

मेरे बाबा को हर चीज़ को अपने मुताबिक़ ढाल लेने में महारत हासिल थी; उनके आसपास की दुनिया पूरी तरह उनके मन-मुताबिक़ ही चलती थी (हालाँकि मुझे उन्होंने इस मामले में ढील दे रखी थी)। समस्या यह थी कि वह हर चीज़ को 'ब्लैक या वाइट' की नज़र से ही देखते थे; उनके लिए कोई भी चीज़ या तो 'अच्छी' होती थी या फिर 'बुरी'। और कौन सी चीज़ अच्छी है और कौन सी बुरी, यह तय करने का अधिकार उन्होंने सिर्फ़ और सिर्फ़ ख़ुद के लिए आरक्षित किया हुआ था। इस तरह के इंसान के साथ रहने में समस्या यह होती है कि आप उनसे डरे बिना उनसे प्यार नहीं कर सकते, बल्कि कहना चाहिए कि कभी-कभी कुछ मामलों में तो उनसे थोड़ी नफ़रत भी महसूस होने लगती है आपको।

जब मैं पाँचवी क्लास में था, तो हमारे स्कूल में एक मुल्लाजी हुआ करते थे जो हमें इस्लाम की तालीम देते थे। उनका नाम था मुल्ला फतेहउल्लाह खान। कदकाठी में वह छोटे और मोटे थे, उनका चेहरा चेचक के दागों से भरा हुआ था और आवाज़ किसी इंजन की घरघराहट जैसी थी। वह हमें 'ज़कत' की ज़रूरत और 'हज' का फ़र्ज़ निभाने की अहमियत के बारे में बताते थे। उन्होंने हमें पाँच वक़्त की नमाज़ अदा करने के तौर-तरीक़े भी सिखाए थे और हमें कुरआन की आयतें भी याद कराते थे। दिक्कत

यह थी कि वह उन आयतों का अनुवाद करके उनका मतलब नहीं समझाते थे, बल्कि उनकी कोशिश यह होती थी कि हम उन अरबी आयतों का शब्दशः सही-सही उच्चारण करने में माहिर हो जाएँ ताकि अल्लाह हमारी बात ठीक से सुन सके। अपने इस मकसद में कामयाब होने के लिए वह छड़ी का उपयोग करने से भी नहीं हिचकिचाते थे। एक दिन मुल्लाजी ने हमें बताया कि इस्लाम में शराब पीना बड़ा भारी गुनाह माना जाता है और जो लोग यह गुनाह करते हैं, उन्हें क़यामत के दिन अल्लाह को जवाब देना पड़ता है। उन दिनों काबुल में लोगों का शराब पीना बड़ी आम बात थी। शराब पीने वालों को किसी की भी आलोचना या भर्त्सना का सामना नहीं करना पड़ता था। मगर फिर भी लोग इस्लामिक कायदे की इज़्ज़त रखने की गरज से यह काम सार्वजनिक तौर पर न करके अकेले में ही करते थे। शराब की ख़रीद और बिक्री 'दवा' की तरह होती थी। स्कॉच ख़रीदने के लिए लोग दवा बेचने वालीं 'ख़ास' दुकानों पर जाते थे और दुकानदार भूरे रंग के लिफ़ाफे में रखकर उन्हें बोतल देता था। लोग उस लिफ़ाफ़े को वहाँ मौजूद लोगों की नज़रों से यथासंभव बचाकर ले जाने की कोशिश करते थे, मगर फिर भी कभी-कभी कुछ लोगों (जिन्हें पता होता था कि उस भूरे लिफ़ाफ़े में क्या है) की हिकारत भरी नज़रों का सामना करना ही पड़ जाता था।

बहरहाल, उस रात जब मैं बाबा के साथ उनकी स्टडी में था, तब मैंने उन्हें बताया कि मुल्लाजी ने उस दिन क्लास में हमें शराबनोशी के बारे में क्या सिखाया था। उस समय बाबा स्टडी के एक कोने में बने बार पर खड़े होकर अपने लिए व्हिस्की का गिलास भर रहे थे। उन्होंने मेरी बात सुनी, गैर-रज़ामंदी में सिर हिलाया, और फिर अपने गिलास में से व्हिस्की का एक घूँट भरा। फिर वह आकर मेरे पास बैठ गए, अपना गिलास टेबल पर रखा, और मुझे उठाकर अपनी गोद में बिठा लिया। मुझे ऐसा लगा जैसे किसी पेड़ के तने पर बैठा दिया गया हो। उन्होंने एक गहरी साँस भरी और फिर उससे भी गहरी साँस छोड़ी। इस प्रक्रिया में उनकी मूँछों से होकर गुज़रने वाली हवा की सरसराहट मुझे साफ़ सुनाई दी, और काफी देर तक सुनाई देती रही। मैं तय नहीं कर पाया कि मैं उनके गले लगना चाहता था या डर के मारे उनकी गोद से उतर जाना चाहता था।

"मुझे लगता है कि तुम अपनी स्कूल की पढ़ाई को असल पढ़ाई समझने की गलती कर रहे हो," आख़िर-कार उन्होंने अपनी भारी आवाज़ में मुझसे कहा।

"लेकिन अगर मुल्लाजी ने जो कहा है वो सच है, तब क्या आप भी गुनहगार हैं बाबा?"

"हम्म।" बाबा ने बर्फ़ का एक टुकड़ा दाँतों के बीच लेकर तोड़ा। "तुम जानना चाहोगे कि तुम्हारे बाबा गुनाह को लेकर क्या सोचते हैं?"

"हाँ।"

"ठीक है, बताता हूँ," बाबा ने कहा, "मगर उससे पहले एक बात अच्छी तरह

समझ लो, आमिर। तुम्हें उन दाढ़ीवाले अहमकों से कभी कोई ढंग की बात सीखने को नहीं मिलने वाली।”

“आपका मतलब है मुल्ला फ़तेहउल्लाह खान से?”

बाबा ने पहलू बदला तो उनके हाथ में थमा गिलास हिला और बर्फ़ के गिलास से टकराने की खनक पैदा हुई। “वह और उनके जैसे बाक़ी सब। मेरा बस चलता तो मैं ख़ुद को मज़हब-परस्त कहने वाले इन सब बंदरों की दाढ़ी में आग लगा देता!”

मैं हँसने लगा। बाबा को किसी बन्दर की (फिर चाहे वह मज़हब-परस्त समझता हो या नहीं) दाढ़ी में आग लगाते देखने की कल्पना मेरे लिए बड़ी ही मज़ेदार थी।

“उनके पास दिन भर माला फेरते रहने और उस किताब में लिखी बातों को दोहराने के सिवाए, जिसकी भाषा भी उन्हें समझ नहीं आती, कोई काम नहीं होता।” इतना कहकर उन्होंने अपने गिलास में से एक घूँट भरा। “अगर किसी दिन अफ़ग़ानिस्तान की बागडोर इन कठमुल्लाओं के हाथ में आ गई, तब तो हम सबका बेड़ा गर्क होना पक्का है।”

“मगर मुल्ला फ़तेहउल्लाह खान तो भले आदमी लगते हैं,” मैंने अपनी हँसी पर काबू पाते हुए कहा।

“वो तो चंगेज़ ख़ान भी लगता था,” बाबा ने कहा। “खैर, छोड़ो इन मुल्लाओं को। तुम गुनाह के बारे में पूछ रहे थे न, तो वही बात करते हैं। तुम सुन रहे हो न?”

“हाँ,” मैंने अपनी हँसी दबाने और संजीदा होने की कोशिश करते हुए कहा। मगर होंठ बंद हुए तो भीतर की हँसी नाक के रास्ते बाहर निकल पड़ी, जिससे खर्राटे लेने जैसी आवाज़ हुई। इसके चलते फिर से मेरी हँसी छूट गई।

इस पर बाबा ने सख़्त नज़रों से मेरी तरफ़ देखा, और पल भर में मेरी सारी हँसी गायब हो गई।

“मैं तुम्हारे साथ वैसे ही बात करना चाह रहा हूँ, जैसे दो बड़े आपस में करते हैं। तुम्हें लगता है तुम इस तरह की बातचीत को समझ पाओगे?”

“जी बाबा जान,” मैंने हौले से कहा। मैं इस बात पर हमेशा हैरान होता था कि कैसे बाबा चंद लफ़्ज़ों में ऐसी बात कह जाते थे जो मेरे मर्म को छू लेती थी। इतने अरसे बाद तो मुझे बाबा के साथ इस तरह बैठने और बात करने का मौका मिला था (वर्ना गोद में बिठाने की बात तो छोड़ो, बाबा को मुझसे ठीक से बात करने का भी समय नहीं मिलता था), और मैं था कि ध्यान से उनकी बात सुनने की बजाए हँसी-ठिठोली में लगा था। मुझे अपनी बेवकूफ़ी पर बड़ा अफ़सोस हुआ।

“बढ़िया,” उन्होंने कहा। “तो सुनो। तुम्हारे मुल्लाजी चाहे कुछ भी कहें, मगर इस दुनिया में सिर्फ़ एक ही चीज़ गुनाह है, सिर्फ़ एक चीज़। और वो है चोरी। बाक़ी हर

गुनाह इसी गुनाह का बदला हुआ रूप होता है। समझे?"

"नहीं बाबा जान," मैंने कहा, पर मन ही मन मैं चाह रहा था कि काश उनकी बात मुझे समझ आ गई होती तो मुझे उन्हें दोबारा निराश नहीं करना पड़ता।

बाबा ने बेसब्री से एक गहरी साँस भरी। उनकी इस प्रतिक्रिया ने भी मेरे मर्म पर चोट की, क्योंकि आम तौर पर बाबा बेसब्र होने वाले इंसान नहीं थे। जब से यतीमखाने का काम शुरू हुआ था तब से बाबा को अक्सर रात को घर लौटने में देर हो जाती थी और मुझे रात का खाना अकेले ही खाना पड़ता था। मैं बार-बार अली से पूछता था कि बाबा कहाँ हैं, कब तक लौटेंगे, हालाँकि मुझे अच्छी तरह पता होता था कि वे कंस्ट्रक्शन साइट पर होंगे और वहाँ चल रहे काम का मुआयना करने और कारीगरों को दिशा-निर्देश देने में व्यस्त होंगे। क्या इसके लिए सब्र की ज़रूरत नहीं होती? और इसलिए मैं उन सभी बच्चों से नफ़रत करने लगा था जिनके लिए बाबा यतीमखाना बनवा रहे थे; कभी-कभी तो मेरे मन में आता कि अच्छा होता अगर ये बच्चे अपने वालिदैन (माँ-बाप) के साथ ही मर गए होते।

"जब तुम किसी का क़त्ल करते हो तो उससे उसकी ज़िन्दगी चुरा लेते हो," बाबा ने कहा। "उसकी बीवी से उसका शौहर और उसके बच्चों से उनका बाप चुरा लेते हो। जब तुम किसी से झूठ बोलते हो, तब तुम उससे सच जानने का हक़ चुरा लेते हो। जब तुम किसी के साथ बेईमानी करते हो तब तुम उससे ईमानदार बर्ताव का हक़ चुरा रहे होते हो। समझ में आया?"

मुझे समझ आ गया था। जब बाबा छह साल के थे, तब एक रात मेरे दादा के घर एक चोर घुस आया था। मेरे दादा, जो कि एक इज्ज़तदार जज थे, उन्होंने उस चोर का बहादुरी से मुकाबला किया, मगर आख़िर में उस चोर ने उनके गले में खंजर घोंपकर उनको मार डाला और बाबा से उनका बाप चुरा लिया। शहर के लोगों ने अगले दिन दोपहर से पहले ही उस चोर को पकड़ लिया। मालूम हुआ कि वह कुंदूज़ इलाके का रहने वाला एक आवारा किस्म का इंसान था। लोगों ने दोपहर की नमाज़ से दो घंटे पहले ही उसे एक ओक के पेड़ पर फाँसी लटकाकर उसे उसके किए की सज़ा दे दी। यह बात मुझे बाबा ने नहीं बल्कि रहीम खान ने बताई थी। बाबा के बारे में ज़्यादातर बातें मुझे दूसरों से ही पता चलती थीं।

"चोरी से ज़्यादा घिनौना काम कोई नहीं है, आमिर!" बाबा ने कहा। "जो आदमी उस चीज़ को लेने की कोशिश करता है जो उसकी नहीं है, फिर चाहे वह किसी की ज़िन्दगी हो या सिर्फ़ एक नान...मैं उस आदमी पर थूकता हूँ। और अगर ऐसा कोई आदमी मेरे सामने आ जाए तो फिर समझो उसकी खैर नहीं। क्या समझे?"

बाबा के हाथों किसी चोर की मरम्मत होने की कल्पना मुझे रोमांचक भी लगी और डरावनी भी। पर प्रत्यक्ष में, मैंने कहा, "जी बाबा जान।"

"अगर वाक़ई अल्लाह जैसी कोई शै है, तो यकीनी तौर पर उसके पास यह देखने

से ज़्यादा ज़रूरी काम होंगे कि मैं शराब पी रहा हूँ या नहीं, पोर्क (सूअर का माँस) खा रहा हूँ या नहीं। अच्छा चलो अब नीचे उतरो। गुनाह की बात करते-करते मुझे फिर से प्यास लग आई है।"

बाबा बार पर जाकर दोबारा व्हिस्की का गिलास भरने लगे और मैं सोचने लगा कि पता नहीं अब फिर कब बाबा के साथ इस तरह बैठने और बातें करने का मौका मिलेगा। इसकी एक वजह यह थी कि मुझे मन ही मन लगता था कि बाबा शायद मुझसे थोड़ी नफ़रत करते थे। और क्यों न करते, मैं उनकी प्यारी बेगम, उनकी ख़ूबसूरत शहज़ादी की मौत के लिए ज़िम्मेदार जो था। मतलब, मुझे ऐसा लगता था। और मैं सोचता था कि उनके इस नुक़सान की कुछ हद तक भरपाई करने का मेरे पास एक यही उपाय था कि मैं कुछ हद तक उनके जैसा बनने की कोशिश करूँ। मगर मैं इस कोशिश में नाकाम रहा। मैं उनके जैसा न बन सका। बिलकुल भी नहीं।

स्कूल में हम लोग एक खेल खेला करते थे, जिसका नाम था 'शेरजंगी', यानी कि 'शेर-ओ-शायरी का मुकाबला'। यह खेल बिल्कुल अंताक्षरी की तरह था। हमारे फारसी के उस्ताद जी बच्चों की दो टीमें बना देते थे। फिर एक टीम का कोई बच्चा सवाल के रूप में कोई शेर सुनाता था और दूसरी टीम को साठ सेकण्ड्स के अन्दर-अन्दर उस शेर के आख़िरी अक्षर से शुरू होने वाला कोई शेर सुनाकर जवाब देना होता था। क्लास में हर कोई चाहता था कि मैं उसकी टीम में रहूँ, क्योंकि उस वक़्त तक मैं ग्यारह बरस का हो चुका था और खय्याम, हफीज़, तथा रूमी जैसे मकबूल शायरों की दर्जनों रचनाएँ मुझे कंठस्थ हो चुकी थीं। रूमी की 'मसनवी' का भी एक बड़ा हिस्सा मुझे याद था। इसी के चलते एक बार मैंने अकेले पूरी क्लास को हरा दिया था। उस रात जब मैंने बाबा को अपनी इस कामयाबी के बारे में बताया था तो उनके चेहरे पर ख़ुशी या नाज़ का कोई भाव नहीं आया था, बहुत ही ठंडे और अनमने भाव से उन्होंने बस इतना ही कहा था, "बढ़िया।"

अपने बाबा की इस उदासीनता से उपजने वाली निराशा को दूर करने के लिए मैंने अपनी मरहूम वालिदा की किताबों में पनाह लेना शुरू कर दिया था। हसन और ये किताबें ही मेरा सहारा थीं। मेरी वालिदा का कलेक्शन बहुत बड़ा था, इसलिए मुझे रूमी, हाफ़िज़, सादी, विक्टर ह्यूगो, जूल्स वर्ने, मार्क ट्वेन, इयान फ्लेमिंग सहित तमाम मकबूल लेखकों, कवियों और शायरों को पढ़ने का मौका मिला। जब अम्मी जान के कलेक्शन की सारी किताबें मैंने पढ़ लीं (मैं इतिहास की पुस्तकों की बात नहीं कर रहा हूँ, उन उबाऊ किताबों में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं थी), सारे उपन्यास और सारे कविता-संग्रह वगैरह, तब मैं अपने जेबखर्ची के पैसों से नयी किताबें ख़रीदकर लाने लगा। सिनेमा पार्क के क़रीब की एक किताबों की दुकान से मैं हर हफ्ते एक नयी किताब ख़रीदता था। धीरे-धीरे मैंने इतनी किताबें ख़रीद डालीं कि उन्हें रखने के लिए अलमारी में जगह ख़त्म हो गई और मुझे उन्होंने कार्ड बोर्ड के डिब्बों में भरकर रखना शुरू करना पड़ा।

किसी शायरा से शादी करना और बात थी, मगर एक ऐसे लड़के का बाप बनना जिसे शिकार से ज़्यादा दिलचस्पी शायरी की किताबों में रहती हो, मेरे ख़याल से बाबा ने सपने में इसकी कल्पना नहीं की थी। उनके ख़याल से जो असल मर्द होते हैं, उनकी शेर-ओ-शायरी पढ़ने में दिलचस्पी हो ही नहीं सकती, लिखने की तो बात ही भूल जाइए! उनका मानना था कि असल मर्द, असल लड़के सॉकर खेलते हैं, जैसा कि लड़कपन के दिनों में बाबा किया करते थे। सॉकर को लेकर उनका जुनून ज़बरदस्त था। इसकी बानगी यह है कि 1970 में बाबा यतीमखाना बनवाने के काम को रोककर एक महीने के लिए तेहरान गए थे। क्यों? टेलीविज़न पर सॉकर वर्ल्ड कप के मैच देखने। तब तक अफ़ग़ानिस्तान में टीवी नहीं आया था, इसलिए। मेरे अन्दर भी यह जुनून जागे, इसके लिए बाबा ने मुझे अलग-अलग वक्त पर बच्चों की कई सारी सॉकर टीमों में दाख़िला दिलाया। मगर मैं इस खेल में एकदम ही फिसड्डी था और जिस भी टीम में जाता था, उसके ऊपर बोझ बन जाता था। मुझे खिलाकर उन्हें लगता था मानो वे ग्यारह की बजाए दस खिलाड़ियों के साथ खेल रहे हों और सामने वाली टीम में एक खिलाड़ी बढ़ गया हो। मेरे साथी खिलाड़ी किसी अच्छे 'पास' का मौका बनाते तो मैं अनजाने ही बीच में आ जाता, या जब वे गेंद लेकर आगे बढ़ रहे होते तो मैं नादानी में उनका रास्ता रोक लेता। मैं अपनी मरियल-सी टाँगों के सहारे मैदान पर यहाँ से वहाँ घिसटता-सा रहता और अपने साथियों को आवाज़ लगाकर पास माँगता, मगर भूलकर भी कोई मुझे पास नहीं देता, बल्कि मैं पास पाने के लिए जितनी ज़्यादा कोशिश करता, अपने हाथ सिर से ऊपर लहराते हुए जितनी ज़ोर से चीखता कि "मैं खाली हूँ, मैं खाली हूँ," मेरे साथी खिलाड़ी मुझे उतना ही ज़्यादा अनदेखा करने लगते। मगर बाबा हार मानने को तैयार न थे। जब यह साफ़ हो गया कि उनकी खेल प्रतिभा जींस के माध्यम से मुझमें नहीं आ पाई है, तब उन्होंने मुझे सॉकर का एक जुनूनी दर्शक बनाकर ही तसल्ली कर लेने की कोशिशें शुरू कर दीं। मुझे भी लगा कि यह ठीक है, इतना तो मैं कर ही लूँगा। मैंने दिखावे के लिए सॉकर देखने में दिलचस्पी दिखानी शुरू कर दी। मैं उनके साथ मैच देखने जाता और जब हमारी टीम (काबुल की टीम) विपक्षी टीम के ख़िलाफ़ गोल करती तो मैं ख़ुशी से उछल पड़ने का नाटक करता और जब कभी रेफरी हमारी टीम के ख़िलाफ़ पेनाल्टी देता तो झूठ-मूठ उसे गालियाँ भी देता। लेकिन बाबा कोई बच्चे तो थे नहीं, जल्दी ही वह समझ गए कि मेरी दिलचस्पी नकली थी, इसलिए आख़िर-कार उन्होंने इस सच्चाई को मंज़ूर कर ही लिया कि उनका बेटा न तो कभी सॉकर खेलेगा और न ही देखेगा।

मुझे याद है कि एक बार बाबा मुझे अपने साथ हर साल वसंत के पहले दिन, यानी कि नए साल के पहले दिन आयोजित होने वाला 'बुज़कशी' टूर्नामेंट दिखाने ले गए थे। बुज़कशी अफ़ग़ानिस्तान का राष्ट्रीय जुनून हुआ करता था, और आज भी है। इस खेल में जो खिलाड़ी होते हैं, उन्हें 'चैपंडाज़' कहा जाता है। ये बेहद जाँबाज़ घुड़सवार होते हैं और आमतौर पर इन्हें 'बुज़कशी' के शौकीन अमीरों की सरपरस्ती हासिल होती है, वे ही इनका तमाम खर्च उठाते हैं। खेल की शुरुआत में मैदान के बीचों-बीच बकरी या उसी आकार के किसी और मवेशी की लाश रखी जाती है। फिर सभी 'चैपंडाज़ों' के

बीच उस लाश को हथियाने के लिए मुकाबला शुरू होता है, हाथापाई और झूमाझटकी भरा मुकाबला। जो भी चैपंडाज़ लाश को हथियाने में कामयाब हो जाता है उसे उस लाश को अपने घोड़े पर लादकर पूरे मैदान का चक्कर लगाते हुए उस घेरे की ओर बढ़ना होता है जिसे 'स्कोरिंग सर्कल' (ज़मीन पर बना एक गोल घेरा) कहा जाता है। अगर वह उस लाश को स्कोरिंग सर्कल में डालने में कामयाब हो जाता है तो उसे जीता हुआ घोषित किया जाता है। मगर यह इतना आसान नहीं होता, क्योंकि बाक़ी के चैपंडाज़ शिकारी कुत्तों की तरह उसका पीछा करते हैं और लाश उससे छीनने के लिए अपनी पूरी ताक़त लगा देते हैं। इसके लिए वे हर संभव तरीक़ा –लतियाना, धक्का देना, चाबुक चलाना, घूँसे बरसाना, रस्सी का फंदा फेंकना– अपनाने के लिए आज़ाद होते हैं। बहरहाल, उस दिन भी खेल अपने पूरे शबाब पर था; इधर दर्शकों की भीड़ रोमांच के मारे गला फाड़कर चिल्ला रही थी और उधर मैदान में लाश को हथियाने के लिए सभी चैपंडाज़ों के बीच ज़बरदस्त जंग छिड़ी हुई थी। धूल का भयानक बवंडर उठ रहा था और घोड़ों की टापों से वातावरण थर्रा रहा था। हम ऊपर वाली दर्शक-दीर्घा में बैठकर खेल देख रहे थे कि तभी चैपंडाज़ों की भीड़ सरपट घोड़े दौड़ाती नीचे से गुज़री। उनकी चीख-ओ-पुकार और उनके घोड़ों की हिनहिनाहट से हमारे कान के परदे झनझना उठे। उन सभी के चेहरों पर ज़बरदस्त हिंसक भाव थे और उनके घोड़ों की नाक से झाग निकल रहा था।

तभी बाबा ने एक ओर इशारा करते हुए मुझसे कहा, "आमिर! उस आदमी को देख रहे हो जो वहाँ लोगों से घिरा बैठा है?"

मैंने देखा।

"वह हेनरी किसिंजर है।"

"ओह!" मैंने कहा। हालाँकि मुझे नहीं पता था कि हेनरी किसिंजर कौन था और इसलिए मैं बाबा से पूछना चाहता था कि वह कौन है, मगर तभी नीचे मैदान पर कुछ ऐसा हुआ कि आतंक के मारे मेरे दिमाग़ ने काम करना ही बंद कर दिया। मैंने देखा कि एक 'चैपंडाज़' अपने घोड़े से गिर पड़ा था, मगर बाक़ी 'चैपंडाज़ों' ने इस बात की ज़रा सी भी परवाह नहीं की और उन सबकी घमासान जंग बदस्तूर जारी रही। नतीजतन ज़मीन पर गिरा हुआ चैपंडाज़ उनके घोड़ों की टापों के नीचे बुरी तरह कुचला जाने लगा। किसी घोड़े की लात उसे इधर उछालती तो किसी की उधर। आख़िर को जब 'चैपंडाज़ों' का हुजूम आगे बढ़ा, तब जाकर उसकी दुर्गति रुकी। मैंने फटी-फटी आँखों से देखा कि उसके शरीर में एक बार हरकत हुई और फिर वह बेजान हो गया। उसके दोनों पैर अस्वाभाविक कोणों पर मुड़े हुए थे और वह अपने ही ख़ून से बने तालाब में लथपथ था।

मैंने रोना शुरू कर दिया।

मेरा रोना बंद होने का नाम ही नहीं ले रहा था; घर लौटते वक़्त भी मैं रास्ते भर

रोता रहा। मुझे याद है कि कैसे बाबा के हाथ स्टीयरिंग व्हील पर कस कर भिंचे हुए थे। कभी वह व्हील को कसकर भींच लेते, तो कभी पकड़ ढीली कर देते। ख़ास तौर से मैं इस बात को कभी नहीं भूल पाऊँगा कि कैसे रास्ते भर बाबा चुपचाप गाड़ी चलाते हुए इस बात की भरसक कोशिश करते रहे कि उनके मन में मेरे लिए जो धिक्कार का भाव पैदा हो रहा था, वो उनके चेहरे पर न आने पाए।

उसी रात जब मैं अपने कमरे में जाने के लिए बाबा की स्टडी के सामने से गुज़र रहा था तो मुझे उनके और रहीम खान के बीच हो रही बातचीत सुनाई पड़ी। मैंने अपने कान बंद दरवाज़े से सटा दिए।

"...हमें ऊपर वाले का शुक्रगुज़ार होना चाहिए कि वह अब ठीक है," रहीम खान कह रहे थे।

"जानता हूँ, जानता हूँ। मगर वह पूरा वक़्त या तो उन किताबों में घुसा रहता है या फिर ऐसे घूमता है जैसे किसी ख्वाब में डूबा हो।"

"और?"

"मैं ऐसा नहीं था।" बाबा की आवाज़ में झल्लाहट भी थी और गुस्सा भी।

रहीम खान हँस पड़े। "बच्चे कोई रंग भरने वाली किताब (कलरिंग बुक) नहीं होते, जिसमें हम अपनी पसंद के रंग भरने की कोशिश करते रहें।"

"मैं तुम्हें बता रहा हूँ," बाबा ने कहा, "मैं बिल्कुल भी ऐसा नहीं था, और न ही मेरे साथ के बच्चों में से कोई ऐसा था।"

"यार, कभी-कभी न तुम मुझे दुनिया के सबसे ज़्यादा ख़ुद-निगर (आत्म-केन्द्रित) आदमी मालूम होने लगते हो," रहीम खान ने कहा। मेरी जानकारी में वह इकलौते व्यक्ति थे जो बाबा से इस तरह से बात कर सकते थे।

"ऐसा कुछ नहीं है।"

"नहीं?"

"नहीं।"

"तो फिर क्या है?"

मुझे बाबा की कुर्सी के चमड़े के चरमराने की आवाज़ आई; बाबा ने अपनी कुर्सी में पहलू बदला था। मैंने अपनी आँखें बंद कर लीं और अपनी पूरी तवज्जो अपने कानों में ले आया, वह सुनने के लिए जो मैं नहीं सुनना चाहता था। "कभी-कभी मैं इस खिड़की से बाहर झाँकता हूँ तो मुझे वह गली में दूसरे बच्चों के साथ खेलता नज़र आ जाता है। मैं देखता हूँ कि किस तरह बाक़ी बच्चे उसे यहाँ से वहाँ धकियाते रहते हैं, उसके खिलौने छुड़ा लेते हैं, कभी उसके सिर पर चपत लगा देते हैं तो कभी पीठ पर

धौल जमा देते हैं। मगर वह कभी इसका विरोध करने की कोशिश तक नहीं करता। कभी नहीं। वह बस...अपना सिर झुका लेता है और...”

“इसका मतलब है कि वह हिंसक प्रवृत्ति का नहीं है,” रहीम खान ने कहा।

“मेरा वो मतलब नहीं है, रहीम, और तुम यह अच्छी तरह जानते हो,” बाबा ने प्रतिवाद करते हुए कहा। “इस लड़के में कुछ कमी है।”

“हाँ, उसके भीतर मतलबीपना नहीं है।”

“आत्म-रक्षा का मतलबीपने से कोई लेना-देना नहीं है। तुम्हें पता है जब वे बच्चे उसे परेशान कर रहे होते हैं, तब क्या होता है? हसन बीच में आ जाता है और उन बच्चों से लड़ता है, आमिर को उनसे बचाता है। और जब उन दोनों के घर लौटने पर मैं आमिर से पूछता हूँ कि हसन के चेहरे पर ये खरोंचें कैसे आईं, तो वह कहता है कि वह गिर पड़ा था। मैं बता रहा हूँ रहीम, इस लड़के में कुछ तो गड़बड़ी है।”

“तुम उसे उसका रास्ता ख़ुद तलाशने दो,” रहीम खान ने कहा।

“मगर वो जा किस तरफ़ रहा है, बताओ तो ज़रा?” बाबा ने कहा। “जो लड़का आज ख़ुद के लिए खड़ा नहीं हो सकता, वो कल बड़ा होकर किसी भी चीज़ का सामना नहीं कर पाएगा।”

“अब तुम तिल का ताड़ बनाने की कोशिश कर रहे हो।”

“बिल्कुल नहीं।”

“असल में तुम इसलिए नाराज़ हो क्योंकि तुम्हें इस बात का डर लग रहा है कि बड़ा होकर वह तुम्हारा कारोबार नहीं संभाल पाएगा।”

“अब कौन तिल का ताड़ बना रहा है?” बाबा ने कहा। “देखो, मुझे पता है कि तुम दोनों को एक-दूसरे से बहुत लगाव है, और मैं इस बात से ख़ुश हूँ। हाँ, इस बात से मुझे रश्क भी होता है कभी-कभी, मगर मैं ख़ुश हूँ। और मैं यह बात दिल से कह रहा हूँ। कोई तो ऐसा होना चाहिए जो...उसे समझता हो, क्योंकि मैं तो नहीं समझ सकता। मगर आमिर को लेकर कुछ ऐसी परेशानी वाली बात है जो मैं तुम्हें समझा नहीं पा रहा हूँ। बात ऐसी है...” मैं साफ़ तौर पर समझ सकता था कि वह सही अलफ़ाज़ तलाश रहे थे। फिर उन्होंने तनिक धीमी आवाज़ में कहा, मगर तब भी मुझे साफ़ सुनाई दिया। “अगर मैंने अपनी आँखों से डॉक्टर को उसे अपनी बीवी के पेट से बाहर निकालते नहीं देखा होता, तो मैं कभी इस बात पर यकीन नहीं कर पाता कि वह मेरी औलाद है।”

अगली सुबह मेरे लिए नाश्ता बनाते समय हसन ने मुझसे पूछा, “आप किस बात को लेकर परेशान हैं?” इस पर मैंने झल्लाते हुए उससे कह दिया कि वह अपने काम से काम रखे।

रहीम खान की यह बात बिल्कुल गलत थी कि मेरे भीतर मतलबीपना नहीं था।

चार

1933 वह साल था जब बाबा पैदा हुए थे और जब से अफ़ग़ानिस्तान में ज़हीर शाह की चालीस बरस लम्बी हुकूमत की शुरुआत हुई थी। इसी साल के एक दिन की बात है। काबुल के एक रईस और नामचीन परिवार के दो जवान भाई हशीश और फ्रेंच वाइन के नशे में धुत्त होकर अपने बाप की फोर्ड कार को हवाईज़हाज़ बनाए हुए थे। आख़िर-कार वही हुआ, जिसका डर था। पगमन के रास्ते में उन्होंने एक हज़ारा मियाँ-बीवी को अपनी गाड़ी के नीचे कुचलकर मार डाला। पुलिस ने उन दोनों भाइयों को (जो अब नशा उतरने के बाद कुछ हद तक अपनी करनी पर पछता रहे थे) पकड़कर मेरे दादा, जो कि एक बेहद इज्ज़तदार जज और एकदम बेदाग़ चरित्र के आदमी थे, उनके सामने पेश किया। साथ में मरहूम हज़ारा मियाँ-बीवी का पाँच साल का बेटा भी था। दोनों लड़कों का पक्ष और उनके बाप की रहम की फ़रियाद सुनने के बाद मेरे दादा ने फैसला सुनाया कि उन दोनों लड़कों को तत्काल कंधार जाकर एक साल के लिए फ़ौज में भर्ती होना होगा। उनके लड़कों के परिवार ने हर तरह से यह सुनिश्चित करने की कोशिश की थी कि उन्हें किसी भी तरह की सज़ा न मिले, और इसलिए उनके बाप ने इस फैसले के ख़िलाफ़ आवाज़ भी उठाई, मगर मेरे दादा के सामने उनकी एक न चली। आख़िर में सभी इस बात पर राज़ी हो गए कि सज़ा थोड़ी सख़्त ज़रूर थी, मगर वाजिब थी। रही बात उस यतीम हो चुके हज़ारा बच्चे की, तो उसे मेरे दादा ने अपने घर में पनाह दे दी। उन्होंने अपने नौकरों से कहा कि वे उसे घर के काम सिखाएँ, मगर साथ ही यह हिदायत भी दी कि उसके साथ किसी किस्म की कोई सख्ती न बरती जाए। वह बच्चा अली था।

अली और बाबा साथ-साथ खेलते-कूदते बड़े हुए थे (तब तक जब तक पोलियो के चलते अली अपाहिज नहीं हो गया), वैसे ही जैसे अब मैं और हसन हो रहे थे। बाबा हमेशा हमें उन शरारतों के बारे में बताते थे जो बचपन में उन्होंने और अली ने मिलकर की थीं। इस पर अली बेबसी से सिर हिलाकर कहता, “मगर आगा साहिब, इनको यह भी तो बताइए कि उन शरारतों के पीछे किसका दिमाग़ होता था और कौन बेचारा सिर्फ़ कहे हुए पर अमल कर रहा होता था।” इस पर बाबा ठठाकर हँस पड़ते और अली को बाँहों में भर लेते।

मगर इन कारनामों को सुनाते समय बाबा ने कभी भी अली को अपना दोस्त नहीं बताया।

और गौर करने बात यह थी कि मैंने भी कभी हसन को दोस्त की तरह नहीं देखा था। मतलब, जिन मायनों में हम किसी को दोस्त कहते हैं, उन मायनों में, मैंने हसन को कभी दोस्त नहीं जाना था, बावजूद इसके कि हमारा ज़्यादातर वक़्त एक-दूसरे के साथ

ही बीतता था, हमने एक-दूसरे को हाथ छोड़कर साइकिल चलाना या कार्डबॉक्स का इस्तेमाल करके घर पर ही अपना ख़ुद का कैमरा बनाना सिखाया था, हमारी पूरी सर्दियाँ साथ-साथ पतंग उड़ाते और कटी पतंगों के पीछे भागते हुए बीतती थीं, और यहाँ तक कि आज भी जब मैं अफ़ग़ानिस्तान के बारे में सोचता हूँ तो मेरे ज़ेहन में उसी दुबले-पतले बदन, घुटे हुए सिर, कटे होंठ वाली मुस्कराहट, और चीनी गुड़ियाओं जैसे चेहरे वाले लड़के का अक्स उभर आता है।

बावजूद इन तमाम बातों के मेरे ज़ेहन में कभी यह खयाल नहीं आया कि हसन मेरा दोस्त था, क्योंकि नस्लीय, धार्मिक, और ऐतिहासिक पूर्वाग्रहों से ऊपर उठ पाना आसान नहीं होता। आख़िर को जो बात सबसे ज़्यादा अहमियत रखती थी वो थी मेरा पश्तून और उसका हज़ारा होना, मेरा सुन्नी और उसका शिया होना, और यह हक़ीक़त किसी भी तरह बदलने वाली नहीं थी। किसी भी तरह नहीं।

मगर फिर भी हम थे तो बच्चे ही। हम साथ-साथ बड़े हुए थे, हमने साथ-साथ चलना और बोलना सीखा था, और इस हक़ीक़त को भी कोई नहीं बदल सकता था – न इतिहास, न धर्म, न नस्ल, न समाज। मैंने अपनी ज़िन्दगी के शुरुआती बारह बरसों का ज़्यादातर वक़्त हसन के साथ खेलते हुए ही बिताया था। बल्कि अब अगर मैं पीछे मुड़कर देखूँ तो अपना पूरा बचपन मुझे हसन के साथ बिताए गर्मियों की छुट्टी के एक लम्बे अलसाए हुए दिन की तरह मालूम होता है, जहाँ हम दोनों मेरे बाबा के बाग़ीचे में पेड़ों के बीच पकड़म-पकड़ाई, छुपन-छुपाई, चोर-पुलिस, और काऊबॉयज़ और इंडियंस जैसे खेल खेलते हुए और तरह-तरह से तरह-तरह के कीट-पतंगों को टॉर्चर करते हुए (जिनमें सबसे ख़ास था किसी मधुमक्खी को पकड़कर उसका डंक निकाल देना और उसके गिर्द एक धागा बाँध देना और जब भी वह बेचारी उड़ने की कोशिश करे तो उस धागे को खींचकर उसे वापस ज़मीन पर ले आना) मस्ती में वक़्त बिताते नज़र आते हैं।

मुझे याद है कि जब 'कोच्ची' कहे जाने वाले खानाबदोश लोग भेड़-बकरियों, खच्चरों और ऊँटों के अपने कारवाँ के साथ उत्तरी पहाड़ों की ओर जाते हुए काबुल से होकर गुज़रते थे तो कैसे हम दोनों उनका पीछा किया करते थे। उनकी भेड़-बकरियों की मिमियाहट और ऊँटों के गलों में बंधीं घंटियों की आवाज़ सुनकर जैसे ही हमें उनके आने की ख़बर लगती थी, हम तुरंत भागकर बाहर आ जाते थे और अपनी गली से गुज़र रहे उस कारवाँ को बहुत ही उत्सुकता से देखते थे, जिसमें धूल-मिट्टी से सने और सर्दी-गर्मी-बारिश की मार से कुम्हलाए चेहरों वाले आदमी और लम्बे-रंगीन शॉल ओढ़े, गले में मोतियों की माला और कलाइयों व टखनों में चाँदी के कड़े पहने औरतें हुआ करती थीं। हम उनकी बकरियों को पत्थर मारते थे। उनके खच्चरों पर पानी फेंकते थे। मैं हसन को 'बीमार मकई की दीवार' पर चढ़ा देता था और उससे कहता था कि वह अपनी गुलेल से कोच्चियों के ऊँटों के पिछवाड़ों को निशाना बनाए।

हम दोनों ने अपनी पहली विदेशी फिल्म भी साथ-साथ देखी थी। फिल्म थी जॉन

वेन अभिनीत 'रियो ब्रावो' और थिएटर था 'सिनेमा पार्क', वही जो मेरी पसंदीदा किताबों की दुकान के ठीक सामने था। मुझे याद है कि इस फ़िल्म को देखने के बाद मैंने किस तरह बाबा से मिन्नत की थी कि वह हम लोगों को ईरान ले चलें ताकि हम जॉन वेन से मिल सकें। मुझे यह भी याद है कि कैसे मेरी बात सुनकर बाबा अपनी भारी-भरकम आवाज़ में बेतहाशा हँसे थे। उनकी हँसी सुनकर ऐसा लगता था मानो किसी ट्रक का इंजन पूरी ताक़त से घुरघुरा रहा हो। आख़िर को जब बाबा अपनी हँसी पर काबू पाने में कामयाब हुए, तब हमें पता चला कि 'वॉइस डबिंग' जैसी भी कोई चीज़ होती है। यह जानकर हसन और मैं स्तब्ध रह गए थे। यह सुनकर एकबारगी तो हमें अपने कानों पर यकीन ही नहीं हुआ था कि वास्तव में जॉन वेन को फ़ारसी नहीं आती थी और न ही वह ईरानी था! असल में तो वह अमरीकी था, उन बड़े-बड़े बाल और लम्बी-लम्बी दाढ़ी रखने वाले और जहाँ-तहाँ से फटी हुईं रंग-बिरंगी सी शर्ट्स पहनने वाले दोस्ताना मिजाज़ के हिप्पियों की तरह, जिन्हें हम अक्सर काबुल में विचरते देखा करते थे! 'रियो ब्रावो' हमने तीन बार देखी। मगर हमारी पसंदीदा विदेशी फिल्म थी 'मैग्निफिसेंट सेवन', जो हमने तेरह बार देखी। और हर बार क्लाइमेक्स में जब मेक्सिकन बच्चों द्वारा चार्ल्स ब्रोंसन को दफनाने का दृश्य आता था तो हम दोनों ही अपने आँसू नहीं रोक पाते थे। हालाँकि बाद में हमें पता चला कि चार्ल्स ब्रोंसन भी ईरानी नहीं था!

फिल्म देखकर निकलने के बाद हम लोग अक्सर काबुल के शर-ए-नौ इलाके (जिसे नया शहर भी कहा जाता था और जो वज़ीर अकबर खान डिस्ट्रिक्ट के पश्चिम में बसा था) के बासी गंध से भरे बाज़ारों में तफरीह किया करते थे। उन बाज़ारों की तमाम तंग गलियों में दोनों ओर लाइन से बनी दुकानों और उन दुकानों पर लगी ख़रीदारों और भिखारियों की भीड़ के बीच से अपना रास्ता बनाकर गुज़रते हुए हम लोग उसी फिल्म के बारे में बातें करते थे जिसे देखकर निकले होते थे। बाबा हम दोनों को हर हफ्ते 10 अफ़ग़ानी की जेबखर्ची देते थे, जिसे हम दोनों गर्म कोकोकोला और बारीक पिस्ता की टॉपिंग वाली रोज़वॉटर आइसक्रीम पर खर्च कर देते थे।

जिन दिनों मेरा स्कूल लगता था, उन दिनों की हमारी दिनचर्या तय थी। मैं जब तक आँखें मलता हुआ बमुश्किल बिस्तर से निकलकर गुसलखाने में घुसता था, तब तक हसन नहा-धोकर और अली के साथ सुबह की नमाज़ अदा करके मेरे लिए नाश्ता भी तैयार कर चुका होता था। मैं जब तैयार होकर खाने के कमरे में आता था तो मुझे अपना पसंदीदा नाश्ता –शक्कर की तीन डलियाँ डली गर्म काली चाय और साथ में खट्टा चेरी मुरब्बा लगा सिका हुआ नान– डाइनिंग टेबल पर करीने से जमा रखा मिलता था। जब तक मैं नाश्ता करते-करते स्कूल वालों द्वारा हद से ज़्यादा होमवर्क दिए जाने की शिकायत करता था, उतनी देर में हसन मेरा बिस्तर ठीक करके, मेरे जूते पॉलिश करके, मेरी स्कूल की यूनिफॉर्म को इस्तरी करके, और मेरा स्कूल बैग लगाकर फुर्सत हो चुका होता था। इन कामों को करते हुए वह अपनी नकसुरी आवाज़ में पुराने हज़ारा गीत भी गुनगुनाता रहता था। इसके बाद बाबा मुझे अपनी फोर्ड मुस्तांग गाड़ी में स्कूल

छोड़ते थे। बाबा की यह गाड़ी बेहद ख़ास थी और हर जगह लोगों की नज़रों का मरकज़ बनी रहती थी, क्योंकि यह वही गाड़ी थी जिसे स्टीव मैकक्वीन ने 'बुलिट' फिल्म में चलाया था। इस फिल्म के नाम एक ही थिएटर में लगातार छह माह चलने का रिकॉर्ड दर्ज था। इस दौरान हसन घर पर ही रहकर घर के कामों में (जैसे कि कपड़े धोकर सुखाने के लिए डालना, झाड़ू-पोंछा करना, बाज़ार से नान ख़रीदकर लाना, रात के खाने के लिए गोश्त को मैरीनेट करना, बाग़ीचे में पानी डालना) अली का हाथ बँटाता था।

मेरे स्कूल से लौटकर आने के बाद हम दोनों मिलते, कहानियों की कोई किताब उठाते, और भागकर वज़ीर अकबर खान में मेरे बाबा के घर की उत्तरी दिशा में मौजूद एक कटोरेनुमा पहाड़ी पर पहुँच जाते। पहाड़ी के ऊपर एक वीरान क़ब्रिस्तान था, जहाँ अब कोई नहीं आता था। वहाँ एक ही जैसी दिखने वाली क़ब्रों की कई कतारें थीं, जिनके बीच की जगह झाड़-झंकाड़ से भरी हुई थी। सालों से मौसम की मार झेलते आने के चलते क़ब्रिस्तान का लोहे का फाटक जंग खा चुका था और सफ़ेद पत्थरों से बनी ज़रा-सी ऊँचाई वाली चारदीवारी ढहने की कगार पर थी। फाटक के क़रीब ही अनार का एक पेड़ था। एक दिन मैंने अली द्वारा रसोई में काम में लिए जाने वाले चाकू से उस पेड़ के तने पर अपना और हसन का नाम गोद दिया। मैंने लिखा: 'आमिर और हसन, काबुल के सुल्तान।' उन शब्दों ने यह स्थापित कर दिया कि वह पेड़ हमारा था। स्कूल के बाद हसन और मैं उस पहाड़ी पर आते, उस अनार के पेड़ पर चढ़ जाते और उस पर लगे सुर्ख लाल फल तोड़कर खाते। अनार खाकर और घास से रगड़कर हाथ साफ़ करने के बाद हम पेड़ की छाँव में ही बैठ जाते और मैं साथ लाई हुई किताब से पढ़कर हसन को कोई कहानी सुनाता।

पेड़ की छाँव में हरी घास पर पालथी मारकर बैठा हसन कहानी सुनते समय मानो खो सा जाता। पेड़ की पत्तियों से छन-छनकर आती सूरज की रोशनी उसके चेहरे पर धूप-छाँव के बिम्ब रचती, पर वह उससे बेख़बर बेखयाली में घास के तिनकों को तोड़ता हुआ किसी परीलोक में विचरण करता जान पड़ता। वह कहानियाँ पढ़ नहीं सकता था, मगर सुनने में उसे विलक्षण सुख मिलता था। हसन अपने बाबा अली और बाक़ी हज़ाराओं की तरह ज़िन्दगी भर अनपढ़ रहेगा, यह बात उसके पैदा होने से पहले ही तय हो चुकी थी, या शायद उसी पल से जिस पल वह सनौबर की कोख में आया था। इसके पीछे सीधा-सा तर्क यही था कि नौकरों को पढ़ाई-लिखाई की क्या ज़रूरत? मगर उसके निरक्षर होने के बावजूद, या शायद उसी वजह से, शब्दों की तिलिस्मी दुनिया, जिसमें उसका प्रवेश वर्जित था, उसे अपनी तरफ़ खींचती थी, ललचाती थी। इसीलिए मैं हर दिन उसे कविताएँ, कहानियाँ, और कभी-कभी पहेलियाँ भी पढ़कर सुनाता था। हालाँकि पहेलियाँ सुनाना तो मैंने अब बंद कर दिया था क्योंकि यह बात मुझे खलने लगी थी कि उन्हें सुलझाने के मामले में वह मुझसे कहीं ज़्यादा काबिल था। अब मैं उसे ऐसी चीज़ें ही सुनाता था जिनके मामले में किसी तरह का कोई मुकाबला सम्भव नहीं था, जैसे कि मुल्ला नसरुद्दीन और उसके गधे की मज़ेदार

दास्तानें। हम दोनों घंटों उस अनार के पेड़ के नीचे बैठे रहते, अक्सर तब तक जब तक कि सूरज ढलने को नहीं हो जाता, मगर तब भी हसन का मन नहीं भरता और वह इसरार करता कि अभी सूरज डूबने में काफी वक़्त है और इतने में एक और कहानी या एक और अध्याय पढ़ा जा सकता है।

इस काम के दौरान मुझे सबसे ज़्यादा मज़ा तब आता था जब कहानी या कविता में कोई ऐसा शब्द आ जाता जिसका मतलब हसन को नहीं पता होता। तब मैं उसे चिढ़ाता, उसकी अज्ञानता को उजागर करता। एक बार मैं उसे मुल्ला नसरुद्दीन का एक किस्सा सुना रहा था कि तभी उसने मुझे टोकते हुए कहा, "इस शब्द का क्या मतलब होता है?"

"कौन से शब्द का?"

"मूढ़मति।"

"तुम्हें नहीं पता इसका क्या मतलब होता है?" मैंने उसका मज़ाक उड़ाते हुए कहा।

"नहीं, आमिर आगा।"

"मगर यह तो कितना आम शब्द है!"

"फिर भी मुझे नहीं पता," उसने मुस्कराते हुए कहा। मुझे नहीं पता कि मेरे व्यंग्य ने उसे चोट पहुँचाई थी या नहीं, मगर उसके चेहरे से ऐसा बिल्कुल मालूम नहीं हुआ था।

"मेरे स्कूल में तो सभी को इसका मतलब पता है। चलो बता ही देता हूँ, तुम भी क्या याद करोगे। 'मूढ़मति' का मतलब होता है अक्लमंद, समझदार। रुको, मैं इसको एक वाक्य में प्रयोग करके बताता हूँ ताकि तुम्हें ठीक से समझ आ जाए। 'शब्दों के मामले में हसन पूरा मूढ़मति है'," मैंने उसका मज़ाक बनाते हुए कहा।

"अच्छा," उसने ख़ुश होते हुए कहा।

मगर बाद में मुझे हमेशा ही अपनी इस करनी का पछतावा होता था। इस अपराध-बोध से उबरने के लिए मैं उसे अपनी कोई पुरानी शर्ट या कोई टूटा हुआ खिलौना दे देता और अपने मन को समझाता कि उस मासूम-सी शरारत का इतना हर्जाना काफी था।

हसन की सबसे पसंदीदा किताब थी शाहनामा - प्राचीन फ़ारसी राजाओं की गाथाओं पर आधारित दसवीं सदी का महाकाव्य। वैसे तो उसे इस किताब के सभी अध्याय, सभी गाथाएँ बहुत पसंद थीं, मगर उसकी (और मेरी भी) सबसे पसंदीदा कहानी थी 'रुस्तम और सोहराब', महान योद्धा रुस्तम और उसके तेज़-तर्रार घोड़े रख़्श की कहानी। कहानी के मुताबिक़, एक लड़ाई में रुस्तम अपने जाँबाज़ दुश्मन सोहराब को घातक रूप से घायल कर देता है, मगर तभी उसे पता चलता है कि असल

में सोहराब उसका बचपन में खो गया बेटा था। यह जानकार रुस्तम पर दुखों का पहाड़ टूट पड़ता है। और तभी मरता हुआ सोहराब उससे कहता है:

> अगर आप सचमुच मेरे बाबा हो, तो जान लो कि आपने अपनी तलवार अपने ही बेटे के ख़ून से रंग ली है। और आपने यह सिर्फ़ अपनी ज़िद के कारण किया है। मैंने आपको प्यार से मनाने की कितनी कोशिशें कीं, आपसे कितनी मिन्नतें कीं कि मुझे अपना लो, क्योंकि मुझे लगा था कि आप वही इंसान हो जिससे मेरी माँ ने मुहब्बत की थी। मगर आपने मेरी सारी कोशिशों पर पानी फेर दिया, और अब जब आपको सच्चाई का इल्म हुआ है तो मुलाक़ात का वक़्त बीत चुका है...।

"आमिर आगा, इसे फिर से पढ़िए न प्लीज़!" हसन हमेशा कहता। कभी-कभी सोहराब के मुँह से कहलवाया गया यह संवाद सुनते हुए उसकी आँखें डबडबा जातीं। और मैं हमेशा यही सोचकर हैरान होता कि वह किसके लिए दुखी हो रहा है – बेटे के गम में कपड़े फाड़ते और सर पर राख मलते रुस्तम के लिए, या फिर उस सोहराब के लिए जो ज़िन्दगी भर अपने बाबा के प्यार के लिए तरसता रहा? निजी तौर पर, मैं रुस्तम के साथ घटी त्रासदी को समझ नहीं पाता था। मेरा मानना था कि सभी बाप अपने दिल में अपने बेटों को मार डालने की इच्छा लिए जीते हैं, इसलिए रुस्तम ने जो किया उसमें कुछ अलग नहीं था, कुछ भी त्रासद नहीं था। 1973 के जुलाई महीने में एक दिन मैंने हसन के साथ एक और चालाकी भरी शरारत की। मैं उसे किताब में से पढ़कर एक कहानी सुना रहा था, पर सुनाते-सुनाते मैंने मूल कहानी बदल दी। मैं यह दिखाता रहा कि मैं किताब में से पढ़कर सुना रहा हूँ, थोड़ी-थोड़ी देर में पन्ने पलटता रहा, मगर असल में, मैं अपने मन से बनाकर सुना रहा था। हसन मेरी इस शरारत से अनजान था। उसके लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर था; उसे तो यही मानना था कि जो मैं कह रहा था वही किताब में लिखा था। हसन की बेवक़ूफ़ी पर मेरी भीतर ही भीतर हँसी छूट रही थी। आख़िर में जब कहानी ख़त्म हुई तो मैंने हसन से पूछा कि कैसी लगी। हसन ने उत्साह में भरकर तालियाँ बजाना शुरू कर दिया।

"क्या कर रहे हो तुम?" मैंने पूछा।

"आपने अब तक मुझे जो कहानियाँ सुनाई हैं, उन सब में से यह सबसे अच्छी है," उसने कहा। वह अब भी तालियाँ बजाए जा रहा था।

"सच में?" मैंने हँसते हुए पूछा।

"सच्ची।"

"फैसिनेटिंग (कमाल है)!" मैं बुदबुदाया। मैं वाक़ई हैरान था। मेरे लिए यह बिल्कुल...अप्रत्याशित था।

"तुम्हें वाक़ई ऐसा लगता है, हसन?"

वह अब भी तालियाँ बजाए जा रहा था। "यह शानदार थी, आमिर आगा। आप कल फिर इसी किताब से पढ़कर सुनाओगे मुझे?"

"फैसिनेटिंग (कमाल है)!" मैं फिर बुदबुदाया। मेरी उत्तेजना का इस वक़्त वही आलम था जो उस आदमी का होता है जिसे अचानक ही अपने आँगन में कोई गढ़ा हु आ खज़ाना मिल गया हो। पहाड़ी से उतरते वक़्त मेरे दिमाग़ में ख़यालों की आतिशबाज़ी-सी हो रही थी। 'आपने अब तक मुझे जो कहानियाँ सुनाई हैं, उन सब में से यह सबसे अच्छी है,' हसन ने कहा था। मैंने तो अब तक उसे कितनी सारी कहानियाँ सुनाई थीं। तभी मुझे महसूस हुआ कि हसन मुझसे कुछ पूछ रहा था।

"क्या?" मैंने कहा।

"'फैसिनेटिंग' का मतलब क्या होता है?"

मैं हँस पड़ा। मैंने उसे बाँहों में भरकर उसका गाल चूम लिया।

"यह किसलिए था?" उसने चौंककर शर्माते हुए कहा।

मैंने हौले से उसकी पीठ पर एक धौल जमाई और मुस्कराते हुए कहा, "तुम कमाल हो, हसन! तुम सचमुच कमाल हो और मैं तुम्हें बेहद चाहता हूँ!"

उस शाम मैंने अपनी पहली लघुकथा लिखी। मुश्किल से आधा घंटा लगा मुझे। यह एक ऐसे आदमी की छोटी-सी त्रासद कहानी थी जिसे एक ऐसा जादुई कटोरा मिल गया था जो उसके आँसुओं को मोतियों में बदल देता था। समस्या यह थी कि ग़रीब होने के बावजूद वह आदमी हमेशा ख़ुश रहता था और बमुश्किल ही कभी उसकी आँखों में आँसू आते थे। अमीर बनने के लालच में अब उस आदमी ने ख़ुद को तरह-तरह से दुखी करने के उपाए तलाशने शुरू कर दिए। धीरे-धीरे उसके पास मोतियों का अम्बार लग गया, मगर उसका लालच कम होने की बजाए बढ़ता ही जाता था। कहानी का अंत कुछ यूँ था कि वह आदमी मोतियों के पहाड़ पर बैठा था, उसकी बीवी की लाश उसकी बाँहों में थी, ख़ून से सना खंजर बग़ल में पड़ा था, और वह आदमी जादुई कटोरे में मुँह डालकर ज़ार-ज़ार रोए जा रहा था।

कहानी पूरी करके मैं सीधा ऊपर बाबा के स्मोक-रूम में जा पहुँचा। मेरे हाथ में वह काग़ज़ था, जिस पर मैंने अपनी कहानी लिखी थी। कमरे में बाबा और रहीम खान पाइप के कश लगाते हुए ब्रांडी की चुस्कियाँ भर रहे थे।

"क्या बात है, आमिर?" बाबा ने कड़क आवाज़ में पूछा। वह दोनों हाथ सिर के पीछे किए अपनी सोफ़ा चेयर पर अधलेटे से बैठे थे। उनका चेहरा नीले रंग के धुएँ से यूँ घिरा हुआ था जैसे चाँद बादलों से घिरा होता है। उनकी कड़क आवाज़ और तीखी नज़र की वजह से मुझे अपना हलक ख़ुश्क होता हुआ मालूम होने लगा। मैंने हिम्मत करके उन्हें बताया कि मैंने एक कहानी लिखी थी।

बाबा ने हौले से सिर हिलाया और एक हल्की सी मुस्कान दी, जिससे सिवाए

दिखावटी दिलचस्पी के और कुछ भी ज़ाहिर नहीं हुआ। “बड़ी अच्छी बात है,” उन्होंने कहा। इसके बाद उन्होंने और कुछ नहीं कहा, मगर अपनी नज़रें मुझ पर जमाए रखीं।

मुझे वहाँ खड़े हुए बमुश्किल एक मिनट ही हुआ होगा, मगर वह मेरी ज़िन्दगी के आज तक के सबसे लम्बे मिनटों में से एक था। एक-एक सेकंड मुझे युगों से लम्बा मालूम हो रहा था। हवा इतनी भारी हो गई थी कि साँस लेना मुश्किल लग रहा था। बाबा एकटक मुझे घूरे जा रहे थे, मगर एक बार भी उन्होंने यह नहीं कहा कि सुनाओ क्या लिखा है तुमने।

हमेशा की तरह इस बार भी रहीम खान ही मेरे तारणहार बने। उन्होंने मुस्कराते हुए अपना हाथ मेरी तरफ़ बढ़ाया। मैं यक़ीन के साथ कह सकता था कि उनकी मुस्कराहट में कोई दिखावा नहीं था। वह बोले, “यह काग़ज़ हमें दीजिए, आमिर जान। हम भी तो देखें कि आपने क्या लिखा है।” बाबा ने कभी मुझे ‘जान’ कहकर नहीं पुकारा था।

बाबा ने कंधे उचकाए और उठ खड़े हुए। उनके चेहरे पर भी मुझे वैसी ही राहत दिखाई दी जैसी इस वक़्त मैं महसूस कर रहा था। ऐसा लगता था कि रहीम खान मेरे साथ-साथ उनके लिए भी तारणहार साबित हो रहे थे। प्रत्यक्षतः उन्होंने कहा, “हाँ, रहीम काका को ही पढ़वाओ। मैं अपने कमरे में जाकर तैयार होता हूँ।” इतना कहकर वह कमरे से बाहर चले गए। अब तक मेरे मन में बाबा के लिए वैसा ही श्रद्धाभाव रहा था जैसा धार्मिक लोगों के मन में ईश्वर के लिए होता है। मगर उस क्षण मेरा मन किया कि मैं अपनी रगों को चीरकर उनमें बह रहे उनके ख़ून का एक-एक कतरा बहा दूँ!

तक़रीबन एक घंटे बाद बाबा रहीम खान को साथ लेकर एक पार्टी में शरीक होने चले गए। जाते समय रहीम खान मेरे पास आए, झुके, और मेरी कहानी वाले काग़ज़ के साथ-साथ एक और तह किया हुआ काग़ज़ मेरे हाथ में थमा दिया। फिर मुस्कराते हुए हौले से एक आँख दबाई और बोले, “यह तुम्हारे लिए है, मेरे जाने के बाद पढ़ना।” फिर पल भर रुकने के बाद उनकी ज़बान से एक और शब्द निकला। उस इकलौते शब्द ने मुझे लेखन को गंभीरता से लेने या पेशे के तौर पर अपनाने के लिए जितना प्रेरित किया है, उतना आज तक किसी भी सम्पादक की कोई भी प्रशंसात्मक टिप्पणी नहीं कर सकी है। वह शब्द था – शाबाश।

उन लोगों के जाने के बाद मैं आकर अपने बिस्तर पर बैठ गया और सोचने लगा कि कितना अच्छा होता अगर रहीम खान मेरे बाबा होते। मगर फिर मुझे बाबा का ख़याल आया। मुझे ख़याल आया कि जब वह प्यार से मुझे अपनी चौड़ी छाती से लगाते थे तो मुझे कितना अच्छा महसूस होता था, सुबह-सुबह उनके बदन से फूटने वाली ब्रूट की भीनी-भीनी ख़ुशबू कितनी मनोहारी मालूम होती थी, और जब मैं उनकी गोद में बैठा होता था तो कैसे उनकी घनी दाढ़ी मेरे चेहरे को गुदगुदाती थी। अचानक मैं इस कदर अपराध-बोध से भर उठा कि मुझे ज़ोरों की उबकाई आने लगी। मैं भागकर बाथरूम में गया और अपने भीतर का सारा अपराध-बोध मतली की शक्ल में सिंक में

उड़ेल दिया।

उस रात बिस्तर में लेटे-लेटे मैंने रहीम खान के दिए हुए काग़ज़ को कई-कई बार पढ़ा। उसमें लिखा था:

आमिर जान,

मुझे आपकी कहानी बहुत अच्छी लगी। माशाअल्लाह, ख़ुदा ने आपको एक ख़ास हुनर से नवाज़ा है। अब आपका यह फ़र्ज़ है कि आप इस हुनर को तराशें, क्योंकि जो इंसान ख़ुदा के दिए हुए हुनर की कद्र नहीं करता वह मेरी नज़र में खच्चर बराबर होता है। आपने अपनी कहानी में भाषा और व्याकरण की बारीकियों का पूरा-पूरा ध्यान रखा है और आपकी कहानी कहने की शैली भी दिलचस्प है। मगर इसकी जो सबसे ख़ास बात है वो है इसकी पढ़ने वाले को चौंका देने की क्षमता, जिसे अंग्रेज़ी में 'आइरनी' कहते हैं। अभी शायद आप इस शब्द का सही-सही मतलब न समझते हों। आगे चलकर समझने लगेंगे। यह वह ख़ूबी है, जिसे कई सारे लेखक ज़िन्दगी भर लिखने के बाद भी हासिल नहीं कर पाते। आपने अपनी पहली ही कहानी में इसे हासिल कर लिया।

मेरे दरवाज़े आपके लिए हमेशा खुले हैं और हमेशा खुले रहेंगे, आमिर जान। मैं आपकी हरेक कहानी सुनने के लिए बेकरार हूँ।

शाबाश।

आपका दोस्त

रहीम

रहीम खान के इस नोट से उत्साहित होकर मैंने अपनी कहानी उठाई और जल्दी से नीचे बरामदे में गया, जहाँ अली और हसन गद्दे पर सो रहे थे। उन लोगों को हमारे घर में सोने का मौका तभी मिलता था जब बाबा रात को घर पर नहीं होते थे और मेरा ध्यान रखने की ज़िम्मेदारी अली के ऊपर होती थी। मैंने हसन को झकझोरकर उठाया और पूछा कि क्या वह कहानी सुनना चाहेगा।

उसने अपनी नींद से बोझिल आँखें मलते हुए अंगड़ाई ली और हैरान होते हुए बोला, "अभी? क्या वक़्त हुआ है?"

"वक़्त को मारो गोली। बहुत ही ख़ास कहानी है। मैंने ख़ुद लिखी है," मैंने फुसफुसाते हुए कहा, क्योंकि मुझे डर था कि कहीं अली न जाग जाए। मेरी बात सुनकर हसन का चेहरा चमक उठा।

"फिर तो मैं ज़रूर सुनूँगा," उसने कम्बल एक ओर फेंकते हुए कहा।

हम दोनों बैठक में बने संगमरमर के फायरप्लेस के पास आकर बैठ गए और फिर

मैंने उसे कहानी सुनाई। इस बार मैंने कोई चालाकी या शरारत नहीं की; शब्दशः वही सुनाया जो काग़ज़ पर लिखा था। आख़िर को यह मेरी अपनी कहानी थी! हसन कई मायनों में एक आदर्श श्रोता था। कहानी सुनते समय वह पूरी तरह उसमें खो जाता था और कहानी का हरेक भाव, हरेक उतार-चढ़ाव उसके चेहरे पर घटित होता हुआ देखा जा सकता था। अंतिम वाक्य के साथ जैसे ही मैंने अपनी कहानी ख़त्म की, हसन ने बिना आवाज़ की ताली बजानी शुरू कर दी।

"माशाअल्लाह, आमिर आगा, बहुत ही बढ़िया!" वह बेहद उत्साह में था।

"अच्छी लगी तुम्हें?" उस शाम मैं दूसरी बार अपनी कहानी की तारीफ़ सुन रहा था। ज़ाहिर है मेरे कानों में मिश्री-सी घुल रही थी।

"एक दिन, इंशाअल्लाह, आप बहुत बड़े अदीब (लेखक) बनेंगे और दुनियाभर के लोग आपकी कहानियाँ पढ़ेंगे," हसन ने कहा।

"तुम तो ज़रूरत से ज़्यादा ही तारीफ़ कर रहे हो, हसन," मैंने ऊपरपट्टी कहा, जबकि मन में तो मेरे लड्डू फूट रहे थे।

"नहीं, सच में। आप पक्का बहुत बड़े अदीब बनोगे और आपका दुनिया में बहुत नाम होगा," हसन ने पूरे यक़ीन के साथ दोहराया। फिर वह थोड़ा हिचकिचाया, जैसे कुछ और कहना चाह रहा हो मगर कहने से पहले तौल रहा हो कि कहना ठीक होगा या नहीं। आख़िर को उसने खँखारकर गला साफ़ किया और बड़ी हिचकिचाहट के साथ बोला, "अगर आप इजाज़त दें तो मैं कहानी से जुड़ा एक सवाल पूछूँ?"

"हाँ, ज़रूर।"

"असल में..." उसने कहना शुरू किया, मगर फिर रुक गया।

"हाँ-हाँ, हसन, जो कहना है बेहिचक कहो," मैंने मुस्कराकर उसे आश्वस्त करते हुए कहा, मगर पता नहीं क्यों अचानक ही मेरे भीतर का लेखक असुरक्षा से भर उठा और उसे लगने लगा कि हो न हो कुछ ऐसा कहा जाने वाला है जो वह नहीं सुनना चाहेगा।

"असल में," उसने कहा, "मैं यह पूछना चाहता था कि उस आदमी को अपनी बीवी का क़त्ल करने की क्या ज़रूरत थी? बल्कि मैं तो कहूँगा कि उसे आँसू बहाने के लिए सच में ग़मगीन होने की भी क्या ज़रूरत थी? अगर वह एक प्याज़ लेकर काटने लगता तो वैसे ही उसके आँसू निकलने लगते, नहीं?"

मुझे काटो तो ख़ून नहीं। यह बात मुझे क्यों नहीं सूझी? कितना बड़ा बेवक़ूफ़ था मैं! मेरे होंठ हिले, मगर निःशब्द ही रहे। उस रात जहाँ मैंने लेखन की एक बहुत बड़ी ख़ूबी –पाठकों को चौंका देने की कला– के बारे में जाना, वहीं मुझे इसकी एक बहुत बड़ी खामी –कथानक में झोल(विसंगति)– का भी पता चल गया। और मेरी इस खामी से मुझे हसन ने वाकिफ कराया था, उस हसन ने जिसके लिए काला अक्षर भैंस बराबर था,

जिसने अपनी पूरी ज़िन्दगी में न कभी कुछ पढ़ा था और न ही कुछ लिखा था! अचानक ही कोई सर्द और रूखी आवाज़ में मेरे कान में फुसफुसाया, 'यह अनपढ़ गंवार हज़ारा! क्या जानता है यह लेखन के बारे में? झाड़ू-पोंछा करने और खाना बनाने के सिवाए इसे आता क्या है? नौकर होकर इसकी इतनी मजाल कि तुम्हारी लिखी हुई कहानी में नुक्स निकाले?'

"वो क्या है कि…" मैंने कहना शुरू किया। मगर मैं वह वाक्य कभी पूरा नहीं कर पाया।

क्योंकि अचानक ही अफ़ग़ानिस्तान बदल गया…हमेशा-हमेशा के लिए।

पाँच

बिजली कड़कने सी आवाज़ हुई। हमारे पैरों के नीचे की ज़मीन ज़रा सी थर्राई और फिर हमें मशीनगन से गोलियाँ चलने की आवाज़ें सुनाई देने लगीं – 'तड़-तड़-तड़'। "बाबा!" हसन चीख उठा। हम स्प्रिंग लगे गुड्डों की तरह उचककर खड़े हुए और बैठक से बाहर को दौड़ पड़े। हमने देखा कि अली भी उतना ही आतंकित था और अपनी लंगड़ी टांग के साथ बरामदे में इधर से उधर टहल रहा था।

अली को देखते ही हसन दोनों बाँहें फैलाए उसकी ओर लपका और काँपती-चीखती आवाज़ में पूछने लगा, "बाबा! वह आवाज़ कैसी थी?" अली ने हमें अपनी बाँहों के घेरे में ले लिया। तभी आसमान में एक सफ़ेद रोशनी चमकी और पूरा आसमान चाँदी जैसा जगमगा उठा। एक बार और चमकी। और फिर से गोलियाँ चलने की आवाज़ें।

"वे बत्तखों का शिकार कर रहे हैं," अली ने अपनी खरखराती आवाज़ में कहा। "वे रात में बत्तखों का शिकार करते हैं। तुम लोग डरो मत।"

तभी दूर कहीं एक सायरन बज उठा। कहीं से काँच टूटने की आवाज़ आई और कोई चिल्लाया। फिर हमें सड़कों पर अचानक नींद से जागे लोगों (जो शायद अधखुली आँखें और बिखरे बाल लिए सोने के कपड़ों में ही बाहर निकल आए थे) की चीख-पुकार सुनाई देने लगी। हसन बुरी तरह डर गया था और रो रहा था। अली ने उसे क़रीब खींचकर अपने आगोश में ले लिया। पता नहीं क्यों पर उस वक़्त मुझे हसन से एक अजीब-सा रश्क महसूस हुआ, हालाँकि प्रत्यक्ष तौर पर मैंने कभी इस बात को माना नहीं। काश, बाबा भी कभी इस तरह प्यार से मुझे आगोश में भरते!

अलसुबह तक हम लोग वैसे ही एक-दूसरे के आगोश में बैठे रहे। गोलियों की आवाज़ें और बमों के धमाके एक घंटे से भी कम वक़्त तक ही गूंजे थे, मगर हम लोग बुरी तरह डर गए थे। और क्यों न हो, उससे पहले हम में से किसी ने भी अपने आसपास गोलियाँ चलते या बम फटते नहीं सुना था। हमारे लिए वे आवाज़ें पूरी तरह अजनबी थीं। अफ़ग़ानी बच्चों की वह पीढ़ी जिसके कानों ने गोलियों और बमों की आवाज़ों के अलावा कभी कुछ सुना ही नहीं था, अभी पैदा नहीं हुई थी। खाने के कमरे में एक-दूसरे से चिपककर बैठे और बेसब्री से सुबह होने का इंतज़ार कर रहे हम लोगों को ज़रा भी इल्म नहीं था कि अफ़ग़ानिस्तान में जीने का वह तरीक़ा ख़त्म हो चुका था जिसके हम आदी थे। पूरी तरह ख़त्म न भी हुआ हो, पर खात्मे की शुरुआत तो बेशक हो चुकी थी। पूरा खात्मा, या कहें कि आधिकारिक रूप से खात्मा हुआ पहले अप्रैल 1978 में साम्यवादी तख्तापलट के साथ और फिर दिसंबर 1979 में, जब रूसी टैंक उन्हीं गलियों में घुस आए जहाँ मैं हसन के साथ खेला करता था। और इसके साथ ही

उस अफ़ग़ानिस्तान की मौत हो गई जिसे मैं जानता था, और ख़ून-ख़राबे के एक ऐसे दौर की शुरुआत हुई जो अभी भी जारी है।

सूरज की पहली किरण फूटने से ठीक पहले बाबा की कार धड़धड़ाते हुए ड्राइव-वे में दाख़िल हुई। झटके से कार का दरवाज़ा खुलने और धड़ाक से बंद होने की आवाज़ आई और फिर हमें उनके भागकर सीढ़ियाँ चढ़ते क़दमों की आहट सुनाई देने लगी। और फिर जैसे ही वे दरवाज़े पर नज़र आए और मेरी नज़र उनके चेहरे पर गई, मैं चौंक गया। उनके चेहरे पर जो भाव था उसे पहली नज़र में पहचान पाना मेरे लिए मुश्किल था, क्योंकि उस दिन से पहले मैंने कभी उसे उनके चेहरे पर नहीं देखा था। वह भाव था - डर। “आमिर! हसन!” वह अपनी बाँहें फैलाकर हमारी ओर भागते हुए चीखे। “उन्होंने तमाम सड़कें बंद कर दी थीं और टेलिफोन भी काम नहीं कर रहा था। मुझे कितनी फ़िक्र हो रही थी तुम लोगों की!”

हम ख़ुशी-ख़ुशी उनकी खुली बाँहों में समा गए, और एक पल को मुझे लगा कि रात को जो कुछ भी हुआ वह अच्छा था।

बाद में हमें पता चला कि वे लोग कोई बत्तख-वत्तख नहीं मार रहे थे। असल में उन्होंने ज़्यादा किसी को भी नहीं मारा था। 17 जुलाई 1973 की उस रात कोई ख़ास ख़ून-ख़राबा नहीं हुआ था। सुबह जब काबुल के लोग जागे तो उन्हें पता चला कि रातोंरात राजशाही का खात्मा हो चुका था। सुलतान ज़हीर शाह उस वक़्त इटली में थे। उनकी गैर-मौजूदगी का फ़ायदा उठाकर उनके चचेरे भाई दाउद खान ने बगैर ख़ून बहाए उनकी चालीस बरस लम्बी हुकूमत को खत्म कर दिया था।

अगली सुबह बाबा रहीम खान के साथ अपनी स्टडी में बैठकर काली चाय की चुस्कियाँ लेते हुए रेडियो काबुल पर रात के हंगामे और उसके बाद की गतिविधियों से जुड़ी ख़बरें सुन रहे थे। बाहर मैं और हसन बंद दरवाज़े से कान लगाकर भीतर हो रहीं हलचलों को सुनने की कोशिश कर रहे थे।

“आमिर आगा?” हसन फुसफुसाया।

“क्या?”

“यह ‘रिपब्लिक’ क्या होता है?”

मैंने कंधे उचका दिए। “मुझे नहीं पता।” बाबा के रेडियो पर बारम्बार यह शब्द ‘रिपब्लिक’ बोला जा रहा था।

“आमिर आगा?”

“क्या?”

“रिपब्लिक का मतलब यह तो नहीं कि मुझे और बाबा को यहाँ से जाना पड़ेगा?”

“मुझे नहीं लगता,” मैंने भी फुसफुसाते हुए कहा।

हसन ने कुछ पल सोचा और फिर बोला, “आमिर आगा?”

“क्या?”

“मैं नहीं चाहता कि वे मुझे और बाबा को आपसे दूर भेज दें?”

मैं मुस्करा दिया। “गधे हो तुम। कोई तुम्हें कहीं नहीं भेज रहा।”

“आमिर आगा?”

“क्या?”

“चलकर अपने पहाड़ी वाले पेड़ पर बैठें?”

मेरी मुस्कान चौड़ी हो गई। यह हसन की एक और ख़ूबी थी। उसे पता होता था कि किस समय क्या कहना है। रेडियो पर चल रहीं ख़बरों में हमें कोई रस नहीं आ रहा था और पहाड़ी वाले पेड़ पर बैठकर हसन को कहानी सुनाने का ख़याल निश्चय ही दिलचस्प था। मेरी रज़ामंदी मिलते ही हसन तैयार होने अपनी कोठरी में चला गया और मैं एक किताब उठाने की नीयत से ऊपर अपने कमरे की ओर दौड़ पड़ा। नीचे आकर मैं रसोई में गया और अपनी जेबें पाइन नट्स से भर लीं। फिर जब मैं बाहर आया तो हसन पहले से मेरे इंतज़ार में वहाँ खड़ा था। हम दौड़ते हुए मेन गेट से बाहर निकले और पहाड़ी की ओर भाग चले।

अभी हम रिहायशी इलाके को पार करके एक सुनसान मैदानी इलाके में पहुँचे ही थे कि तभी हसन की पीठ पर एक पत्थर आकर लगा। जैसे ही हमने पीछे मुड़कर देखा, मेरा दिल बैठ गया। अस्सेफ़ और उसके दो दोस्त, वली और कमाल, हमारी ही ओर आ रहे थे।

अस्सेफ़ मेरे बाबा के दोस्त महमूद का बेटा था, जो कि एक एयरलाइन्स में पायलट थे। उनका परिवार हमारे घर के दक्षिण में कुछ गली आगे ऊँची चारदीवारी और ताड़ के ऊँचे-ऊँचे पेड़ों वाले एक पॉश कंपाउंड में रहता था। काबुल के वज़ीर अकबर खान इलाके में रहने वाला ऐसा कोई बच्चा नहीं था जो अस्सेफ़ और उसके कुख्यात स्टेनलेस स्टील+पीतल के बने ख़तरनाक नक्कल्स से वाक़िफ़ न हो। जो ख़ुशकिस्मत थे उनकी वाकफियत दूसरों पर उसका कहर बरपा होते देखकर थी, जबकि कुछ ऐसे बदकिस्मत थे जिन्होंने ख़ुद के बदन पर झेलकर ही जाना था। जर्मन माँ और अफ़ग़ान बाप के घर जन्मा गोरा-चिट्टा और नीली आँखों वाला अस्सेफ़ कद-काठी में दूसरे बच्चों से बहुत तगड़ा था और इसीलिए सब पर भारी पड़ता था। ऊपर से फितरत भी उसने बर्बर किस्म की पाई थी। हरदम पिछलग्गुओं से (जो ख़ुद को उसका दोस्त बताते थे) घिरे रहना उसका शगल था और इन्हें साथ लेकर वह ऐसे घूमता था जैसे कोई बड़ा भारी तीसमारखां अपने सिपहसालारों के साथ अपनी रियासत का मुआयना कर रहा हो। उसके मुँह से निकली बात क़ानून होती थी और उस क़ानून को मानने से इंकार करने वालों को सबक सिखाने के लिए स्टील और पीतल के उन नक्कल्स का ही

उपयोग किया जाता था। मैंने ख़ुद उसे एक बार उन नक्कल्स का इस्तेमाल कातेह-चार इलाके के एक बच्चे पर करते हुए देखा था। मैं कभी नहीं भूलूँगा कि जब अस्सेफ़ ने बेरहमी से उस बेचारे बच्चे को पीट-पीटकर बेहोश कर डाला था, तब उसकी नीली आँखों में कैसी शैतानी चमक पैदा हुई थी, कैसे उसके होंठों पर एक बर्बर मुस्कान खेलने लगी थी। इस घटना के बाद वज़ीर अकबर खान इलाके के कुछ लड़कों ने तो उसका उपनाम ही अस्सेफ़ 'गोशख़ोर' या अस्सेफ़ 'कान चबाने वाला' रख दिया था। हालाँकि कोई भी उसके मुँह पर उसे इस नाम से पुकारने की हिमाकत नहीं करता था, क्योंकि कोई नहीं चाहता था कि उसका भी हश्र उस बेचारे बच्चे जैसा हो जिसने एक पतंग के चक्कर में अस्सेफ़ से पंगा लेने की गलती की थी और जिसका खामियाज़ा उसे अपना दाँया कान गँवाकर भुगतना पड़ा था। अस्सेफ़ ने उसका दाँया कान काटकर गटर में फेंक दिया था। कई सालों के बाद जाकर मुझे अंग्रेज़ी भाषा में एक ऐसा शब्द मिला जो अस्सेफ़ किस्म के प्राणियों के लिए सटीक था और जिसका कोई अच्छा समकक्ष फ़ारसी में मौजूद नहीं है: 'सोशियोपैथ' (मनोरोगी)।

अली को प्रताड़ित करने वाले आस-पड़ौस के सभी लड़कों में अस्सेफ़ सबसे ज़्यादा बेरहम था। वास्तव में 'बबालू' वाला वह मज़ाक –'ओए बबालू! आज किसको खाया तूने?' 'ओए बबालू! ज़रा मुस्करा के तो दिखा हमें!"– भी उसी ने ईजाद किया था। और जिस किसी दिन शैतान उस पर कुछ ज़्यादा ही हावी रहता, उस दिन वह इस प्रताड़ना को और भी ज़्यादा तीखा बनाने के लिए कहता, "ओए चपटी नाक वाले बबालू! आज किसको खाया तूने?...ओए भेंगी आँखों वाले खच्चर! बता न?" वही अस्सेफ़ अभी अपने दोनों हाथ कमर पर रखे हमारी ही ओर बढ़ रहा था। उसकी चप्पलों की फटकार से धूल के छोटे-छोटे गुबार उठ रहे थे।

"गुड मॉर्निंग, कुनीस!" अस्सेफ़ ने हाथ हिलाते हुए कहा। "फाग।" यह उसका एक और पसंदीदा तरीक़ा था दूसरों की बेइज़्ज़ती करने का। जैसे ही वे तीनों हमारे क़रीब आने लगे, हसन मेरे पीछे छिप गया। अब जींस और टीशर्ट पहने वे तीनों ऊँचे-पूरे लड़के हमारे एकदम सामने आकर खड़े हो गए थे। अस्सेफ़ ने अपनी मोटी-मोटी बाजुओं को मोड़कर छाती पर बाँध लिया और उसके होंठों पर वही जानी-पहचानी क्रूर मुस्कान खेलने लगी। एक बार फिर मुझे महसूस हुआ कि अस्सेफ़ 'सामान्य' नहीं था, उसके भीतर शैतान का अंश मौजूद था। साथ ही मुझे यह भी महसूस हुआ कि मैं बेहद ख़ुशकिस्मत था कि मेरे बाबा उसके बाबा के दोस्त थे, इसलिए वह मुझे उतना नहीं सता पाता था जितना कि बाक़ी बच्चों को।

अस्सेफ़ ने अपनी निगाह हसन की ओर घुमाई और बोला, "ओए चपटी नाक! बबालू कैसा है?"

हसन ने कुछ नहीं कहा और एक क़दम और खिसककर मेरे बिल्कुल पीछे छिप गया।

"तुम लोगों ने ख़बर सुनी कि नहीं?" अस्सेफ़ ने कहा। उसकी वह शैतानी मुस्कान

अब भी बरकरार थी। “सुल्तान गया। सही हुआ! अब तो प्रेसिडेंट (राष्ट्रपति) का राज चलेगा! मेरे बाबा दाऊद खान को जानते हैं यह बात तुम्हें पता है कि नहीं, आमिर?”

“मेरे बाबा भी जानते हैं,” मैंने कहा। जबकि मुझे बिल्कुल नहीं पता था कि इस बात में कितनी सच्चाई थी।

“मेरे बाबा भी जानते हैं,” अस्सेफ़ ने रोती हुई आवाज़ में मेरी नकल उतारी। कमाल और वाली एक स्वर में ठठाकर हँस पड़े। मैंने मन ही मन सोचा कि काश बाबा वहाँ होते।

“तुम्हें बता दूँ कि पिछले साल दाऊद खान हमारे घर दावत पर आए थे,” अस्सेफ़ ने आगे कहा। “यह जानकर कैसा लगा, आमिर?”

मेरा मन हुआ कि मैं मदद के लिए चिल्लाऊँ, मगर हम जिस वीराने में थे वहाँ दूर-दूर तक हमारी आवाज़ सुनने वाला कोई नहीं था। हमारा घर वहाँ से तक़रीबन एक किलोमीटर दूर था। मैंने सोचा, काश हम घर पर ही रहते तो अच्छा होता।

“अगली बार जब दाऊद खान हमारे घर खाने पर आएँगे तो मैं जानते हो मैं उनसे क्या कहूँगा?” अस्सेफ़ ने कहना जारी रखा। “मैं उनके साथ बैठकर वैसे ही बात करूँगा जैसे दो मर्द आपस में करते हैं। मैं उनसे वही कहूँगा जो मैंने अपनी अम्मी जान से कहा था। हिटलर के बारे में। क्या गज़ब का लीडर था वह! एक ग्रेट लीडर! जिसके पास एक महान लक्ष्य था। मैं दाऊद खान से कहूँगा कि उन्हें यह बात याद रखनी चाहिए कि अगर हिटलर को वह काम पूरा करने दिया गया होता जो उन्होंने शुरू किया था, तो आज दुनिया की हालत बहुत बेहतर होती।”

“बाबा कहते हैं कि हिटलर पागल था, उसने बहुत सारे बेगुनाह लोगों को मरवाया था,” इससे पहले कि मैं ख़ुद को रोक पाता, मेरे मुँह से यह बात वैसे ही निकल गई जैसे कमान से तीर छूटता है।

अस्सेफ़ मक्कारी से हँसा। “मेरी अम्मी भी यही कहती हैं, जबकि वह ख़ुद जर्मन हैं; उन्हें तो बेहतर पता होना चाहिए। असल में, वे चाहते हैं कि तुम उनकी मनघड़न्त बातों पर यकीन कर लो। वे नहीं चाहते कि तुम्हें कभी सच का पता चले।”

मुझे नहीं मालूम था कि ‘वे’ कौन थे और किस सच को छिपाना चाहते थे, और न ही मैं जानना चाहता था। काश कि मैंने अपना मुँह न खोला होता! काश मैं नज़र उठाकर देखूँ और सामने से मुझे बाबा आते हुए नज़र आ जाएँ!

“सच जानने के लिए तुम्हें वे किताबें पढ़नी होंगी जो स्कूल में नहीं पढ़ाई जातीं,” अस्सेफ़ अपनी रौ में कहे जा रहा था। “मैंने पढ़ी हैं। और इसलिए मेरी आँखें खुल चुकी हैं। अब मेरे पास भी एक महान लक्ष्य है जिसे मैं अगली मुलाक़ात में अपने नए प्रेसिडेंट साहब के साथ शेयर करूँगा। जानते हो वह लक्ष्य क्या है?”

मैंने नहीं में सिर हिलाया, मुझे मालूम था कि मैं चाहूँ या न चाहूँ, अस्सेफ़ बताएगा

ज़रूर; उसे अपने सवालों के जवाब ख़ुद ही देने की आदत थी।

उसकी नीली आँखें हसन की ओर घूमीं और उसने कहा, “अफ़ग़ानिस्तान पश्तूनों की सरज़मीं है। हमेशा से थी और हमेशा रहेगी। हम असल अफ़ग़ान हैं, खालिस अफ़ग़ान, न कि यह चपटी नाक वाला। इसके लोगों ने हमारे वतन को नापाक कर रखा है। हमारे ख़ून को गंदा कर दिया है। मैं चाहता हूँ एक ऐसा अफ़ग़ानिस्तान जहाँ सिर्फ़ और सिर्फ़ पश्तून रहें। यही मेरा लक्ष्य है।”

अस्सेफ़ ने हसन से नज़रें हटाकर फिर से मुझ पर जमा लीं। ऐसा लग रहा था जैसे अभी-अभी वह किसी सुहाने सपने से बाहर आया हो। फिर बोला, “हिटलर तो नहीं कर पाए, मगर हम इस काम को पूरा करके रहेंगे।”

फिर उसने कुछ निकालने के लिए अपनी जींस की पिछली जेब में हाथ डाला। “मैं प्रेसिडेंट से वह काम करने को कहूँगा जिसे कर पाने की कुव्वत सुल्तान में नहीं थी। अफ़ग़ानिस्तान को सभी गंदे, कस्सीफ़ हज़ाराओं से खाली कराना।”

“हमें जाने दो अस्सेफ़,” मैंने हिम्मत जुटाकर कहा, मगर अपनी आवाज़ में साफ़-साफ़ सुनाई पड़ रही लरज को महसूस करके मुझे बहुत बुरा लगा। “हम तुम्हें परेशान नहीं कर रहे हैं, तो फिर तुम क्यों हमसे बोल रहे हो?”

“बिल्कुल कर रहे हो,” अस्सेफ़ ने जवाब दिया। इसके साथ ही उसने अपनी जेब से वह चीज़ भी निकाल ली, जिसे देखते ही मेरा दिल बैठ गया। वह कुछ और नहीं, उसके स्टेनलेस स्टील और पीतल के बने ख़तरनाक नक्कल्स थे जो धूप में चमचम चमक रहे थे। “तुम मुझे बहुत ज़्यादा परेशान कर रहे हो। बल्कि सच तो यह है कि तुम मुझे इस हज़ारा से ज़्यादा परेशान किए हुए हो। तुम्हें घिन नहीं आती इसके साथ बात करते हुए, खेलते हुए, इसको अपने बदन को हाथ लगाने देते हुए?” उसकी आवाज़ नफ़रत से भरी हुई थी। वाली और कमाल ने सर हिलाकर उसकी बात से राज़ी होने का इशारा किया। अस्सेफ़ ने अपनी आँखें सिकोड़ लीं, अविश्वास से सर हिलाया, और फिर सारी दुनिया की हैरानी अपने चेहरे और अपनी आवाज़ में समेटते हुए बोला, “तुम्हें घिन नहीं आती इसे अपना ‘दोस्त’ कहते हुए?”

‘मगर वह मेरा दोस्त नहीं है, वह मेरा नौकर है!’ मैं कहने को हुआ, मगर अलफ़ाज़ बाहर नहीं आ सके। क्या मैं वाक़ई हसन को लेकर ऐसा सोचता था? नहीं। हरगिज़ नहीं। मैं तो हसन के साथ बहुत अच्छे से पेश आता था, बिल्कुल एक दोस्त की तरह, बल्कि उससे भी बढ़कर, एक भाई की तरह। लेकिन अगर ऐसा था तो फिर जब बाबा के दोस्त अपने बच्चों के साथ हमारे घर आते थे, तब उनके साथ खेल में, मैं हसन को शामिल क्यों नहीं करता था? ऐसा क्यों था कि मैं हसन के साथ तभी खेलता था जब कोई और मौजूद न हो?

इतनी देर में अस्सेफ़ ने नक्कल्स सीधे हाथ में पहन लिए थे और मुझे खा जाने वाली नज़रों से घूर रहा था। “इस समस्या के लिए तुम भी ज़िम्मेदार हो, आमिर। अगर तुम

और तुम्हारे बाबा जैसे बेवक़ूफ़ों ने इन लोगों को पनाह न दी होती तो अभी तक हम इन्हें यहाँ से खदेड़ चुके होते और ये उसी हज़ाराजात में सड़ रहे होते जहाँ इन्हें होना चाहिए था। तुम अफ़ग़ानिस्तान के दामन पर एक बदनुमा दाग हो!"

मुझे उसकी आँखों में वहशीपन साफ़-साफ़ नज़र आ रहा था। वह सचमुच मुझे अपने नक्कल्स का निशाना बनाने वाला था। उसने अपना घूँसा ताना और मेरे चेहरे की ओर लहराया।

तभी मुझे अपने पीछे तेज़ी से कुछ हलचल होती हुई सुनाई दी। मैंने आँखों की कोर से हसन को नीचे झुकते और पल भर में ही वापस खड़े होते देखा। अस्सेफ़ की नज़रों से भी वह हलचल छिपी न रह सकी और वह भी मेरी पीठ पीछे देखने लगा। मगर उसने जो कुछ भी देखा, उससे उसकी आँखें हैरानी के मारे चौड़ी हो गईं। वैसी ही हैरानी मुझे वली और कमाल के चेहरों पर भी देखने को मिली।

क्या हुआ है यह देखने के लिए जैसे ही मैं पीछे मुड़ा, मुझे हसन की गुलेल नज़र आई। हसन ने सीधे हाथ से उसकी इलास्टिक को पूरी ताक़त से पीछे खींचा हुआ था। इलास्टिक के कप में उसने अखरोट के आकार का एक पत्थर भरा हुआ था, जिसके निशाने पर था अस्सेफ़ का चेहरा। इलास्टिक को पूरी ताक़त से खींचे रखने के कारण हसन का हाथ काँप रहा था और उसकी भौंहों के ऊपर पसीने की बूँदें चमचमाने लगी थीं।

"मेहरबानी करके हमें अकेला छोड़ दीजिए, आगा," हसन ने सपाट लहज़े में कहा। उसने अस्सेफ़ को 'आगा' कहकर संबोधित किया था, और एक पल को मैं सोचने लगा कि ख़ुद को समाज में इतना नीचा समझकर जीना (कि ख़ुद से नफ़रत करने वाले को भी हम इज़्ज़त दिए बिना बात करने का न सोच सकते हों) कैसा लगता होगा।

अस्सेफ़ ने गुस्से से दाँत पीसे। "इसे नीचे कर साले बिना माँ के हज़ारा!"

"मेहरबानी करके हमें अकेला छोड़ दीजिए, आगा," हसन ने कहा।

एकाएक अस्सेफ़ के होंठों पर मुस्कान खेलने लगी। "शायद तूने गौर नहीं किया कि हम तीन हैं और तुम दो।"

हसन ने बेफिक्री से कंधे उचकाए। कोई भी उसे देखता तो यही समझता कि वह बिल्कुल बेख़ौफ़ था। मगर होश संभालते से ही मैंने जिस चेहरे को सबसे ज़्यादा देखा था, वह हसन का था। इसलिए मैं उसके चेहरे की छोटी से छोटी शिकन और उनके बीच उभरने वाले तमाम अहसासों से अच्छी तरह वाक़िफ़ था। और इसीलिए मैं जानता था कि वह भी उतना ही डरा हुआ था जितना कि मैं। मतलब, बेहद।

"आप सही कह रहे हैं, आगा। मगर शायद आपने भी गौर नहीं किया कि गुलेल मेरे हाथ में है। अगर आपने एक भी क़दम आगे बढ़ाया तो इन लोगों को आपका उपनाम 'गोशखोर अस्सेफ़' से बदलकर 'काना अस्सेफ़' रखना पड़ेगा, क्योंकि मेरी गुलेल के

निशाने पर आपकी बाईं आँख है।” हसन ने यह बात इतने सपाट लहज़े में कही कि मुझे तक उसकी आवाज़ में छिपे डर को सुनने में मुश्किल हुई।

अस्सेफ़ सोच में पड़ गया। यह सब देख-सुनकर वली और कमाल का मुँह हैरानी से खुला का खुला रह गया। पहली बार किसी ने उनके ख़ुदा को ललकारा था। उसे बेइज्ज़त किया था। और सबसे नागवार बात यह थी कि ‘वह’ कोई और नहीं बल्कि एक मरियल हज़ारा था! अस्सेफ़ कभी गुलेल में फँसे पत्थर को देखता, तो कभी हसन को। उसने हसन के चेहरे का बारीकी से मुआयना किया। पक्का उसे लगा होगा कि हसन अपने कहे पर खरा उतरकर दिखाने से पीछे नहीं हटेगा, इसीलिए उसने अपना उठा हुआ घूँसा नीचे कर लिया।

“तू अभी मुझे ठीक से जानता नहीं है, हज़ारा,” अस्सेफ़ ने गुर्राते हुए कहा। “मैं बहुत सब्र वाला इंसान हूँ। यह बात यहीं ख़त्म नहीं होगी, याद रखना।” फिर वह मुझसे मुखातिब हुआ। “तुम्हारा किस्सा भी यहीं ख़त्म नहीं होगा, आमिर। फिर किसी दिन हमारा आमना-सामना ज़रूर होगा।” इतना कहकर वह एक क़दम पीछे हट गया। उसके दोनों पिछलग्गुओं ने उसका अनुसरण किया।

“तुम्हारे हज़ारा ने आज बहुत बड़ी गलती कर दी है, आमिर,” उसने कहा। इसके बाद वे तीनों पीछे मुड़े और पहाड़ी ढलान उतरने लगे। मैं उन्हें तब तक देखता रहा जब तक कि वे एक दीवार के पीछे गायब नहीं हो गए।

इधर हसन काँपते हाथों से गुलेल को अपनी कमर में फँसाने की कोशिश कर रहा था। उसके चेहरे पर एक राहत भरी मुस्कान थिरकने की कोशिश कर रही थी। काँपते हाथों के कारण वह चार बार गुलेल को अपनी कमर में बाँधने में नाकाम रहा; पाँचवी बार में कामयाबी मिली उसे। घर लौटते वक़्त हम दोनों ही तक़रीबन ख़ामोश रहे, क्योंकि मन ही मन हम बेहद घबराए हुए थे। जब भी हम कोई मोड़ मुड़ने को होते तो हमें यही अंदेशा होता कि कहीं मोड़ की दूसरी तरफ़ अस्सेफ़ और उसके दोस्त हमारी ताक में न खड़े हों। हालाँकि ऐसा हुआ नहीं और इस बात से हमें थोड़ी राहत मिलनी चाहिए थी। मगर नहीं मिली। बिल्कुल भी नहीं।

अगले कुछ बरसों तक ‘आर्थिक विकास’ और ‘सुधार’ जैसे शब्द काबुल में बहुत लोगों की ज़बान पर रहे। संवैधानिक राजतंत्र ख़त्म कर दिया गया था, उसकी जगह एक ‘रिपब्लिक’ (गणतंत्र) बना दिया गया था, जिसकी बागडोर रिपब्लिक के प्रेसिडेंट (राष्ट्रपति) के हाथों में थी। कुछ समय के लिए पूरे मुल्क में ‘कायाकल्प’ और ‘कुछ कर दिखाने’ की भावना फैल गई। लोग औरतों के अधिकारों और आधुनिक तकनीक की बात करने लगे।

मगर ज़्यादातर तो चीज़ें जस की तस ही रहीं। भले आर्ग (काबुल का शाही महल) में रहने वाला नेता बदल गया हो, मगर आम अफ़ग़ानी की ज़िन्दगी तो पहले की तरह ही चल रही थी। लोग शनिवार से गुरुवार तक काम पर जा रहे होते थे और शुक्रवार

को पार्कों में, घरघा झील के किनारे, और पगमन के बगीचों में पिकनिक मनाने के लिए जमा रहे होते थे। यात्रियों से भरी रंग-बिरंगी बसें और ट्रक काबुल की संकरी गलियों से गुज़र रहे होते थे, जिनके ड्राइवरों के सहायक पीछे के बंपरों पर बैठकर लगातार चिल्ला-चिल्लाकर अपने काबुली लहज़े में ड्राइवरों को दिशा-निर्देश दे रहे होते थे। रमज़ान के पाक महीने के बाद जब तीन दिनों तक ईद का त्यौहार मनाया जा रहा होता था तो लोग नए-नए और अच्छे-अच्छे कपड़े पहनकर अपने दोस्तों और रिश्तेदारों से मिलने जा रहे होते थे, उन्हें गले लगाकर, चूमकर, और 'ईद मुबारक' कहकर बधाईयाँ दे रहे होते थे। बच्चे अपने-अपने तोहफे खोकर देख रहे होते थे और रंगे हुए उबले अंडों से खेल रहे होते थे।

1974 की सर्दियों की शुरुआत में एक दिन हसन और मैं यार्ड में खेल रहे थे, बर्फ़ का किला बना रहे थे, तभी अली ने उसे अंदर बुलाया। "हसन, आगा साहिब तुमसे बात करना चाहते हैं!" वह सफ़ेद पोशाक पहने और हाथों को अपनी बग़लों में दबाए सामने के दरवाज़े पर खड़ा था। ठण्ड की वजह से उसके मुँह से भाप निकल रही थी।

हसन और मैं एक-दूसरे की तरफ़ देखकर मुस्कराए। हम सुबह से ही इस बुलावे का इंतज़ार कर रहे थे। उस दिन हसन की सालगिरह थी। "वो क्या लाए हैं, बाबा? आपको तो मालूम होगा? बताइए न," उम्मीद की रोशनी से जगमगातीं आँखों से हसन ने पूछा।

अली ने कंधे उचकाते हुए कहा, "आगा साहिब ने इस बारे में मुझे भी कुछ नहीं बताया है।"

"हमें उल्लू मत बनाओ, अली, बताओ न," मैंने ज़ोर देते हुए कहा। "ड्राइंग बुक है? या फिर नयी बन्दूक?"

हसन की ही तरह अली भी झूठ नहीं बोल पाता था। हर साल वह यह दिखाने की कोशिश करता था कि उसे नहीं पता कि बाबा हसन की या मेरी सालगिरह पर हमारे लिए क्या तोहफ़ा लाए थे, मगर हर साल उसकी आँखें उसे धोखा दे जाती थीं और हम यह पता लगाने में कामयाब रहते थे कि हमें तोहफे में क्या मिलने वाला था। मगर इस बार हमें लगा कि वह सच कह रहा था; उसे सचमुच नहीं मालूम था कि बाबा ने हसन के लिए क्या तोहफ़ा चुना था।

बाबा हसन की सालगिरह कभी नहीं भूलते थे। शुरू-शुरू में वह हसन से पूछते थे कि उसे तोहफे में क्या चाहिए, मगर फिर उन्होंने पूछना छोड़ दिया क्योंकि हसन कभी कुछ माँगता ही नहीं था। फिर उन्होंने अपने मन से ही उसके लिए तोहफे चुनना शुरू कर दिया। एक बार वह उसके लिए एक जापानी खिलौना ट्रक लेकर आए। उसके अगले साल एक रेल का इंजन और रेलगाड़ी का सेट ख़रीदा। पिछले साल तो बाबा ने चमड़े की एक काउबॉय हैट (टोपी) देकर हसन को हैरान ही कर दिया था। यह ठीक वैसी ही हैट थी जैसी क्लिंट ईस्टवुड ने 'द गुड, द बैड एंड द अग्ली' में पहनी थी।

आपको जानकारी के लिए बता दूँ कि जबसे हमने यह फिल्म देखी थी तब से यह हमारी पसंदीदा विदेशी फ़िल्म बन गई थी; इसने 'द मैग्निफिसेंट सेवन' को उस जगह से हटा दिया था। पूरी सर्दी भर हसन और मैंने बारी-बारी से वह हैट पहनी थी और बर्फ़ के टीलों पर चढ़ते हुए और मुँह से फिल्म का वह मशहूर बैकग्राउंड म्यूज़िक निकालते हुए एक-दूसरे को गोली मारने की एक्टिंग की थी।

बहरहाल, अपने दस्ताने और बर्फ़ से लदे जूते दरवाज़े के बाहर उतारकर हम बाबा से मिलने अन्दर भागे। अन्दर बरामदे में पहुँचकर हमने देखा कि बाबा लकड़ी से जलने वाले लोहे के चूल्हे के पास बैठकर आग ताप रहे थे और उनके साथ एक छोटे कद और गंजे सिर वाला हिन्दुस्तानी आदमी भी बैठा था, जिसने कत्थई रंग का सूट और लाल टाई पहनी हुई थी।

हमें देखकर बाबा ने मुस्कराते हुए कहा, "हसन! अपनी सालगिरह के तोहफे से मिलो।"

हसन और मैं एक-दूसरे का मुँह देखने लगे; हम दोनों को ही कुछ समझ नहीं आ रहा था। आसपास कहीं भी चमकदार पन्नी में लिपटा कोई बॉक्स नज़र नहीं आ रहा था। ऐसा कोई बैग भी नहीं था। कोई खिलौना भी नहीं। हमारे अलावा उस बरामदे में बस अली था, बाबा थे, और वह हिन्दुस्तानी आदमी था जो कुछ-कुछ मेरे गणित के टीचर जैसा लग रहा था।

तभी कत्थई सूट पहने वह हिन्दुस्तानी आदमी मुस्कराया, उसने हसन की ओर हाथ बढ़ाया और बोला, "मैं डॉक्टर कुमार हूँ। तुमसे मिलकर अच्छा लगा बेटा।" वह फ़ारसी में बात कर रहा था, मगर उसका लहज़ा हिन्दी वाला था।

"सलाम अलैकुम!" उलझन में पड़े हुए हसन ने हल्के से सिर झुकाकर डॉक्टर कुमार का अभिवादन करते हुए कहा और फिर पीछे खड़े अली की ओर देखने लगा। अली उसके क़रीब आ गया और उसके कंधे पर हाथ रख दिया।

बाबा ने हसन की चौकन्नी और उलझन से भरी आँखों में झाँका और बोले, "मैंने ही डॉक्टर कुमार को नयी दिल्ली से यहाँ बुलवाया है। डॉक्टर कुमार एक प्लास्टिक सर्जन हैं।"

"जानते हो प्लास्टिक सर्जन क्या होता है?" डॉक्टर कुमार ने हसन से पूछा।

हसन ने इंकार में सर हिला दिया। मदद के लिए उसने मेरी तरफ़ देखा, मगर मैंने भी कंधे उचका दिए। मुझे बस इतना पता था कि हम सर्जन के पास तब जाते हैं जब हमें अपेंडिक्स की दिक्कत होती है। मुझे यह इसलिए पता था क्योंकि एक बरस पहले मेरी क्लास में पढ़ने वाला एक लड़का इस बीमारी से मर गया था और टीचर ने हमें बताया था कि ऐसा इसलिए हुआ था क्योंकि उसके घरवालों ने उसे किसी सर्जन के पास ले जाने में देर कर दी थी। अब हम दोनों ने एक साथ अली की ओर देखा, मगर समस्या यही थी कि अली के चेहरे को देखकर कुछ भी पता लगा पाना मुश्किल होता

था। उसका चेहरा हमेशा की तरह भावशून्य था, मगर उसकी आँखों में कुछ कोमल भाव पिघलकर आँसुओं की शक्ल लेते मालूम हो रहे थे।

"चलो मैं ही बता देता हूँ," डॉक्टर कुमार ने कहा। "मेरा काम है लोगों के जिस्म पर मौजूद गड़बड़ियों को ठीक करना। कभी-कभी उनके चेहरों की गड़बड़ियों को भी।"

"ओह!" हसन के मुँह से निकला। उसने डॉक्टर कुमार से नज़र हटाकर बाबा को और फिर अली को देखा। फिर उसने अपने ऊपरी होंठ को छुआ। "ओह!" दोबारा उसके मुँह से निकला।

"मैं जानता हूँ कि यह तोहफ़ा आम तोहफों जैसा नहीं है," बाबा ने कहा। "और वैसा तो बिल्कुल भी नहीं जैसा तुमने सोचा होगा। मगर यह तोहफ़ा ज़िन्दगी भर तुम्हारे साथ रहेगा।"

"ओह!" हसन बुदबुदाया। फिर उसने अपने होंठों पर ज़बान फेरी। गला साफ़ किया। "आगा साहिब, क्या इससे मुझे...इससे मुझे...।"

"बिल्कुल भी नहीं," डॉक्टर कुमार ने चेहरे पर रहमदिली से भरी मुस्कान लाते हुए कहा। "इससे तुम्हें ज़रा भी दर्द नहीं होगा। बल्कि मैं तुम्हें एक दवा दूँगा, जिसको लेने के बाद तो तुम्हें याद ही नहीं रहेगा कि क्या हुआ।"

"ओह!" हसन के मुँह से निकला, और इस बार उसके चेहरे पर राहत भरी मुस्कान भी उभर आई। "मैं डर नहीं रहा था आगा साहिब, मैं तो बस...।" पर मैं जानता था कि यह राहत कुछ ही समय की थी। डॉक्टर कुमार हसन को बेवक़ूफ़ बना सकते थे, पर मुझे नहीं। मेरा तजुर्बा कहता था कि जब भी डॉक्टर आपसे कहे कि बिल्कुल दर्द नहीं होगा, आप समझ जाओ कि बहुत दुखने वाला है। एक बरस पहले ही मेरा ख़तना हुआ था। तब डॉक्टर ने मुझसे भी यही कहा था कि 'मैं तुम्हें दवा दूँगा तो तुम्हें ज़रा भी दर्द नहीं होगा'। मगर जब रात को उस दवा का असर ख़त्म हुआ तो ऐसा लगा जैसे किसी ने मेरी कमर में लाल दहकता हुआ कोयला बाँध दिया हो। मुझे आज तक समझ नहीं आया कि बाबा ने मेरे ख़तना के लिए दस साल इंतज़ार क्यों किया? इस बात के लिए मैं उन्हें कभी माफ़ नहीं कर पाऊँगा।

मेरा दिल किया कि काश मेरे शरीर में भी ऐसी कोई गड़बड़ी होती, ताकि मुझे भी बाबा की ऐसी हमदर्दी हासिल हो पाती। यह मुझे न्याय की बात नहीं मालूम हुई। हसन ने ऐसा कुछ भी नहीं किया था कि उसे बाबा का ऐसा प्यार और हमदर्दी हासिल हो; वह तो इत्तेफाक से ऊपरवाले ने उसे उस कटे होंठ के साथ पैदा कर दिया था।

सर्जरी कामयाब रही। जब पट्टियाँ खुलीं तो हम सब थोड़े चौंक-से गए, मगर डॉक्टर कुमार के कहे मुताबिक़ हमने अपने चेहरों पर मुस्कानें कायम रखीं। हालाँकि ऐसा करना किसी भी तरह आसान नहीं था, क्योंकि हसन का ऊपरी होंठ अभी माँस का एक सूजा हुआ लोथड़ा जैसा लग रहा था। जब नर्स से हसन को शीशा थमाया तो मुझे लगा कि उसमें अपनी शक्ल देखकर हसन डर के मारे रोने लग जाएगा। इसीलिए अली

ने उसका हाथ अपने हाथ में ले रखा था। मगर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। हसन देर तक ख़ामोशी से शीशे में अपने होंठ को देखता रहा और कुछ सोचता रहा। फिर वह कुछ बुदबुदाया, मगर मुझे ठीक से सुनाई नहीं दिया, इसलिए मैं अपना कान उसके मुँह के पास ले गया। हसन फिर से फुसफुसाया।

"ताशाकोर!" शुक्रिया।

इतना कहकर उसके होंठ दोनों कोरों से ऊपर की ओर उठे और इस बार मैं समझ गया कि वह क्या कर रहा था। वह मुस्करा रहा था, बिल्कुल वैसे ही जैसे तब मुस्कराया था जब दाई ने उसे उसकी माँ के पेट से बाहर निकाला था।

वक़्त के साथ सूजन भी चली गई और घाव भी भर गया। सिर्फ़ एक हल्की-सी गुलाबी रेखा जैसी रह गई। अगली सर्दियाँ आते-आते वह भी लगभग गायब हो गई। मगर कैसी विडंबना थी कि उन्हीं सर्दियों से हसन ने मुस्कराना बंद कर दिया।

छह

सर्दियाँ।

आपको पता है हर साल सर्दियों के मौसम में जब पहली बर्फ़बारी होती है, तब मैं क्या करता हूँ? मैं अलसुबह उठकर उनींदी हालत में ही घर से बाहर निकलता हूँ। जी हाँ, सोने के कपड़ों में ही। फिर बाँहें फैलाकर बर्फ़बारी के पहले दिन का स्वागत करता हूँ। फिर चारों ओर नज़रें घुमाकर देखता हूँ और पाता हूँ कि हर चीज़ बर्फ़ की एक फुट मोटी चादर से ढँकी हुई है –ड्राइव-वे, बाबा की कार, चारदीवारी, पेड़, घर की छत, पहाड़ियाँ– सभी कुछ। यह देखकर मैं मुस्करा उठता हूँ। सर के ऊपर नीला आसमान होता है और पाँव के नीचे झक्क सफ़ेद बर्फ़ की चादर, इतनी सफ़ेद कि मेरी आँखें चौंधियाने लगती हैं। मैं इस चादर में से एक मुट्ठी ताज़ा बर्फ़ उठाकर मुँह में भर लेता हूँ और अलसुबह के माहौल में छाई उस ख़ामोशी को सुनने लगता हूँ जो सिर्फ़ कौओं की काँव-काँव से ही टूटती है। मैं नंगे पैर ही सामने की सीढ़ियों से नीचे उतरता हूँ और हसन को आवाज़ लगाता हूँ, ताकि वह भी बाहर आकर यह नज़ारा देख सके।

सर्दियों का मौसम काबुल के हरेक बच्चे का पसंदीदा मौसम हुआ करता था, कम से कम उन बच्चों का तो होता ही था जिनके बाबा एक अच्छा बड़ा-सा लोहे का स्टोव ख़रीद सकते थे। कारण साफ़ था, सर्दियों के मौसम में स्कूल की छुट्टियाँ हो जाती थीं। मेरे लिए सर्दियों का मतलब था स्कूल की उबाऊ पढ़ाई-लिखाई के एक लम्बे सत्र का अंत और तीन महीने लम्बी छुट्टियों की शुरुआत, जो मैं हसन के साथ स्टोव के पास बैठकर पत्ते खेलते हुए, मंगलवार की सुबह सिनेमा पार्क में मुफ्त में रूसी फ़िल्में देखते हुए, और सुबह-सुबह बर्फ़ में खेलने के बाद दोपहर के खाने में मीठे शलजम कोरमा के साथ चावलों का लुत्फ़ उठाते हुए बिताता था।

और हाँ, पतंग का शौक पूरा करते हुए। पतंगें उड़ाते हुए। और कटी हुई पतंगें लूटते हुए भी।

मगर कुछ बदकिस्मत बच्चे ऐसे भी थे जिनके लिए सर्दियाँ पढ़ाई से छुट्टी का संदेसा लेकर नहीं आती थीं। उनके लिए कई सारे तथाकथित 'स्वैच्छिक' शीतकालीन पाठ्यक्रम थे। मेरी जानकारी में ऐसा कोई बच्चा नहीं था जो 'स्वेच्छा' से इन कोर्सेस में जाता हो; उनके माँ-बाप जबरन भेजते थे। ख़ुशकिस्मती से बाबा उनमें से नहीं थे। मुझे याद है, अहमद नाम का एक लड़का था जो हमारे घर के सामने वाली लाइन में रहता था। उसके बाबा शायद किसी किस्म के डॉक्टर थे। अहमद को मिर्गी की बीमारी थी और वह हमेशा एक ऊनी बनियान और मोटा काला चश्मा पहने रहता था। वह उन बच्चों में शामिल था जो नियमित रूप से अस्सेफ़ का शिकार बनते थे। छुट्टियों की हर सुबह मैं अपने बेडरूम की खिड़की से देखता कि अलसुबह ही उसके घर में काम

करने वाले हज़ारा नौकर-चाकर ड्राइव-वे पर जमी बर्फ़ हटाने लगते, ताकि उनके मालिक की काले रंग की ओपल कार बाहर निकल सके। इसके बाद ऊनी बनियान और विंटर कोट पहने और किताबों से भरा बस्ता पीठ पर टाँगे अहमद अपने बाबा के साथ घर से बाहर आकर गाड़ी में बैठ जाता। मैं तब तक उन्हें देखता रहता जब तक कि गाड़ी बाहर निकलकर अगला मोड़ नहीं मुड़ जाती। इसके बाद मैं फिर से अपने बिस्तर में दुबक जाता, कम्बल को गले तक ओढ़ लेता और बेडरूम की खिड़की से दिखाई पड़ने वाले उत्तर दिशा में बर्फ़ से ढँकी पहाड़ियों के नज़ारे को तब तक देखता रहता जब तक कि दुबारा नींद के आगोश में नहीं समा जाता।

मुझे काबुल की सर्दियाँ बेहद पसंद थीं। मुझे रात में अपनी खिड़की पर बर्फ़ के गिरने की हल्की-हल्की आवाज़ बहुत पसंद थी, ताज़ा-ताज़ा बर्फ़ पर रबर के काले जूते पहनकर चलने से जो चरमराहट होती थी वो बहुत पसंद थी, बाहर चल रहीं बर्फ़ीली हवाओं के थपेड़ों को बेअसर करने वाली लोहे के स्टोव की गर्माहट बहुत पसंद थी। मगर सर्दियों की जो बात मुझे सबसे ज़्यादा पसंद थी वो थी बाबा और मेरे बीच हमेशा जमी रहने वाली बर्फ़ का थोड़ा-सा पिघल जाना। और इसकी वजह थीं पतंगें। कहने को तो बाबा और मैं एक ही घर में रहते थे, मगर हमारी दुनियाएँ अलग-अलग थीं। पतंगें उन दो दुनियाओं को जोड़ने वाला काग़ज़ जितना पतला पुल था।

हर साल सर्दियों में काबुल के सभी इलाकों में पतंगबाज़ी के मुकाबले आयोजित होते थे। और इस बात से कोई इंकार नहीं करेगा कि काबुल में रहने वाले हरेक बच्चे के लिए ये मुकाबले सर्दियों के मौसम के सबसे बड़े आकर्षण हुआ करते थे। ख़ास तौर पर मैं तो इतने ज़्यादा जोश में रहता था कि मुकाबले से पहले वाली पूरी रात मुझे नींद नहीं आती थी। मैं रात भर करवटें बदलता रहता, दीवार पर पड़ने वालीं परछाइयों में तरह-तरह के जानवरों की आकृतियाँ तलाशता रहता, और कभी-कभी तो कम्बल लपेटकर अंधेरी बालकनी में जा बैठता। मैं ख़ुद को उस फ़ौजी की जगह रखकर देखने लगता जो किसी बड़ी जंग से पहले वाली रात को अपनी खंदक में सोने की कोशिश कर रहा हो। और यह मैं कोई बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कह रहा हूँ, क्योंकि सचमुच काबुल में पतंगबाज़ी के मुकाबले जंग लड़ने से कम मायने नहीं रखते थे।

जैसे जंग पर जाने से पहले खासी तैयारी करनी पड़ती है, वैसी ही तैयारी हम भी करते थे। शुरू-शुरू में हसन और मैं अपनी पतंगें ख़ुद ही बनाया करते थे। बसंत के मौसम से ही हम लोग अपने साप्ताहिक जेबखर्च से थोड़ी-थोड़ी बचत करने लगते थे। बचत के पैसे हम घोड़े की शक्ल वाली पोर्सीलिन की उस गुल्लक में डालते जाते थे जो बाबा एक बार हेरात से लाए थे। जैसे ही सर्दियों के मौसम का आगाज़ होता और बर्फ़ पड़नी शुरू होती, हम उस घोड़ेनुमा गुल्लक के निचले हिस्से में लगे ढक्कन को खोलकर सारे पैसे निकाल लेते और बाँस, गोंद, धागा, और काग़ज़ ख़रीदने बाज़ार चल पड़ते। फिर हर दिन घंटों बैठकर हम बाँस छीलते ताकि पतंग का ढाँचा तैयार किया जा सके। फिर उस ढाँचे के आकार के हिसाब से टिशू पेपर काटते। और सबसे आख़िर में बारी आती सबसे ज़रूरी काम की – माँझा तैयार करने की। अगर पतंग बन्दूक थी

तो माँझा उसकी गोली। माँझा असल में पिसे हुए काँच की परत चढ़ाया हुआ धागा होता था, जो दूसरी पतंगें काटने का काम करता था। माँझा बनाने के लिए हम लोग यार्ड में जाकर पाँच-सौ फीट लम्बे धागे पर पिसे हुए काँच और गोंद के मिश्रण की परत चढ़ाते थे। इसके बाद इस धागे को पेड़ों के बीच बांधकर सूखने के लिए छोड़ देते थे। अगले दिन जंग के लिए तैयार इस माँझे को लकड़ी की एक चरखी में लपेट लिया जाता था।

सर्दियों का मौसम जाते-जाते काबुल के सभी लड़कों की उँगलियों पर माँझे से कटने के ढेर सारे निशान छोड़ जाता था। मुझे याद है कि स्कूल के पहले दिन एक-दूसरे को अपनी-अपनी उँगलियों के घाव दिखाने में हमें वैसा ही फख्र महसूस होता था जैसा जंग लड़कर लौटे किसी फ़ौजी को जंग में लगे ज़ख्मों के निशान दिखाते हुए होता है। माँझे के इस्तेमाल से बने ये घाव खासे दर्द करते थे और यह दर्द कई हफ़्तों तक बना रहता था, मगर इस दर्द का एक अलग ही मज़ा होता था। वह दर्द और वे निशान उस दिलकश मौसम की याद दिलाते थे जिसका हमें हर साल बड़ी बेसब्री से इंतज़ार रहता था और जो न जाने क्यों हर बार इतनी जल्दी गुज़र जाता था! अभी हम इन यादों से बाहर भी नहीं आ पाए होते थे कि तभी क्लास कप्तान की सीटी बज उठती थी और हम सब कतार बनाकर अपनी-अपनी कक्षाओं की ओर बढ़ने लगते थे। मन में सभी के यही चल रहा होता था कि कैसे हो तो सर्दियों का मौसम जल्द-अ-जल्द वापस लौट आए। मगर हमारे सामने होता था पढ़ाई का एक और लम्बा साल।

मगर जल्दी ही यह बात साफ़ हो गई कि हसन और मैं पतंग उड़ाने में जितने अच्छे थे, उतने पतंग बनाने में नहीं थे। हमारी बनायी हुईं पतंगों में हमेशा कुछ न कुछ कमी रह ही जाती थी, जिसका खामियाज़ा हमें हार के रूप में भुगतना पड़ता था। इसीलिए बाबा ने हमें पतंगें लेने के लिए सैफो की दुकान ले जाना शुरू कर दिया। आँखों की रोशनी तक़रीबन खो चुका बूढ़ा सैफो पेशे से तो मोची था, मगर साथ ही साथ उसे पतंगें बनाने में भी महारत हासिल थी। था तो वह काबुल का सबसे जाना-माना पतंगसाज़, मगर काबुल नदी के कीचड़ भरे तट के दक्षिण में स्थित भीड़भाड़ वाली सड़क जादेह मेवांड पर एक कोठरीनुमा दुकान में बैठकर काम करता था। मुझे याद है कि जेल की कोठरी के आकार वाली उस दुकान में घुसने के लिए आपको झुकना पड़ता था और फिर फर्श में बनी लोहे की एक जाली को उठाकर, लकड़ी की सीढ़ियों से नीचे उतरकर उस सीलन भरे तहखाने में जाना पड़ता था जहाँ सैफो ने अपनी पसंदीदा पतंगें जमा कर रखी होती थीं। बाबा हम दोनों को (मुझे और हसन को) तीन-तीन पतंगें (बिल्कुल एक जैसी) और माँझे की एक-एक चरखी दिलाते थे। अगर कभी मैं कोई ज़्यादा बड़ी और ज़्यादा ख़ूबसूरत-सी पतंग लेने की ज़िद कर बैठूँ तो बाबा इंकार नहीं करते थे, मगर फिर वैसी ही एक पतंग हसन को भी दिलवाते। कभी-कभी मैं चाहने लगता कि वे ऐसा न करें। मैं चाहने लगता कि वे यह ज़ाहिर होने दें कि मैं उनका ज़्यादा लाड़ला था।

सर्दियों में पतंगबाज़ी के मुकाबले आयोजित करना अफ़ग़ानिस्तान की पुरानी परंपरा थी। ये मुकाबले सुबह-सवेरे ही शुरू हो जाते थे और तब तक जारी रहते थे जब

तक कि विजेता पतंग का आसमान में अकेला राज नहीं हो जाता। मुझे याद है कि एक बरस तो अँधेरा होने के बाद भी मुकाबला जारी रहा था। मुकाबलेबाज़ बच्चों का हौसला बढ़ाने के लिए फुटपाथों और मकानों की छतों पर उनके घरवालों, जान-पहचान वालों और यार-दोस्तों का भारी मजमा इकट्ठा होता था। तमाम सड़कें पतंगबाज़ों से भरी होती थीं, जो आसमान में सरसराती अपनी पतंगों को संभालते हुए लगातार अपनी जगहें और अपनी रणनीतियाँ बदल रहे होते थे, ताकि अपनी-अपनी पतंगों को कटने से बचाते हुए दूसरों की पतंगें काट सकें। हर पतंगबाज़ के साथ एक सहायक होता था, जो चरखी पकड़ता था और ज़रूरत के मुताबिक़ माँझा छोड़ता या लपेटता जाता था। मेरे लिए यह काम हसन करता था।

एक बार एक शरारती हिन्दुस्तानी बच्चे ने, जिसका परिवार हाल ही में पड़ोस में रहने आया था, हमें बताया था कि उसके मुल्क में पतंगबाज़ी के सख्त नियम-कानून होते थे। “पतंगबाज़ को एक सीमित दायरे में रहते हुए ही पतंग उड़ानी होती है और हवा के हिसाब से सही कोण पर खड़ा होना होता है,” उसने शेखी बघारते हुए कहा था। “और माँझा बनाने के लिए आप एलुमिनियम का इस्तेमाल नहीं कर सकते हैं।” उसकी बात सुनकर हसन और मैंने एक-दूसरे की तरफ़ देखा और फिर ज़ोर से खिलखिलाकर हँस पड़े। उस हिन्दुस्तानी बच्चे को जल्दी ही उस बात का अहसास हो गया जिसका पता अंग्रेजों को सदी की शुरुआत में ही चल गया था और रूसियों को 1980 के उत्तरार्ध में चलने वाला था – वह यह कि अफ़ग़ानी लोग आज़ादी पसंद लोग हैं। अफ़ग़ानी लोग रीति-रिवाज़ों को बहुत महत्व देते हैं, मगर नियम-कायदों से नफ़रत करते हैं। यही बात पतंगबाज़ी पर भी लागू होती थी। इसके नियम-कायदे बहुत सीधे-सरल थे: कोई नियम नहीं, कोई कायदा नहीं। आपकी मर्ज़ी है, जैसे चाहो वैसे उड़ाओ। मकसद एक ही है – दूसरी पतंगों को काटना; जैसे चाहो वैसे काटो। बस, इतना ही।

मगर पतंगबाज़ी का मतलब इतना ही नहीं था। असली मज़ा तो तब शुरू होता था जब कोई पतंग कट जाती थी। यहीं से एंट्री होती थी पतंग लूटने वालों की, जिन्हें अंग्रेज़ी में ‘काईट रनर’ कहा जाता है। ये वे बच्चे होते थे जो कटने के बाद हवा में हिचकोले खाती और किसी खेत में या किसी आँगन में या किसी पेड़ पर या किसी घर की छत पर गिरने को अभिशप्त पतंग के पीछे-पीछे तब तक दौड़ लगाते थे जब तक कि वह उनमें से किसी के हाथ न आ जाए। और यह पीछा करना बहुत ही भयंकर तरीक़े का होता था; सैकड़ों की तादाद में बच्चे ऊपर आसमान में हिचकोले खाती पतंग पर नज़र जमाए, एक-दूसरे से टकराते, लड़ते-झगड़ते, गिरते-पड़ते यूँ सड़कों और गलियों में बेतहाशा भाग रहे होते थे जैसे उन पर कोई भूत सवार हो गया हो या फिर उनके पीछे कोई पागल सांड पड़ा हो। पिछले साल तो एक बच्चा एक कटी पतंग हथियाने के लिए चीड़ के पेड़ पर चढ़ गया था। बदकिस्मती से एक डाल उसका वज़न न सह पायी और वह 30 फीट नीचे आ गिरा, जिसकी वजह से उसकी रीढ़ की हड्डी टूट गयी और उसने ज़िन्दगी भर के लिए खटिया पकड़ ली। मगर भाईसाहब, गिरते-गिरते भी उसने पतंग नहीं छोड़ी। और अगर एक बार पतंग किसी के हाथ लग गयी तो फिर उसे उससे कोई

नहीं छुड़ा सकता। यह नियम नहीं था। यह अफ़ग़ानिस्तान की परंपरा थी।

पतंग लूटने वालों के लिए सबसे कीमती पुरस्कार होता था सर्दियों के पतंगबाज़ी मुकाबले की आख़िरी कटी हुयी पतंग। यह एक तरह से विनिंग ट्रॉफी की तरह होती थी, जिसे उस बच्चे के माँ-बाप अपनी बैठक के शो-केस में सजाकर रखते थे, ताकि उनके घर आने वाला हर मेहमान उसे देख सके। जब आसमान में पतंगों की भीड़ छंट जाती और सिर्फ़ आख़िरी दो पतंगें रह जातीं, तब हर काईट रनर कमर कसके तैयार हो जाता सर्दियों के सबसे बड़े ईनाम को लपकने के लिए। हर कोई अपने-अपने अनुमान के मुताबिक़ किसी ऐसी जगह पर जम जाता जहाँ से उसे पतंग के पीछे लपकने का पहला मौका हासिल हो सके। अगर एक जगह के एक से ज़्यादा उम्मीदवार होते तो उस जगह को कब्ज़ाने के लिए जंग छिड़ जाती। फिर वे सभी पूरी तरह दम साधे, बगुले की तरह गर्दनों को आसमान में उठाए, और बाज़ की तरह नज़रें जमाए उस पल का इंतज़ार करने लगते जब जीतने वाली पतंग हारने वाली पतंग को उसके माँझे से जुदा करती। और जैसे ही वह पल आता, ऐसा लगता जैसे अचानक कोई बाँध फट गया हो।

मैं कई बरसों से पतंग लूटने वालों को देख रहा था। मैंने एक से बढ़कर एक सूरमा देखे थे, मगर कोई भी हसन के मुकाबले का नहीं था। मैंने अपनी ज़िन्दगी में उससे बेहतर काईट रनर नहीं देखा था। उसकी सबसे बड़ी खासियत यह थी कि वह हमेशा पतंग के गिरने से पहले ही उस जगह पर पहुँच जाता था जहाँ पतंग गिरने वाली होती थी। ऐसा लगता था मानो उसके पास कोई आंतरिक दिशासूचक हो।

मुझे याद है, एक बार सर्दियों में पतंगबाज़ी के मुकाबले के दिन हम दोनों एक पतंग को लूटने के लिए सरपट भागे जा रहे थे। हसन आगे-आगे और मैं पीछे-पीछे। जाने-अनजाने इलाकों को पार करते हुए, तंग गलियों से होकर भागते हुए, छोटे-बड़े नालों और गटरों को फाँदते हुए और आसमान में हिचकोले खाती पतंग पर नज़रें जमाए हुए हम भागे चले जा रहे थे। भले उम्र में, मैं हसन से एक बरस बड़ा था, मगर भागने में हसन मुझसे कहीं ज़्यादा तेज़ था और इसलिए मैं पिछड़ रहा था।

“हसन! रुको!” मैं चिल्लाया। मेरी साँसें उखड़ी हुई थीं।

वह मुड़ा और हाथ से इशारा करते हुए बोला, “इधर!” और कहने के साथ ही वह एक मोड़ मुड़ गया। मैंने आसमान की ओर नज़र उठायी तो मेरा सर चकरा गया, हसन जिस तरफ़ चलने को कह रहा था वह उस दिशा के उलट था जिधर पतंग जा रही थी।

“हम उल्टी दिशा में जा रहे हैं! हम उसे खो देंगे!” मैंने चिल्लाकर कहा।

“मुझ पर भरोसा रखिए!” उसने आगे-आगे भागते हुए कहा। मैं जब वह मोड़ मुड़ा तो मैंने देखा कि हसन इत्मीनान के साथ सर नीचा किए सरपट भागा जा रहा था, उसे सर उठाकर आसमान में पतंग की ओर देखने की भी ज़रूरत नहीं लग रही थी। पसीने के कारण उसकी कमीज़ पीठ से चिपकी हुयी थी। तभी एक चट्टान पर पैर रखते ही मैं

फिसलकर गिर पड़ा; भागने-दौड़ने के मामले में, मैं न केवल हसन से धीमा था, बल्कि उसकी तुलना में ख़ासा अनाड़ी भी था। मुझे हमेशा उसकी पैदाइशी एथलेटिक क्षमताओं से रश्क महसूस होता था। जब तक मैं लड़खड़ाते हुए अपने पैरों पर खड़ा हुआ, तब तक हसन एक और मोड़ मुड़कर मेरी नज़रों से ओझल हो चुका था। मैं भी लंगड़ाते हुए उसी दिशा में भागने की कोशिश करने लगा, मगर मेरे छिले हुए घुटनों में दर्द की तेज़ लहर दौड़ गयी। किसी तरह गिरते-पड़ते मैं जब वह मोड़ मुड़कर दूसरी ओर पहुँचा तो मैंने देखा कि हम इस्तेकियाल मिडिल स्कूल के पास एक ऊबड़-खाबड़ कच्ची सड़क पर पहुँच गए थे, जिसके एक तरफ़ एक खेत था, जहाँ गर्मियों में सलाद पत्ता उगाया जाता था और दूसरी तरफ़ एक लाइन से ढेर सारे चेरी के पेड़ खड़े हुए थे। तभी मेरी नज़र हसन पर पड़ी जो उन्हीं पेड़ों में से एक के नीचे आलथी-पालथी मारकर बैठा था और मज़े से सूखे शहतूत खा रहा था।

"हम यहाँ क्या कर रहे हैं?" मैंने हाँफते हुए पूछा। मेरे पेट में उथल-पुथल सी मची हुयी थी, ऐसा लग रहा था कि बस अभी उल्टी हो जाएगी।

हसन मुस्कराया। "आप तो यहाँ मेरे पास आकर बैठो, आमिर आगा!"

मैं जाकर उसके बग़ल में ढेर हो गया और हाँफती-सी आवाज़ में बोला, "तुम हमारा वक़्त बर्बाद कर रहे हो। पतंग तो उल्टी दिशा में जा रही थी, तुमने देखा नहीं क्या?"

हसन ने इत्मीनान से एक शहतूत मुँह में डाला और बोला, "वह यहीं आएगी।" इधर मैं अपनी उखड़ी हुयी साँसों को काबू करने की नाकाम कोशिश कर रहा था, और उधर हसन के चेहरे पर थकान का नाम-ओ-निशान तक नहीं था।

"तुम्हें कैसे पता?"

"मुझे पता है।"

"मगर कैसे?"

वह मेरी ओर मुड़ा। मैंने उसके गंजे सर से पसीने की कुछ बूँदें टपकती देखीं। "मैंने कभी आपसे झूठ बोला है, आमिर आगा?"

अचानक मुझे शरारत सूझी। "पता नहीं। बोला है क्या?"

"इसकी बजाए मैं मिट्टी खा लूँगा," उसने मेरे अविश्वास के कारण आहत होते हुए कहा।

"वाक़ई? तुम ऐसा करोगे?"

"कैसा?" उसने उलझन भरी नज़रों से मुझे देखते पूछा।

"अगर मैं कहूँ तो तुम मिट्टी खा लोगे?" मैं जानता था कि मैं उसके भोलेपन का

फ़ायदा उठाकर उसके साथ ज़्यादती कर रहा था, जैसा कि मैं अक्सर तब किया करता था जब हसन किसी ऐसे शब्द के बारे में पूछता था जिसका मतलब उसे नहीं पता होता था। मगर मैं क्या करूँ, मुझे हसन को चिढ़ाने, उसकी टांग खींचने में एक अजीब-सा मज़ा आता था। बिल्कुल वैसा ही मज़ा जैसा हमें कीट-पतंगों को टॉर्चर देने में आता था। फर्क बस इतना था कि अभी हसन वह कीट-पतंगा था और मैं उसका आतताई।

वो देर तक गौर से मेरे चेहरे को देखता रहा। मैं भी एकटक उसके चेहरे को देखे जा रहा था। उस खट्टे चेरी के पेड़ के नीचे बैठे हम दोनों बालक अचानक ही पतंग को भूलकर एक-दूसरे के चेहरों में खो गए थे। और फिर अचानक से वही हुआ जो पहले भी कई बार हो चुका था: अचानक ही हसन के चेहरे के भाव बदल गए। या शायद नहीं बदले, पता नहीं, मगर अचानक ही मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मैं एक साथ दो चेहरों को देख रहा था। एक चेहरा तो वह जिसे मैं अच्छी तरह पहचानता था, जिसे मैंने होश संभालते से ही अपने सामने पाया था, और दूसरा वह चेहरा जो एकाएक उस पहले वाले चेहरे के पीछे से झाँका था। मैं पहले भी ऐसा होते देख चुका था, और जब भी ऐसा होता था तो मैं थोड़ा सकपका जाता था। वो दूसरा चेहरा पल भर को नज़र आया, मगर उतना काफी था मेरे भीतर यह अहसास जगाने को कि मैंने शायद उसे पहले भी कहीं देखा था। मगर अगले ही पल हसन ने पलक झपकी और वह दूसरा चेहरा गायब हो गया। अब सिर्फ़ वही चेहरा रह गया जिसे मैं हसन के तौर पर जानता था।

“अगर आप कहेंगे तो मैं बेशक खा लूँगा,” आख़िर-कार हसन ने कहा। उसकी नज़रें अब भी मेरे चेहरे पर टिकी हुई थीं। मैंने अपनी नज़रें झुका लीं। मुझे आज भी हसन जैसे लोगों से नज़रें मिलाकर रख पाना बहुत कठिन लगता है, उन लोगों से जिनके मुँह से निकला हरेक शब्द सच्चा होता है।

“मगर, आमिर आगा, क्या आप वाक़ई मुझसे ऐसा करने के लिए कहेंगे?” यह कहकर हसन ने अब ‘मियाँ की जूती मियाँ के सर’ वाला काम कर दिया था। कहाँ तो मैं उसके साथ खिलवाड़ कर रहा था और उसकी वफ़ादारी को चुनौती दे रहा था, और कहाँ अब वह मेरे साथ खिलवाड़ करने और मेरी नैतिकता की परीक्षा लेने में जुट गया था।

मुझे अफ़सोस होने लगा कि मैंने यह खिलवाड़ शुरू किया ही क्यों। मैंने जबरन मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा, “पागलों जैसी बात मत करो हसन, तुम जानते हो मैं कभी भी ऐसा नहीं कर सकता।”

मेरी बात सुनकर हसन भी मुस्करा उठा, फर्क सिर्फ़ इतना था कि उसकी मुस्कराहट ‘जबरन’ नहीं थी। “मैं जानता हूँ,” उसने जवाब दिया। सच्चे लोगों के साथ यही परेशानी होती है, उन्हें लगता है कि जैसे उनके मुँह से निकला हरेक लफ्ज़ सौ फीसदी सच होता है, वैसा ही सभी लोगों के साथ होता होगा।

“वो आ गई,” हसन ने आसमान की तरफ़ इशारा करते हुए कहा। वह उठकर खड़ा हुआ और चंद क़दम बाईं ओर खिसक गया। मैंने सिर उठाकर देखा तो वाक़ई वह पतंग हिचकोले खाती हमारी ही ओर चली आ रही थी।

साथ ही मेरे कानों में पतंग लूटने वालों की आमद की आहटें भी पड़ने लगीं। मगर वे सब बेचारे सिर्फ़ अपना वक़्त बर्बाद कर रहे थे। क्योंकि हसन अपनी बाँहें फैलाए, मुस्काराता हुआ ठीक वहीं इंतज़ार में खड़ा था जहाँ पतंग गिरने वाली थी। और अल्लाह झूठ न बुलवाए (अगर वाक़ई अल्लाह जैसी कोई शै है तो), वो पतंग यूँ आकर हसन की खुली बाँहों में समा गई जैसे कोई महबूबा अपने महबूब से लिपट जाए।

1975 की सर्दियों में, मैंने आख़िरी बार हसन को पतंग लूटते देखा।

आम तौर पर सभी इलाकों के लोग सर्दियों में अपने-अपने यहाँ अपने अलग-अलग मुकाबले आयोजित करते थे, मगर उस बरस मेरे अपने इलाके, वज़ीर अकबर खान, में बहुत बड़े पैमाने पर मुकाबला आयोजित होने जा रहा था और दूसरे कई इलाकों, जैसे कि कारतेह-चार, कारतेह-परवान, मेक्रो-रेयान, और कोतेह-संगी के लोगों को भी उसमें शरीक होने के लिए न्यौता दिया गया था। उस मुकाबले को लेकर लोगों की दीवानगी का आलम यह था कि हर जगह और हर किसी की ज़बान पर बस उसी का ज़िक्र रहता था। कहने वाले इस हद तक कह रहे थे कि यह पिछले पच्चीस बरसों का सबसे बड़ा मुकाबले होने जा रहा था।

उस महा-मुकाबले को चार दिन रह गए थे जब एक रात मैं बाबा के साथ उनकी स्टडी में बैठा था। रात का खाना हो चुका था और अभी हम लोग चाय पीते हुए और आग तापते हुए बातें कर रहे थे। घर के सभी काम निपटाकर अली हसन के साथ सोने जा चुका था। बाबा अपनी पाइप में तम्बाखू भर रहे थे और मैं उनसे वह किस्सा सुनाने को कह रहा था जब एक सर्दियों में भेड़ियों का एक झुण्ड हेरात की पहाड़ियों से नीचे उतरकर रिहायशी इलाके में आ गया था, जिसके चलते सभी लोगों को हफ्ते भर तक घरों के अन्दर छिपकर रहने को मजबूर होना पड़ा था। तभी बाबा ने पाइप सुलगाने के लिए माचिस जलाई और बड़े ही सहज भाव से बोले, “मुझे लगता है इस बरस शायद तुम मुकाबला जीत जाओगे। तुम्हारा क्या ख़याल है?”

मुझे नहीं पता था कि मेरा इस बारे में क्या ख़याल होना चाहिए था। या मुझे क्या कहना चाहिए था। क्या मेरे ऐसा सोचने से बात बन जाएगी? क्या बाबा मुझे कोई आईडिया दे रहे थे जीतने का? मैं अच्छा पतंगबाज़ था। बल्कि, बहुत अच्छा कहना चाहिए। कई बार मैं मुकाबला जीतने के बहुत क़रीब भी पहुँच चुका था। एक बार तो मैं अंतिम तीन में भी रहा था। मगर क़रीब पहुँचने और जीतने में बहुत फर्क होता है, नहीं? बाबा ने कभी ‘क़रीब’ पहुँचने वाला काम नहीं किया, उन्होंने हमेशा और हर जगह जीत ही हासिल की। बाबा को जीतने की आदत थी। उनके आगे किसी की नहीं चलती थी। तो क्या उनको अपने बेटे से भी ऐसी ही उम्मीद रखने का हक़ नहीं था? और सोचकर देखिए कि अगर कहीं मैं यह मुकाबला जीत जाता तो…।

बाबा पाइप के कश लगाते हुए बातें करते रहे। मैं यह जताता रहा कि मैं सुन रहा था। मगर हक़ीक़त यह थी कि सिर्फ़ मेरे कान सुन रहे थे, मेरे दिल-ओ-दिमाग़ में तो कुछ और चल रहा था। बाबा की यूँही बातों-बातों में की गई उस छोटी-सी टिप्पणी ने मेरे दिल-ओ-दिमाग़ में इस संकल्प का बीज बो दिया था कि मैं उस बरस होने वाले महा-मुकाबले को जीतूँगा। मैं जीतूँगा ही जीतूँगा। कोई और विकल्प ही नहीं था। मैं ही जीतूँगा; आसमान में उड़ने वाली आख़िरी पतंग मेरी ही होगी। और फिर मैं जीत की ट्रॉफी के साथ घर लौटूँगा और बाबा को दिखाऊँगा। मैं साबित कर दूँगा कि उनका बेटा भी उन्हीं की तरह काबिल है। और तब शायद इस घर में भूतों की तरह जीने की मेरी सज़ा ख़त्म हो जाएगी। मैं खुली आँखों से यह ख्वाब देखने लगा कि मेरे मुकाबला जीतने के बाद घर का माहौल पूरी तरह बदल जाएगा और अभी रात के खाने के वक़्त जो घनघोर सन्नाटा छाया रहता है, उसकी जगह बाबा और मैं ढेर सारी बातें करते हुए, हँसी-मज़ाक करते हुए खाना खा रहे होंगे। मैंने ख्वाब देखा कि शुक्रवार के रोज़ बाबा और मैं उनकी कार में बैठकर पघमन की सैर को जाया करेंगे और रास्ते में घरघा झील पर रुककर तले हुए ट्राउट और आलुओं का लुत्फ़ लिया करेंगे। हम मरजान शेर को देखने चिड़ियाघर जाएँगे, और हमेशा की तरह अब वहाँ बाबा का पूरा वक़्त जम्हाईयाँ लेते हुए और हर समय अपनी कलाई घड़ी की ओर देखते रहने में नहीं बीतेगा। और तो और, बाबा मेरी लिखी कहानी भी पढ़ेंगे। और अगर उन्होंने एक भी पढ़ ली तो मैं उनके लिए सौ और लिख डालूँगा। तब शायद रहीम खान की तरह बाबा भी मुझे आमिर जान कहकर बुलाएँगे। और शायद, बस शायद, मुझे आख़िर-कार अपनी वालिदा के क़त्ल के लिए माफ कर दिया जाएगा।

इधर बाबा मुझे उस समय के बारे में बता रहे थे, जब उन्होंने एक ही दिन में चौदह पतंगें काटी थीं। मैं उनकी बात सुनने की बढ़िया एक्टिंग कर रहा था; जहाँ मुस्कराना चाहिए था वहाँ मुस्करा रहा था, जहाँ हाँ या न में गर्दन हिलानी चाहिए वहाँ हिला रहा था, जहाँ हँसना चाहिए था वहाँ हँस रहा था। मगर हक़ीक़तन मैंने एक लफ्ज़ भी नहीं सुना था। अब मेरे पास एक मिशन था। मैं बाबा को निराश करने वाला नहीं था। इस बार नहीं।

मुकाबले से पहले वाली रात भारी बर्फ़बारी हो रही थी। हवा से हिलती हुई पेड़ की टहनियाँ खिड़की से टकरा रही थीं। हसन और मैं मेरे कमरे में अपनी स्पेशल 'कुर्सी' के नीचे बैठे पंजपर खेल रहे थे। मैंने ही अली से कहकर हमारे लिए वह स्पेशल 'कुर्सी' तैयार करवाई थी। असल में वह चारों ओर से मोटे कंबल से ढँकी एक बड़ी-सी मेज़ थी, जिसके नीचे एक इलेक्ट्रिक हीटर रखा गया था। मेज़ के चारों ओर अली ने कई सारे गद्दे और तकिए रख दिए थे, जिससे वहाँ तक़रीबन बीस लोगों के बैठने और तापने की व्यवस्था हो गई थी। हसन और मैं बर्फ़बारी वाले तमाम दिन उसी कुर्सी के नीचे बैठकर शतरंज और ताश (मुख्यतः पंजपर) खेलते हुए बिताते थे।

मैंने हसन के ईंट के दहले को मार दिया, और फिर दो गुलाम और एक छक्का चला। बग़ल के कमरे में, यानी कि बाबा की स्टडी में बाबा और रहीम खान दो और

लोगों के साथ बैठकर बिज़नेस की बातें कर रहे थे। उन दो लोगों में से एक तो अस्सेफ़ के बाबा थे। उनके कमरे में रेडियो पर काबुल न्यूज़ चल रही थी, जिसकी उड़ती-उड़ती सी आवाज़ हमें अपने कमरे में भी सुनाई दे रही थी।

हसन ने मेरा छक्का पीट दिया और गुलाम उठा लिए। रेडियो पर दाऊद खान विदेशी निवेश के संबंध में कोई घोषणा कर रहे थे।

“उनका कहना है कि वह दिन दूर नहीं जब काबुल में भी टेलीविज़न होगा,” मैंने कहा।

“किसका?”

“हमारे प्रेसिडेंट दाऊद खान का, गधे, और किसका।”

हसन हँस पड़ा। “मैंने सुना है कि ईरान में तो आ भी चुका है,” उसने कहा। “ईरानियों की तो बात ही क्या है...” मैंने एक आह भरकर जवाब दिया। बहुत से हज़ारा लोगों के मन में ईरान की छवि किसी ‘आदर्श आश्रय-स्थल’ की बनी हुई थी, शायद इसलिए क्योंकि ज़्यादातर ईरानी भी शिया मुस्लिम थे। मगर फिर मुझे वह बात याद हो आई जो इन गर्मियों में मेरे टीचर ने ईरानियों के बारे में कही थी कि वे मुस्कराते हुए चिकनी-चुपड़ी बातें करने वाले लोग थे, जो एक हाथ से आपकी पीठ थपथपाते थे और दूसरे हाथ से आपकी जेब काटते थे। मैंने जब यह बात बाबा को बताई थी तो उनका कहना था कि मेरे टीचर भी उन अफ़ग़ानियों में शामिल थे जो इस वजह से ईरानियों से जलते थे क्योंकि ईरान एशिया की उभरती हुई ताक़त था, जबकि दुनिया के ज़्यादातर लोग अफ़ग़ानिस्तान जैसे किसी मुल्क के वजूद से भी अनजान थे। “यह कहते हुए बहुत दुःख होता है, मगर झूठ में जीकर ख़ुश होने की बजाए सच का सामना करके दुखी होना ज़्यादा अच्छा है,” बाबा ने अपनी बात पूरी करते हुए कहा था।

“किसी दिन मैं तुम्हें ख़रीदकर दूँगा,” मैंने कहा।

हसन का चेहरा ख़ुशी से चमक उठा। “टेलीविज़न? सच में?”

“हाँ, बिल्कुल। और वो भी रंगीन। तब तक शायद हम बड़े हो चुके होंगे, मगर मैं दो टीवी ख़रीदूँगा, एक अपने लिए और एक तुम्हारे लिए।”

“मैं उसे उस टेबल पर रखूँगा जहाँ अभी मैं अपनी ड्राइंग्स रखता हूँ,” हसन ने कहा।

मगर उसके ऐसा कहने से मेरा मन दुखी-सा हो गया। यह सोचकर कि हसन क्या था और कहाँ रहता था। और यह सोचकर कि कैसे हसन ने इस बात को स्वीकार कर लिया था कि उसे भी अपने बाबा की तरह सारी उम्र उसी मिट्टी की कोठरी में बिता देनी थी। मैंने आख़िरी पत्ता निकाला, और दो रानियाँ और एक दहला चला।

हसन ने रानियाँ उठा लीं। “मुझे लगता है कि कल आप आगा साहिब का सर फख्र

से ऊँचा करने वाले हैं।"

"तुम्हें वाक़ई ऐसा लगता है?"

"इंशाअल्लाह," उसने कहा।

"इंशाअल्लाह," मैंने भी दोहराया, मगर यह शब्द मेरे मुँह से उतना संजीदा नहीं मालूम हुआ जितना कि हसन के मुँह से। हसन के साथ यही तो बात थी। वह इस कदर निर्दोष और पाकीज़ा था कि उसके साथ रहते हुए आपको हमेशा अपने भीतर की बुराइयाँ साफ़ नज़र आने लगती थीं।

मैंने उसके बादशाह को पीट दिया और अपना आख़िरी पत्ता चला – हुकुम का इक्का। उसे वह उठाना पड़ा। मैं जीत गया। मैं नए गेम के लिए पत्ते पीसने लगा। मगर मेरे मन के किसी कोने में यह संदेह था कि मैं जीता नहीं था बल्कि हसन ने जानबूझकर मुझे जिताया था।

"आमिर आगा?"

"क्या?"

"आपको पता है…मुझे अपने रहने की जगह पसंद है।" यह पहली बार नहीं हुआ था जब हसन ने मेरे मन की बात पढ़ ली हो, वह हमेशा इसमें कामयाब रहता था।

"वह मेरा घर है।"

"जो भी है," मैंने कहा। "दुबारा हारने के लिए तैयार हो जाओ।"

सात

अगली सुबह मेरे लिए काली चाय उबालते वक़्त हसन ने मुझे बताया कि रात उसने एक सपना देखा था। "हम लोग घरघा झील के किनारे थे। आप, मैं, बाबा, आगा साहिब, रहीम खान, और हज़ारों और लोग," उसने बताना शुरू किया। "धूप खिली हुई थी, गुनगुना मौसम था, और झील का पानी आईने की तरफ़ साफ़ था। मगर कोई भी झील में तैरने को तैयार नहीं था, क्योंकि सबका कहना था कि झील में कोई राक्षस आ गया था, जो झील की तलहटी में छिपकर शिकार का इंतज़ार कर रहा था।"

उसने उबली चाय एक कप में उड़ेली और उसमें शक्कर डाली, कई बार चम्मच से हिलाया, और कप मेरे सामने रख दिया। "मतलब, हर कोई झील में उतरने से डर रहा था। मगर तभी अचानक आपने अपने जूते उतारकर फेंक दिए, आमिर आगा, और फिर शर्ट भी उतार दी। 'कोई राक्षस-वाक्षस नहीं है, मैं दिखाता हूँ आप सबको,' आपने कहा। और इससे पहले कि कोई भी आपको रोक पाता, आपने झील में झलांग लगा दी और तैरकर किनारे से दूर जाने लगे। मैं भी आपके पीछे-पीछे झील में कूद गया और हम दोनों तैरने लगे।"

"मगर तुम्हें तो तैरना आता ही नहीं?"

हसन हँस दिया। "अरे आमिर आगा, सपने में तो हम जो चाहें वो कर सकते हैं। बहरहाल, किनारे पर मौजूद सभी लोग चिल्ला-चिलाकर कह रहे थे, 'बाहर आ जाओ! बाहर आ जाओ!' मगर हम उनकी बात को अनसुना करके तैरने में मस्त रहे। तैरते-तैरते हम झील के बीचों-बीच पहुँच गए, और वहाँ से हमने किनारे की ओर मुड़कर लोगों की तरफ़ हाथ हिलाने शुरू कर दिए। वहाँ से वे लोग चींटियों जितने छोटे दिखाई पड़ रहे थे, मगर फिर भी हमें उनकी तालियों की गड़गड़ाहट सुनाई दे रही थी। उन्होंने अपनी आँखों से देख लिया था कि झील में कोई राक्षस नहीं था, सिर्फ़ ठंडा-ठंडा साफ़ पानी था। हमारी बहादुरी को देखकर लोगों ने झील का नाम बदल दिया और अब वे उसे 'काबुल के सुल्तान आमिर और हसन की झील' के नाम से पुकारने लगे। वह झील हमारी जायदाद हो गई और हम लोगों से उसमें तैरने की फीस लेने लगे।"

"तो इसका मतलब क्या हुआ?" मैंने पूछा।

उसने मेरे नान पर मुरब्बा लगाया और उसे प्लेट में रख दिया। फिर बोला, "मुझे नहीं पता। मुझे लगा कि आप बता पाएँगे।"

"यह एक बेमानी सपना था। इसमें कुछ भी तो नहीं हुआ।"

"बाबा कहते हैं कि सपने बेमानी नहीं होते, उनका कोई न कोई मतलब होता है।"

मैंने चाय के कुछ घूँट भरे। “तो फिर तुम उन्हीं से क्यों नहीं पूछते? वो तो इतने स्मार्ट हैं,” मैंने बेहद कठोरता से कहा। मैं इतनी कठोरता से नहीं कहना चाहता था, मगर...मैं रात भर सो नहीं सका था। मेरी गर्दन और पीठ बुरी तरह अकड़ी हुई थी, और आँखें भी दुःख रही थीं। मगर फिर भी मैं हसन के साथ जिस तरह पेश आया, वह गलत था। मैं उससे माफ़ी माँगने को हुआ, मगर नहीं माँगी। हसन समझ गया कि मैं सिर्फ़ नर्वस होने के कारण इस तरह पेश आ रहा था। हसन हमेशा मेरी हालत समझ जाता था।

ऊपर बाबा के कमरे से बाथरूम में पानी चलने की आवाज़ मुझे सुनाई दे रही थी।

सड़कें ताज़ी बर्फ़ से चमक रही थीं और आसमान एकदम नीला था। बर्फ़ ने हर छत को ढँक रखा था और हमारी सड़क के किनारे लगे छोटे-छोटे शहतूत के पेड़ों की डालियों पर भी बर्फ़ जमी हुई थी। रात भर में बर्फ़ ने हर दरार और हर नाले में अपना बसेरा कर लिया था। जैसे ही मैं हसन के साथ लोहे के गेट को खोलकर बाहर आया, बर्फ़ की झक्क सफेदी से मेरी आँखें चौंधिया गईं। हमारे पीछे अली ने गेट बंद कर लिया। मैंने उसे होठों ही होठों में कोई दुआ बोलते सुना। यह अली की आदत थी कि जब भी हसन घर से बाहर जाता था तो वह कोई दुआ
पढ़ता था।

उस दिन से पहले मैंने अपनी गली में लोगों की इतनी भीड़ पहले कभी नहीं देखी थी। बच्चे एक-दूसरे पर बर्फ़ के गोले फेंक रहे थे, शोर मचा रहे थे, पकड़म-पकड़ाई खेल रहे थे, ज़ोर-ज़ोर से खिलखिला रहे थे। पतंगबाज़ अपने-अपने सहायकों के साथ इकट्ठे होकर अपनी-अपनी तैयारियों को जाँच-परख रहे थे। आस-पड़ौस की गलियों से मुझे लोगों के हँसने और बतियाने की आवाज़ें सुनाई दे रही थीं। एक भी छत खाली नहीं थी, सभी पर दर्शकों ने लॉन कुर्सियाँ बिछा-बिछाकर डेरा डाल रखा था। थर्मसों में भरी गर्मागर्म चाय का आनंद लिया जा रहा था। कैसेट प्लेयर्स पर अहमद ज़हीर का संगीत बज रहा था। मुल्क भर में बेहद मशहूर हो चुके अहमद ज़हीर ने अफ़ग़ान संगीत में क्रांति ला दी थी और पारंपरिक तबला और हारमोनियम के साथ इलेक्ट्रिक गिटार, ड्रम और हॉर्न की जुगलबंदी करके शुद्धतावादियों को नाराज़ कर दिया था। चाहे मंच पर गा रहे हों या पार्टियों में, उनके चेहरे पर कभी भी पुराने गायकों की तरह कठोरता, गंभीरता, या उदासी देखने को नहीं मिलती थी; वह हमेशा हँसते-मुस्कराते हुए गाते थे। मैंने अपनी नज़र अपनी छत की ओर घुमाई तो देखा कि बाबा और रहीम खान एक बेंच पर बैठे चाय की चुस्कियाँ ले रहे थे। दोनों ने ऊनी स्वेटर पहन रखे थे। हमें देखकर बाबा ने हाथ हिलाया। मैं समझ नहीं पाया कि मेरे लिए हिलाया था या हसन के लिए।

“हमें शुरू करना चाहिए,” हसन ने कहा। उसने पैरों में काले रबर के बर्फ़ वाले जूते, और मोटे स्वेटर और फीके कॉरडरॉय पैंट के ऊपर चमकीले हरे रंग का चपन (कोट) पहना हुआ था। उसका चेहरा सूरज की रोशनी से चमक रहा था; मैंने देखा कि उसके ऊपरी होंठ पर सर्जरी का जो निशान था, वह अब पूरी तरह ठीक हो चुका था।

अचानक मेरा हौसला पस्त पड़ गया और मैं मुकाबले से पीछे हटने का सोचने लगा। सबकुछ समेटो और वापस घर चलो। यह मैं क्या सोच रहा था? मैं ख़ुद को इस स्थिति में क्यों डाल रहा था, जबकि मुझे पहले से ही इसका नतीजा पता था? बाबा ऊपर छत पर थे और मुझे देख रहे थे। मुझे ख़ुद पर पड़ती उनकी नज़र तपते सूरज की गर्मी की तरह महसूस हुई। यह तो बहुत बड़े स्तर की हार होगी, सिर्फ़ बाबा के लिए ही नहीं बल्कि मेरे लिए भी।

"मेरा आज मन नहीं हो रहा है पतंगबाज़ी का," मैंने कहा।

"कितना ख़ूबसूरत दिन है आज," हसन ने कहा।

मैंने अपना भार एक पैर से दूसरे पैर पर डाला। छत पर से अपनी नज़र हटाने की कोशिश की। "पता नहीं। मेरे ख़याल से हमें घर वापस चलना चाहिए।"

हसन मेरे क़रीब आया और धीरे से कुछ ऐसा कहा जिससे मैं थोड़ा डर गया। "याद रखिएगा, आमिर आगा, कोई राक्षस नहीं है। बस एक ख़ूबसूरत दिन है।" वह मेरे मन की हालत इतनी आसानी से कैसे समझ लेता था, जबकि मुझे कभी भी यह अंदाज़ा नहीं लग पाता था कि उसके दिमाग़ में क्या चल रहा था। हम दोनों में से मैं था जो स्कूल जाता था, मैं था जो पढ़ना-लिखना जानता था, मैं था जो स्मार्ट था। हसन को तो पहले दर्जे की किताब भी पढ़नी नहीं आती थी, मगर फिर भी वह मेरे दिल-ओ-दिमाग़ को बख़ूबी पढ़ लेता था। यह बात मुझे थोड़ा परेशान करती थी, मगर एक तरह से अच्छा भी था कि आपके पास कोई तो था जिसे हमेशा यह पता होता था कि आपको कब क्या चाहिए।

"कोई राक्षस नहीं है," मैंने दोहराया। और मैं पहले से बेहतर महसूस करने लगा। मैं ख़ुद हैरान था।

हसन मुस्कराया। "कोई राक्षस नहीं है।"

"पक्का?"

उसने आँखें बंद करके हाँ में गर्दन हिलाई।

मैंने सड़क पर धमा-चौकड़ी मचाते और बर्फ़ के गोलों से खेलते बच्चों को देखा। "बहुत ही ख़ूबसूरत दिन है, है न?"

"चलो उड़ाते हैं," उसने कहा।

अचानक मुझे ऐसा लगा कि कहीं हसन की सपने वाली बात मनघड़ंत तो नहीं थी? कहीं उसे पहले से इस बात का शक तो नहीं था कि एन वक़्त पर मेरे क़दम डगमगाने लगेंगे, और इसलिए उसने पहले से एक कहानी तैयार करके रखी ताकि मेरा हौसला टूटने से बचा सके? क्या ऐसा मुमकिन था? मैंने मन ही मन तय किया कि ऐसा नहीं हो सकता था, हसन इतना स्मार्ट नहीं था। इतना स्मार्ट तो मैं भी नहीं था। भले सच हो या

मनघड़ंत, मगर उस बचकाने सपने ने मेरी घबराहट को काफी हद तक कम कर दिया था। मुझे लगा कि मुझे अपनी शर्ट उतारकर झील में कूद ही पड़ना चाहिए। क्यों नहीं? "चलो, उड़ाते हैं," मैंने कहा।

हसन का चेहरा खिल उठा। "बढ़िया," उसने कहा। उसने हमारी पतंग उठा ली। पीली किनारियों वाली लाल पतंग, जिस पर आड़ी और खड़ी कमानियों के मिलने वाली जगह के ठीक नीचे सैफो के दस्तख़त थे। हसन ने अपनी उंगली पर जीभ से थूक लगाई और उसे ऊपर उठाया। यह हवा की दिशा पता करने का उसका तरीक़ा था। कभी-कभार जब हम गर्मियों के मौसम में पतंग उड़ाते थे तब वह हवा का रुख पता करने के लिए पैरों से धूल उड़ाता था। बहरहाल, हवा का रुख देखकर उसने पतंग समेत उस दिशा में दौड़ लगा दी जिधर की हवा चल रही थी। जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता गया, मेरे हाथ में थमी चरखी घूमती गई। कुछ पचास क़दम दूर जाकर वह रुका और पतंग को दोनों हाथों से सिर से ऊपर उठाकर पकड़ लिया, बिल्कुल वैसे जैसे ओलंपिक में कोई खिलाड़ी अपना स्वर्ण पदक दिखाता है। मैंने मांझे को दो बार झटका दिया। इशारे को समझकर हसन ने पतंग को हवा में उछाल दिया।

घर में बाबा और स्कूल में मुल्लाओं के एक-दूसरे से उलट मतों के बीच फँसे होने के चलते मैं अभी तक यह तय नहीं कर पाया था कि अल्लाह जैसी कोई शै होती है या नहीं। मगर अचानक ही मुझे दीनियात कक्षा में रटाई गई कुरआन की एक आयत याद आ गई और मैंने उसे दोहराना शुरू कर दिया। फिर मैंने एक गहरी साँस भरी, छोड़ी, और माँझे को खींचा। मिनट भर के भीतर मेरी पतंग आसमान में हवा से बातें कर रही थी। इसके उड़ने से ऐसी आवाज़ हो रही थी जैसे कोई काग़ज़ की चिड़िया अपने पंख फड़फड़ा रही हो। हसन ने ज़ोरदार ताली बजायी, फिर सीटी भी, और फिर दौड़कर मेरे पास आ गया। मैंने चरखी उसे थमाई और ख़ुद डोर थाम ली। हसन जल्दी-जल्दी नीचे फ़ैली हुई डोर को चरखी में लपेटने लगा।

कम से कम दो दर्ज़न पतंगें पहले से ही आसमान में उड़ रही थीं, अपने शिकार की तलाश में भटकतीं काग़ज़ की शार्क मछलियों की तरह। घंटे भर के भीतर यह संख्या दोगुनी हो गई और आसमान लाल, पीली, नीली पतंगों से भर गया। ठंडी हवा का एक झोंका मेरे बालों को छूकर गुज़र गया। आज हवा का बहाव पतंगबाज़ी के लिहाज़ से एकदम सही था, न कम न ज़्यादा। हवा बस इतनी तेज़ चल रही थी कि पतंग आसानी से ऊपर उठ सके और उसे उड़ाना आसान हो जाए। हसन मेरे बग़ल में चरखी थामे खड़ा था। धारदार माँझे से कटने के चलते उसके हाथ अभी से ख़ूनमख़ून हो गए थे।

जल्दी ही पेंच लड़ाए जाने शुरू हो गए, और उसी के साथ पतंगों का कटना भी शुरू हो गया। अपनी ख़ूबसूरत लहराती पूँछों के साथ टूटे हुए तारों की तरह ज़मीन की ओर आती पतंगें नीचे मौजूद काईट रनर्स के लिए आसमान से पुरस्कारों की बारिश के समान थीं। पतंग लूटने वालों के हुजूम का हल्ला-गुल्ला मेरे कानों में पड़ना शुरू हो गया था। तभी किसी ने चिल्ला-चिल्लाकर बताया कि दो गली आगे पतंग लूटने वालों के

बीच हाथापाइ हो गइ थी।

बीच-बीच में, मैं छत की ओर नज़र उठाकर रहीम खान के साथ बैठे बाबा की तरफ़ देख लेता था और सोचने लगता था कि न जाने इस वक़्त वह क्या सोच रहे होंगे। क्या वह मेरी हौसला-अफ़ज़ाई कर रहे होंगे? या फिर उनके मन का कोई हिस्सा मुझे हारते हुए देखकर ख़ुश होता था? पतंगबाज़ी के साथ यह बात तो थी कि पतंग के साथ-साथ हमारा मन भी यहाँ से वहाँ डोलता रहता था।

पतंगें धड़ाधड़ कट रही थीं, मगर मेरी अभी भी बची हुई थी। मेरी पतंग अभी भी शान से आसमान में लहरा रही थी। मेरी आँखें बार-बार बाबा की ओर घूम जाती थीं। क्या वह यह देखकर हैरान हो रहे थे कि मैं अब तक मुकाबले में टिका कैसे था? 'तुम अपनी आँखें आसमान में जमाकर नहीं रखते हो, इसलिए ज़्यादा देर टिक नहीं पाओगे,' मेरे भीतर से आवाज़ आई। मैंने तुरंत अपनी नज़रें वापस आसमान की ओर घुमाईं। एक लाल पतंग मेरे काफी क़रीब आ गई थी। ख़ुशकिस्मती से मैंने समय रहते अपनी नज़रें आसमान की ओर घुमा ली थीं, वर्ना देर हो जाती। मैंने थोड़ी देर उससे पेंच लड़ाए और फिर जब उसने अधीर होकर मेरी पतंग को नीचे से काटने की कोशिश की, तो मैंने उसका काम तमाम कर दिया।

जिस सड़क, जिस गली में भी नज़र डालो, पतंग लूटने वाले लड़के लूटी हुई पतंगों को ट्रॉफी की तरह सर के ऊपर उठाए लौटते दिखाई पड़ रहे थे। वे उन पतंगों को अपने घरवालों को, अपने दोस्तों को इस तरह दिखा रहे थे मानो जंग में कोई मैडल जीतकर लौटे हों। मगर उन सभी को पता था कि अभी सबसे बड़ा मैडल जीतना बाक़ी था। उन सबका सबसे बड़ा पुरस्कार तो अभी भी आसमान में उड़ रहा था। इसी बीच मैंने एक सफ़ेद पूँछ वाली चमकदार पीली पतंग को काट दिया था। इसके चलते मेरी तर्जनी उंगली में एक और घाव हो गया था, जिससे निकलने वाला ख़ून रिसता हुआ मेरी हथेली में आ गया था। मैंने पतंग की डोर हसन को पकड़ाई, उंगली को मुँह में डालकर ख़ून का बहना बंद किया और फिर उसे जींस पर रगड़ा।

एक और घंटा बीतते-बीतते आसमान में पतंगों की संख्या पचास से घटकर दर्जन भर रह गई। इन दर्जन भर में एक पतंग मेरी भी थी। मुझे पता था कि मुकाबले का यह दौर लम्बा चलने वाला था, क्योंकि जो लड़के इतनी देर तक टिके रह पाए थे वे मंझे हुए पतंगबाज़ थे और उन्हें 'लिफ्ट-एंड-डाइव' जैसी आम तरकीबों (हसन की पसंदीदा तरकीब) से फँसाना आसान नहीं था।

दोपहर के तीन बजते-बजते आसमान में बादलों के झुण्ड मंडराने लगे और उन्होंने सूरज को छिपा लिया। परछाइयाँ लम्बी होने लगीं। छतों पर बैठे दर्शकों ने कानों में स्कार्फ बाँध लिए और मोटे कोट पहन लिए। अब बमुश्किल आधा दर्जन पतंगें बची थीं मुकाबले में, जिनमें से एक मेरी भी थी। मेरे पैर दर्द करने लगे थे और गर्दन भी अकड़ गई थी। मगर हर कटती हुई पतंग के साथ मेरे दिल में पर्त-दर-पर्त उम्मीद बढ़ती जा रही थी।

मेरी नज़रें बारम्बार उस नीली पतंग की ओर उठ रही थीं जिसने पिछले एक घंटे से बाक़ी पतंगों पर कहर बरपा किया हुआ था।

"अब तक कितनी काट चुका है यह?" मैंने हसन से पूछा।

"ग्यारह तो मैंने गिनी हैं," हसन ने जवाब दिया।

"किसकी हो सकती है यह?"

हसन ने अपनी जीभ चटकाई और अपनी ठुड्डी हिलाई। जब उसे कहना होता कि उसे नहीं पता, तब वह ऐसा ही करता था। तभी नीली पतंग ने एक बड़ी बैंगनी पतंग को भी काट दिया और आसमान में दो बार बड़ी-बड़ी लूप बनाईं। अगले दस मिनट में उसने दो और पतंगों को काट दिया। काईट रनर्स के झुण्ड के झुण्ड उन पतंगों को लूटने के लिए उनके पीछे दौड़ पड़े थे।

और तीस मिनट गुज़रे। अब सिर्फ़ चार पतंगें रह गईं थीं आसमान में। मैं अब भी मुकाबले में बना हुआ था। ऐसा लग रहा था जैसे आज मुझसे कोई गलती हो ही नहीं सकती थी, जैसे कि आज हवा का हर झोंका मेरी मर्ज़ी के मुताबिक़ ही बह रहा था। इससे पहले मैंने कभी भी पतंगबाज़ी के दौरान चीज़ों को इतना ज़्यादा अपने काबू में नहीं पाया था; मैंने कभी ख़ुद को इतना ख़ुशकिस्मत महसूस नहीं किया था। मुझे यह सब सपने जैसा लग रहा था। अब मैंने छत की तरफ़ देखना बिल्कुल बंद कर दिया था; अब एक पल के लिए भी आसमान से नज़रें हटाने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ रही थी। इस वक़्त अपना पूरा ध्यान आसमान में जमाए रखना ज़रूरी था, होशियारी से खेलना ज़रूरी था। और पंद्रह मिनट बीतते-बीतते वह सपना अचानक ही हक़ीक़त में तब्दील हो गया जो सुबह मुझे बेमानी और बचकाना मालूम पड़ रहा था। अब आसमान में सिर दो पतंगें बची थीं – एक मेरी और दूसरी वह नीली वाली।

वातावरण में तनाव उतना ही तीखा हो चला था जितनी तीखी माँझे की वह डोर थी जिसे मैं अपने ख़ून से सने हाथों में थामे हुए था। दर्शकगण पैरों से ज़मीन पर ताल दे रहे थे, तालियाँ बजा रहे थे, सीटियाँ बजा रहे थे, और

"बोबोरेश! बोबोरेश!" काटो उसे! काटो उसे! चिल्ला रहे थे। मैं सोचने लगा कि क्या उन आवाज़ों में बाबा की आवाज़ भी शामिल होगी? चारों ओर संगीत बजने लगा था। घरों की छतों और खुले हुए दरवाज़ों के भीतर से भाप में पक रहे गोश्त और तले हुए पकौड़ों की महक बाहर आने लगी थी।

मगर मुझे इस वक़्त सिर्फ़ और सिर्फ़ एक आवाज़ सुनाई दे रही थी – अपनी कनपटी की नसों में दौड़ते ख़ून की आवाज़। इस वक़्त मुझे सिर्फ़ एक ही चीज़ दिखाई दे रही थी – वह नीली पतंग। इस वक़्त मुझे सिर्फ़ और सिर्फ़ एक ही चीज़ की महक आ रही थी – जीत की। अपराध-बोध से छुटकारे की। अपने सभी दोषों के निवारण की। अगर बाबा गलत थे और मुल्लाओं के कहे मुताबिक़ अगर सच में कोई अल्लाह था, तो आज वह मुझे ही जिताएगा। मुझे नहीं मालूम था कि वह नीली पतंग वाला किस चीज़

के लिए खेल रहा था, शायद सिर्फ़ शेखी बघारने के लिए। मगर मेरे लिए तो यह इकलौता मौका था ख़ुद को लायक साबित करने का। अगर वाक़ई अल्लाह था, तो वह ज़रूर हवाओं को मेरे हक़ में बहने का हुक्म देगा ताकि मैं अपने माँझे को एक झटका देकर अपने तमाम दर्द, तमाम रुसवाइयों को हमेशा-हमेशा के लिए काट सकूँ। मैंने अब तक बहुत कुछ सहा था, और आज मैं उस सब से आज़ाद होने की दिशा में बहुत आगे आ गया था। पता नहीं क्यों, पर मुझे पक्का यकीन हो गया कि मैं ही जीतने वाला था। मेरा जीतना अब महज़ वक़्त की बात थी।

और वह वक़्त मेरी उम्मीद से जल्दी ही आ गया। हवा के एक झोंके ने मेरी पतंग को ऊँचा उठा दिया और मैंने इस मौके का भरपूर फ़ायदा उठाया। मैंने डोर को पहले ढील दी और फिर खींचा। इस तरह मैं एक लूप बनाकर नीली पतंग के ऊपर आ गया। फिर मैंने अपनी पतंग को वहीं बनाए रखा। नीली पतंग को समझ आ चुका था कि वह ख़तरे में थी। वह इस शिकंजे से निकलने की जीतोड़ कोशिश कर रही थी, पर मैंने उसे इसका मौका नहीं दिया, मैंने अपनी पतंग को वहीं बनाए रखा। दर्शकों को भी समझ आ गया था कि फ़ैसले की घड़ी आ चुकी थी। काट दो! काट दो! का शोर बढ़ने लगा। यह शोर बिल्कुल वैसा ही था जैसा रोमन साम्राज्य के दौर में दर्शक ग्लैडिएटर्स की लड़ाई के दौरान चिल्लाते थे – मार डालो! मार डालो!

"आप जीत के दरवाज़े पर हैं, आमिर आगा! एकदम दरवाज़े पर!" हसन उत्तेजना के मारे हाँफ रहा था।

और आख़िर-कार वह पल आ ही गया। मैंने अपनी आँखें बंद कर लीं और डोर को ढीला छोड़ दिया। हवा के साथ खिंचती डोर ने एक बार फिर मेरी उँगलियों को घायल कर दिया। और फिर...मुझे नतीजा जानने के लिए न तो भीड़ का शोर सुनने की ज़रूरत पड़ी और न ही आँखें खोलकर कुछ देखने की। हसन ख़ुशी से चीख रहा था और उसने अपनी एक बाँह मेरी गर्दन में डाल दी थी।

"बहुत ख़ूब, आमिर आगा! बहुत ख़ूब!"

मैंने अपनी आँखें खोलीं तो मुझे वह नीली पतंग यूँ जमकर चक्कर खाती दिखी जैसे किसी चलती हुई गाड़ी से कोई टायर निकल जाए तो होता है। मैंने पलक झपकी और कुछ कहना चाहा। मगर मेरे मुँह से कोई बोल नहीं फूटा। अचानक मुझे ऐसा लगा जैसे मैं ऊपर हवा में तैर रहा हूँ, आसमान में, और वहाँ से नीचे ख़ुद को देख रहा हूँ। काले चमड़े का कोट, लाल स्कार्फ़, फेडेड जींस। एक दुबला-पतला लड़का, थोड़ा पीला-सा। और बारह बरस की उम्र के हिसाब से थोड़ा ठिगना। उसके कंधे सँकरे थे और उसकी पीली भूरी आँखों के नीचे काले घेरे थे। हवा ने उसके हल्के भूरे बालों को हौले से सहलाया। उसने सिर उठाकर मेरी ओर देखा और हम दोनों एक-दूसरे को देखकर मुस्करा उठे।

इसके बाद मैं मानो सपने से बाहर आ गया, मुझे अपने चारों ओर की रंगत दिखाई

पड़ने लगी और तमाम आवाज़ें सुनाई देने लगीं। सबकुछ दुबारा से जीवंत हो गया, अच्छा हो गया। मैं ख़ुशी से चिल्ला उठा। मैंने भी अपनी बाँह हसन की गर्दन के गिर्द डाल दी और हम ख़ुशी से उछलने लगे। हम दोनों के न ठहाके रुक रहे थे और न ही आँसू। "आप जीत गए, आमिर आगा! आप जीत गए!"

"हम जीत गए! हम जीत गए!" बस इतना ही कह सका मैं। मुझे यकीन ही नहीं हो रहा था कि यह सब हक़ीक़त में हो रहा था। लग रहा था कि बस अभी आँख खुलेगी और मैं इस सुहाने सपने से बाहर आ जाऊँगा, बिस्तर से निकलूँगा, और रसोई में जाकर नाश्ता करूँगा, जहाँ मेरे साथ बातें करने के लिए हसन के अलावा और कोई भी नहीं होगा। इसके बाद कपड़े पहनकर तैयार होऊँगा। बाबा का इंतज़ार करूँगा। स्कूल चला जाऊँगा। लौटूँगा। रात का खाना खाऊँगा। सो जाऊँगा। अपनी पहले वाली ज़िन्दगी जीने लगूँगा। तभी मुझे छत पर बाबा खड़े दिखे। वह छत के मुहाने पर खड़े थे, जीत की उत्तेजना में उनकी दोनों मुट्ठियाँ भिंची हुई थीं, ख़ुशी के मारे वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहे थे, तालियाँ बजा रहे थे। बारह सालों में आज पहली बार मैं उनके चेहरे पर अपने लिए फख्र देख रहा था! यह मेरी बारह साल की ज़िन्दगी का सबसे कीमती पल था!

तभी उन्होंने हाथों से इशारा करके हमसे फटाफट कुछ करने के लिए कहा। मगर क्या? एक ही पल लगा मुझे समझने में। "हसन, हमें—"

"मैं जानता हूँ," उसने मेरे गले में से हाथ निकालते हुए कहा। "इंशाअल्लाह, हम इस जश्न को बाद में पूरा करेंगे। अभी मैं जा रहा हूँ आपके लिए उस नीली पतंग को लेने।" यह कहकर उसने चरखी फेंकी और एक ओर दौड़ लगा दी। उसके हरे चपन का किनारा उसके पीछे बर्फ़ में घिसटता चला जा रहा था।

"हसन! लेकर ही आना," मैंने चिल्लाकर कहा।

इतनी देर में वह एक गली के मोड़ पर पहुँच चुका था, उसके रबर के जूते अपने पीछे बर्फ़ उड़ा रहे थे। मेरी आवाज़ सुनकर वह रुका, मुड़ा, उसने अपनी दोनों हथेलियों को गोलाकार करके अपने मुँह के चारों ओर लगाया और चिल्लाकर बोला, "आपकी ख़ातिर, एक बार नहीं हज़ारों बार!" फिर उसने अपनी हसन मार्का मुस्कान बिखेरी और मोड़ मुड़कर मेरी नज़रों से ओझल हो गया। अगली बार जब मैंने उसे इस तरह बेबाक़ी से मुस्कराते हुए देखा तब तक छब्बीस बरस बीत चुके थे, और यह देखना भी एक धुंधली पड़ चुकी पुरानी पोलेरॉइड तस्वीर के ज़रिए हुआ था।

इधर लोगों की भीड़ की भीड़ मुझे मुबारकबाद देने मेरे इर्द-गिर्द इकठ्ठा होने लगी थी। मैं अपनी पतंग को नीचे उतारने लगा। मैंने सभी लोगों से हाथ मिलाया और उनकी मुबारकबाद के लिए उनका शुक्रिया अदा किया। छोटी उम्र के बच्चे मेरी ओर विस्मय भरी नज़रों से देख रहे थे; मैं एक हीरो था। न जाने कितने हाथों ने मेरी पीठ थपथपाई, मेरे बालों को बिखराया। मैं डोरी खींचकर पतंग को नीचे लाता जा रहा था और साथ ही

हर मुस्कान का उत्तर भी दे रहा था, मगर मेरा ध्यान नीली पतंग पर था।

आख़िर-कार, मेरी पतंग मेरे हाथ में थी। मैंने पैरों के पास ढेर के रूप में जमा हो गई डोर को चरखी में लपेटा, कुछ और लोगों से हाथ मिलाया, और तेज़-तेज़ क़दमों से घर की ओर बढ़ चला।

जैसे ही मैं घर के लोहे के फाटक पर पहुँचा, मैंने देखा कि फाटक के दूसरी ओर अली हमारे ही इंतज़ार में खड़ा था। मुझे देखते ही उसने फाटक खोला और बोला, “मुबारक हो!”

मैंने पतंग और चरखी उसे सौंपी और उससे हाथ मिलाते हुए कहा, “तशाकोर, अली जान!”

“मैं पूरा समय आपके लिए दुआ कर रहा था।”

“अभी करते रहिए, अभी हमारा काम ख़त्म नहीं हुआ है।”

इतना कहकर मैं मुड़ा और तेज़ी से वापस उसी सड़क की ओर चल दिया जहाँ से हसन मेरी नज़रों से ओझल हुआ था। मैंने अली से बाबा के बारे में नहीं पूछा। मैं अभी उनसे नहीं मिलना चाहता था। मैंने सोच रखा था कि मैं उनके सामने बिल्कुल एक हीरो की तरह एंट्री मारूँगा-अपने ख़ून से सने हाथों में अपनी जीत की ट्रॉफी (वह नीली पतंग) लिए हुए। बाबा सर घुमाकर मेरी ओर देखेंगे और नज़रों से नज़रें मिलेंगी। रुस्तम और सोहराब आँखों ही आँखों में एक-दूसरे को आँक रहे होंगे। एक पल को नाटकीय स्तब्धता छा जाएगी। फिर बूढ़ा योद्धा चलकर युवा योद्धा के पास आएगा, उसे गले से लगाएगा, और उसकी योग्यता को स्वीकार करेगा। अंततः युवा योद्धा को बहुप्रतीक्षित मान्यता प्राप्त होगी। अपराध-बोध से मुक्ति मिलेगी। उसके सभी दोषों का शमन होगा। और फिर? फिर…दोनों ख़ुशी-ख़ुशी रहने लगेंगे। और क्या? वज़ीर अकबर खान की सड़कों को नंबर दिए गए थे और वे एक-दूसरे से समकोण पर बनी हुई थीं, बिल्कुल किसी ग्रिड की तरह। जहाँ वज़ीर अकबर खान की सीमा ख़त्म होती थी, वहाँ से एक नया इलाका शुरू होता था जो अभी विकसित हो ही रहा था, इसलिए वहाँ आठ फुट ऊँची दीवारों से घिरे हुए अहातों के बीच हर गली में ढेर सारे खाली प्लाट और आधे-अधूरे बने हुए मकान ही दिखाई पड़ते थे। मैंने भाग-भागकर सारी गलियाँ छान मारीं, मगर हसन का कहीं अता-पता नहीं था। हर जगह लोग दिन भर पार्टी मनाने के बाद अब कुर्सियाँ समेटने और खाना और बर्तन पैक करने में व्यस्त थे। कुछ लोग अभी भी घरों की छतों पर थे और वहीं से चिल्लाकर मुझे मुबारकबाद दे रहे थे।

हमारी गली से दक्षिण की ओर चौथी गली में मुझे ओमर दिखाई दिया। उसके बाबा पेशे से इंजीनियर थे और मेरे बाबा के दोस्तों में शुमार होते थे। वह अपने भाई के साथ घर के सामने वाले लॉन में फुटबॉल खेल रहा था। ओमर बहुत अच्छा लड़का था। चौथी कक्षा में हम साथ ही पड़ते थे, और एक बार उसने मुझे एक स्याही वाला पेन दिया था, जिसमें कार्टरिज लगानी पड़ती थी।

"मैंने सुना तुम जीत गए, आमिर?" उसने मुझे देखकर कहा। "मुबारक हो!"

"शुक्रिया। क्या तुमने हसन को देखा?"

"तुम्हारा हज़ारा?"

मैंने हाँ में सिर हिलाया।

ओमर ने बॉल अपने भाई की ओर उछाली और बोला, "मैंने सुना है कि वह पतंग लूटने में बहुत माहिर है?" उसके भाई ने बॉल वापस उसकी ओर उछाल दी। ओमर ने बॉल को पकड़ा, फिर ज़मीन पर मारा, जिससे वह उछलकर फिर उसके हाथों में आ गई। "मगर मुझे इस बात पर बड़ी हैरानी होती है कि वह ऐसा कैसे कर लेता है। मेरा मतलब है कि उन ज़रा-ज़रा सी आँखों से कैसे कुछ भी देख पाता है?"

उसके भाई की हँसी छूट गई, जिसे काबू करके उसने ओमर से बॉल माँगी। मगर ओमर ने उसे अनसुना कर दिया।

"क्या तुमने उसे देखा है?"

ओमर ने कंधे के ऊपर से अंगूठे से दक्षिण-पश्चिम दिशा की ओर इशारा करते हुए कहा, "मैंने कुछ देर पहले उसे बाज़ार की ओर भागते देखा था।"

"शुक्रिया," कहकर मैं तेज़ी से उसी दिशा में भागा।

जब तक मैं बाज़ार पहुँचा, सूरज पहाड़ियों के पीछे लगभग छिप चुका था और गहराती शाम ने आसमान को गुलाबी और बैंगनी रंग से रंग दिया था। तभी कुछ ही ब्लॉक्स दूर हाज़ी यागौब मस्जिद से मुल्ला ने अज़ान दी, जो कि नमाज़ियों के लिए बुलावा था कि वे आकर शाम की नमाज़ अदा करें। हसन पाँचों वक़्त का नमाज़ी था, कभी किसी भी हाल में किसी भी वक़्त की नमाज़ नहीं चूकता था। अगर हम खेल भी रहे होते थे तब भी अज़ान सुनते ही वह मुझसे थोड़ी देर रुकने को कहता, कुँए से पानी निकालकर हाथ-मुँह धोता और अपनी कोठरी में चला जाता। फिर कुछ मिनटों बाद मुस्कराता हुआ वापस आता और दुबारा मेरे साथ खेलने लगता। मगर आज उसकी नमाज़ छूटने वाली थी, सिर्फ़ मेरी वजह से।

बाज़ार तेज़ी से खाली होता जा रहा था। दुकानदार अपनी-अपनी दुकानदारी समेटकर घरों को जा रहे थे। मैं कभी आपस में एकदम सटकर बनी हुई दड़बेनुमा दुकानों (जिनमें एक स्टैंड पर यद आप ताज़ा कटा हुआ तीतर ख़रीद सकते थे तो ठीक उसके बग़ल वाले स्टैंड पर आपको कैलकुलेटर भी मिल जाता) की कतारों के बीच मौजूद कीचड़ में से, तो कभी ख़रीदारों की कम होती हुई भीड़, फटे-पुराने कपड़े पहने लंगड़े-लूले भिखारियों, कंधों पर कालीन टांगे फेरीवालों, और अपनी-अपनी दुकानें समेटते कपड़ा व्यापारियों और कसाईयों के बीच से रास्ता बनाता तेज़ी से आगे बढ़ा जा रहा था। मगर मुझे हसन कहीं दिखाई नहीं पड़ रहा था।

चलते-चलते मैं सूखे मेवों की एक दुकान पर रुका, जहाँ कि नीले रंग की पगड़ी पहने एक बूढ़ा व्यापारी अपने खच्चर पर चीढ़ के बीजों और किशमिश से भरे टोकरे लादने में मसरूफ था। मैंने उसे हसन का हुलिया बयान किया और पूछा कि क्या उसने उसे वहाँ से गुज़रते देखा था।

उसने अपना काम रोककर बड़ी देर तक मुझे देखा और फिर जवाब दिया, “मैंने शायद इसे देखा था।”

“किस तरफ़ गया था वह?”

बूढ़े ने मुझे फिर एक बार ऊपर से नीचे तक देखा और बोला, “तुम्हारे जैसा लड़का यहाँ इस समय एक हज़ारा की तलाश में क्या कर रहा है?” उसकी नज़र मेरे चमड़े के कोट और मेरी जींस (जिसे हम काउबॉय पैंट कहते थे) पर टिकी रही। उस वक़्त के अफ़ग़ानिस्तान में अमरीकी चीज़ों को बपरना, खासकर अगर वे सेकंड हैण्ड न हों, अमीरी की निशानी समझा जाता था।

“मेरा उसको तलाश करना ज़रूरी है, आगा।”

“तुम उसके कौन हो?” बूढ़े ने पूछा। मुझे उसके सवाल में कोई तुक नज़र नहीं आई, मगर मैंने ख़ुद को यह कहकर समझाने की कोशिश की कि बेसब्री दिखाने से वह बूढ़ा जल्दी नहीं बता देगा।

“वह हमारे नौकर का बेटा है,” मैंने जवाब दिया।

बूढ़े ने हैरानी जताते हुए कहा, “वाक़ई? तब तो वह बड़ा ख़ुशकिस्मत है कि उसे इतनी फ़िक्र करने वाला मालिक मिला है। उसके बाप को तो तुम्हारे सामने घुटनों के बल झुककर अपनी पलकों से तुम्हारे पैरों की धूल बुहारनी चाहिए।”

“आप मुझे बताएँगे या नहीं?”

उसने एक हाथ खच्चर की पीठ पर रखा और दूसरे हाथ से दक्षिण की तरफ़ इशारा करते हुए कहा, “मुझे लगता है कि जिस लड़के का हुलिया तुम बयान कर रहे हो उसे मैंने उस तरफ़ भागते हुए देखा था। उसके हाथ में एक पतंग थी। नीले रंग की।”

“सच में?” मैंने ख़ुश होते हुए कहा। ‘आपके लिए, एक बार नहीं हज़ारों बार!’ उसने कहा था। वह अपने वादे का पक्का था। मेरा प्यारा हसन। भरोसेमंद हसन। उसने अपना वादा निभाया था और मेरे लिए वह आख़िरी पतंग हासिल कर ही ली थी।

“बेशक। अभी तक तो उन लोगों ने उसे पकड़ भी लिया होगा,” बूढ़े व्यापारी ने बड़बड़ाते हुए कहा और खच्चर की पीठ पर एक और बक्सा लाद दिया।

“किन लोगों ने?”

“दूसरे लड़के, जो उसका पीछा कर रहे थे। उन्होंने भी तुम्हारे जैसे ही कपड़े पहन

रखे थे।" इतना कहकर उसने आसमान की ओर देखा और एक आह भरी। "अब चलो भागो यहाँ से, तुम्हारे चक्कर में मुझे नमाज़ के लिए देर हो जाएगी।"

मैं उसकी बात पूरी होने से पहले ही वहाँ से भाग चुका था.

अगले कुछ मिनटों तक मैं बाज़ार में यहाँ-वहाँ हसन को तलाशता रहा, मगर वह कहीं नहीं दिखा। शायद उस बूढ़े व्यापारी की आँखों को धोखा हुआ था। मगर उसने नीली पतंग कहा था, यह तो धोखा नहीं हो सकता था। उस पतंग को हाथों में थामने का ख़याल आते ही मैंने संदेह को परे झटका और हर गली, हर दुकान की ख़ाक छान डाली। मगर हसन का कोई सुराग नहीं मिला।

मुझे चिंता होने लगी कि पता नहीं मैं अँधेरा होने से पहले हसन को ढूँढ भी पाऊँगा या नहीं। मगर तभी मुझे आगे थोड़ी दूर से आतीं कुछ आवाज़ें सुनाई दीं। मैं एक सुनसान, कीचड़ भरी सड़क पर पहुँच गया था। यह सड़क मुख्य सड़क के आख़िर तक लंबवत् चलती थी और बाज़ार को दो भागों में बाँटती थी। मैं ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर मुड़ा और आवाज़ों का पीछा करने लगा। मेरे जूते कीचड़ में धँस रहे थे और ठण्ड के कारण मुँह से सफ़ेद भाप निकलने लगी थी। यह संकरा रास्ता एक तरफ़ बर्फ़ से जमे नाले के समानांतर चलता था, जिसमें बसंत के मौसम में शायद बर्फ़ के पिघलने के कारण पानी की एक पतली-सी धारा बहती थी। रास्ते के दूसरी ओर बर्फ़ से ढँके सरू (साईप्रस) के पेड़ों की कतारें थीं, जिनके बीच-बीच में लाइन से सपाट छतों वाले मिट्टी के झोपड़ीनुमा मकान बने थे। इन मकानों के बीच बेहद सँकरी-सँकरी गलियाँ थीं।

मुझे फिर से वे आवाज़ें सुनाई दीं, इस बार ज़्यादा तेज़। उन्हीं सँकरी गलियों में से एक गली से आती हुईं। मैं धीरे-धीरे सरकते हुए गली के मुहाने के पास पहुँचा। मेरी साँस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे अटक गई थी। हिम्मत करके मैंने मोड़ पर से भीतर गली में झाँका।

गली के आख़िरी बंद सिरे पर हसन खड़ा था, बगावती तेवरों में। मुट्ठियाँ भिंची हुई, पैर कन्धों की चौड़ाई भर फैले हुए। उसके पीछे कबाड़ और मलबे के ढेर से गली बंद थी। उसी ढेर पर रखी थी वह नीली पतंग। बाबा के दिल में अपनी जगह बनाने की मेरी चाबी।

सामने से तीन लड़के हसन का रोस्ता रोककर खड़े थे। ये वही तीन लड़के थे जो तख़्तापलट वाली रात के अगले दिन हमें पहाड़ी पर मिले थे और जिनसे हसन ने अपनी गुलेल के दम पर हमें बचाया था। एक ओर वाली खड़ा था, दूसरी ओर कमाल, और बीच में था अस्सेफ़। डर के मारे मेरी रीढ़ में ठंडी सिहरन दौड़ गई और मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे सारे शरीर को लकवा मार गया हो। अस्सेफ़ पूरी तरह बेफिक्र और हौसलामंद मालूम हो रहा था। वह अपने हाथ की उंगली पर अपने स्टील और पीतल के नक्कल्स को घुमा रहा था। मगर बाक़ी के दो लड़के थोड़े घबराए हुए थे और बारी-बारी

से हसन और अस्सेफ़ की ओर देख रहे थे। उनके हावभाव ऐसे थे जैसे उन्होंने किसी ऐसे जंगली जानवर को घेर लिया हो जिसे वश में करना सिर्फ़ अस्सेफ़ के बस की बात हो।

"तेरी गुलेल कहाँ है हज़ारा?" अस्सेफ़ ने अपने नक्कल्स को घुमाते हुए पूछा। "क्या कहा था तूने उस दिन? 'वर्ना इन लोगों को आपको काना अस्सेफ़ बुलाना पड़ेगा।' हाँ, यही कहा था तूने। काना अस्सेफ़। उस दिन तूने बहुत होशियारी दिखाई थी। वाक़ई। मगर क्या है न कि जब हाथ में भरा हुआ हथियार हो तो कोई भी होशियारी दिखा सकता है।"

मैंने पाया कि मेरी साँस अभी भी अन्दर की अन्दर और बाहर की बाहर थी। मैंने धीरे से साँस छोड़ी और फिर भरी। मैं ख़ुद को जड़वत महसूस कर रहा था। मैं काठ के पुतले की तरह खड़ा-खड़ा उन लोगों को उस लड़के पर शिकंजा कसते देखता रहा जिसके साथ खेलते-खाते मैं बड़ा हुआ था, जिसका कटे होंठ वाला चेहरा मेरी याद्दाश्त में दर्ज पहला चेहरा था।

"मगर आज तेरा ख़ुशकिस्मत दिन है, हज़ारा,"अस्सेफ़ ने कहा। मेरी ओर उसकी पीठ थी, मगर फिर भी मैं शर्त लगाकर कह सकता था कि वह क्रूरता से मुस्करा रहा था। "आज मैं माफ़ करने के मूड में हूँ। क्या कहते हो, लड़को?"

"यह तो तुम्हारी रहमदिली है," कमाल ने कहा, "खासकर इसके उस दिन हमारे साथ किए गए ख़राब बर्ताव को देखते हुए।" वह भी अस्सेफ़ की तरह निडरता से बोलने और पेश आने की कोशिश कर रहा था, मगर उसकी आवाज़ में डर के कारण कँपकँपी साफ़ सुनाई पड़ रही थी। तब मैं समझा: उसे डर हसन से नहीं लग रहा था, हरगिज़ नहीं। उसे डर इस बात से लग रहा था कि अस्सेफ़ पता नहीं क्या कर गुज़रने के मूड में था।

"जा बख्श दिया। किया माफ़। हो गई बात ख़तम," अस्सेफ़ ने बख्शीदा के अंदाज़ में हाथ हिलाते हुए कहा। फिर जैसे राज़ की बात करते हैं वैसे थोड़ी धीमी आवाज़ में बोला, "मगर इस दुनिया में कोई भी चीज़ मुफ्त में नहीं मिलती, और मेरी माफ़ी की भी एक छोटी सी कीमत चुकानी पड़ेगी तुझे।"

"यह तो जायज़ बात है," कमाल ने उसके सुर में सुर मिलाते हुए कहा।

"हाँ, कुछ भी मुफ्त नहीं मिलता," वली ने भी साथ देते हुए कहा।

"तू ख़ुशकिस्मत है हज़ारा, क्योंकि आज तुझे सिर्फ़ उस नीली पतंग की कीमत पर माफ़ी मिल जाएगी। सिर्फ़ एक पतंग की कीमत पर। यह जायज़ सौदा है न, लड़को?" अस्सेफ़ ने हसन की तरफ़ एक क़दम आगे बढ़ते हुए कहा।

"जायज़ से भी ज़्यादा जायज़," कमाल ने कहा।

मैं जहाँ खड़ा था वहाँ से भी हसन की आँखों में उतरता डर साफ़-साफ़ दिखाई पड़

रहा था, मगर फिर भी उसने इंकार में गर्दन हिलाई। “पतंगबाज़ी का मुकाबला आमिर आगा ने जीता है और मैंने यह पतंग उनके लिए पकड़ी है। और बिल्कुल जायज़ तरीक़े से पकड़ी है। यह पतंग उनकी है।”

“वफ़ादार हज़ारा! कुत्ते की तरह वफ़ादार!” अस्सेफ़ ने कहा। कमल हँसा, मगर उसकी हँसी में घबराहट मिली हुई थी।

“मगर ख़ुद को उसके लिए कुर्बान करने से पहले एक बार यह सोचकर देख कि क्या वह भी तेरे लिए ऐसा ही करेगा? क्या तूने कभी सोचा है कि जब उसके घर मेहमान आते हैं और वह उनके बच्चों के साथ खेलता है, तब वह तुझे खेल में शामिल क्यों नहीं करता? क्यों वह तेरे साथ तभी खेलता है जब आसपास और कोई नहीं होता? मैं बताता हूँ, हज़ारा, कि ऐसा क्यों। क्योंकि उसके लिए तू एक पालतू जानवर से ज़्यादा अहमियत नहीं रखता। उसने तुझे इसलिए पाल रखा है ताकि जब वह बोर हो रहा हो तो तुझसे अपना मन बहला सके, और जब उसे गुस्सा आए तो तुझे लतियाकर वह अपना गुस्सा शांत कर सके। इससे ज़्यादा तेरी और कोई हैसियत नहीं है उसकी नज़रों में और उसकी ज़िन्दगी में, समझा?”

“आमिर आगा और मैं दोस्त हैं,” हसन ने कहा। उसका चेहरा गुस्से से लाल हो उठा था।

“दोस्त?” अस्सेफ़ ने हँसते हुए कहा। “परले दर्जे का बेवकूफ़ है रे तू! मगर एक न एक दिन तेरा यह भरम ज़रूर टूटेगा और उस दिन तुझे पता चलेगा कि वह तेरा कितना अच्छा दोस्त है। बस, बहुत हो गया। बहुत सुन ली तेरी बकवास। अब वह पतंग हमारे हवाले कर।”

हसन ने झुककर एक पत्थर उठा लिया।

अस्सेफ़ चिंहुक कर एक क़दम पीछे हटने को हुआ, मगर फिर रुक गया और बोला, “आख़िरी मौका, हज़ारा।”

जवाब में हसन ने उस हाथ को हवा में तान लिया जिसमें पत्थर थामा हुआ था।

“जैसी तेरी मर्ज़ी,” यह कहते हुए अस्सेफ़ ने अपने विंटर कोट के बटन खोले, कोट उतारा और फिर आराम से उसे तह करने लगा। तह करके उसने उसे दीवार से सटाकर रख दिया।

मैंने अपना मुँह खोला और कुछ बोलने को हुआ, मगर मुँह से कोई आवाज़ नहीं निकली। अगर मैं बोल पड़ा होता तो मेरी बाक़ी की ज़िन्दगी शायद कुछ और होती। मगर मैं नहीं बोल सका। मैं बस तमाशा देखता रहा। पत्थर की मूरत बना हुआ।

अस्सेफ़ ने हाथ से इशारा किया, जिसे समझकर बाक़ी दोनों लड़के उससे अलग हो गए और उन्होंने एक हाफ सर्किल बनाकर यह सुनिश्चित किया कि हसन को भागने की जगह न मिले।

"मैंने अब अपना मन बदल लिया है," अस्सेफ़ ने कहा। "मैं तुझे पतंग रखने दे रहा हूँ, हज़ारा। मैं तुझे इसे रखने दे रहा हूँ ताकि यह तुझे हमेशा उस काण्ड की याद दिलाए जो मैं अब तेरे साथ करने वाला हूँ।"

इतना कहकर वह आगे बढ़ा। हसन ने हाथ में थामा पत्थर खींच मारा। पत्थर सीधा अस्सेफ़ के माथे पर लगा। अस्सेफ़ दर्द से चिल्लाया और हसन पर झपटा और उसे ज़मीन पर गिरा दिया। वली और कमाल भी उस पर चढ़ बैठे।

मैंने अपनी भिंची हुई मुट्ठी को अपने दाँतों से काट लिया और अपनी आँखें बंद कर लीं।

एक यादः

आपको पता है कि हसन और आपको एक ही धाय ने दूध पिलाया था? आपको यह बात पता है, आमिर आगा? सकीना नाम था उसका। वह बामियान की रहने वाली एक हज़ारा औरत थी, जिसकी रंगत गोरी और आँखें नीली थीं। वह आपको बहुत मीठी लोरियाँ सुनाती थी। ऐसा कहते हैं कि एक ही स्तन से दूध पीने वालों के बीच भाईचारा होता है। आपको पता है यह बात?

एक यादः

"दोनों का एक-एक रुपया लगेगा बच्चो। बस एक-एक रुपया दो तो मैं तुम दोनों का भविष्य बाँच दूँगा।" वह बूढ़ा ज्योतिषी एक मिट्टी की दीवार के सहारे बैठा है। उसकी मोतियाबिंद से अंधी हुई आँखें ऐसी मालूम होती हैं जैसे दो गहरे गड्ढों में पिघली हुई चाँदी जमी हो।

झुकी हुई कमर के कारण छड़ी का सहारा लेकर चलने वाले उस बूढ़े ज्योतिषी ने अपने झुर्रियों भरे हाथ अपने पिचके हुए गालों पर फिराए और फिर हमारे आगे करते हुए बोला, "भविष्य जानने के लिए यह कीमत बहुत मामूली है, नहीं? बस एक-एक रुपया।" हसन ने एक रुपए का सिक्का उसके हाथ पर रख दिया। मैंने भी दे दिया। "उस मेहरबान और रहमदिल अल्लाह की नेमत हो तुम पर," बूढ़ा ज्योतिषी बुदबुदाया। पहले उसने हसन का हाथ देखना शुरू किया। एक हाथ से हसन की हथेली को थामा और दूसरे हाथ से उस पर अपनी एक उंगली के नाख़ून को गोल-गोल घुमाने लगा। घुमाता रहा, घुमाता रहा। फिर उसी उंगली को उसने हसन के चेहरे पर घुमाना शुरू किया। पहले उसके गालों पर, फिर कानों पर। फिर उसकी आँखों पर। आँखों पर आकर उसका हाथ रुक गया। रुका रहा। एक छाया उसके चेहरे पर से गुज़री। आशंका से भरकर हसन और मैं एक-दूसरे की ओर देखने लगे। तभी बूढ़े ने हसन का हाथ हाथों में लिया और उसका दिया हुआ एक रुपए का सिक्का उसकी हथेली पर रख दिया। इसके बाद वह मेरी ओर मुड़ा और बोला, "चलो देखते हैं कि तुम्हारे बारे में क्या पता चलता है, मेरे नन्हे दोस्त।" दीवार की दूसरी तरफ़ एक मुर्गा बांग दे रहा था। बूढ़े ने मेरा हाथ अपने हाथों में लेना चाहा, पर मैंने हाथ पीछे खींच

लिया।

एक सपनाः

मैं बर्फ़ के तूफ़ान में फँसा हूँ। सांय-सांय हवा चल रही है और उसके साथ उड़ते-फिरते बर्फ़ के तीखे टुकड़े मेरी आँखों में घुस रहे हैं। मैं ज़मीन पर लगे बर्फ़ के घटते-बढ़ते अम्बार के बीच से लड़खड़ाते हुए आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा हूँ। मदद के लिए चिल्ला रहा हूँ, मगर हवा की चीत्कार इतनी तेज़ और भयानक है कि उसमें मेरी आवाज़ नक्कारखाने में तूती की मानिंद साबित हो रही है। आख़िर-कार मैं थककर गिर पड़ता हूँ और बर्फ़ से ढँकी ज़मीन पर लेटकर हाँफने लगता हूँ। मेरे ऊपर बर्फ़ की परतें जमा होने लगती हैं। हवा की सांय-सांय मेरे कानों को फाड़े डाल रही है। मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ तो पाता हूँ कि बर्फ़ ने मेरे क़दमों के निशानों को मिटा दिया है। शायद मैं भूत बन गया हूँ, क्योंकि मैंने सुना है कि भूतों के चलने पर उनके क़दमों के निशान नहीं बनते। मैं फिर से मदद के लिए चिल्लाता हूँ। मेरी उम्मीद मेरे पैरों के निशानों की ही तरह मिटती जा रही थी। मगर इस बार मुझे एक दबी हुई आवाज़ में कुछ जवाब मिलता है। मैं अपनी आँखों को ढँकता हूँ और किसी तरह उठकर बैठ जाता हूँ। बर्फ़ के हिलते सफ़ेद पर्दों के बीच से मुझे कुछ हलचल दिखाई पड़ती है, एक रंगीन-सी झलक दिखाई देती है। धीरे-धीरे एक जानी-पहचानी आकृति उभरने लगती है। फिर एक हाथ मेरी ओर बढ़ता है। मैं देखता हूँ कि उस हाथ की हथेली पर माँझे से कटने के गहरे घाव हैं, जिनसे ख़ून टपक रहा है और नीचे बिछी बर्फ़ की सफ़ेद चादर को लाल कर रहा है। मैं उस हाथ को थाम लेता हूँ और अचानक से बर्फ़ गायब हो जाती है। तूफ़ान गायब हो जाता है। उसकी जगह हम हरी घास के एक मैदान में खड़े हैं और आसमान में बादलों की छोटी-छोटी टुकड़ियाँ तैर रही हैं। मैं नज़र उठाकर देखता हूँ तो पाता हूँ कि नीला आसमान हरी, पीली, लाल, नारंगी पतंगों से अटा पड़ा है। वे सब दोपहर की रोशनी में झिलमिला रही हैं।

गली में हर तरफ़ कबाड़ और मलबे का ढेर लगा हुआ था। साइकिल के घिसे हुए टायर, उधड़े हुए लेबल वाली बोतलें, फटी हुई पत्रिकाएँ, पीले पड़े अखबार; ये सबकुछ ईंटों और सीमेंट के मलबे के ढेरों के बीच बिखरा हुआ था। एक ज़ंग खाया हुआ लोहे का स्टोव, जिसके किनारे पर एक बड़ा सा छेद था, एक दीवार से सटा पड़ा था। मगर इस तमाम कचरे के बीच दो ऐसी चीज़ें थीं जिनसे मेरी नज़र हट नहीं रही थी: एक तो थी वह नीली पतंग जो उस लोहे के चूल्हे के पास दीवार से टिकी रखी थी, और दूसरी थी हसन की कत्थई कॉरडरॉय पैंट, जो कबाड़ ईंटों के ढेर पर पड़ी हुई थी।

“मुझे नहीं पता, मगर मेरे बाबा कहते हैं कि यह गुनाह है,” वली कह रहा था। उसके चहरे पर अनिश्चय, उत्तेजना और डर; ये तीनों भाव एकसाथ मौजूद थे। हसन छाती के बल ज़मीन पर पड़ा था और वली और कमाल ने उसका एक-एक हाथ मोड़कर उसकी पीठ के साथ चिपकाया हुआ था, ताकि वह उठ न सके। अस्सेफ़ हसन के सर की तरफ़ खड़ा था और उसके एक जूते की एड़ी हसन की गर्दन के

पिछले हिस्से को कुचल रही थी।

"तुम्हारे बाप को कभी पता नहीं चलेगा," अस्सेफ़ ने कहा। "और हमारी इज़्ज़त करना न जानने वाले इस खच्चर को सबक सिखाने में कोई गुनाह नहीं है।"

"मुझे नहीं पता," वली बुदबुदाया।

"जो मर्ज़ी हो वो करो," अस्सेफ़ ने कहा। फिर वह कमाल की तरफ़ मुड़ा। "और तुम्हारा क्या है?"

"मैं...वो..."

"यह एक मामूली हज़ारा है," अस्सेफ़ ने कहा। मगर कमाल दूसरी ओर ही देखता रहा।

"ठीक है," अस्सेफ़ ने झट से कहा। "मैं बस इतना चाहता हूँ कि तुम फटूट लोग इसे दबाए रखो। इतना तो कर सकते हो?"

वली और कमाल ने रज़ामंदी में गर्दन हिलाई। दोनों के चेहरों पर राहत दिखाई पड़ने लगी थी।

अस्सेफ़ घूमकर हसन के पैरों की तरफ़ आया और घुटनों के बल बैठ गया। फिर उसने दोनों हाथ हसन के कूल्हों पर रखे और उसके नंगे नितंबों को ऊपर उठा दिया। फिर उसने अपना एक हाथ हसन की पीठ पर रखा और दूसरे हाथ से अपनी बेल्ट का बकल खोला। फिर अपनी जींस की ज़िप खोली। अपना अंडरवियर उतारा। फिर उसने अपने हथियार को ठीक जगह बिठाने के लिए अपनी स्थिति को समायोजित किया। हसन ने कोई संघर्ष नहीं किया। न ही वह रोया, न ही चीखा-चिल्लाया। उसने अपना सिर थोड़ा सा हिलाया और मुझे उसके चेहरे की एक झलक दिखी। उसके चेहरे पर मुझे 'नियति को स्वीकार कर लेने' का भाव दिखाई दिया। इस भाव को मैंने पहले भी देखा था। हलाल होने वाले बकरे के चेहरे पर।

कल मुस्लिम कैलेंडर के आख़िरी महीने जुल-हिज्जा का दसवाँ और तीन दिवसीय ईद-उल-अज़हा (जिसे अफ़ग़ानी लोग ईद-ए-कुरबान कहते हैं) का पहला दिन है। यह दिन इस बात का जश्न मनाने के लिए है कि कैसे पैगंबर इब्राहीम ने अपने बेटे को अल्लाह के लिए लगभग कुर्बान कर दिया था। हर साल की तरह इस साल भी बाबा क़ुर्बानी की भेड़ ख़ुद चुनकर लाए हैं। टेढ़े-मेढ़े और काले कानों वाली एक सफ़ेद भेड़।

हम सब पीछे अपने बाड़े में खड़े हैं – हसन, अली, बाबा और मैं। मुल्ला अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कुरआन की आयतें पढ़ रहा है। बाबा मुँह ही मुँह में बड़बड़ा रहे हैं कि 'जल्दी से ख़त्म करो यह सब।' उन्हें गोश्त को हलाल बनाने की मुल्ला की इस ज़रूरत से ज़्यादा लम्बी प्रक्रिया से बहुत कोफ़्त हो रही है। ईद मनाने के पीछे जो कहानी है, बाबा उसका मज़ाक उड़ाते हैं, वैसे ही जैसे वे बाक़ी मज़हबी चीज़ों का उड़ाया करते हैं। मगर यह जो ईद-ए-कुरबान की परंपरा है, इसकी वह इज़्ज़त करते

हैं। इसमें रिवाज़ यह है कि कुर्बानी के मॉस को तीन हिस्सों में तकसीम किया जाता है। एक हिस्सा घरवालों के लिए होता है, दूसरा हिस्सा दोस्तों और रिश्तेदारों के लिए, जबकि तीसरा हिस्सा ग़रीबों के लिए निकाला जाता है। मगर बाबा हर साल तीनों हिस्से ग़रीबों में तकसीम करा देते हैं। उनका कहना होता है कि अमीरों के पेट तो पहले से ही भरे हुए हैं, इसलिए उन्हें खिलाने से क्या फ़ायदा।

आख़िर-कार, मुल्ला ने आयतें पढ़ने का काम ख़त्म किया। आमीन। फिर उसने एक तेज़ धारदार खंजर उठाया। रिवाज़ यह है कि खंजर भेड़ को दिखाई नहीं पड़ना चाहिए। अली ने भेड़ को शक्कर की डली खिलाई। यह भी एक रिवाज़ है, ताकि उसके लिए मौत को मीठा बनाया जा सके। भेड़ ने लातें चलाईं, मगर थोड़ी सी। मुल्ला ने उसे जबड़े के नीचे से पकड़ा और उसके गले पर खंजर रख दिया। उसके एक ही झटके में भेड़ की गर्दन कलम होने से बमुश्किल एक सेकंड पहले मैंने भेड़ की आँखों में देखा। उसकी आँखों में जो भाव थे उन भावों ने मुझे अगले कई हफ़्तों तक ठीक से सोने नहीं दिया; मुझे रातों को बुरे-बुरे सपने आते रहे। ऐसा सिर्फ़ उसी साल नहीं हुआ, हर साल होता है। पता नहीं क्यों मैं हर साल अपने बाड़े में खड़ा होकर यह सब देखता हूँ! घास पर लगे भेड़ के ख़ून के धब्बे मिट जाते हैं, मगर मेरा रातों को डरावने ख्वाब देखना बंद नहीं होता। मगर फिर भी मैं देखता ज़रूर हूँ। मैं देखता हूँ भेड़ की आँखों में 'अपनी नियति को स्वीकार कर लेने' वाले उस भाव को देखने के लिए। और मेरी बेवकूफ़ी या कहें कि नादानी का आलम यह था कि मुझे लगता था कि भेड़ इस बात को समझती है कि उसे एक महान् उद्देश्य के लिए कुर्बान किया जा रहा है, इसलिए वह इसे चुपचाप स्वीकार कर लेती है।

मुझसे और देखा नहीं गया, मैं वापस मुड़ गया। तभी मुझे अपनी कलाई पर कुछ गरम-गरम सा बहता महसूस हुआ। मैंने पलकें झपकाईं और देखा कि मैं अब भी अपनी मुट्ठी को दाँतों से काटे जा रहा था, और इतनी ज़ोर से काट रहा था कि उँगलियों के पोरों से ख़ून रिसने लगा था। मगर तभी मुझे किसी और चीज़ का अहसास हुआ। मैं रो रहा था। पीछे गली में से मुझे अस्सेफ़ के जल्दी-जल्दी मगर एक लय में हुंकार भरने की आवाज़ सुनायी दे रही थी।

मेरे पास फैसला लेने का एक आख़िरी मौका था। एक आख़िरी मौका, यह तय करने का कि मैं किस तरह का इंसान बनूँगा। मैं मुड़कर गली में जाने और हसन के लिए लड़ने का फैसला ले सकता था, बिल्कुल वैसे ही जैसे वह अब तक न जाने कितनी बार मेरे लिए कर चुका था (और आज भी कर रहा था), भले इसका अंजाम कुछ भी हो। या फिर मैं वहाँ से भाग खड़ा होता।

आख़िर में, मैं भाग खड़ा हुआ।

मैं भाग खड़ा हुआ क्योंकि मैं कायर था। मैं अस्सेफ़ से डरता था। मुझे डर था कि कहीं वह मेरे साथ भी ऐसा ही कुछ न करने लगे।

मैं चोट खाने से डरता था। उस गली को, हसन को पीठ दिखाने की मैंने ख़ुद को यही वजह बताई थी। मैंने ख़ुद को इसी बात का यकीन दिलाया था। मगर हक़ीक़त यह थी कि मैंने कायर होना जान-बूझकर चुना था। मेरे पीठ दिखाकर भागने की असल वजह यह थी कि मुझे अस्सेफ़ की कही हुई वह बात सही लगी थी कि 'इस दुनिया में कुछ भी मुफ्त नहीं मिलता।' मैंने सोचा कि बाबा का दिल जीतने के लिए मुझे शायद हसन की कीमत चुकानी पड़ेगी, उसे बली का बकरा बनाना पड़ेगा। क्या यह कीमत वाजिब थी? मैं ख़ुद को ऐसा सोचने से रोक पाऊँ उससे पहले ही मेरे दिमाग़ में जवाब उभरा: वह एक हज़ारा ही तो है, नहीं? और मैंने तेज़ी से वापस दौड़ लगा दी। मैं सीधा खाली हो चुके बाज़ार में आकर रुका और एक दुकान के तालाबंद दरवाज़े से टेक लगाकर खड़ा हो गया – हाँफता, पसीना छोड़ता। काश, यह सब न हुआ होता!

तक़रीबन पंद्रह मिनट बाद मैंने तेज़ी से भागकर आते क़दमों की आहट और आपस में बातें करने की आवाज़ें सुनीं। मैं जल्दी से दुकान के पीछे दुबक गया और वहीं से देखा कि अस्सेफ़ और उसके दोस्त ठहाके लगाते हुए खाली पड़ी सड़क पर भागे चले जा रहे थे। मैं और दस मिनट वहीं रुका रहा। फिर वापस उस तरफ़ चल पड़ा जिधर से अस्सेफ़ और उसके दोस्त आए थे। अँधेरा घना हो चला था। मैं तेज़ी से आगे बढ़ रहा था कि तभी मुझे सामने से धीमी चाल से चलकर आता हसन दिखाई दिया। जमे हुए बर्फ़ीले नाले के मुहाने पर लगे एक बिर्च के पेड़ के पास हमारी मुकालात हुई।

उसने अपने हाथों में नीली पतंग थाम रखी थी। मेरी नज़र सबसे पहले उसी पर गई। और मैं झूठ नहीं बोलूँगा, मैंने सबसे पहले यही देखा कि कहीं उस पतंग को कोई नुक़सान तो नहीं पहुँचा था, वह कहीं से फट तो नहीं गई थी। मुझे न हसन की चिंता हुई और न उसकी हालत की, मुझे चिंता थी तो सिर्फ़ उस पतंग की। पतंग की तरफ़ से निश्चिन्त होने के बाद जब मेरी नज़र हसन पर गई तो मैंने देखा कि उसकी पेंट आगे से पूरी तरह कीचड़ में सनी हुई थी और उसकी शर्ट कॉलर के पास से फटी हुई थी। मेरे क़रीब आकर वह रुका। अपने पैरों पर यूँ लहराया मानो अभी गिर पड़ेगा। मगर फिर उसने ख़ुद को संभाल लिया।

बगैर कुछ कहे उसने पतंग मेरे हाथों में थमा दी।

"कहाँ थे तुम? मैं कब से ढूँढ रहा हूँ तुम्हें," मैंने कहा।

हसन ने अपनी एक बाँह उठाकर शर्ट की आस्तीन से चेहरा साफ़ किया, जो कि आँसुओं और नाक से निकले गाढ़े तरल से भीगा हुआ था। मैं उसके कुछ कहने का इंतज़ार कर रहा था, मगर उसने कुछ भी नहीं कहा और हम कुछ देर तक चुपचाप वहीं खड़े रहे। शाम गहरा चुकी थी और रोशनी काफी कम हो गई थी। मैं शाम की उन परछाइयों का शुक्रगुज़ार था जो हसन के चेहरे पर पड़ रही थीं और मेरे चेहरे को भी छुपा रही थीं। मैं इस बात से ख़ुश था कि मुझे उससे नज़रें नहीं मिलानी पड़ रही थीं। कहीं वह जान तो नहीं गया था कि मैं सब जानता था? और अगर वह जानता था तो उसके मन में क्या चल रहा होगा? अगर मैं उसकी आँखों में देखूँ तो मुझे क्या नज़र

आएगा? शिकायत? गुस्सा? या फिर वह, जिसका सामना करने से मैं सबसे ज़्यादा डर रहा था: मेरे प्रति अटूट वफ़ादारी? इसका सामना करना मेरे लिए सबसे ज़्यादा मुश्किल होगा।

हसन ने कुछ कहने की कोशिश की, मगर उसकी आवाज़ भर्रा गई। उसने अपना मुँह बंद किया, खोला, और फिर से बंद कर लिया। फिर वह एक क़दम पीछे हटा। फिर से अपना चेहरा पोंछा। मगर कुछ भी नहीं कहा। मुझे लगा कि वह अभी रो पड़ेगा, मगर मैंने यह देखकर राहत की साँस ली कि वह नहीं रोया। मैंने ऐसा जताया जैसे मुझे उसकी आवाज़ में पैदा हुई भर्राहट सुनाई ही नहीं दी थी। मैंने यह भी जताया कि मुझे उसके पेंट के पिछवाड़े में लगा गहरे रंग का धब्बा भी दिखाई नहीं दिया था, और न ही ख़ून की वे बूँदें दिखाई पड़ रही थीं जो उसके पैरों के बीच से टपककर नीचे बर्फ़ पर गहरा लाल (तक़रीबन-तक़रीबन काला) निशान बना रही थीं।

"आगा साहिब चिंता करेंगे," आख़िर को बमुश्किल वह इतना ही कह पाया। फिर मुझे वहीं खड़ा छोड़कर लंगड़ाते हुए चला गया।

सबकुछ वैसा ही हुआ जैसी मैंने कल्पना की थी। मैंने धुएँ से भरी स्टडी का दरवाज़ा खोला और भीतर दाख़िल हुआ। बाबा और रहीम खान चाय पीते हुए रेडियो पर आने वाली ख़बरें सुन रहे थे। दरवाज़ा खुलने की आवाज़ से दोनों ने मुड़कर मेरी ओर देखा। मुझे देखते ही बाबा के चहरे पर मुस्कान खेलने लगी। उन्होंने अपनी बाँहें फैला दीं। मैंने पतंग ज़मीन पर रखी और उनकी घने रोयों से ढँकी बाँहों में समा गया। मैंने उनके चौड़े सीने में मुँह छिपा लिया और रोने लगा। बाबा ने मुझे कसकर बाँहों में जकड़ लिया और झूला झुलाने लगे। इस पल में, मैं भूल ही गया कि इस पल को मुमकिन बनाने के लिए मैंने क्या किया था। और यह अच्छा ही था।

आठ

अगले एक हफ्ते तक मुझे हसन बमुश्किल ही नज़र आया। मैं सुबह सोकर उठता तो मुझे नाश्ते की टेबल पर अपना नाश्ता (मुरब्बा लगा हुआ टोस्ट, काली चाय और उबला हुआ अंडा) लगा हुआ मिलता। बरामदे में जिस बेंत की कुर्सी पर बैठकर हसन इस्त्री करता था, उसी कुर्सी पर मेरे उस दिन पहनने वाले कपड़े इस्त्री और तह किए हुए रखे मिलते। पहले वह मेरे नाश्ते की टेबल पर आकर बैठने का इंतज़ार करता था और तब ही इस्त्री करना शुरू करता था, जिससे हमें अपना-अपना काम करते हुए बातें करने का भी मौका मिल जाता था। साथ ही इस्त्री करते-करते वह ट्यूलिप के खेतों पर आधारित पुराने हज़ारा गीत भी गुनगुनाता जाता था। मगर अब सिर्फ़ तह करके रखे हुए कपड़े ही मेरा इंतज़ार करते मिलते। अब मेरा नाश्ता करने में मन ही नहीं लगता था और मैं अक्सर आधा-अधूरा नाश्ता करके ही उठ जाता था।

एक सुबह, जब आसमान में बादल छाए हुए थे, मैं अपनी प्लेट में रखे उबले अंडे को अनिच्छा से इधर-उधर लुढ़का रहा था। तभी अली कटी हुई लकड़ियों का ढेर उठाए अंदर आया। मैंने उससे हसन के बारे में पूछा।

"वह वापस सो गया," अली ने स्टोव के सामने घुटनों के बल बैठते हुए कहा।

"क्या वह आज खेलेगा?" मैंने पूछा। अली, जो कि स्टोव में लकड़ियाँ लगा रहा था, मेरी बात सुनकर उसके हाथ थम गए और उसके चेहरे पर चिंता की लकीरें नज़र आने लगीं। "आजकल वह हरदम बस सोना ही चाहता है। मैं देखता हूँ कि वह अपने काम ख़त्म करता है और फिर सीधा जाकर कम्बल ओढ़कर लेट जाना चाहता है। क्या मैं आपसे कुछ पूछ सकता हूँ?"

"अगर पूछना ज़रूरी है तो पूछो।"

"उस दिन पतंग के मुकाबले के बाद जब वह घर लौटा तो उसके पेंट पर ख़ून लगा हुआ था और उसकी शर्ट भी फटी हुई थी। मैंने जब उससे पूछा कि क्या हुआ तो उसने कहा कि कुछ ख़ास नहीं हुआ, पतंग लूटने को लेकर कुछ बच्चों से थोड़ी झूमा-झटकी हो गई थी बस।"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया और ख़ामोशी से प्लेट में रखे अंडे को हिलाता-डुलाता रहा।

"क्या उसके साथ कुछ हुआ था, आमिर आगा? कुछ ऐसा जो वह मुझे नहीं बताना चाहता?"

मैंने कंधे उचकाए। "मुझे कैसे पता होगा?"

“अगर आपको पता चलेगा तो आप मुझे बताएँगे, है न? इंशाअल्लाह, आप ज़रूर मुझे बताएँगे।”

“मैं कह तो चुका हूँ कि मुझे कैसे पता होगा कि उसके साथ क्या दिक्कत है,” मैंने झल्लाकर कहा। “हो सकता है कि उसकी तबियत ठीक न हो। लोग बीमार पड़ते रहते हैं, अली। अब तुम आज की तारीख में यह स्टोव जलाओगे या फिर मेरे ठण्ड से मरने का इंतज़ार कर रहे हो?”

उस रात मैंने बाबा से जुम्मे के दिन जलालाबाद घूमने चलने के लिए पूछा। उस वक़्त बाबा अपनी चमड़ा मढ़ी कुर्सी पर बैठे आगे-पीछे झूलते हुए अखबार पढ़ रहे थे। मेरी बात सुनकर उन्होंने अखबार मेज़ पर रखा और पढ़ने का चश्मा आँखों पर से हटाया। मुझे बाबा का यह चश्मा सख्त नापसंद था। बाबा कोई बूढ़े नहीं थे, ज़रा भी नहीं, और अभी उन्हें बरसों बरस जीना था। तो फिर उन्हें यह बेवक़ूफ़ाना चश्मा लगाने की क्या ज़रूरत थी? “क्यों नहीं!” बाबा ने जवाब दिया। आजकल बाबा मेरी हर फरमाइश पूरी करने लगे थे। इतना ही नहीं, दो रात पहले तो उन्होंने ख़ुद होकर मुझसे पूछा कि क्या मैं सिनेमा आर्याना में चल रही चार्लटन हेस्टन की फिल्म ‘एल सिड’ देखना चाहूँगा?

बहरहाल, जलालाबाद चलने की हामी भरने के बाद बाबा ने मुझसे कहा, “अगर तुम चाहो तो हसन से भी साथ चलने के लिए पूछ सकते हो।”

बाबा को क्या ज़रूरत थी मेरी ख़ुशी पर इस तरह पानी फेरने की! “वह मज़रीज़ है,” मैंने जवाब में कहा। मतलब, उसकी तबियत ठीक नहीं है।

“वाक़ई?” बाबा का कुर्सी पर आगे-पीछे झूलना रुक गया। “क्या हुआ है उसे?”

मैंने कंधे उचकाए और जाकर फ़ायरप्लेस के बग़ल में रखे सोफे में धँस गया। “उसे सर्दी-जुकाम या ऐसा ही कुछ हुआ है। अली कहता है कि आजकल वह ज़्यादातर सोता रहता है।”

“पिछले कुछ दिनों से मुझे भी हसन ज़्यादा दिखाई नहीं दिया है,” बाबा ने कहा। “पक्का उसे खाली सर्दी-जुकाम हुआ है, और कुछ नहीं?” हसन की फ़िक्र में बाबा की पेशानी पर बल पड़ते देख मुझे इतना बुरा लगा कि क्या बताऊँ।

“हाँ, खाली सर्दी-जुकाम। तो फिर हम जुम्मे को चल रहे हैं न, बाबा?”

“हाँ-हाँ,” बाबा ने कुर्सी से उठते हुए कहा। “हसन की तबियत को लेकर मुझे बहुत ख़राब लग रहा है। मेरे ख़याल से अगर वह भी साथ चलता तो तुम्हें ज़्यादा मज़ा आता।”

“हम दोनों साथ होंगे तो और भी ज़्यादा मज़ा आएगा,” मैंने कहा। बाबा मुस्करा दिए। फिर एक आँख दबाते हुए बोले, “गर्म कपड़े पहन लो।”

बात तो हुई थी सिर्फ़ हम दोनों के जाने की, क्योंकि मैं तो यही चाहता था, मगर बुधवार रात आते-आते बाबा ने और दो दर्जन लोगों को इस ट्रिप पर चलने के लिए

इनवाइट कर लिया था। हुआ यह कि बाबा ने अपने दूसरे नंबर के चचेरे भाई हुमायूँ को फ़ोन लगाया और बातों ही बातों में बता दिया कि हम जुम्मे के दिन जलालाबाद जा रहे थे। यह सुनकर काका हुमायूँ (जिन्होंने कि फ्रांस से इंजीनियरिंग की पढ़ाई की थी और जिनका जलालाबाद में घर था) ने कहा कि न सिर्फ़ वह ख़ुद हमारे साथ चलेंगे बल्कि अपनी दोनों बीवियों और बच्चों को भी ले चलेंगे। इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी बताया कि इन दिनों उनकी कज़िन शफीका (जो कि हेरात में रहती थीं) सपरिवार काबुल आई हुई थीं, तो शायद वे लोग भी चलना पसंद करें। और चूँकि वे लोग काबुल में कज़िन नादिर के यहाँ ठहरे थे, इसलिए नादिर और उनके परिवार को भी इनवाइट करना लाज़िमी हो जाता है। और अगर नादिर को इनवाइट किया जाता है तो उनके भाई फारुक से भी पूछना ही पड़ेगा, नहीं तो उनकी भावनाएँ आहत हो सकती हैं और फिर हो सकता है कि वे अगले महीने अपनी बेटी की शादी में इन्हें बुलाएँ ही न।

आख़िर को हम तीन वैन भर के लोग निकले जलालाबाद के लिए। मैं बाबा, रहीम खान और काका हुमायूँ के साथ बैठा था। बाबा ने मुझे बहुत छोटी उम्र से ही यह समझा दिया था कि अपने से उम्र में बड़े किसी भी व्यक्ति को काका या अंकल कहकर और किसी भी बड़ी औरत को खाला या आंटी कहकर ही पुकारूँ। काका हुमायूँ की दोनों बीवियाँ भी हमारी ही वैन में सवार थीं। उनकी पहली बीवी जो थीं वो थके-हारे से, मरियल से चेहरे वाली उम्रदराज़ औरत थीं, जिनके हाथों पर बहुत सारे मस्से थे। उनकी दूसरी बीवी कदरन जवान थीं, जो हमेशा इत्र से महकती रहती थीं और आँखें बंद करके नाचती थीं। काका हुमायूँ की जुड़वाँ बेटियाँ भी ऐसा ही करती थीं। मैं वैन की पिछली सीट पर काका हुमायूँ की सात साल की जुड़वाँ बेटियों के बीच सैंडविच बना बैठा था। वैन के घुमावदार रास्तों पर चलने और ताज़ी हवा न मिलने के कारण मुझे मतली जैसा मन हो रहा था, चक्कर-से आ रहे थे। ऊपर से दोनों बच्चियाँ एक-दूसरे को थपड़ियाने के चक्कर में बारम्बार मेरी गोद में अधलेटी हो जा रही थीं। जलालाबाद पहुँचने के लिए दो घंटे की ड्राइव करनी पड़ती है, और वो भी एक खड़ी ढलान पर बने घुमावदार पहाड़ी रास्ते पर। हर चक्करदार मोड़ पर जब गाड़ी तेज़ी से मुड़ती तो मेरा पेट ऐंठने लगता। वैन में मौजूद सभी लोग बातें कर रहे थे, ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे, बल्कि यह कहना ज़्यादा सही होगा कि चीख-चीखकर बातें कर रहे थे, जैसे कि अमूमन अफ़ग़ान लोग करते हैं। मैंने अपने अग़ल-बग़ल बैठीं जुड़वाँ बहनों में से एक से कहा (पता नहीं वह फाज़िला थी या करीमा, मैं पहचान ही नहीं पाता था कि उनमें से कौन कौन थी) कि मेहरबानी करके अपनी खिड़की वाली सीट मुझे दे दो, ताकि मुझे थोड़ी ताज़ी हवा मिल सके और मैं मोशन-सिकनेस (कार/बस वगैरह में सफ़र के दौरान चक्कर आना और उल्टी होना) से थोड़ी राहत पा सकूँ। मगर उसने साफ़ मना कर दिया। मैंने कहा कि ठीक है, तो अगर मैं तुम्हारी नयी ड्रेस पर उल्टी कर दूँ तो फिर मुझसे मत कहना। यह पैंतरा काम कर गया और मुझे खिड़की वाली सीट मिल गई। कुछ देर तक मैं बाहर के नज़ारे देखकर मन बहलाने की कोशिश करता रहा। फिर मैंने खिड़की से गर्दन बाहर निकाली, अपनी आँखें बंद कीं और चेहरे पर पड़ने वाले हवा के थपेड़ों का मज़ा लेने की कोशिश की। साथ ही अपना मुँह भी

खोल लिया ताकि ज़्यादा से ज़्यादा ताज़ी हवा भीतर ले सकूँ। मगर फिर भी मुझे अपना जी अच्छा नहीं मालूम हुआ। तभी किसी ने मेरी कमर में उंगली घुसाई। यह फ़ज़ीला थी या करीमा, पता नहीं।

"क्या है?" मैंने पूछा।

"मैं सब को उस पतंगबाज़ी के मुकाबले के बारे में बता रहा था," ड्राइविंग सीट पर बैठे बाबा ने कहा। बीच वाली कतार में बैठे काका हुमायूँ और उनकी दोनों बीवियाँ मुझे देखकर मुस्करा रहे थे।

"उस दिन कुछ नहीं तो सौ से ज़्यादा पतंगें रही होंगी आसमान में," बाबा ने आगे कहा। "है न, आमिर?"

"हाँ, शायद," मैंने बुदबुदाते हुए कहा।

"सौ पतंगें, हुमायूँ जान! मैं बढ़ा-चढ़ाकर नहीं बोल रहा हूँ। और दिन के आख़िर में जो इकलौती पतंग बची थी आसमान में शान से उड़ती हुई, वह आमिर की थी। और उसने जो आख़िरी पतंग काटी, नीले रंग की एक ख़ूबसूरत पतंग, उसे भी वह लूट कर घर ले आया। हसन और आमिर ने मिलकर लूटी थी वह।"

"मुबारक हो," हुमायूँ काका ने कहा। उनकी पहली बीवी, जिनके हाथों में मस्से थे, वह ख़ुशी से ताली बजाने लगीं और बोलीं, "वाह-वाह, आमिर जान, हम सबको आप पर बेहद नाज़ है!" छोटी बेगम भी पीछे नहीं रहीं, उन्होंने भी तालियाँ बजाईं और मुबारकबाद दी। इसके बाद तो वैन में मौजूद सभी लोगों ने तालियाँ बजाना, मेरी तारीफ़ें करना और मुझे यह कहना शुरू कर दिया कि किस तरह मैंने उन सबका सर फख्र से ऊँचा कर दिया था। खाली रहीम खान, जो कि आगे बाबा के बग़ल में बैठे थे, ख़ामोश रहे। वह मुझे अजीब-सी नज़रों से देख रहे थे।

"बाबा, प्लीज़ गाड़ी साइड में लगाइए," मैंने कहा।

"क्या?"

"मेरी तबियत ख़राब हो रही है," मैंने बुदबुदाते हुए कहा और फ़जीला या करीमा, जो भी वो थी, पर ढेर होते हुए सीट पर आड़ा होने लगा।

फ़जीला या करीमा, जो भी वो थी, पहले तो उसने बुरा सा मुँह बनाया, मगर जैसे ही मेरी हालत देखी, वैसे ही लगभग चीखते हुए कहा, "काका, गाड़ी साइड में लगाइए! इनका चेहरा पीला पड़ गया है! मैं नहीं चाहती हूँ कि ये मेरी नयी ड्रेस पर उल्टी कर दें!"

बाबा गाड़ी साइड में लगाने लगे, मगर गाड़ी के रुकने से पहले ही मेरे ब्रेक फेल हो गए। कुछ मिनटों बाद मैं सड़क किनारे एक चट्टान पर बैठा हवा खा रहा था। सभी लोग वैन से बाहर थे और वैन के सभी दरवाज़े खोल दिए गए थे ताकि उसके भीतर फ़ैली

बदबू कम हो जाए। थोड़ी दूरी पर बाबा सिगरेट के कश लगा रहे थे, जबकि उनके पास खड़े हुमायूँ काका रोती हुई फ़जीला या करीमा को यह कहकर चुप कराने की कोशिश कर रहे थे कि जलालाबाद पहुँचकर वह उसे नयी ड्रेस दिला देंगे। मैंने अपनी आँखें बंद कर लीं और चेहरा सूरज की ओर मोड़ लिया। मेरी बंद पलकों के पीछे छोटी-छोटी आकृतियाँ उभरने लगीं, बिल्कुल वैसी जैसी हम दीवार पर हाथों की परछाईं से बनाते हैं। फिर वे आकृतियाँ अपना आकार और रंग-रूप बदलने लगीं, आपस में घुलने-मिलने लगीं, और आख़िर को उन सबने मिलकर एक बड़ी आकृति का रूप ले लिया। यह आकृति एक दृश्य थी–हसन की कत्थई रंग की कॉरडरॉय पैंट के उस गली में कबाड़ ईंटों के मलबे पर पड़े होने का दृश्य।

जलालाबाद में हुमायूँ काका का सफेदी पुता हुआ दोमंज़िला मकान था, जिसमें एक बालकनी थी, जहाँ खड़े होकर चारदीवारी से घिरे बड़े से बाग़ीचे का नज़ारा किया जा सकता था। इस बाग़ीचे में सेब और खुरमा के ढेर सारे पेड़ थे। बाग़ीचे में बहुत सारे झाड़ीनुमा पौधे भी थे, जिनकी गर्मियों के मौसम में माली काँट-छाँट करके उन्हें तरह-तरह के जानवरों की शक्ल दे देता था। इसके अलावा बाग़ीचे में एक स्विमिंग पूल भी था, जिसमें हरे रंग के टाइल्स लगे हुए थे। नीचे तली में बर्फ़ की एक परत को छोड़कर फिलहाल पूल बिल्कुल खाली था। मैं पैर अन्दर लटकाकर इसके किनारे बैठ गया। हुमायूँ काका के बच्चे बाग़ीचे के दूसरे छोर पर लुका-छिपी खेल रहे थे। औरतें सब खाना बना रही थीं; मुझे प्याज़ भूने जाने की सुगंध आ रही थी, साथ ही प्रेशर कुकर की फ़ट-फ़ट, म्यूज़िक और औरतों की आपसी हँसी-मज़ाक भी सुनाई दे रही थी। बाबा, रहीम खान, हुमायूँ काका और नादेर काका बालकनी में बैठे धुआँ उड़ा रहे थे। हुमायूँ काका उन सब को बता रहे थे कि वह अपना प्रोजेक्टर साथ लाए थे, ताकि फ्रांस के दिनों की अपनी स्लाइड्स सबको दिखा सकें। उनको पेरिस से लौटे दस साल हो चुके थे, मगर अभी तक उनका उन बेवक़ूफ़ाना स्लाइड्स को दिखा-दिखाकर लोगों को पकाना जारी था।

अब तो मुझे ऐसा महसूस नहीं होना चाहिए था जैसा हो रहा था। बाबा और मैं आख़िर-कार दोस्त बन चुके थे। अभी कुछ दिन पहले ही हम चिड़ियाघर गए थे, जहाँ हमने मार्जान शेर को देखा था, और जब कोई नहीं देख रहा था तो मैंने चुपके से भालू पर एक कंकड़ भी फेंका था। लौटते समय हम सिनेमा पार्क के सामने खुले दादखोदा के कबाब हाउस भी गए थे और वहाँ ताज़ा-ताज़ा तंदूरी नान के साथ मेमने के गोश्त से बने कबाब खाए थे। बाबा ने मुझे भारत और रूस की अपनी यात्राओं की कई सारी कहानियाँ सुनाई थीं और उन दिलचस्प लोगों के बारे में भी बताया था जिनसे उनकी इन यात्राओं के दौरान मुलाकात हुई थी। जैसे कि बम्बई में मिले बिना हाथ-पैर वाले उन मियाँ-बीवी के बारे में जिनकी शादी को सैंतालीस साल हो चुके थे और जिनके ग्यारह बच्चे थे! यह सब मेरे लिए बहुत ही मज़ेदार होना चाहिए था– बाबा के साथ घूमना, उनकी कहानियाँ सुनना, उनके साथ वक़्त बिताना। इतने सालों से मैं यही तो चाहता था। मगर अब जब ये सब मुझे हासिल था, तब फिर क्यों मुझे अपने भीतर उतना ही

खाली-खाली महसूस हो रहा था जितना खाली वह पूल था जिसमें अभी मैं पैर लटकाकर बैठा था?

रात हुई तो सभी औरतों ने मिलकर हम सभी के लिए खाना परोसा – चावल, कोफ्ता और चिकन कोरमा। हमने ठेठ पारंपरिक तरीक़े से खाना खाया। कमरे की चारों दीवारों के साथ लगाकर गद्दे लगाए गए, जिनके सामने फर्श पर मेज़पोश बिछाया गया, और सभी लोगों ने चार-चार पाँच-पाँच का ग्रुप बनाकर एक ही थाली में खाना खाया, वो भी हाथ से। मुझे भूख नहीं थी, फिर भी मैं बाबा, फ़ारुख़ काका, और हुमायूँ काका के दोनों बेटों के साथ खाना खाने बैठ गया। बाबा, जो खाने से पहले स्कॉच के कुछ पैग लगा चुके थे, अभी भी पतंगबाज़ी के मुकाबले के बारे में ही बड़बड़ा रहे थे कि कैसे मैंने सभी को पीछे छोड़ दिया, कैसे मैं आख़िरी पतंग लेकर घर आया। उनकी दमदार आवाज़ पूरे कमरे में गूँज रही थी। नतीजतन सभी लोगों ने अपनी-अपनी थालियों से सिर उठाकर मुझे बधाई दी। फ़ारुख़ काका ने अपने साफ़ हाथ से मेरी पीठ थपथपाई। मेरा मन हुआ कि मैं अपनी आँखों में खंजर घोंप दूँ।

आधी रात से ज़्यादा का वक़्त हो चुका था। कुछ घंटों तक पोकर खेलने के बाद बाबा और उनके कज़िन उसी कमरे में अगल-बग़ल गद्दे बिछाकर सो गए जिस कमरे में हमने खाना खाया था। औरतें सब ऊपर की मंज़िल पर चली गईं। मैंने भी सोने की कोशिश की, मगर घंटे भर बाद भी मुझे नींद नहीं आई। मेरे चारों ओर मौजूद लोग नींद में बड़बड़ा रहे थे, गहरी साँसें भर और छोड़ रहे थे, और ख़र्राटे बजा रहे थे, मगर मैं करवटें बदलता रहा। आख़िर-कार मैं उठकर बैठ गया। कमरे की खिड़की से चाँद की चाँदनी भीतर आ रही थी।

“मैंने हसन का बलात्कार होते देखा है,” मैंने ख़ुद ही ख़ुद से कहा। बाबा ने नींद में करवट बदली। हुमायूँ काका एक बार ज़ोर से घुर्राए। मेरे मन के एक हिस्से ने चाहा कि काश कोई जाग जाए और यह बात सुन ले, ताकि मुझे इस झूठ को और अपने भीतर दबाए-दबाए न जीना पड़े। मगर कोई नहीं जागा, और उसके बाद जो सन्नाटा पसरा उसमें मुझे अपने इस नए अभिशाप की प्रकृति समझ में आ गई: मैं इसे न तो उगल सकता था और न ही निगल सकता था; मुझे इसके साथ ही जीना होगा।

मुझे हसन के उस सपने की याद हो आई जिसमें हम दोनों झील में तैर रहे थे। झील में कोई राक्षस नहीं है, हसन ने कहा था, सिर्फ़ ठंडा-ठंडा पानी है। बस यही एक बात गलत थी उसके उस सपने में। झील में राक्षस था, जो हसन को टखनों से पकड़कर घसीटते हुए नीचे अँधेरे तल की ओर ले गया था। वो राक्षस मैं था।

उस रात से मुझे नींद न आने का रोग लग गया।

अगले हफ्ते के मध्य से पहले मेरी हसन से कोई बात नहीं हुई। फिर एक दिन दोपहर को मैं खाना खा रहा था और हसन वहीं बर्तन साफ़ कर रहा था। जब मैं खाना ख़त्म करके (मतलब आधा खाकर और आधा थाली में छोड़कर) ऊपर अपने कमरे में

जाने के लिए सीढ़ियाँ चढ़ने लगा, तभी पीछे से हसन ने पूछा कि क्या मैं पहाड़ी पर चलना चाहूँगा। मैंने कह दिया कि मैं थका हुआ हूँ। थका हुआ तो हसन भी लग रहा था, उसका वज़न कम हो गया था और उसकी सूजी हुई आँखों के नीचे काले घेरे बन गए थे। मगर जब उसने दोबारा पूछा, तो मैं न चाहते हुए भी राज़ी हो गया।

हम साथ-साथ पहाड़ी चढ़े। चलते हुए हमारे जूते बर्फ़ में धँस रहे थे। रास्ते भर हम दोनों ख़ामोश ही रहे। पहाड़ी पर पहुँचकर हम हमेशा की तरह अपने उसी अनार के पेड़ के नीचे बैठे जिस पर मैंने अली के चाकू से अपना और हसन का नाम लिखा था। उसे देखते ही मुझे अहसास हो गया कि मैंने वहाँ आकर गलती की थी। मुझे वहाँ नहीं आना चाहिए था। मेरी हिम्मत ही नहीं हो रही थी कि मैं उन शब्दों को देख पाऊँ: 'आमिर और हसन: काबुल के सुल्तान।

हसन ने मुझसे गुज़ारिश की कि मैं उसे शाहनामा से कोई कहानी पढ़कर सुनाऊँ, मगर मैंने उससे कहा कि मेरा मन बदल गया है और मैं अभी के अभी घर जाना चाहता हूँ। वह परे देखने लगा, फिर लाचारी से कंधे झटककर खड़ा हो गया। हम जैसे चुपचाप पहाड़ी पर चढ़े थे, वैसे ही चुपचाप उतर आए। और ज़िन्दगी में पहली बार ऐसा हुआ कि मैं बेसब्री से सर्दियों के ख़त्म होने का इंतज़ार करने लगा।

1975 की उन सर्दियों के बाक़ी बचे हुए दिनों में क्या कुछ हुआ, मुझे ठीक से याद नहीं है। बस इतना याद है कि मैं तभी ख़ुश रहता था जब बाबा घर पर होते थे। हम साथ में खाना खाते, फिल्म देखने जाते, हुमायूँ काका या फारुख काका से मिलने उनके घर जाते। कभी-कभी जब रहीम खान आते तब बाबा मुझे स्टडी में उन लोगों के साथ बैठकर चाय पीने का मौका देते। यहाँ तक कि उन्होंने मेरी लिखी कुछ कहानियाँ भी सुन ली थीं। हमारे बीच सबकुछ अच्छा हो गया था और मुझे लगने लगा था कि आगे भी अच्छा ही रहेगा। और मेरे ख़याल से बाबा भी यही मानकर चल रहे थे। मगर हम दोनों ही इस बात से अनजान थे कि भविष्य के गर्त में कुछ और ही छिपा था। पतंगबाज़ी के मुकाबले के बाद कुछ महीनों तक बाबा और मैं एक सुखद भ्रम में डूबे रहे, एक-दूसरे को उस तरह से देखते रहे जिस तरह पहले कभी नहीं देखा था। वास्तव में हम यह सोचकर ख़ुद को धोखा दे रहे थे कि टिशू पेपर, गोंद और बाँस से बना एक खिलौना (पतंग) किसी तरह हमारे बीच की खाई को पाट सकता था।

मगर जब बाबा घर पर नहीं होते थे –और ऐसा अक्सर ही होता था– तब मैं पूरा समय अपने कमरे में ही बंद रहता था। मैं हर दो दिन में एक किताब पढ़ डालता था, कहानियाँ लिखता था, घोड़ों की तस्वीरें बनाना सीखता था। हर सुबह हसन के रसोई में काम करने, बर्तनों के खनकने, और चाय की केतली की सीटी बजने की आवाज़ें मेरे कानों में पड़ती थीं। जब हसन सब काम ख़तम करके बाहर जाने के लिए रसोई का दरवाज़ा बंद करता था, तब उस आवाज़ को सुनकर मैं नाश्ता करने नीचे जाता था। अपने कमरे में टंगे कैलेण्डर में, मैंने स्कूल के पहले दिन की तारीख पर गोला लगा लिया था और बेसब्री से उस दिन के आने का इंतज़ार करने लगा था।

मगर हसन हमारे बीच संबंधों को फिर से बहाल करने की कोशिशें जारी रखे हुए था। मुझे उसकी आख़िरी कोशिश याद है। मैं अपने कमरे में बैठा 'इवानहो' का संक्षिप्त फ़ारसी अनुवाद पढ़ रहा था, तभी उसने दरवाज़े पर दस्तक दी।

"क्या है?"

"मैं नान ख़रीदने बेकरी जा रहा हूँ," उसने दरवाज़े के दूसरी ओर से कहा। "क्या आप...क्या आप साथ चलना चाहेंगे?"

"नहीं, मैं अभी और पढ़ना चाहता हूँ," मैंने अपनी कनपटियों को सहलाते हुए कहा। उन दिनों अचानक ही मेरे साथ यह समस्या हो गई थी कि जब भी हसन मेरे आस-पास होता था, मुझे सिरदर्द होने लगता था।

"बाहर मौसम बहुत अच्छा है," उसने कहा।

"वो मैं भी देख सकता हूँ।"

"बाहर घूमने में मज़ा आएगा।"

"तुम जाओ।"

"आप साथ चलेंगे तो ही मुझे मज़ा आएगा," उसने कहा। फिर ख़ामोशी छा गई। फिर दरवाज़े पर कुछ टकराया, शायद उसका माथा। "मुझे नहीं पता कि मैंने क्या किया है, आमिर आगा। प्लीज़ आप ही बता दीजिए। मुझे नहीं पता कि हम अब पहले की तरह साथ में क्यों नहीं खेलते।"

"तुमने कुछ नहीं किया है, हसन। तुम बस यहाँ से जाओ।"

"आप मुझे बता दीजिए, मैं दुबारा नहीं करूँगा।"

मेरा अपराध-बोध इतना बढ़ गया कि मैंने अपना सिर अपनी गोद में घुसा लिया और अपनी कनपटियों को दोनों घुटनों के बीच भींच लिया।

"ठीक है, मैं तुम्हें बताता हूँ कि वो कौन सा काम है जो मैं चाहता हूँ कि तुम करना बंद कर दो," मैंने कहा। मेरा सिर अभी भी गोद में धँसा था और मैंने कसकर आँखें बंद की हुई थीं।

"जो भी आप कहें।"

"मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे परेशान करना बंद कर दो। मैं चाहता हूँ कि तुम यहाँ से चले जाओ," मैंने झल्लाकर कहा। मैं चाहता था कि वह पलटकर मुझे मुँहतोड़ जवाब दे, दरवाज़ा तोड़कर भीतर आए और मुझे डपट दे, इससे चीज़ें आसान और बेहतर हो जातीं। मगर उसने ऐसा कुछ नहीं किया, और कुछ मिनटों बाद जब मैंने दरवाज़ा खोला तो वह वहाँ नहीं था। मैं वापस आकर बिस्तर पर गिर पड़ा, अपना सर तकिए के नीचे दबा लिया और ज़ार-ज़ार रोने लगा।

उस दिन के बाद हसन ने मेरे क़रीब आने की बिल्कुल कोशिश नहीं की। मैंने भी इस बात की भरसक कोशिश की कि उसके और मेरे रास्ते जितना हो सकें अलग-अलग रहें; मैं अपनी दिनचर्या इसी बात को ध्यान में रखकर तय करने लगा। क्योंकि हसन जब भी मेरे आसपास होता था तो मुझे ऐसा लगता था मानो मेरे कमरे की ऑक्सीजन ख़त्म हो गई हो। मेरे सीने में जकड़न होने लगती थी और मैं ठीक से साँस नहीं ले पाता था; मैं मानो अपने ही बनाए एक छोटे से, नाममात्र की हवा वाले बुलबुले में कैद होकर जल बिन मछली की तरह तड़पने लगता था। मगर विडंबना यह थी कि वह मेरे आसपास नहीं रहकर भी हरदम मौजूद रहता था। वह हर सुबह अच्छी तरह धुले, इस्त्री किए और तह करके बेंत की कुर्सी पर रखे मिलने वाले कपड़ों में होता था। मेरे कमरे के दरवाज़े के बाहर रखी गईं गर्म चप्पलों में होता था। नाश्ते के लिए नीचे आने पर पहले से जलते मिलने वाले स्टोव में होता था। मैं जहाँ भी जाता, वहीं मुझे उसकी वफ़ादारी के, उसकी कमबख्त बेलौस वफ़ादारी के निशान दिखाई पड़ते।

बसंत का मौसम आने को था। स्कूल खुलने में अभी कुछ दिन बाक़ी थे। एक सुबह बाबा और मैं बाग़ीचे में ट्यूलिप के बल्ब रोप रहे थे। सर्दियों के मौसम में जमी ज़्यादातर बर्फ़ पिघल चुकी थी और उत्तर में खड़ीं पहाड़ियों पर कहीं-कहीं हरी-हरी घास नज़र आने लगी थी। यह एक ठंडी और हलके-हलके कुहासे में लिपटी सुहानी सुबह थी और बाबा मेरी बग़ल में उकडू बैठे थे। मैं उनको एक-एक करके बल्ब देता जा रहा था और वह गड्ढे खोद-खोदकर उन्हें लगाते जा रहे थे। साथ ही साथ वह मुझे बताते जा रहे थे कि कैसे ज़्यादातर लोग इस गलतफ़हमी में रहते हैं कि ट्यूलिप पतझड़ में लगाना बेहतर होता है, जबकि यह सच नहीं है। तभी पता नहीं मुझे क्या सूझा कि मैं पूछ बैठा, "बाबा, क्या आपने कभी नए नौकर रखने के बारे में सोचा है?"

यह सुनते ही उन्होंने हाथ में थमा ट्यूलिप बल्ब नीचे रख दिया, खुरपी को मिट्टी में गाढ़ दिया, और हाथ में पहने हुए दस्ताने उतार दिए। निश्चित रूप से मैंने उन्हें चौंका दिया था। "क्या? क्या कहा तुमने?"

"बस ऐसे ही मेरे दिमाग़ में आ गया, और कुछ नहीं।"

"मैं ऐसा क्यों करना चाहूँगा?" बाबा ने रूखेपन से कहा।

"मेरे ख़याल से आप कभी ऐसा नहीं करेंगे। मैंने तो बस ऐसे ही पूछ लिया था," मैंने मरी हुई आवाज़ में कहा। मुझे ख़ुद ही वह बात मुँह से निकालने का पछतावा हो रहा था।

"इसका हसन से कुछ लेना-देना है क्या? मुझे पता है कि तुम दोनों के बीच कुछ चल रहा है, मगर एक बात कान खोल कर सुन लो, वो तुम्हारी समस्या है, मेरी नहीं। उससे तुम ख़ुद ही निपटो, मैं उसमें नहीं पड़ूँगा।"

"मुझे माफ़ कर दीजिए, बाबा।"

उन्होंने फिर से दस्ताने पहन लिए। "मैं अली के साथ बड़ा हुआ हूँ," उन्होंने दाँत

पीसते हुए कहा। “मेरे बाबा उसे घर लाए थे और वे उसे अपने बेटे की तरह चाहते थे। अली पिछले चालीस सालों से मेरे परिवार के साथ है। चालीस साल, समझे? और तुम्हें लगता है कि अब मैं उसे निकाल दूँगा?” कहते-कहते उनके हाथ रुक गए और वे मेरी ओर देखने लगे। उनका चेहरा ट्यूलिप के फूल की मानिंग लाल हो उठा था। “मैंने आज तक कभी तुम पर हाथ नहीं उठाया है, आमिर, लेकिन अगर तुमने दुबारा ऐसी बात की तो…” कहकर वे परे देखने लगे। “तुमने मुझे हमेशा शर्मसार किया है। और जहाँ तक हसन की बात है…वह कहीं नहीं जाएगा। समझे तुम?”

मैंने नज़रें नीची कर लीं और नीचे पड़ी ठंडी मिट्टी को मुट्ठी में भींच लिया, इतनी ज़ोर से कि वह उँगलियों के बीच से फिसलकर बाहर गिरने लगी।

“मैंने पूछा, समझ में आई बात?” बाबा गरजे।

मैं एकदम से सकपका गया। “जी, बाबा।”

“हसन कहीं नहीं जा रहा है,” बाबा ने एक-एक शब्द पर ज़ोर देते हुए कहा। फिर वह खुरपी से एक नया गड्ढा खोदने लगे, मगर साफ़ समझ आ रहा था कि वह गड्ढा नहीं खोद रहे थे बल्कि अपना गुस्सा निकाल रहे थे। “वह यहीं हमारे साथ रहेगा, यही उसका घर है। यही उसका घर है और हम उसका परिवार हैं। मुझसे दुबारा ऐसा सवाल करने की हिमाकत मत करना!”

“नहीं करूँगा, बाबा। मुझे माफ़ कर दीजिए।”

बाक़ी बचे हुए ट्यूलिप्स लगाने के दौरान हमारे बीच पूरी तरह ख़ामोशी छाई रही।

अगले हफ्ते जब स्कूल खुल गए तो मुझे बड़ी राहत महसूस हुई। पहले दिन जब मैं स्कूल पहुँचा तो देखा हाथों में नई किताब-कापियाँ और नोंक की हुई पेंसिल लिए मेरे सहपाठी स्कूल परिसर में जहाँ-तहाँ घूम रहे थे, छोटे-छोटे झुण्ड बनाकर गपशप कर रहे थे। सभी को क्लास कैप्टन की सीटी बजने का इंतज़ार था। बाबा मुझे कार से छोड़ने आए थे। हमारा स्कूल एक पुरानी दो मंज़िला इमारत थी, जिसकी खिड़कियाँ टूटी हुई थीं और पत्थरों की दीवारों वाले गलियारों में हमेशा थोड़ा-थोड़ा अँधेरा थोड़ा-थोड़ा उजाला रहता था। इसकी दीवारों पर जो प्लास्टर था वो जगह-जगह से उखड़ा हुआ था, जहाँ से उनका असल पीले रंग का पेंट झाँकता था। ज़्यादातर बच्चे पैदल ही स्कूल आते थे, इसलिए जब बाबा की काले रंग की मस्टैंग कार स्कूल परिसर में दाख़िल होती थी तो ढेर सारी नज़रें ख़ुद-ब-ख़ुद उसकी ओर उठ जाती थीं। पिछले साल तक जब बाबा मुझे छोड़ने आते थे तो कार से उतरते समय मैं ‘ख़ास’ होने के अहसास से चमक रहा होता था, मगर इस बार ऐसा नहीं था। इस बार मैं अपने भीतर शर्मिंदगी महसूस कर रहा था। और खालीपन भी। बाबा भी मुझे ‘बाय’ कहे बिना ही चले गए।

मैंने पतंगबाज़ी मुकाबले में भाग लेने के चलते उँगलियों पर बने निशानों को देखने-दिखानी की परंपरा को भी नज़रअंदाज़ कर दिया और जाकर लाइन में खड़ा हो गया। घंटी बजी और हम सभी अपनी-अपनी कक्षाओं में चले गए। मैं पीछे वाली बेंच पर जा

बैठा। जब फारसी के उस्ताद हमें हमारी किताबें बॉट रहे थे, तब मैं मन ही मन दुआ कर रहा था कि हमें ख़ूब सारा होमवर्क मिले।

स्कूल ने मुझे ज़्यादातर वक़्त अपने कमरे में ही बंद रहने का बहाना दे दिया था। स्कूल की वजह से मैं कुछ देर के लिए यह भूल पाता था कि पिछली सर्दियों में क्या हुआ था, मैंने क्या होने दिया था। कुछ हफ़्तों तक मैंने हसन और उसके साथ जो कुछ हुआ था, उसके बारे में सोचने के बजाए गुरुत्वाकर्षण और गति, परमाणुओं और कोशिकाओं, और एंग्लो-अफ़ग़ान युद्धों में ख़ुद को व्यस्त रखा। मगर मैं चाहे कुछ भी करूँ, मेरा दिमाग़ बारम्बार उसी गली में पहुँच जाता था। ईंटों के मलबे पर पड़ी हसन की कत्थई रंग की कॉरडरॉय पैंट पर पहुँच जाता था। उसके पैरों के बीच से टपकतीं सुर्ख़ लाल रंग की उन बूँदों पर पहुँच जाता था, जिन्होंने नीचे बर्फ़ पर लगभग काले रंग का निशान बना दिया था।

फिर एक दोपहर मैंने हसन से पहाड़ी पर चलने के लिए कहा। मैंने कहा कि मैं उसे अपनी लिखी हुई एक नयी कहानी सुनाना चाहता था। उस वक़्त वह धुले कपड़े सुखाने के लिए आँगन में बंधी रस्सी पर लटका रहा था। मेरा प्रस्ताव सुनकर उसने जिस तत्परता से काम ख़त्म करना शुरू किया, उससे मेरे साथ जाने को लेकर उसकी उत्सुकता साफ़ झलक रही थी।

पहाड़ी चढ़ते समय हमारे बीच थोड़ी-बहुत बातें हुईं। उसने पूछा कि स्कूल में सब कैसा चल रहा था, मैं क्या सीख रहा था। और बदले में, मैंने अपने अध्यापकों के बारे में बात की, खासकर गणित के उन अध्यापक के बारे में जो क्लास में बातें करने वाले लड़कों को सज़ा देने के लिए उनकी उंगलियों के बीच एक धातु की छड़ फँसाकर उँगलियों को आपस में ज़ोर से दबा देते थे। हसन ने इस पर ताज्जुब जताते हुए कहा कि उसे उम्मीद है कि मुझे कभी भी इस सज़ा से नहीं गुज़रना पड़ेगा। मैंने उसे बताया कि मैं इस मामले में अब तक किस्मतवाला रहा था। मगर यह सच नहीं था; इसमें किस्मत की कोई भूमिका नहीं थी। दूसरे बच्चों की तरह ही मैं भी क्लास में ख़ूब बातें करता था। मगर चूँकि मेरे बाबा एक अमीर और नामचीन शख़्स थे, इसलिए अध्यापक महोदय मुझे वह सज़ा देने में हिचकिचाते थे।

पहाड़ी पर पहुँचकर हम अपने अनार के पेड़ की छाया में क़ब्रिस्तान की दीवार से टेक लगाकर बैठ गए। आगामी महीने-दो महीने में पूरी पहाड़ी झुलसी हुई पीली घास से ढँक जाने वाली थी। चूँकि उस साल बसंत की बारिश सामान्य से ज़्यादा समय तक चली थी और गर्मियों की शुरुआत तक बारिश हुई थी, इसीलिए घास अभी भी हरी थी और जंगली फूलों की भरमार थी। पहाड़ी के नीचे वज़ीर अकबर ख़ान के सफ़ेद दीवारों और सपाट छतों वाले घर धूप में चमक रहे थे, उनके आँगन में कपड़े सुखाने की रस्सी पर लटके हुए कपड़े तेज़ हवा के चलते तितलियों की तरह नाच रहे थे।

हमने पेड़ से दर्जन भर के क़रीब अनार तोड़ लिए थे। मैंने वह कहानी खोली जो मैं साथ लाया था, पहला पन्ना पलटा, और फिर उसे नीचे रख दिया। फिर मैं उठकर खड़ा

हो गया और ज़मीन पर पड़ा एक सड़ा हुआ अनार उठा लिया।

"अगर मैं तुम्हें इससे मारूँ तो तुम क्या करोगे?" मैंने उस अनार को हाथ में गेंद की तरह ऊपर-नीचे उछालते हुए कहा।

हसन की मुस्कान मुरझा गई। वह अपनी उम्र से कहीं ज़्यादा का दिखाई देने लगा था। नहीं, 'कहीं ज़्यादा' नहीं, 'बहुत ज़्यादा'। मगर क्या यह मुमकिन था? उसके धूप से ताम्बई हुए चेहरे पर ढेरों लकीरें उभर आई थीं और उसकी आँखों और मुँह के इर्द-गिर्द झुर्रियाँ पड़ गई थीं। ये रेखाएँ और झुर्रियाँ साफ़ देखी जा सकती थीं।

"तुम क्या करोगे?" मैंने फिर से पूछा।

उसका चेहरा उतर गया। उसके बग़ल में रखी उस कहानी की किताब के पन्ने हवा में फड़फड़ाने लगे, जिसे सुनाने का वादा करके मैं उसे वहाँ लाया था। मैंने हाथ में पकड़ा हुआ अनार उस पर खींच मारा, जो सीधा जाकर उसकी छाती पर लगा। उसका लाल गूदा उसकी शर्ट पर छितरा गया। हसन चीख पड़ा। उस चीख में आश्चर्य और दर्द दोनों थे।

"तुम भी मारो मुझे!" मैंने तीखे स्वर में कहा। हसन, जो अपनी शर्ट पर लगे दाग को देख रहा था, मेरी बात सुनकर अब मेरी ओर देखने लगा।

"उठो! मारो मुझे!" मैंने कहा। हसन उठ तो गया, मगर अपनी जगह पर ही खड़ा रहा। वह उस आदमी की तरह भौचक्का था जिसे अचानक आया तूफ़ान गहरे समंदर में घसीट ले गया हो, जबकि कुछ ही पल पहले वह किनारे पर सैर का मज़ा ले रहा था।

मैंने ज़मीन से एक और अनार उठाकर उस पर खींच मारा। अबकी बार वह उसके कंधे पर लगा। अनार का रस उसके पूरे चेहरे पर फ़ैल गया। "मारो मुझे!" मैंने पागलों की तरह चीखते हुए कहा। "मारो मुझे भी! मारते क्यों नहीं, कमबख्त कहीं के!" मैं चाह रहा था कि वह भी पलटवार करे। मैं चाह रहा था कि वह मुझे वह सज़ा दे जिसका मैं तलबगार था, ताकि मैं फिर से रातों को सो सकूँ। शायद तब हमारे बीच सबकुछ फिर पहले जैसा हो जाएगा। मगर हसन ने ऐसा कुछ नहीं किया। मैं अनार पे अनार मारता गया, मगर उसने पलटवार नहीं किया। "तुम कायर हो!" मैंने कहा। "बहुत ही बड़े वाले कायर!"

मुझे याद नहीं कि मैंने उसे कितनी बार मारा। बस इतना याद है कि जब मैं आख़िर-कार थककर हाँफते हुए रुका तो हसन ऊपर से नीचे तक लाल रंग में यूँ नहाया हुआ था जैसे किसी ने उसके शरीर को गोलियों से छलनी कर दिया हो। मैं घुटनों के बल धम्म से ज़मीन पर बैठ गया – थका हुआ, चुका हुआ, हारा हुआ।

तब हसन ने ज़मीन पर पड़ा एक अनार उठाया और चलते हुए मेरे पास आया। उसने उसे फोड़ा और फचाक से अपने ही माथे पर दे मारा। "लीजिए," उसने कर्कश स्वर में कहा। अनार का लाल रस और गूदा उसके चहरे से ख़ून की तरह टपक रहा

था। “अब तो आपको तसल्ली है न? अब तो आपको अच्छा लग रहा है न?” इतना कहकर वह मुड़ा और पहाड़ी से नीचे उतरने लगा।

मैं फूट-फूटकर रोने लगा। बड़ी देर से रोक कर रखे हुए आँसुओं ने बाँध तोड़ दिया था।

“मैं तुम्हारा क्या करूँ, हसन? क्या करूँ मैं तुम्हारा?” आख़िर-कार जब मैं अपने आँसू पोंछकर पहाड़ी से नीचे उतरने लगा, तब तक इस सवाल का जवाब मेरे ज़ेहन में आ चुका था।

1976 की गर्मियों में, मैं तेरह बरस का हो गया था। उस वक़्त किसे पता था कि जल्द ही अफ़ग़ानिस्तान में अमन-चैन खोने वाला था और अफ़ग़ानिस्तान का नाम अचानक से दुनिया के नक़्शे पर उभरने वाला था – बेशक गलत वजहों से। बाबा और मेरे बीच की गर्मजोशी फिर से ठंडी पड़ने लगी थी। मेरा ख़याल है इसकी शुरुआत मेरे उसी नामाकूल सवाल से हुई थी जो मैं ट्यूलिप लगाते वक़्त बाबा से पूछ बैठा था। मुझे उस बात को मुँह से निकालने का बेहद अफ़सोस था, दिल से अफ़सोस था, मगर मुझे लगता है कि अगर मैंने वह सवाल न भी किया होता तब भी हम दोनों के रिश्ते में आया वह छोटा-सा सुखद अंतराल ख़त्म हो ही जाता। भले इतनी जल्दी नहीं होता, मगर होता ज़रूर। गर्मियाँ ख़त्म होते-होते एक बार फिर खाना खाते वक़्त डाइनिंग टेबल पर सन्नाटा पसरा रहने लगा था (काँटे-छुरियों और बर्तनों की आवाजों को छोड़कर) और बाबा ने खाने के बाद ख़ुद को अपनी स्टडी तक सीमित कर लेने की आदत फिर अपना ली थी। एक बार फिर उनकी स्टडी का दरवाज़ा मेरे लिए बंद रहने लगा था। मैंने भी वापस से हाफ़िज़ और खय्याम को पढ़ना, अपने नाख़ून चबाना, और कहानियाँ लिखना शुरू कर दिया था। कहानियाँ लिख-लिखकर मैं उन्हें एक फाइल में लगाकर अपने पलंग के नीचे रखता जाता था, इस उम्मीद में कि शायद फिर कभी ऐसा वक़्त आए जब बाबा मुझसे मेरी कहानी सुनें। हालाँकि मुझे इसकी उम्मीद बहुत कम थी।

पार्टी देने को लेकर बाबा की सोच यह थी कि जब तक सारी दुनिया को न बुला लिया जाए, तब तक पार्टी कैसी। मुझे याद है कि अपनी तेरहवीं सालगिरह की पार्टी से एक हफ्ते पहले मैंने जब मेहमानों की सूची देखी तो पाया कि उसमें दर्ज चार सौ से भी ज़्यादा काकाओं और खालाओं में से कम से कम तीन-चौथाई ऐसे थे जिन्हें मैं जानता ही नहीं था। फिर मुझे अहसास हुआ कि वास्तव में वे सब मेरे लिए नहीं आ रहे थे। सालगिरह बेशक मेरी थी, पर मुझे पता था कि उस जलसे का असली आकर्षण कौन होने वाला था।

कई दिनों तक घर बाबा के द्वारा पार्टी की तैयारी के लिए बुलाए गए लोगों से भरा रहा। इन्हीं लोगों में से एक था सलाहुद्दीन नाम का कसाई, जो एक बछड़े और दो भेड़ों को लेकर आया था और जिसने उन तीनों में से किसी भी जानवर के लिए पैसे लेने से इंकार कर दिया था। आँगन में एक चिनार के पेड़ के पास उसने तीनों जानवरों को ख़ुद अपने हाथों से हलाल किया। “ख़ून पेड़ के लिए अच्छा होता है,” उसने कहा था, तब

जब चिनार के चारों ओर की घास लाल हो गई थी। इसी तरह तमाम पेड़ों पर चढ़-चढ़कर बिजली के छोटे-छोटे बल्बों से बनीं झालरों को सजाने के लिए भी आदमी लगाए गए थे। कुछ आदमी यार्ड में मेज़ें लगाने और उन पर मेज़पोश बिछाने के काम में लगे थे। दर्जनों मेज़ें लगाई गई थीं। पार्टी से एक रात पहले बाबा के दोस्त डेल-मुहम्मद, जो शर-ए-नौ में एक कबाब हाउस चलाते थे, मसालों से भरा बोरा लेकर घर आए। कसाई सलाहुद्दीन की ही तरह डेल-मुहम्मद साहब, जिन्हें बाबा डेल्लो कहते थे, उन्होंने भी इसके लिए पैसे लेने से साफ़ इंकार कर दिया था। उनका कहना था कि बाबा ने उनके परिवार के लिए इतना कुछ किया था कि उसके सामने यह कुछ भी नहीं था। जब डेल्लो साहब माँस को मसालों में लपेट रहे थे, तब रहीम खान ने मेरे कान में फुसफुसाकर बताया था कि डेल्लो साहब का जो कबाब हाउस था, उसे खोलने के लिए ज़रूरी रकम उन्हें बाबा ने ही उधार दी थी। और बाबा तब तक वो रकम वापस लेने से इंकार करते रहे थे जब तक कि एक दिन डेल्लो साहब अपनी बेंज कार में सवार होकर हमारे घर नहीं आ गए और ज़िद पकड़कर नहीं बैठ गए कि जब तक बाबा पैसे वापस नहीं लेंगे तब तक वह वहाँ से हिलेंगे भी नहीं।

मेरे ख़याल से मेरी सालगिरह की पार्टी ज़्यादातर पैमानों पर, या कम से कम उन सभी पैमानों पर जिन पर किसी पार्टी की कामयाबी या नाकामी मापी जाती थी, बेहद कामयाब साबित हुई थी। मैंने अपने घर को लोगों से इतना भरा पहले कभी नहीं देखा था। हर जगह मेहमान ही मेहमान नज़र आ रहे थे। कुछ हाथों में शराब के गिलास लिए गलियारों में बतिया रहे थे, कुछ सीढ़ियों पर खड़े होकर धुआँ उड़ा रहे थे, तो कुछ दरवाज़ों की चौखटों से ही टिककर खड़े थे। जिसको जहाँ जगह मिल रही थी, वहीं बैठ रहा था – किचन काउंटर्स पर, बरामदे में, यहाँ तक कि सीढ़ियों के नीचे भी। कुछ लोग पीछे बाड़े में पेड़ों पर चमकती नीले, लाल और हरे रंग के बिजली के बल्बों की जगमग रोशनियों तले पार्टी का मज़ा ले रहे थे। वहाँ लगीं मिट्टी के तेल की मशालों की चमक से उनके चेहरे जगमगा रहे थे। बाबा ने बाग़ीचे की ओर खुलने वाली बालकनी में एक मंच बनवाया था और पूरे परिसर में स्पीकर लगवाए थे। मंच पर नाचते हुए लोगों के बीच ख़ुद अहमद ज़हीर अकॉर्डियन बजाकर गा रहे थे!

बाबा ने यह सुनिश्चित किया था कि मैं ख़ुद हरेक मेहमान का इस्तकबाल करूँ, ताकि कल को कोई यह न कह सके कि बाबा ने अपने बेटे को अदबी तौर-तरीक़े नहीं सिखाए थे। इस चक्कर में मुझे हज़ारों गालों को चूमना पड़ा, पूरी तरह अनजान लोगों के गले लगना पड़ा, उनके लाए उपहारों के लिए उनका शुक्रिया अदा करना पड़ा। नकली मुस्कान चेहरे पर चिपकाए-चिपकाए मेरा चेहरा बुरी तरह दर्द करने लगा था।

मैं बाबा के साथ यार्ड में बने बार के पास खड़ा था कि तभी किसी ने कहा, “सालगिरह मुबारक हो, आमिर।” देखा तो थोड़ी दूरी पर अस्सेफ़ खड़ा था, अपने वालिद-वालिदा के साथ। अस्सेफ़ के वालिद (बाबा), महमूद, दरमियाने कद, सुतवाँ शरीर, गहरी रंगत और पतले-से चेहरे वाले आदमी थे। उसकी वालिदा (माँ), तान्या, छोटी कद-काठी की औरत थीं, जो हमेशा नर्वस रहती थीं और इसीलिए बात-बात पर

अकारण मुस्करा पड़ती थीं, साथ ही उनकी एक आँख भी फड़कने लगती थी। यह उनकी आदत में शुमार हो गया था। अस्सेफ़ मुस्कराता हुआ उन दोनों के बीच में खड़ा था। उसने उन दोनों के कन्धों पर हाथ रखा हुआ था और उन्हें धकियाता हुआ-सा हमारी ओर ही चला आ रहा था। उसकी कदकाठी और हाव-भाव देखकर ऐसा मालूम हो रहा था जैसे वो उनका अभिभावक हो और वे उसके बच्चे। मुझे अपने होश फाख्ता होते से मालूम हुए। जब वे लोग क़रीब आए तो बाबा ने उन्हें आने के लिए शुक्रिया कहा।

"तुम्हारे लिए तोहफ़ा मैंने ख़ुद चुना है," अस्सेफ़ बोला। उसकी वालिदा का चेहरा फड़क उठा और उनकी नज़रें उससे हटकर मुझ पर जम गईं। उनके चेहरे पर एक नर्वस मुस्कान उभरी और उनकी आँख भी फड़कने लगी। पता नहीं बाबा ने यह सब देखा या नहीं।

"आपकी फुटबॉल अभी भी चालू है, अस्सेफ़ जान?" बाबा ने पूछा। बाबा हमेशा से चाहते थे कि मैं अस्सेफ़ से दोस्ती रखूँ।

अस्सेफ़ मुस्कराया। कितनी मक्कारी से वह ख़ुद को शरीफ़ दिखाने की कोशिश कर रहा था। "बिल्कुल, काका जान।"

"तुम राईट विंग खेलते हो न?"

"पहले खेलता था, इस साल से सेण्टर फॉरवर्ड खेलने लगा हूँ। वहाँ से गोल करने के ज़्यादा मौके मिलते हैं। अगले हफ्ते हम मेक्रो-रेयान टीम के ख़िलाफ़ खेलेंगे। अच्छा मैच होगा। उनकी टीम में कई अच्छे खिलाड़ी हैं," अस्सेफ़ ने कहा।

बाबा ने सहमति में सिर हिलाया और बोले, "पता है, तुम लोगों की उम्र में, मैं भी सेण्टर फॉरवर्ड ही खेलता था।"

"आप तो आज भी खेल सकते हैं, काका जान," अस्सेफ़ ने कहा। कहते हुए उसने बाबा की ओर देखकर आँख मारी।

जवाब में बाबा ने भी उसे आँख मारी। "देखता हूँ कि तुम्हारे बाबा ने तुमको लोगों को रिझाने के अपने मशहूर तौर-तरीक़े अच्छी तरह सिखाए हैं।" इतना कहकर बाबा ने धीरे से अस्सेफ़ के बाबा को कोहनी मारी, मगर उनके जैसे दुबले-पतले आदमी के लिए वह इतनी ज़ोर से थी कि वह गिरते-गिरते बचे। दिखाने के लिए वह ज़ोरों से हँस दिए, मगर उनकी हँसी भी उतनी ही नकली मालूम पड़ रही थी जितनी नकली उनकी बीवी की मुस्कान लगती थी। बदले में, मैंने भी झूठ-मूठ मुस्कराने की कोशिश की, मगर मैं अपने होंठों को ज़रा-सा ऊँचा उठाने से ज़्यादा और कुछ न कर सका। बाबा को अस्सेफ़ से हँस-हँस कर बातें करते देखकर मुझे उल्टी भरने लगी थी।

अब अस्सेफ़ ने अपनी गर्दन मेरी ओर घुमाई और बोला, "वली और कमाल भी आए हैं। तुम्हारी सालगिरह की पार्टी हो और और वे न आएँ, ऐसा तो हो ही नहीं

सकता।” साफ़-साफ़ समझ आ रहा था कि वो मेरी हँसी उड़ा रहा था। मैंने ख़ामोशी से गर्दन हिला दी।

“हम लोग कल मेरे घर पर एक छोटा सा वॉलीबॉल का मैच खेलने का सोच रहे हैं,” अस्सेफ़ ने कहा। “तुम भी आओ। और चाहो तो हसन को भी ला सकते हो।”

“तब तो बड़ा मज़ा आएगा,” बाबा ने ख़ुशी से दमकते हुए कहा। “क्या कहते हो, आमिर?”

“मुझे वॉलीबॉल कुछ ख़ास पसंद नहीं है,” मैंने धीरे से कहा। मैंने देखा कि मेरी बात सुनकर बाबा की आँखों की चमक फीकी पड़ गयी और कुछ पलों के लिए वह ख़ामोश हो गए। उनकी वो ख़ामोशी मुझे असहज कर रही थी।

“सॉरी, अस्सेफ़ जान,” आख़िर-कार बाबा ने ख़ामोशी तोड़ी और कंधे झटकते हुए कहा। मेरे लिए उनका अस्सेफ़ से माफ़ी माँगना मुझे बिच्छू के डंक की तरह चुभ गया।

“नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है,” अस्सेफ़ ने कहा। “लेकिन अगर तुम्हारा मन बदले तो तुम आ सकते हो, आमिर जान।

बहरहाल, मैंने सुना है कि तुम्हें किताबें पढ़ने का बहुत शौक है, इसलिए मैं तोहफे के तौर पर किताब ही लाया हूँ। मेरी पसंदीदा किताब।”

फिर उसने रंगीन काग़ज़ में लिपटा एक पैकेट मेरी तरफ़ बढ़ाते हुए कहा, “सालगिरह मुबारक हो।”

उसने एक सूती शर्ट और नीला पेंट पहना हुआ था। गले में लाल रंग की सिल्क की टाई बाँधी हुयी थी और पैरों में काले रंग के चमचमाते जूते पहने थे। उसके बदन से कोलोन की महक आ रही थी और उसने अपने सुनहरी बाल करीने से पीछे की ओर जमा रखे थे। ऊपर से वह एक ऐसा आदर्श लड़का नज़र आता था –लम्बा, तगड़ा, अच्छे से बन-सँवरकर रहने वाला, सबके साथ अच्छे से पेश आने वाला, दिखने-दिखाने में सुन्दर, हुनरमंद, यहाँ तक कि बड़ों से भी मज़ाक कर सकने की काबिलियत रखने वाला– जिसे औलाद के रूप में पाना हर माँ-बाप का सपना होता है। मगर मैं जानता था कि अन्दर से वह क्या था। उसकी आँखें सबको धोखा दे सकती थीं, मुझे नहीं। मैं जब उन आँखों में देखता था तो उसका ऊपरी आवरण छिन्न-भिन्न हो जाता था और उसके भीतर का पागलपन, वहशीपन बाहर झाँकने लगता था।

“तुम इसे लोगे नहीं, आमिर?” बाबा कह रहे थे। “हुँह?”

“तुम्हारा तोहफ़ा,” उन्होंने एक-एक अल्फ़ाज़ पर ज़ोर देते हुए कहा। “अस्सेफ़ जान तुम्हें तोहफ़ा दे रहे हैं।”

“ओह!” मेरे मुँह से निकला। मानो मैं सोते से जाग गया होऊँ। मैंने अस्सेफ़ के हाथ से तोहफ़ा ले लिया और नीचे की ओर देखने लगा। मेरा मन हुआ कि मैं अभी के अभी

अपने कमरे में भाग जाऊँ और अपनी किताबों में खो जाऊँ।

"तो फिर?" बाबा ने कनखियों से मुझे देखकर कहा।

"क्या?"

"अस्सेफ़ जान का शुक्रिया अदा नहीं करोगे? उन्होंने आपको तोहफ़ा दिया है।" बाबा ने धीरे से फुसफुसाते हुए कहा। इस तरह फुसफुसाकर वह तभी बात करते थे जब मैं लोगों के सामने कोई ऐसी हरकत कर रहा होता था जिससे उन्हें नीचा देखना पड़े।

बाबा के अस्सेफ़ को बार-बार जान कहकर संबोधित करने से मेरे कानों में सुइयाँ सी चुभ रही थीं। मुझे तो कभी वो 'आमिर जान' कहकर नहीं बुलाते! मगर कोई और चारा न होने के कारण मुझे कहना पड़ा, "शुक्रिया।" अस्सेफ़ की वालिदा ने कुछ इस अंदाज़ में मुझे देखा जैसे कुछ कहना चाह रही हों, मगर कहा नहीं। और तब पहली बार मैंने ध्यान दिया कि इतनी देर में अस्सेफ़ वालिद-वालिदा ने एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला था। इससे पहले कि मैं ख़ुद के या बाबा के लिए और ज़्यादा शर्मिंदगी की वजह बनूँ, मैं "आने के लिए शुक्रिया" कहकर वहाँ से हट गया। मगर असल बात यह थी कि मैं अस्सेफ़ और उसकी मक्कारी भरी मुस्कान का और ज़्यादा देर सामना करने की हालत में नहीं था।

मैं मेहमानों की भीड़ के बीच से जगह बनाता हुआ दरवाज़े से बाहर निकला और फिर ड्राइव-वे को पार करते हुए लोहे के फाटक को खोलकर घर से बाहर निकल गया। हमारे घर से दो घर छोड़कर एक बड़ा सा खाली मैदान था। मैंने बाबा को रहीम खान से कहते सुना था कि किसी जज ने उसे ख़रीदा था और वह उस पर अपना मकान बनाने वाला था; उसका आर्किटेक्ट डिज़ाईन तैयार कर रहा था। मगर फिलहाल वह जगह पूरी तरह उजाड़ थी और वहाँ धूल-मिट्टी, कंकड़-पत्थरों, और झाड़-झंकाड़ के अलावा और कुछ नहीं था।

मैंने अस्सेफ़ के दिए तोहफे का ऊपरी सजावटी काग़ज़ फाड़ डाला और चाँद की रोशनी में उस किताब का कवर देखा जो भीतर से निकली थी। यह हिटलर की जीवनी थी। मैंने उसे पूरी ताक़त से फेंक दिया और वह दूर झाड़ियों के बीच जाकर गिरी।

मैं बग़ल वाली इमारत की दीवार से पीठ टिकाकर खड़ा हो गया और फिर धीरे-धीरे मेरे घुटने मुड़ने लगे, मैं दीवार से पीठ सटाए-सटाए उकड़ूँ बैठ गया। अपने घुटनों को छाती से चिपकाए मैं देर तक अँधेरे में बैठा रहा – ऊपर तारों भरे आसमान को ताक़ते हुए, रात ख़त्म होने का इंतज़ार करते हुए।

तभी एक जानी-पहचानी आवाज़ मेरे कानों में पड़ी। "आपको नहीं लगता कि इस वक़्त आपको अपने मेहमानों के बीच होना चाहिए?" यह रहीम खान की आवाज़ थी जो दीवार के किनारे-किनारे चलते हुए मेरी ही ओर आ रहे थे।

"मेरे वहाँ होने की ज़रूरत नहीं है, बाबा हैं वहाँ।" रहीम खान आकर मेरी बग़ल में बैठ गए। इस उपक्रम में उनके गिलास में पड़ी बर्फ़ खनक उठी। "मुझे नहीं पता था कि आप भी पीते हैं?"

"आज पता चल गया न," उन्होंने मज़ाक में मुझे कोहनी मारते हुए कहा। "मगर सिर्फ़ बेहद ख़ास मौकों पर।"

"शुक्रिया!" मैंने मुस्कराते हुए कहा।

उन्होंने अपना गिलास मेरे घुटने से टच किया और फिर उसमें से एक घूँट भरा। फिर एक सिगरेट जला ली। यह किसी ख़ास ब्रांड की बिना फ़िल्टर वाली पाकिस्तानी सिगरेट थी; बाबा और रहीम खान हमेशा यही पीते थे।

"क्या मैंने कभी आपको बताया कि एक बार मेरी शादी होते-होते रह गयी थी?"

"वाक़ई?" रहीम खान के शादी करने की बात सुनकर मुझे हैरानी हुई और मेरे होंठों पर हल्की सी मुस्कान तैर गयी। मेरे मन में उनकी छवि बाबा से एकदम उलट शख़्सियत वाले ख़ामोश व्यक्ति की थी। वही थे जिनकी हौसला अफज़ाई की वजह से मेरे भीतर का लेखक न सिर्फ़ ज़िन्दा था बल्कि फल-फूल भी रहा था। वह जितने बाबा के दोस्त थे, उतने ही मेरे भी। वह कभी भी कहीं बाहर जाते तो वहाँ से मेरे लिए कोई न कोई सौगात लाना कभी नहीं भूलते थे। मगर उनकी किसी के बाबा या शौहर के रूप में कल्पना मैंने कभी नहीं की थी।

मेरी बात पर उन्होंने हाँ में सर हिलाते हुए कहा, "यह सच है। मैं तब अठारह बरस का था। उसका नाम होमायरा था। वह हज़ारा थी, हमारे पड़ौसी के नौकर की बेटी। किसी परी जितनी ख़ूबसूरत थी वह! उसके हल्के भूरे बाल, बड़ी-बड़ी कत्थई आँखें... और उसकी वह खनकती हुई हँसी...जो आज भी कभी-कभी मेरे कानों में गूँजती है।" उन्होंने अपने गिलास को गोल-गोल हिलाकर बर्फ़ को घोलने का उपक्रम किया। "हम हमेशा चोरी-छिपे मिलते थे...आधी रात के बाद, जब सब सो चुके होते थे...मेरे बाबा के सेब के बाग़ीचे में। हम पेड़ों के नीचे टहलते हुए बातें करते थे, हाथों में हाथ लिए... यह सब सुनकर आपको शर्म तो महसूस नहीं हो रही है न, आमिर जान?"

"थोड़ी-थोड़ी," मैंने कहा।

"कोई हर्ज़ नहीं," कहकर उन्होंने सिगरेट का एक और कश भरा। "बहरहाल, हम दोनों ने मिलकर एक सपना देखा था कि बहुत धूम-धाम से हमारी शादी होगी, जिसमें हम काबुल से लेकर कंधार तक फैले अपने सभी दोस्तों और रिश्तेदारों को बुलाएँगे। मैं हम दोनों के रहने के लिए एक बड़ा-सा घर बनाऊँगा – सफ़ेद रंग का बड़ा सा घर, जिसमें बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ और टाइल्स के फर्श वाला आँगन होगा। अपने बाग़ीचे में हम तमाम तरह के फलदार पेड़ लगाएँगे और तरह-तरह के फूलों वाली एक बगिया भी तैयार करेंगे। हमारे बच्चों के खेलने के लिए एक लॉन भी होगा। जुम्मे के दिन मस्जिद में नमाज़ अदा करने के बाद सभी लोग दोपहर के खाने के लिए हमारे घर

इकट्ठे होंगे और हम लोग बाग़ीचे में चैरी के पेड़ों के नीचे बैठकर खाना खाएँगे और वहीं बने कुँए से निकालकर पानी पीएँगे। फिर शाम को जब हमारे बच्चे अपने चचेरे-ममेरे भाई-बहनों के साथ खेल रहे होंगे, तब हम चाय और कैंडी के साथ उनके खेल का लुत्फ़ उठाएँगे…।”

उन्होंने गिलास से स्कॉच का एक लम्बा घूँट भरा, जिसके चलते उन्हें हल्का सा ठसका लग गया। “मैंने जब इस बारे में अपने बाबा को बताया तब उनका चेहरा देखने लायक था। मेरी अम्मी जान तो लगभग बेहोश ही हो गयीं थीं। मेरी बहनों ने उनके मुँह पर पानी छिड़का, तब जाकर वह होश में आयीं। वे उनको पंखा झलते हुए इस तरह मेरी ओर देख रही थीं मानो मैंने उनके गले पर छुरी चला दी हो। मेरा भाई जलाल तो इतने गुस्से में आ गया था कि अपनी शिकार खेलने वाली बन्दूक उठाकर होमायरा को मारने जाने लगा था, मगर बाबा ने उसे रोक लिया।” रहीम खान हल्के से हँसे, मगर उनकी उस हँसी में भारी कड़वाहट थी। “सारा जहान हमारे ख़िलाफ़ हो गया था। और मैं एक बात बताऊँ, आमिर जान, आपको, आख़िर में हमेशा जहान ही जीतता है। यही ज़िन्दगी का दस्तूर है।”

“तो फिर क्या हुआ?”

“उसी दिन मेरे बाबा ने होमायरा और उसके पूरे परिवार को एक लॉरी में बिठाकर हज़ाराजात भिजवा दिया। उस दिन के बाद मैंने फिर कभी होमायरा को नहीं देखा।

“मुझे बेहद अफ़सोस है,” मैंने कहा।

“मगर शायद यह अच्छा ही हुआ,” रहीम खान ने कन्धों को झटकते हुए कहा, “वर्ना उसे बहुत कुछ भुगतना पड़ता। मेरे घरवाले उसे कभी भी बराबरी का दर्जा नहीं देते। ऐसा नहीं हो सकता कि आज जिसे आप अपने जूते पॉलिश करने का हुक्म दे रहे हों, अगले ही दिन उसे ‘बहन’ कहकर पुकारने लगें।” इतना कहकर वह मेरी ओर देखने लगे। “आपसे एक बात कहूँ? आप मेरे साथ अपने दिल की कोई भी बात शेयर कर सकते हैं, आमिर जान। कभी भी।”

“मैं जानता हूँ,” मैंने उलझन में पड़ते हुए कहा। वह बड़ी देर तक मेरी तरफ़ देखते रहे, इंतज़ार करते रहे कि शायद मैं कुछ कहूँगा। उनकी गहरी काली आँखों में इस बात की उम्मीद नज़र आ रही थी कि शायद कोई ऐसा राज़ है जो अब तक मैंने उनसे साझा नहीं किया है। एक पल को तो मेरा मन हुआ कि मैं उन्हें सबकुछ बता दूँ। मैं बोलने को हुआ ही था कि तभी मन के किसी कोने से आवाज़ आई, ‘यह सब जानकर वह तेरे बारे में क्या सोचेंगे? वह तुझसे नफ़रत करने लगेंगे। और करनी भी चाहिए।’

“अरे, मैं तो भूल ही गया था,” उन्होंने मुझे कुछ थमाते हुए कहा। “यह आपके लिए है। सालगिरह मुबारक हो।” वह रंगीन काग़ज़ में लिपटा तोहफ़ा था। मैंने उसे खोला तो देखा कि वह एक कत्थई रंग की चमड़े की जिल्द वाली डायरी थी। मैंने उसके किनारों पर की गई सुनहरी रंग की सिलाई पर उंगलियाँ फिराईं, जिल्द के चमड़े को सूँघा।

“आपकी कहानियों के लिए,” उन्होंने कहा। मैं उन्हें शुक्रिया कहने जा ही रहा था कि तभी एक ज़ोर का धमाका हुआ और आसमान तेज़ रोशनियों से चमक उठा।

“आतिशबाज़ी!”

हम फ़टाफ़ट घर पहुँचे तो देखा कि सारे मेहमान यार्ड में खड़े होकर आसमान में हो रही आतिशबाज़ी को ही देख रहे थे। चिट-चिट-चिट की हर आवाज़ और उसके बाद आसमान में रोशनी की झिलमिलाहट के हर नज़ारे के साथ सारे बच्चे रोमांच के मारे चीख़ उठते। बड़े लोग भी पीछे नहीं थे, जब-जब आसमान में आग की लपटें उठतीं और शोलों के गुलदस्ते-सी बिखर जातीं, तब वे भी ख़ुशी से झूम उठते और तालियाँ बजाने लगते। कुछ-कुछ सेकण्ड्स के अंतराल से पूरा आसमान अचानक ही लाल, हरी, पीली रोशनियों से जगमगा उठता था।

इन्हीं झिलमिलाहटों में से एक के दौरान मैंने कुछ ऐसा देखा जिसे मैं कभी नहीं भूलूँगा। मैंने देखा कि हसन अस्सेफ़ और वली को चाँदी की तश्तरी में रखकर सॉफ्ट ड्रिंक परोस रहा था। वह झिलमिलाहट बुझ गई। कुछ सेकण्ड्स बाद एक और धमाका हुआ, एक और बार चिट-चिट-चिट की आवाज़ हुई, फिर नारंगी रोशनी की एक और झिलमिलाहट हुई। मैंने देखा कि अस्सेफ़ हसन की छाती को अपनी उंगली के पोर से ज़ोर से दबाते हुए मक्कारी से मुस्करा रहा था।

और फिर एक बार अँधेरा छा गया। शायद ऊपरवाले को मुझ पर तरस आ गया।

नौ

अगले दिन सुबह अपने कमरे में बैठकर मैं एक-एक करके सभी तोहफों को खोल-खोलकर देखने लगा। मुझे नहीं पता कि मैं ऐसा करने की ज़हमत भी क्यों उठा रहा था, क्योंकि मुझे उनमें नाममात्र की भी दिलचस्पी नहीं थी। मैं उन्हें बस एक नज़र देखता (वो भी बिल्कुल बेमन से) और फिर एक कोने में उछाल देता। धीरे-धीरे करके कोने में तोहफों का ढेर बड़ा होता गया, जिसमें एक पोलारॉयड कैमरा, एक ट्रांजिस्टर रेडियो और एक बड़ा-सा इलेक्ट्रिक ट्रेन सेट जैसी चीज़ें और कई सीलबंद लिफाफे (जिनमें नकदी थी) शामिल थे। मुझे मालूम था कि मैं कभी भी उन पैसों को नहीं खर्चूंगा, न ही कभी वह रेडियो सुनूँगा, और न ही कभी वह ट्रेन मेरे कमरे में पटरी पर दौड़ेगी। मुझे इनमें से कोई भी उपहार नहीं चाहिए था। ये पैसे, ये चीज़ें; ये सभी ख़ून से सने हुए थे। अगर मैंने पतंगबाज़ी का मुकाबला न जीता होता तो बाबा मेरी सालगिरह पर इतनी बड़ी पार्टी कभी न देते।

बाबा ने मुझे दो तोहफे दिए थे। उनमें से एक तो ऐसा था जिसे देखकर पक्का हमारे इलाके का हर बच्चा यह चाहने लगता कि काश वह उसके पास होता। वह तोहफ़ा था एक बिल्कुल नई श्विन स्टिंगग्रे साइकिल, सभी साइकिलों की रानी। पूरे काबुल में चंद ही ऐसे ख़ुशनसीब बच्चे थे जिनके पास नयी स्टिंगग्रे थी और अब मैं भी उनमें शामिल हो गया था। इसकी खासियत थी काले रंग के रबर ग्रिप वाले ऊँचे हैंडलबार और फेमस बनाना सीट।

इसके चक्कों की तानें सुनहरी रंग की थी जबकि स्टील-फ्रेम बॉडी लाल रंग की। कैंडी एप्पल की तरह लाल। या शायद ख़ून की तरह। मेरी जगह कोई भी और बच्चा होता तो तुरंत इस पर सवारी गाँठता और पूरे इलाके में घुमाता फिरता। अगर यह कुछ महीनों पहले मिली होती तो शायद मैं भी ऐसा ही करता।

“पसंद आई तुम्हें?” बाबा ने कहा, जो पता नहीं कब से मेरे कमरे के दरवाज़े की चौखट से टेक लगाकर खड़े थे। मैं एकदम से झेंप गया और फिर मुस्कराते हुए जल्दी से उन्हें “शुक्रिया” कहा। मगर मेरे कहने में उतनी गर्मजोशी नहीं थी जितनी कि होनी चाहिए थी।

“हम इस पर घूमने चल सकते हैं,” बाबा ने कहा। साफ़ शब्दों में दिया गया निमंत्रण, मगर आधे मन से।

“फिर कभी। अभी मैं थोड़ा थका हुआ हूँ,” मैंने कहा।

“ठीक है,” बाबा ने कहा।

"बाबा?"

"हाँ?"

"आतिशबाज़ी के लिए शुक्रिया," मैंने कहा। साफ़ शब्दों में दिया गया धन्यवाद, मगर आधे मन से।

"आराम करो," इतना कहकर बाबा अपने कमरे की ओर बढ़ गए।

जो दूसरा तोहफ़ा बाबा ने मुझे दिया था –जिसको मेरे खोलकर देखने का भी बाबा ने इंतज़ार नहीं किया था– वह थी एक कलाई घड़ी। इसका डायल नीले रंग का था और काँटे सुनहरी रंग के। काँटों का आकार कड़कती बिजली जैसा था। मैंने इसे पहनकर भी नहीं देखा और कोने में लगे ढेर की ओर उछाल दिया। केवल एक ही तोहफ़ा था जिसे मैंने उस ढेर पर नहीं फेंका था – रहीम खान की दी हुई डायरी। सिर्फ़ वही उपहार था, जो ख़ून से सना नहीं मालूम हो रहा था।

मैं जब अपने पलंग के किनारे पर बैठकर उस डायरी को उलट-पुलटकर देख रहा था, तब मेरे दिमाग़ में रहीम खान की कही वे बातें घूम रही थीं जो उन्होंने हमायरा के बारे में बताई थीं कि किस तरह उनके बाबा ने उसे अपनाने से इंकार कर दिया था और कैसे आख़िर को वह हमायरा के हित में ही रहा था। अगर वह वहाँ रुकती तो उसे बहुत कुछ भुगतना पड़ता। जैसे कभी-कभी हुमायूँ काका का प्रोजेक्टर किसी स्लाइड पर अटक जाता था और उसे ही बारम्बार चलाने लगता था, उसी तरह मेरा दिमाग़ भी एक ही दृश्य पर अटक गया था और उसे ही बारम्बार चला रहा था। यह दृश्य था हसन के सर झुकाकर अस्सेफ़ और वली को कोल्ड ड्रिंक्स परोसने का। शायद यही उसके सबसे ज़्यादा हित में होगा। उसे और ज़्यादा भुगतने से बचाएगा। और मुझे भी। एक बात मेरे दिमाग़ में साफ़ हो चुकी थी – हम दोनों में से किसी एक को तो यहाँ से जाना ही होगा।

उसी शाम मैं पहली और आख़िरी बार श्विन स्टिंगग्रे पर सवार होकर घूमने गया। मैंने दो-एक बार पूरे इलाके का चक्कर लगाया और फिर वापस लौट आया। जब मैं ड्राइव-वे को पार करके पीछे आँगन में पहुँचा तो देखा कि वहाँ हसन और अली कल रात की पार्टी का कचरा साफ़ कर रहे थे। काग़ज़ के कप, मुड़े हुए नैपकिन और सोडा की खाली बोतलें यार्ड में जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी थीं। अली कुर्सियों को मोड़-मोड़कर दीवार से टिकाता जा रहा था। उसने मुझे देखा तो हाथ हिलाकर अभिवादन किया।

बदले में, मैंने भी हाथ हिलाया और कहा, "सलाम, अली!"

उसने मुझे हाथ से रुकने का इशारा किया और अपनी कोठरी की ओर बढ़ गया। कुछ पलों बाद हाथ में कुछ लेकर बाहर आया। "कल रात हसन और मुझे मौका ही नहीं मिला आपको यह देने का," एक पैकेट मेरी ओर बढ़ाते हुए उसने कहा। "यह बेहद मामूली-सा तोहफ़ा है आमिर आगा...बेशक आपके लायक तो नहीं है...मगर हमें उम्मीद है कि शायद आपको पसंद आए। सालगिरह मुबारक।"

एकदम से मेरा गला भर आया। मुश्किल से मैंने कहा, “शुक्रिया, अली!” मैंने चाहा कि काश वे मेरे लिए कोई तोहफ़ा न लाए होते। मैंने जब उस पैकेट को खोला तो उसमें से एक बिल्कुल नयी ‘शाहनामा’ निकली, जो हार्डकवर में थी और जिसमें सभी कहानियाँ सचित्र थीं। रंगीन चित्रों वाली शाहनामा! एक चित्र में फेरांगिस अपने नवजात बेटे काई खोसरो को देख रही थी। एक दूसरे चित्र में अफरासियाब अपने घोड़े पर सवार, हाथ में तलवार लिए हुए अपनी सेना का नेतृत्व कर रहा था। और बेशक वह चित्र भी था जिसमें रुस्तम को अपने बेटे योद्धा सोहराब पर घातक वार करते दिखाया गया था। “बहुत ख़ूबसूरत है,” मैंने कहा।

“हसन ने बताया कि आपके पास इसकी जो कॉपी है वह पुरानी और फटी हुई है और उसमें से कुछ पन्ने भी गायब हैं। इसीलिए हम यह लाए। इसमें जितने भी चित्र हैं वे सभी हाथ से बनाए गए हैं, पेन और स्याही की मदद से,” अली ने उस किताब को बड़े ही फख्र से देखते हुए कहा जिसे न तो वह और न ही उसका बेटा पढ़ सकते थे।

“यह बहुत अच्छी है,” मैंने कहा। और वाक़ई वह बहुत अच्छी थी। और अगर मैं गलत नहीं था तो वह किसी भी हालत में सस्ती भी नहीं थी। मैं अली को कहना चाहता था कि उसका तोहफ़ा तो हर तरह से लायक था, मगर मैं उस तोहफे के लायक नहीं था। मैं दुबारा साइकिल पर सवार हुआ और अली को कहा, “इसके लिए मेरी ओर से हसन को शुक्रिया कहना।”

अपने कमरे में आकर मैंने उस किताब को भी कोने में लगे तोहफों के ढेर पर फेंक दिया। मगर मेरी नज़रें बार-बार उसी की तरफ़ जा रही थीं, इसलिए आख़िर-कार मैंने उसे उस ढेर में सबसे नीचे दबा दिया। उस रात सोने से पहले मैंने बाबा से कहा कि उन्होंने मुझे जो घड़ी तोहफे में दी थी वह मिल नहीं रही थी, क्या उन्होंने कहीं देखी थी?

अगली सुबह मैं अपने कमरे में बैठा अली के रसोई में सारा काम ख़त्म करके जाने का इंतज़ार कर रहा था। आख़िर को मैंने अपने बेडरूम की खिड़की से देखा कि अली और हसन घर का सारा काम ख़त्म करके ठेलागाड़ी धकाते हुए किराना ख़रीदने बाज़ार जा रहे थे।

मैंने तोहफों के ढेर पर से नकदी वाले कुछ लिफ़ाफ़े उठाए, बाबा की दी हुई घड़ी ली, और दबे पाँव कमरे से बाहर निकला। बाबा की स्टडी के सामने पहुँचकर मैं रुका और दरवाज़े पर कान लगाकर कुछ सुनने की कोशिश करने लगा। बाबा सुबह से वहीं थे और लगातार फ़ोन पर व्यस्त थे। उस वक़्त भी वह किसी से अगले हफ्ते आने वाले कालीनों के शिपमेंट के बारे में बात कर रहे थे। मैं चुपचाप सीढ़ियाँ उतरा और यार्ड पार करके अली और हसन की कोठरी में घुस गया। मैंने हसन का गद्दा उठाया और नकदी वाले लिफ़ाफ़े और अपनी घड़ी वहाँ रख दी।

मैंने और तीस मिनट इंतज़ार किया। फिर बाबा की स्टडी का दरवाज़ा खटखटाया

और पिछले कुछ महीनों से बोले जा रहे सफ़ेद झूठों की लम्बी फेहरिस्त में कुछ और झूठ जोड़ दिए, इस उम्मीद में कि शायद इसके बाद मुझे इस फेहरिस्त को और लम्बा नहीं करना पड़ेगा।

आख़िर-कार मुझे अपने बेडरूम की खिड़की से अली और हसन गोश्त, नान, फल और सब्जियों से लदे ठेले को ड्राइव-वे पर धकेलकर लाते हुए दिखाई पड़े। फिर मैंने बाबा को घर से निकलकर उन लोगों की ओर बढ़ते देखा। उन लोगों में कुछ बातें हुईं जो मुझे सुनाई नहीं दीं। बाबा ने घर की ओर इशारा किया और अली ने सहमति में सिर हिलाया। फिर बाबा घर के अन्दर आ गए जबकि अली और हसन अपनी कोठरी में चले गए।

कुछ पलों बाद बाबा ने मेरे कमरे के दरवाज़े पर दस्तक दी और कहा, "मेरे दफ्तर में आओ। हम सब बैठेंगे और इस मसले को सुलझा लेंगे।"

मैं बाबा की स्टडी में पहुँचा और वहाँ रखे एक सोफे पर बैठ गया। तक़रीबन तीस मिनट बाद अली और हसन वहाँ आए।

उन दोनों की आँखें सूजी हुई थीं, लाल हो रही थीं। मैं दावे के साथ कह सकता था कि पिछले आधे घंटे से वे लोग रो रहे थे। वे आकर बाबा के सामने खड़े हो गए। अली ने हसन का हाथ थाम रखा था। इधर मैं यह सोचकर हैरान हो रहा था कि मैं कब और कैसे किसी को इस तरह का दर्द दे सकने वाला बन गया था।

बाबा ने बिना किसी लाग-लपेट के सीधे-सीधे हसन से पूछ लिया। "क्या तुमने वे पैसे चुराए थे? क्या तुमने आमिर की घड़ी चुराई थी, हसन?"

हसन ने दुःख से काँपती-भर्राती आवाज़ में सिर्फ़ एक लफ्ज़ में जवाब दिया, "हाँ।"

मुझे ऐसा झटका लगा जैसे किसी ने एक ज़ोरदार तमाचा जड़ दिया हो। मेरा दिल बैठ गया और मेरे मुँह से सच बस निकलते-निकलते रह गया। मगर फिर मुझे समझ आया कि यह हसन की मेरे लिए की गई आख़िरी क़ुर्बानी थी। अगर वह कह देता कि उसने चोरी नहीं की तो बाबा पक्का उसकी बात पर यकीन कर लेते, क्योंकि हम सबको पता था कि हसन कभी झूठ नहीं बोलता था। और अगर बाबा को यकीन हो जाता कि उसने चोरी नहीं की थी, तो फिर उन्हें समझते देर नहीं लगती कि यह खेल मैंने खेला था। तब मेरे पास अपनी सफाई में कहने के लिए कुछ नहीं होता और सब पर ज़ाहिर हो जाता कि मैं वास्तव में भीतर से क्या था। और यह जानने के बाद बाबा कभी मुझे माफ़ नहीं करते। और इससे मुझे एक और बात भी समझ आई: हसन को सब पता था। वह जानता था कि जब उस गली में उसके साथ वह सब हो रहा था तब मैं वहाँ मौजूद था मगर चुपचाप सब देखता रहा, उसे बचाने के लिए कुछ नहीं किया। वह जानता था कि मैंने उसे धोखा दिया था, मगर तब भी एक बार फिर वह मुझे बचा रहा था, शायद आख़िरी बार। उस घड़ी अचानक मेरे दिल में उसके लिए बेशुमार प्यार उमड़ आया, इतना प्यार जितना मैंने उससे पहले तक कभी किसी के लिए महसूस

नहीं किया था, और मेरा मन हुआ कि मैं चीख-चीखकर उन सबको बता दूँ कि उनको चुपके से डसने वाला साँप मैं था, हसन को झील के अँधेरे तल में घसीट ले जाने वाला राक्षस मैं था। मैं इस लायक नहीं था कि कोई मेरे लिए क़ुर्बानी दे; मैं झूठा, धोखेबाज़ और चोर था। मैं शायद कह भी देता, मगर जो कुछ हो रहा था उससे मेरे मन का एक हिस्सा ख़ुश था। इस बात से ख़ुश था कि अब जल्दी ही यह किस्सा ख़त्म हो जाएगा। बाबा उन्हें नौकरी से निकाल देंगे, बाबा को और उन्हें थोड़ी तकलीफ़ तो होगी, मगर जल्दी ही सब सामान्य हो जाएगा और सब अपनी-अपनी ज़िन्दगी में आगे बढ़ जाएँगे। मैं यही तो चाहता था – आगे बढ़ना, भूल जाना, और नए सिरे से ज़िन्दगी जीना। मैं फिर से खुलकर साँस लेना चाहता था।

मगर बाबा ने जो कहा, उसे सुनकर मैं सन्न रह गया। “मैंने तुम्हें माफ़ किया।”

माफ़ किया? मगर चोरी तो वह गुनाह था जिसकी कोई माफ़ी नहीं थी, जो सब गुनाहों के केंद्र में था। जब तुम किसी आदमी को क़त्ल करते हो तो तुम उससे जीने का हक़ चुराते हो, उसकी बीवी से शौहर की मुहब्बत का हक़ चुराते हो, उसके बच्चों से बाप की सरपरस्ती का हक़ चुराते हो। जब तुम झूठ बोलते हो, तब तुम किसी से सच सुनने का हक़ चुराते हो। जब तुम किसी के साथ बेईमानी करते हो, तो तुम उससे बा-ईमान बर्ताव का हक़ चुराते हो। चोरी से ज़्यादा घिनौना काम दूसरा कोई नहीं है। क्या ये सारी बातें बाबा ने ही मुझसे नहीं कही थीं? तो फिर वह हसन को ऐसे कैसे माफ़ कर सकते थे? और अगर बाबा इस बात की माफ़ी दे सकते थे तो फिर मुझे उनकी मनचाही औलाद न होने के लिए माफ़ क्यों नहीं कर देते? क्यों—“हम जा रहे हैं, आगा साहिब,” अली ने कहा।

“क्या?” बाबा का चेहरा एकदम से फक्क हो गया।

“अब हम यहाँ और नहीं रह सकते,” अली ने कहा।

“मगर मैंने तो इसे माफ़ कर दिया है, अली, तुमने सुना नहीं?” बाबा ने कहा।

“हमारे लिए अब यहाँ रहना नामुमकिन है, आगा साहिब। हम जा रहे हैं।” अली ने हसन को अपने क़रीब खींचकर ख़ुद से चिपका लिया। ऐसा करके उसने उसे अपनी सरपरस्ती में महफ़ूज़ रखने की कोशिश की। मुझे पता था कि वह उसे किससे बचाने की कोशिश कर रहा था। अली ने मेरी तरफ़ देखा और उसकी उस ठण्डी और माफ़ी की ज़रा सी भी गुंजाइश न रखने वाली नज़र ने मुझे बता दिया कि हसन ने उसे सबकुछ बता दिया था – अस्सेफ़ और उसके दोस्तों ने उसके साथ जो किया था वह, यह सब क्यों हुआ था वह, और मैंने जो किया था वह भी। मगर हैरानी की बात यह थी कि मैं यह जानकर ख़ुश था कि आख़िर-कार कोई तो यह जान गया था कि मेरी असलियत क्या थी; मैं कुछ और होने का ढोंग कर-करके थक चुका था।

“मुझे पैसे या घड़ी की कोई परवाह नहीं है,” बाबा ने ख़ुद को हैरान और बेबस महसूस करते हुए कहा। “मुझे समझ नहीं आ रहा कि तुम ऐसा क्यों कर रहे

हो…‘नामुमकिन’ से तुम्हारा क्या मतलब है?”

“मैं माफ़ी चाहता हूँ, आगा साहिब, मगर हम अपना सामान बाँध चुके हैं। हम फैसला कर चुके हैं।”

बाबा कुर्सी से उठ खड़े हुए। उनके चेहरे पर दुःख की गहरी छाया उभर आई थी। “अली, क्या मैंने तुम्हारा ठीक से ध्यान नहीं रखा? क्या मेरा तुम लोगों के साथ बर्ताव अच्छा नहीं रहा? मैंने हमेशा तुम्हें अपना भाई माना है, अली, तुम जानते हो इस बात को। प्लीज़, ऐसा मत करो।”

“हमारे लिए इसे और मुश्किल मत बनाइए, आगा साहिब। हम ही जानते हैं कि हमारे दिल पर क्या गुज़र रही है,” अली ने कहा। पल भर को मुझे लगा कि मैंने उसके चेहरे पर दुःख का भाव देखा! अली के चेहरे पर! तब जाकर मुझे उस दर्द की गहराई का अहसास हुआ जो मैंने उन सब लोगों को दिया था। अली के जिस चेहरे पर किसी भी भाव का आना कभी मुमकिन नहीं होता था, आज वो चेहरा भी उसका दुःख छिपाने में नाकाम हो रहा था! मैंने हिम्मत जुटाकर हसन की तरफ़ देखा, मगर उसका सिर नीचे झुका हुआ था, कंधे ढलके हुए थे, और उसके सीधे हाथ की पहली उंगली उसकी शर्ट से निकले एक धागे को मरोड़ रही थी।

बाबा अब मिन्नत कर रहे थे। “कम से कम इतना तो बताओ कि क्यों कर रहे हो ऐसा? मुझे इसकी वजह जानना है।”

मगर अली ने बाबा को कुछ नहीं बताया, वह चुप रहा, वैसे ही जैसे वह हसन के चोरी कबूल करने पर रहा था। मैं अच्छी तरह उस दृश्य की कल्पना कर पा रहा था जिसमें दोनों बाप-बेटे अपनी कोठरी में बैठे रो रहे थे और हसन अली से यह वादा ले रहा था कि वह बाबा को मेरे बारे में कुछ नहीं बताएगा। मगर मेरे लिए इस बात की कल्पना करना नामुमकिन था कि अली को यह वादा निभाने के लिए भीतर ही भीतर कितना बर्दाश्त करना पड़ रहा होगा।

“क्या आप हमें बस-अड्डे तक छोड़ देंगे?”

“मैं तुम्हें ऐसा करने से मना कर रहा हूँ!” बाबा ने चीखते हुए कहा। “सुन रहे हो तुम? मैं मना कर रहा हूँ!”

“मैं पूरे अदब के साथ कहना चाहता हूँ आगा साहिब कि आप हमें किसी भी बात के लिए मना नहीं कर सकते,” अली ने कहा। “अब हम आपके लिए काम नहीं करते।”

“कहाँ जाओगे तुम?” बाबा ने पूछा। उनकी आवाज़ काँप रही थी।

“हज़ाराजात।”

“अपने चचेरे भाई के पास?”

“हाँ। क्या आप हमें बस-अड्डे छोड़ देंगे, आगा साहिब?”

और तब मैंने बाबा को वह करते देखा जो उससे पहले कभी नहीं देखा था। बाबा रोने लगे थे। मैं किसी बड़े आदमी को पहली बार इस तरह रोते देख रहा था, इसलिए थोड़ा डर गया। हमारे समाज में बाबाओं को रोने की इजाज़त नहीं थी।

"प्लीज़," बाबा रोते-रोते कह रहे थे। मगर तब तक अली मुड़कर दरवाज़े की ओर बढ़ने लगा था, हसन भी उसके पीछे-पीछे चल दिया था। बाबा ने जिस कातर स्वर में 'प्लीज़' कहा, उसे मैं कभी भूल नहीं पाऊँगा। उस प्लीज़ में जो दर्द था, जो डर था वो मेरे ज़ेहन से कभी नहीं निकलेगा।

काबुल में गर्मियों में बरसात होना दुर्लभ बात थी। गर्मियों में तो बस सूरज का कहर ही नाज़िर होता था हर तरफ़। वे नाले जिनके पानी में हसन और मैं बसंत भर पत्थर उछालने का खेल खेलते थे, गर्मियाँ आते ही सूख जाते थे और वहाँ से रिक्शे धूल उड़ाते हुए गुज़रते थे। दोपहर में लगभग सारे काम-धंधे बंद हो जाते, दोपहर की नमाज़ के बाद लोग जिधर भी जो भी छाया मिलती उसी के नीचे पड़ रहते और शाम होने का इंतज़ार करते। हम बच्चों के लिए गर्मियों के लम्बे-लम्बे दिन स्कूल के ठसाठस भरे गैर-हवादार क्लासरूम्स में पसीना बहाते हुए और कुरआन की आयतें रटते हुए और उच्चारण में बेहद मुश्किल मालूम होने वाले प्राचीन अरबी शब्दों के साथ माथाफोड़ी करते हुए बीतते थे। क्लासरूम के भीतर इधर मुल्ला जी आयतें दोहराने में मसरूफ होते थे और हम अपने चारों ओर भिनभिना रहीं मक्खियों को अपनी मुट्ठी में बंद करने के खेल में लगे होते थे, और तभी उधर से हवा का एक तेज़ झोंका क्लासरूम में दाख़िल होता था जो अपने साथ स्कूल परिसर के सामने बने आउटहाउस से उठ रही बदबू को भी साथ लेता आता था। उसी झोंके के सहारे कभी-कभी धूल का एक बवंडर भी उठ खड़ा होता, जो खेल के मैदान में खड़े इकलौते जर्जर बास्केटबॉल हूप को घेर लेता।

मगर जिस दोपहर को बाबा अली और हसन को बस-अड्डे छोड़ने जा रहे थे, गर्मियों की उस दोपहर मूसलाधार बारिश हुई। अचानक ही आकाश में बिजलियाँ चमकने लगीं, बादलों की गर्जना होने लगी, और पूरा आसमान गहरे भूरे रंग में रंग गया। कुछ ही मिनटों में बारिश की फुहारें पड़ने लगीं। तेज़ हवा के साथ बारिश की आवाज़ लगातार मेरे कानों में पड़ने लगी।

बाबा ने उन्हें बामियान तक छोड़कर आने की पेशकश की थी, मगर अली ने मना कर दिया। अपने बेडरूम की बारिश में भीगी खिड़की के धुंधले काँच में से मैं देख रहा था कि अली अपना सारा सामान एक अकेले सूटकेस में भरकर गेट के बाहर खड़ी बाबा की कार में रखने ले जा रहा था। हसन ने अपने और अली के गद्दे को गोल करके एक रस्सी के सहारे अपनी पीठ से बाँध लिया था। उसने अपने सारे खिलौने अपनी झोपड़ी में ही छोड़ दिए थे, अगले दिन जब मैं वहाँ गया तो मैंने देखा कि वे एक ढेर की शक्ल में झोपड़ी के एक कोने में पड़े थे – ठीक वैसे ही जैसे मेरे कमरे में मेरी सालगिरह के तोहफे पड़े थे।

बारिश की फुहारें लगातार मेरी खिड़की के काँच पर पड़ रही थीं। मैंने देखा कि बाबा ने डिक्की को ज़ोर से बंद किया। वह बारिश में पूरी तरह भीग चुके थे। फिर वह ड्राईवर साइड के गेट की ओर बढ़े। वहाँ पहुँचकर वे नीचे झुके, एक हाथ गाड़ी की छत पर रखा और पीछे की सीट पर बैठे अली से कुछ कहने लगे, शायद उसका फैसला बदलवाने की एक आख़िरी कोशिश की उन्होंने। बाबा अब भी बारिश में भीग रहे थे। अब भी उनका एक हाथ गाड़ी की छत पर था और वे नीचे झुके हुए थे। कुछ देर तक वह उसी हालत में खड़े-खड़े बात करते रहे, मगर जब वह सीधे हुए तो मैंने उनके झुके हुए कंधों में देखा कि जो ज़िन्दगी मैं आज तक जीता आया था, वह ख़त्म हो चुकी थी। बाबा ड्राइविंग सीट पर बैठ गए। गाड़ी की हेडलाइट्स जल उठीं और आगे का रास्ता रोशन हो गया। अगर यह कोई हिंदी फिल्म होती (मैंने और हसन ने बहुत सारी हिंदी फ़िल्में देखी थीं) तो इस जगह आकर सीन ऐसा होता कि मैं भागते हुए बाहर जाता, नंगे पैर, बारिश के पानी में भीगते हुए। तब तक कार चल पड़ती और मैं पागलों की तरह कार के पीछे भागता, चिल्ला- चिल्लाकर उनसे रुकने के लिए कहता, और जैसे ही कार रुकती, मैं खींचकर हसन को गाड़ी से बाहर निकालता और रोते हुए कहता कि 'मैं बहुत शर्मिंदा हूँ, बहुत ज़्यादा।' फिर हम दोनों आँसू बहाते हुए कसकर एक-दूसरे के गले लग जाते। मगर यह कोई हिंदी फिल्म नहीं थी। मैं शर्मिंदा तो था, मगर रोया नहीं और न ही मैंने कार का पीछा किया। मैं बाबा की कार को आगे बढ़ते और उसमें बैठे उस इंसान को ख़ुद से दूर जाते देखता रहा जिसने बोलना सीखने के बाद पहला शब्द जो बोला था वह मेरा नाम था। इससे पहले कि बाबा गली के कोने पर बाँया मोड़ मुड़ते, जहाँ हसन और मैं अक्सर कंचे खेलते थे, मैंने पीछे की सीट पर बैठे हसन की एक आख़िरी धुंधली झलक देखी। फिर मैं खिड़की से पीछे हट गया। अब खिड़की के काँच पर पिघली चाँदी की मानिंद मालूम होतीं पानी की धाराओं के अलावा और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था।

दस

मार्च *1981*

हमारे सामने एक जवान औरत बैठी थी। उसने ओलिव ग्रीन रंग की ड्रेस पहन रखी थी और रात की सर्दी से ख़ुद को बचाने के लिए ऊपर से काले रंग की एक शॉल ओढ़ी हुई थी। जब भी ट्रक झटका खाता या किसी गड्ढे में कूदता, वह अल्लाह को याद करने लगती; ट्रक के हर झटके के साथ उसकी "बिस्मिल्लाह!" गूँज उठती। उसके बग़ल में उसका शौहर बैठा था, जो कि ख़ासा मोटा-तगड़ा सा आदमी था। उसने एक बैगी पेंट पहनी हुई थी और सर पर आसमानी रंग की पगड़ी बाँध रखी थी। एक हाथ से उसने अपने नवजात बच्चे को थाम रखा था, जबकि दूसरे हाथ से लगातार माला फेरे जा रहा था। होंठों ही होंठों में वह कोई दुआ पढ़ रहा था। वहाँ तक़रीबन एक दर्जन लोग थे, जिनमें बाबा और मैं भी शामिल थे। हम दोनों अपने-अपने पैरों के बीच अपने-अपने सूटकेस रखे एक पुराने रूसी ट्रक की तिरपाल से ढकी हुई कैब में इन अजनबियों के साथ तंग हालत में बैठे थे।

हम लोग रात को दो बजे के बाद काबुल से निकले थे। तभी से मेरा पेट ऐंठना और जी मिचलाना शुरू हो गया था। बाबा ने कभी कहा नहीं, मगर मुझे पता था कि वह मेरी कार-सिकनेस को मेरी एक और कमज़ोरी के रूप में ही देखते थे। दो-एक बार जब मेरा पेट इतनी बुरी तरह ऐंठा कि मैं कराह उठा, तब मैंने उनके चेहरे पर शर्मिंदगी साफ़-साफ़ देखी थी। मेरी हालत सामने बैठे उस मोटे-तगड़े आदमी (बार-बार बिस्मिल्लाह बोलने वाली औरत का शौहर) से छिपी न रही। आख़िर उसने पूछ ही लिया कि क्या मेरी तबियत ख़राब हो रही थी? मैंने कहा कि मुझे भी ऐसा ही लग रहा है। यह सुनकर बाबा परे देखने लगे। उस आदमी ने तिरपाल का अपनी तरफ़ का कोना उठाया और ड्राइवर की खिड़की को थपथपाकर उससे रुकने को कहा। मगर ड्राइवर ने (जिसका कि नाम करीम था और जो एक दुबला-पतला-सा, साँवला-सा, पेंसिल जैसी पतली मूंछें रखने वाला आदमी था) इनकार में सिर हिला दिया।

"हम अभी काबुल के बहुत क़रीब हैं," उसने पलटकर कहा। "उससे कहो कि अभी अपने पेट को मज़बूती से थामे रखे।"

बाबा मुँह ही मुँह में कुछ बुदबुदाए। मैं उनसे कहना चाहता था कि मैं शर्मिंदा था, मगर तभी अचानक मुझे बहुत ज़ोरों से उबकाई आने लगी। मैंने पलटकर अपनी तरफ़ की तिरपाल उठाई और चलते ट्रक की बाहर की दीवार पर उल्टी कर दी। पीछे बाबा

बाक़ी मुसाफ़िरों से मेरे किए के लिए माफ़ी माँग रहे थे। जैसे कि कार-सिकनेस कोई गुनाह हो। जैसे कि अगर आप अठारह बरस के हो तो आप बीमार नहीं पड़ सकते। मैंने जब दो और बार उल्टी कर दी, तब कहीं जाकर करीम गाड़ी रोकने के लिए राज़ी हुआ, सिर्फ़ इसलिए क्योंकि वो नहीं चाहता था कि मैं उसकी गाड़ी को (जो कि उसकी रोजी-रोटी थी) और ज़्यादा गंदा करूँ। करीम इंसानों की तस्करी करता था, वह लोगों को शोराबी के कब्ज़े वाले काबुल से निकालकर कद्रन महफ़ूज़ पाकिस्तान पहुँचाता था। उन दिनों यह ख़ासा मुनाफ़े वाला धंधा था। वह हमें जलालाबाद ले जा रहा था, जहाँ उसका भाई तूर अपने बड़े-से ट्रक के साथ हमारा इंतज़ार कर रहा था। उस ट्रक में हमारी ही तरह मुहाजिरों (शरणार्थियों) का एक और जत्था था। हम सब तूर के ट्रक से खैबर दर्रा पार करके पेशावर पहुँचने के तमन्नाई थे।

हम महीपर फ़ॉल्स से कुछ किलोमीटर पश्चिम में थे, जब करीम ने सड़क के किनारे गाड़ी रोकी। महीपर। जिसका अर्थ है 'उड़ने वाली मछली'। यह एक ऊँची चोटी थी, जिसकी ढलान से वह बाँध और हाइड्रो प्लांट दिखाई देता था जिसे जर्मनों ने 1967 में अफ़ग़ानिस्तान के लिए बनाया था। जलालाबाद सरू के पेड़ों और गन्ने के खेतों के लिए मशहूर शहर था, जहाँ अफ़ग़ान लोग सर्दियों में छुट्टियाँ मनाते थे। बाबा और मैं भी जलालाबाद जाते वक़्त अनगिनत बार महीपर चोटी पर से ड्राइव करते हुए गुज़रे थे।

गाड़ी रुकते ही मैं ट्रक के पीछे से नीचे उतरा और धूल भरी सड़क के किनारे निढाल-सा बैठ गया। तभी एक बार फिर मुझे बहुत ज़ोरों से उबकाई आने लगी। मैं उठा और लड़खड़ाते हुए एक चट्टान के किनारे पर पहुँचा, जहाँ से अँधेरे में डूबी गहरी घाटी दिखाई दे रही थी। फिर मैं झुक गया, हाथ घुटनों पर रखे और उल्टी होने का इंतज़ार करने लगा। तभी कहीं किसी पेड़ की कोई शाखा चटकी, कोई उल्लू चिल्लाया। हल्की-हल्की ठंडी हवा चल रही थी जो रह-रहकर पेड़ों की शाखाओं और ढलान पर उगी झाड़ियों को हिला रही थी। और नीचे से घाटी में गिरते पानी की धीमी आवाज़ आ रही थी।

उसी स्थिति में खड़े-खड़े मेरे ज़ेहन में चलने लगा कि किस तरह रात के दो बजे हमने वह घर छोड़ा था जहाँ मेरी पूरी ज़िन्दगी बीती थी। हम यूँ वहाँ से चले आए थे मानो बाहर कहीं खाना खाने जा रहे हों। रात की कोफ्ता करी से सने बर्तन रसोई के सिंक में बिना धुले पड़े थे; बरामदे में एक बाल्टी में हमारे गंदे कपड़े धुलने के लिए पड़े थे; बिस्तर वैसे के वैसे पड़े थे; बाबा के सारे बिज़नेस सूट उनकी कपड़ों की अलमारी में लटके हुए थे। बैठक की दीवारों पर सभी महँगी-महँगी तस्वीरें ज्यों की त्यों लटकी हुई थीं और मेरी वालिदा की सारी किताबें अभी भी बाबा की स्टडी की अलमारियों में मौजूद थीं। हमारे वहाँ से पलायन कर चुकने की गवाही देने वाले संकेत बहुत मुश्किल से ही किसी की पकड़ में आ सकते थे, जैसे कि शोकेस में लगी मेरे बाबा और मेरी माँ की शादी की तस्वीर गायब थी; मेरे दादाजी की नादिर शाह के साथ मरे हुए हिरन पर पैर रखकर खड़े होने वाली ब्लैक-एंड-वाइट तस्वीर भी नदारद थी; अलमारियों में से कुछेक कपड़े भी गायब थे। पाँच साल पहले रहीम खान ने मुझे चमड़े की जिल्द वाली

जो डायरी दी थी, वो भी गायब थी।

सबकुछ इस तरह किया गया था कि सुबह जब हमारा नौकर जलालुद्दीन (जो पिछले पाँच बरसों में हमारा सातवाँ नौकर था) जागता और हमें नदारद पाता तो यही सोचता कि हम शायद सुबह की सैर पर निकल गए थे और थोड़ी देर में लौट आने वाले थे। हमने उसे इस बारे में कुछ नहीं बताया था। अब आप काबुल में किसी का भी भरोसा करने की हालत में नहीं थे। पैसों के लालच में या जान के डर से हर कोई एक-दूसरे की जासूसी करने में लगा था – पड़ौसी पड़ौसी की, बच्चे माँ-बाप की, भाई भाई की, नौकर मालिक की, दोस्त दोस्त की। अब आप गायक अहमद ज़हीर का ही उदाहरण ले लो। वही अहमद ज़हीर जिन्होंने मेरी तेरहवीं सालगिरह पर अकॉर्डियन बजाकर गाना गाया था। वह अपने कुछ दोस्तों के साथ ड्राइव पर गए थे और बाद में उनकी लाश सड़क के किनारे मिली, उनके सिर के पिछले हिस्से में गोली लगी थी। रफीक्स और कॉमरेड्स हर जगह मौजूद थे और उन्होंने काबुल को दो समूहों में बाँट दिया था: एक समूह उन लोगों का जो इनके लिए मुखबिरी कर रहे थे और दूसरे वे जो नहीं कर रहे थे। मगर सबसे बड़ी मुश्किल यह थी कि किसी को नहीं पता था कि कौन किस समूह में शामिल था। कपड़ों का नाप देते समय दर्जी से कही गई कोई मामूली सी बात भी आपको पोलेह-चरखी की कालकोठरी में पहुँचा सकती थी। बाज़ार में गोश्त ख़रीदते समय अगर आपने कसाई से कर्फ्यू को लेकर कोई शिकायती बात कर दी तो मालूम चला कि बात की बात में आप सलाखों के पीछे पहुँच गए, जहाँ आपके सर पर ऐके-47 तनी हुई थी। और तो और लोगों को अपने घर में, अपने खाने की टेबल पर भी बहुत सोच-समझकर बात करनी पड़ती थी, क्योंकि रफीक्स स्कूलों के क्लासरूम्स में भी मौजूद थे जो बच्चों को जासूसी की ट्रेनिंग दे रहे थे, उन्हें बता रहे थे कि अपने माँ-बाप की किन-किन बातों को गौर से सुनना था और आकर किन्हें बताना था।

रात के इस अँधेरे में, मैं इस सड़क पर क्या कर रहा था? मुझे तो इस वक़्त अपने बिस्तर पर होना चाहिए था, कंबल ओढ़े, कोई क़िताब सिरहाने रखे हुए। यह ज़रूर कोई सपना था। बेशक सपना ही था। सुबह मैं जागूँगा और अपने बेडरूम की खिड़की से बाहर झाँकूँगा तो सबकुछ पहले की तरह ही नज़र आएगा। कठोर चेहरे वाले रूसी सैनिक फुटपाथों पर गश्त नहीं कर रहे होंगे, शहर की सड़कों पर उनके टैंक नहीं घूम रहे होंगे और न ही उन टैंकों की नालें इल्ज़ाम लगातीं उंगलियों की तरह हमारी ओर तनी हुई होंगी, जगह-जगह इमारतों का मलबा नहीं बिखरा होगा, कहीं कोई कर्फ्यू नहीं होगा, रूसी सेना के जवान बाज़ारों में नहीं घूम रहे होंगे। मगर तभी मुझे अपने पीछे बाबा और करीम के बातें करने की आवाज़ सुनाई दी। वे सिगरेट का धुआँ उड़ाते हुए जलालाबाद की व्यवस्थाओं के बारे में बात कर रहे थे। करीम बाबा को यकीन दिला रहा था कि उसके भाई के पास जो बड़ा-सा ट्रक था वो बहुत ही बढ़िया क्वालिटी का था और उसके भाई को उस ट्रक की मार्फ़त लोगों को पेशावर पहुँचाने का बहुत तजुर्बा था, इसलिए हमारा सफ़र बड़े आराम से पूरा हो जाने वाला था। “वह आपको आँख बंद करके भी वहाँ ले जा सकता है,” अपने भाई की डींग हाँकते हुए करीम ने

कहा। उसने बाबा को यह भी बताया कि कैसे उसने और उसके भाइ ने सुरक्षा-चौकियों पर तैनात रूसी और अफ़ग़ानी सैनिकों से पूरी 'सैटिंग' कर रखी थी और कैसे वे लोग पैसे लेकर उन्हें बिना किसी परेशानी वहाँ से गुज़र जाने देते थे। नहीं, यह कोई सपना नहीं था। तभी हमारे सर के ऊपर से भयानक आवाज़ करते हुए गुज़र रहे एक एमआईजी (मिग लड़ाकू विमान) ने इस बात की तसदीक कर दी। करीम ने झट अपनी सिगरेट फेंकी और कमर में खुसी हैण्डगन निकाल ली। उसे आसमान की ओर तानकर गोली चलाने की मुद्रा में आते हुए उसने गुस्से में मिग को जमकर कोसा।

मैं सोचने लगा कि इस वक़्त हसन कहाँ होगा। और तभी मुझे उल्टी आ गई। मैंने अपने भीतर का मलबा ढलान पर उगी झाड़ियों पर उगल दिया, मगर मेरे ओंकने और कराहने की आवाज़ें मिग के शोर में दबकर रह गईं।

बीस मिनिट बाद हम महीपुर जाँच-चौकी पर थे। करीम खान ने ट्रक रोक दिया और नीचे उतरकर उन फौजियों से बात करने आगे बढ़ गया जिनके भारी-भरकम फ़ौजी बूटों के ज़मीन को रौंदते हुए हमारी ओर आने की आवाज़ सुनाई दे रही थी। फिर उन लोगों के आपस में जल्दी-जल्दी कुछ बातें करने की हल्की-हल्की आवाज़ें सुनाई पड़ने लगीं। फिर किसी लाइटर के जलने की झिलमिलाहट दिखाई दी। फिर किसी ने कहा, "स्पास्सेबा।" रूसी भाषा में इसका मतलब होता है 'शुक्रिया'।

फिर एक बार लाइटर जलने की झिलमिलाहट हुई। कोई हँसा, ऐसी तीखी खनकती हुई आवाज़ में जिसने मुझे उछलने पर मजबूर कर दिया। बाबा ने मेरी जाँघ पर हाथ रखकर मुझे अपनी जगह बैठाए रखा। फिर उस हँसने वाले आदमी ने अपने ठेठ रूसी लहज़े और बेसुरी आवाज़ में एक गीत गुनगुनाना शुरू कर दिया। पुराने ज़माने में अफ़ग़ान शादियों में गाया जाने वाला एक गीत।

अहेस्ता बोरो, मह-ए-मैन, अहेस्ता बोरो।

हौले-हौले चलो, मेरे प्यारे चंदा, हौले-हौले चलो।

डामर की सड़क पर फ़ौजी बूटों की एड़ियाँ ठकठकाईं। किसी ने ट्रक के पीछे लटके तिरपाल को उठाया और तीन चेहरे अंदर झाँकने लगे। उनमें से एक करीम था, बाक़ी दो फ़ौजी थे, एक अफ़ग़ान और दूसरा रूसी। रूसी फ़ौजी की शक्ल बुलडॉग से मिलती-जुलती थी। उसके मुँह में एक जलती हुई सिगरेट फँसी थी और चेहरे पर एक शैतानी मुस्कान थी। उनके पीछे आसमान में सफ़ेद चाँद चमक रहा था। करीम और अफ़ग़ान फ़ौजी के बीच पश्तू में थोड़ी-सी गुफ्तगू हुई। मैंने जो थोड़ा-बहुत समझा, उसके हिसाब से वे लोग करीम के भाई तूर और उसकी बदकिस्मती के बारे में बात कर रहे थे। इस बीच बुलडॉग की शक्ल वाला रूसी फ़ौजी सिर अन्दर घुसाकर ट्रक में सवार मुसाफ़िरों की टोह लेने लगा। उसका गुनगुनाना जारी था, साथ ही वह टेलगेट के किनारे पर अपनी उँगली से थाप भी देता जा रहा था। उसकी नज़रें एक-एक करके सभी मुसाफ़िरों के चेहरों को टटोल रही थीं और चाँद की मद्धम रोशनी में भी मैंने

उनकी चमक साफ़-साफ़ देखी। ठंड के बावजूद उसके माथे से पसीना बह रहा था। तभी अचानक उसकी नज़रें एक जगह ठहर गईं, काला शॉल ओढ़े उस औरत पर जो बात-बात में 'बिस्मिल्लाह' कह रही थी। उसने उस पर से नज़रें हटाए बिना करीम से रूसी में कुछ कहा। करीम ने रूसी भाषा में छोटा मगर तीखा जवाब दिया, जिस पर रूसी फ़ौजी ने उससे भी तीखे शब्दों में कुछ कहा। अफ़ग़ान फ़ौजी ने भी धीमी आवाज़ में कुछ समझाने की कोशिश की। बदले में रूसी फ़ौजी कुछ इस तरह चिल्लाया जिससे वे दोनों सहम गए। मैं महसूस कर सकता था कि मेरे बग़ल में बैठे बाबा का गुस्सा भी बढ़ रहा था। करीम हमारी ओर घूमा, खँखारकर अपना गला साफ़ किया, अपना सिर झुका लिया और बोला कि वह रूसी फ़ौजी उस काले शॉल वाली औरत के साथ आधा घंटा बिताना चाहता था।

यह सुनते ही उस औरत ने शॉल को ऊपर खींचकर उससे अपना चेहरा ढँक लिया और रोने लगी। उसके शौहर की गोद में बैठा उसका नवजात बच्चा भी रोने लग गया। शौहर का चेहरा उतना ही सफ़ेद पड़ गया जितना आसमान में चमक रहा चाँद था। उसने करीम से कहा कि वह "जनाब सोल्जर साहब" से कहे कि वह उन पर थोड़ी दया करें, उनके घर में भी तो माँ-बहन या बीवी होगी। करीम ने कहा। सुनकर रूसी फ़ौजी ने भौंकने के अंदाज़ में कुछ कहा।

"वह कह रहा है कि हमें यहाँ से गुज़रने देने की यह उसकी फीस है," करीम ने कहा। मगर यह बात वह उस औरत के शौहर से नज़रें मिलाकर नहीं कह सका।

"मगर हम पहले ही इसकी अच्छी-खासी कीमत दे चुके हैं। उसको इसके लिए अच्छा पैसा मिल तो रहा है," शौहर ने करीम से कहा।

फिर से करीम और रूसी फ़ौजी के बीच कुछ बातचीत हुई। "वह कह रहा है…वह कह रहा है कि उस कीमत पर टैक्स भी तो देना पड़ेगा।"

तभी एक झटके से बाबा उठकर खड़े हो गए। अब मेरी बारी थी कि मैं उनकी जाँघ पर हाथ रखकर उन्हें बैठाए रखने की कोशिश करूँ, मगर बाबा पर उसका कोई असर नहीं हुआ और वह खड़े हो गए। जैसे ही वह खड़े हुए, चाँद उनकी आड़ में छिप गया। "मैं चाहता हूँ कि तुम इस आदमी से कुछ पूछो," बाबा ने करीम से कहा। कहा तो उन्होंने करीम से, मगर उनकी नज़रें सख़्ती से रूसी फ़ौजी के चेहरे पर टिकी रहीं। "इससे पूछो कि क्या इसने अपनी शर्म और शराफत बेच खाई है।"

करीम ने रूसी से कहा। बदले में उसने जो कहा उसे दोहराते हुए करीम बोला, "वह कह रहा है कि यह जंग है। और जंग में शर्म और शराफत का कोई काम नहीं होता।"

"इसे बताओ कि यह गलत कह रहा है। जंग का मतलब शर्म और शराफत छोड़ देना नहीं होता। बल्कि जंग के वक़्त तो इसकी ज़रूरत अमन के वक़्त से भी ज़्यादा होती है।"

‘आपका हर वक़्त हीरो बनना ज़रूरी है क्या?’ मैंने मन में सोचा। मेरा दिल डर के मारे ज़ोरों से धड़कने लगा था। ‘कभी तो बाज़ आ जाया कीजिए।’ मगर मुझे पता था कि वह बाज़ आने वालों में से नहीं थे, यह उनकी फितरत में ही नहीं था। मगर दिक्कत यह थी कि उनकी यह फितरत अभी हम सबको मरवा सकती थी।

रूसी फ़ौजी ने मक्कारी से मुस्कराते हुए करीम से कुछ कहा। फिर करीम बाबा को समझाते हुए कहने लगा, “आगा साहिब, ये रूसी हमारे जैसे नहीं हैं। ये इज़्ज़त, शराफ़त, अदब जैसी बातें नहीं समझते।”

“क्या कहा इसने?”

“वह कहता है कि उसे आपको गोली मारने में उतना ही मज़ा आएगा जितना...” करीम चुप हो गया, मगर उसने उस औरत की ओर सिर घुमाया जिस पर रूसी फ़ौजी की नज़र थी। करीम के चुप होते ही रूसी फ़ौजी ने मुँह में दबी सिगरेट फेंकी और होल्स्टर से अपनी हैण्डगन निकाल ली। ‘तो यही वह जगह है जहाँ बाबा की मौत होनी है? इस तरह?’ मेरे मन में पहला ख़याल यही आया। मैं मन ही मन कुरआन की कोई आयत पढ़ने लगा, जो मैंने स्कूल में सीखी थी।

“इससे कहो कि मैं इसकी हज़ार गोलियाँ खा लूँगा, मगर अपने जीते-जी यह हरामीपना नहीं होने दूँगा,” बाबा ने कहा। मेरे दिल-ओ-दिमाग़ में छह साल पहले की सर्दियों का वह दिन कौंध गया जब मैं गली के मोड़ पर खड़ा गली में झाँक रहा था। कमाल और वली ने हसन का एक-एक हाथ पकड़कर उसे ज़मीन पर औंधा लिटा रखा था। अस्सेफ़ की नितम्बों की माँसपेशियाँ क्रमशः कस रही थीं और ढीली हो रही थीं, उसके कूल्हे आगे-पीछे हो रहे थे। और मैं वो हीरो था जिसे उस वक़्त सिर्फ़ इस बात की फ़िक्र थी कि वह नीली पतंग कैसे हाथ आएगी। कभी-कभी तो मुझे ख़ुद भी ताज्जुब होता था कि क्या मैं सच में बाबा की औलाद था।

बुलडॉग की शक्ल वाले रूसी फ़ौजी ने अपनी गन बाबा की ओर तान दी।

“बाबा, प्लीज़ बैठ जाइए,” मैंने उनकी आस्तीन खींचते हुए कहा। “मुझे लगता है वह सचमुच आपको गोली मार देगा।”

बाबा ने मेरा हाथ झटक दिया। “क्या मैंने तुम्हें कुछ नहीं सिखाया?” उन्होंने झल्लाकर कहा। फिर वह दोबारा खीसें निपोरते उस रूसी फ़ौजी की ओर मुड़ गए और करीम से बोले, “इससे कहो कि इसकी खैरियत इसी में है कि पहली ही गोली में मुझे मार गिराए। क्योंकि अगर मैं नहीं मरा तो मैं इसके टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा। धिक्कार है इसके पैदा करने वाले पर!”

करीम ने रूसी फ़ौजी को बाबा की बात का तर्जुमा करके सुनाया, मगर उसे सुनकर भी उसका खीसें निपोरना बंद नहीं हुआ। उसने गन का सेफ्टी नॉब हटाया। गन की नाल को बाबा की छाती की ओर ताना। इधर डर के मारे मेरा दिल मेरे गले में आ गया था। मैंने अपना चेहरा हाथों में छिपा लिया।

तभी गन चलने की आवाज़ हुई।

और अनहोनी हो ही गई। अठारह साल की उम्र में, मैं यतीम हो गया। भरी दुनिया में, मैं अकेला रह गया। बाबा मर चुके हैं और अब मुझे उनको दफनाना होगा। कहाँ दफनाऊँगा मैं उन्हें? और उसके बाद मैं कहाँ जाऊँगा? मगर मेरे दिल-ओ-दिमाग़ में घूम रहा ख़यालों का यह बवंडर तब रुक गया जब मैंने अपनी आँखें खोलीं और पाया कि बाबा अभी भी ज़िन्दा खड़े थे! मैंने देखा कि अब वहाँ एक दूसरा रूसी अफसर भी मौजूद था और उसके साथ उसके कुछ मातहत भी थे। उसके हाथ में भी गन थी, जिसकी नाल से धुआँ निकल रहा था। थोड़ी देर पहले जो रूसी फ़ौजी बाबा को मारने के लिए उन पर गन ताने खड़ा था, उसने अपनी गन वापस होल्स्टर में रख ली थी। उसकी जाँघ में गोली लगी थी, जिसकी वजह से वह लड़खड़ा रहा था। मेरा एक साथ हँसने और रोने दोनों का मन कर रहा था।

तभी वह दूसरा रूसी अधिकारी, जो पके हुए बालों और भारी डील-डौल वाला आदमी था, हमसे मुखातिब हुआ। उसने अपने कॉमरेड के बर्ताव के लिए हमसे माफ़ी माँगी। उसने टूटी-फूटी फारसी में कहा, "रूस इन्हें यहाँ लड़ने के लिए भेजता है, मगर ये...नए-नए लड़के हैं, यहाँ आकर ये ड्रग्स के चक्कर में पड़ जाते हैं।" उसने उस बुलडॉग की शक्ल वाले फ़ौजी को उस बाप की तरह खिन्न नज़र से देखा जो अपने बेटे की बदसलूकियों से परेशान था। "यह भी ड्रग्स का शिकार हो गया है। मैं इसे संभालता हूँ, आप लोग जाइए...।" उसने हाथ हिलाकर हमें विदा किया।

कुछ पलों बाद ही हमारा ट्रक आगे बढ़ गया। पीछे से मुझे उसी फ़ौजी की हँसी सुनाई दी, और फिर से उसका बेसुरी आवाज़ में वही गाना।

तक़रीबन पंद्रह मिनट तक हम ख़ामोशी से चलते रहे, फिर अचानक उस काले शॉल वाली औरत का शौहर खड़ा हुआ और उसने वो किया जो मैं उससे पहले भी कई लोगों को करते देख चुका था। उसने बाबा का हाथ चूम लिया।

तूर की बदकिस्मती। क्या मैंने महिपार जाँच-चौकी पर करीम और अफ़ग़ान फ़ौजी के बीच बातचीत में ऐसा ही कुछ सुना था? सुबह सूरज उगने से तक़रीबन एक घंटा पहले हम जलालाबाद पहुँच गए। करीम ने जल्दी-जल्दी हम सभी को ट्रक से उतारा और एक माले के एक मकान में ले गया। यह मकान एक चौराहे पर था, जहाँ दो सड़कें एक-दूसरे को काटती थीं। इन सड़कों के दोनों ओर लाइन से एक-एक माले के मकान, बबूल के पेड़, और बंद दुकानें थीं। सर्दी बहुत ज़्यादा थी, इसलिए ट्रक से उतरकर और अपना सामान लेकर उस मकान में जाते समय मैंने अपने कोट की कॉलर खड़ी कर ली थी।

वह एक माले का मकान था। करीम ने हम सबको एक मंद रोशनी वाले कमरे में ले जाने के बाद जल्दी से सामने का दरवाज़ा बंद कर दिया और खिड़कियों पर वे फटी हुई चादरें खींच दीं जो परदे की तरह इस्तेमाल की जा रही थीं। फिर उसने राहत की

एक लम्बी साँस ली और हमें यह बुरी ख़बर सुनाई कि उसका भाई तूर हमें पेशावर ले जा पाने की हालत में नहीं था। तक़रीबन हफ्ता भर पहले उसके ट्रक का इंजन बिगड़ गया था और अभी तक वह उन पुर्ज़ों का इंतजाम नहीं कर पाया था जिनकी कि इंजन को दुरुस्त करने के लिए ज़रूरत थी।

"पिछले हफ्ते?" किसी हैरत के मारे के मुँह से निकला। "अगर तुम्हें यह बात पता थी तो फिर तुम हमें यहाँ लाए ही क्यों?"

पलक झपकते कुछ ऐसा हुआ जिसकी मुझे न तो उम्मीद थी और न ही मुझे पता चला कि वह कब हो गया। जब मेरी आँखें देखने लायक और दिमाग़ कुछ समझने लायक हुआ तो मैंने पाया कि करीम की पीठ कमरे की एक दीवार से सटी हुई थी और उसके दोनों पैर फर्श से दो फुट ऊपर हवा में छटपटा रहे थे। बाबा ने दोनों हाथों से उसकी गर्दन थाम रखी थी।

"मैं तुम्हें बताता हूँ क्यों," बाबा ने तमकते हुए कहा। "क्योंकि इसे इसके हिस्से के पैसे मिल रहे थे। इसे पैसों के अलावा और किसी चीज़ की कोई परवाह नहीं है।" करीम के गले से घुटी हुई 'गूँ-गूँ' की आवाज़ निकल रही थी। उसके होठों के कोनों से लार बहने लगी थी।

"उसे छोड़ दीजिए, आगा, वो मर जाएगा," किसी ने कहा।

"मैं इसे मार ही डालना चाहता हूँ," बाबा ने कहा। कमरे में मौजूद लोग नहीं जानते थे कि बाबा ने यह बात मज़ाक में नहीं कही थी। करीम का चेहरा लाल पड़ गया था और उसके पैर बुरी तरह फड़फड़ाने लगे थे। मगर बाबा उसकी गर्दन छोड़ने को तैयार नहीं थे। तभी उसी काले शॉल वाली औरत ने बाबा से दरख़्वास्त की कि वह उसे छोड़ दें।

आख़िर-कार जब बाबा ने उसकी गर्दन छोड़ी तो करीम धड़ाम से फर्श पर गिरा और तुरंत ही दोहरा होकर ज़ोर-ज़ोर से हाँफने लगा। कमरे में एकदम सन्नाटा छा गया। दो घंटे पहले बाबा एक ऐसी औरत के लिए अपने सीने पर गोली खाने को तैयार खड़े थे जिसे वे जानते तक नहीं थे। और अभी-अभी वह एक आदमी का गला दबाकर उसे तक़रीबन मौत के घाट उतारने पर आमादा थे, और उतार भी चुके होते अगर उसी औरत की गुज़ारिश ने उन्हें ऐसा करने से रोक न लिया होता।

तभी साथ वाले कमरे में कुछ गिरने की आवाज़ आई। नहीं, साथ वाले कमरे में नहीं, नीचे।

"यह कैसी आवाज़ थी?" किसी ने पूछा।

"और लोग भी हैं," करीम ने हाँफते-काँपते हुए कहा। "बेसमेंट में।"

"कब से इंतज़ार कर रहे हैं वे यहाँ," बाबा ने फर्श पर पड़े करीम के सिरहाने खड़े होते हुए पूछा।

“दो हफ़्तों से।”

“मेरे ख़याल से अभी तुमने कहा था कि ट्रक पिछले हफ्ते ख़राब हुआ था।”

करीम दोनों हाथों से अपनी गर्दन को सहला रहा था। “शायद उससे एक हफ्ते पहले की बात होगी,” उसने फँसी हुई आवाज़ में कहा।

“कब तक?”

“क्या?”

“इंजन के पुर्जे कब तक मिल जाएँगे?” बाबा गरजे। करीम सहम गया, मगर बोला कुछ नहीं। अच्छा हुआ कि कमरे में रोशनी ज़्यादा नहीं थी। मैं बाबा के चेहरे पर कातिलाना भाव देखने का इच्छुक नहीं था।

जैसे ही करीम ने वह दरवाज़ा खोला जो लकड़ी की कमज़ोर-सी सीढ़ियों से नीचे तलघरे की ओर जाता था, किसी तरह की फफूंद जैसी बदबू ने मेरे नथुनों को बुरी तरह झकझोर दिया। हम सब एक-एक करके नीचे उतरे। बाबा के वज़न से सीढ़ियाँ चरमराने लगी थीं। उस सर्द तलघरे में ख़ासा अँधेरा था। अँधेरे में मुझे कई जोड़ी आँखें अपनी ओर देखती नज़र आईं। फिर धीरे-धीरे चारों ओर हल्की-हल्की आकृतियाँ दिखाई पड़नी शुरू हुईं। तलघरे में मिट्टी के तेल के दो लैंप जल रहे थे, जिनकी रोशनी में उन आकृतियों की परछाईयाँ दीवारों पर बन रही थीं। आवाज़ के नाम पर वहाँ इंसानी स्वरों की हल्की-हल्की खुसफुसाहट गूँज रही थी। साथ ही कहीं से बूँद-बूँद करके पानी के टपकने की आवाज़ आ रही थी। और कहीं से कुछ खरोंचे जाने की भी आवाज़ मेरे कानों में पड़ रही थी।

मेरे पीछे खड़े बाबा ने यह सब देख-सुनकर एक आह भरी और हाथों में लिए हुए बैग फर्श पर पटक दिए।

करीम ने कहा कि हमें दो-एक दिन से ज़्यादा इंतज़ार नहीं करना पड़ेगा, इतने में ट्रक सुधर जाएगा और हम आसानी से पेशावर जा सकेंगे, आज़ादी की हवा में साँस ले सकेंगे, बिना किसी डर के जी सकेंगे।

मगर अगले एक हफ्ते तक हम उस तलघरे में ही रहे। तीसरी रात को मुझे समझ आ गया कि खरोंचे जाने की वह आवाज़ क्या थी। वहाँ चूहे थे।

जब मेरी आँखें वहाँ के अँधेरे की अभ्यस्त हुईं तब मैंने गिनती लगाई और पाया कि वहाँ हमें मिलाकर कुल तीस शरणार्थी (मुहाजिर) थे। हम सब कंधे से कंधे सटाकर और दीवार के सहारे टेक लगाकर बैठ गए। खाने के नाम पर बस बिस्कुट और ब्रेड ही थी, जिसे हमने खजूर और सेब के साथ खा लिया। पहली रात सभी मर्द एक साथ इबादत करने बैठे। उनमें से एक ने बाबा से पूछा कि वह इबादत में शामिल क्यों नहीं हो रहे थे। “अल्लाह हम सबको बचाएगा। आप उसकी इबादत क्यों नहीं करते?”

बाबा ने एक चुटकी नसवार सूँघी, पैर फैलाए, और कहा, “हमें आठ सिलेंडर और एक अच्छा कार्बोरेटर ही बचाएगा।” बाबा के इस जवाब ने तय कर दिया कि फिर कभी कोई उनसे अल्लाह के सन्दर्भ में कोई सवाल न करे।

उस पहली रात को ही मुझे पता चला कि हमारे साथ छिपे हुए लोगों में से दो लोग मेरे जाने-पहचाने थे – कमाल और उसके बाबा। मेरे लिए यह देखना क़ाफी चौंकाने वाला था कि कमाल उसी तलघरे में मुझसे बस कुछ फीट की दूरी पर बैठा था। मगर जब वह और उसके बाबा तलघरे के हमारी तरफ़ वाले हिस्से में आए और मैंने कमाल का चेहरा देखा, तो मैं देखता ही रह गया...

वह पूरी तरह से मुरझा गया था–इसके लिए कोई और शब्द हो ही नहीं सकता था। उसकी आँखें एकदम सूनी थीं, उनमें कोई भाव ही नहीं थे, और न ही मुझे देखकर उनमें पहचान के कोई चिन्ह पैदा हुए। उसके कंधे बुरी तरह झुक गए थे और गालों की खाल ऐसे लटक गई थी जैसे उसमें हड्डियों से चिपके रहने की ताक़त ही न बची हो। उसके बाबा, जो काबुल में एक सिनेमाघर चलाते थे, मेरे बाबा को बता रहे थे कि कैसे तीन महीने पहले अचानक कहीं से चली एक गोली आकर उनकी बीवी की कनपटी से टकराई थी और वह वहीं ढेर हो गई थीं। फिर उन्होंने बाबा को कमाल के बारे में बताया। मुझे उनकी बातचीत के कुछ-कुछ हिस्से ही सुनाई दिए: मुझे उसे अकेले नहीं जाने देना चाहिए था...यह हमेशा से कितना हैण्डसम था, आप तो जानते ही हैं...वे चार लोग थे...उसने लड़ने की कोशिश की...अल्लाह...वे उसे पकड़कर ले गए...उसके वहाँ से ख़ून बह रहा था...उसकी पेंट...तब से इसने बोलना ही बंद कर दिया है...बस ऐसे देखता रहता है जैसे देखकर भी कुछ न देख रहा हो...।

चूहों से भरे उस तलघरे में एक हफ्ता काटने के बाद करीम ने हमें बताया कि वह ट्रक अब सुधरने की हालत में नहीं था। यह ख़बर सुनते ही सभी के मुँह से आँहें निकलने लगीं। “मगर एक दूसरा विकल्प है,” करीम ने अँधेरे में रोशनी की एक किरण पैदा करने वाले अंदाज़ में कहा। उसके एक चचेरे भाई के पास एक फ्यूल ट्रक था, जिसमें भरकर उसने कई बार लोगों की तस्करी की थी। वह इस वक़्त जलालाबाद में था और हमारे काम आ सकता था। एक बूढ़े मियाँ-बीवी के अलावा बाक़ी सभी जाने के लिए राज़ी हो गए।

हम लोग उसी रात निकल पड़े। मैं और बाबा, कमाल और उसके बाबा, और बाक़ी के लोग। करीम और उसके चचेरे भाई अज़ीज़ (चौकोर चेहरे और गंजे सिर वाला आदमी) ने सब लोगों को फ्यूल टैंक में घुसने में मदद की।

एक-एक करके हम सभी ट्रक के पिछले डेक पर चढ़े और फिर वहाँ लगी सीढ़ी पर चढ़कर टैंक के अन्दर समा गए। मुझे याद है कि बाबा अभी आधी सीढ़ी ही चढ़े थे कि उन्हें कुछ याद आ गया और वह वापस नीचे उतर आए। फिर उन्होंने अपनी जेब से अपनी नसवार की डिबिया निकाली, सारी नसवार ज़मीन पर उलट दी, ज़मीन से एक चुटकी मिट्टी उठाई, उसे चूमा, और डिबिया में भर ली। फिर उस डिबिया को अपने

कोट की सीने के पास वाली जेब में रख लिया, अपने दिल के क़रीब।

दहशत।

आप अपना मुँह खोलते हैं। इतना चौड़ा खोलते हैं कि आपके जबड़े चरमराने लगते हैं। आप अपने फेफड़ों को हवा अन्दर खींचने का हुक्म देते हैं, तत्काल, आपको हवा की सख़्त ज़रूरत है, मगर आपकी साँस की नली आपके आदेश को अनसुना कर देती है। उसको मानो लकवा मार जाता है, वह सिकुड़ने लगती है, कसने लगती है, और अचानक आपको ऐसा महसूस होता है मानो आप नारियल पानी पीने वाली स्ट्रॉ से साँस ले रहे हों। आपका मुँह बंद हो जाता है और आपके होंठ सिकुड़ जाते हैं और आपके गले से बस एक घुटी हुई आवाज़ ही निकल पाती है। आप जल बिन मछली की तरह छटपटाने लगते हैं, आपके हाथ काँपने लगते हैं। कहीं कोई बाँध टूट गया हो मानो और बाढ़ आ गई हो, इस तरह आपका शरीर ठंडे पसीने से तर होने लगता है। आप चीखना चाहते हैं, मगर चीख भी नहीं पाते क्योंकि उसके लिए भी साँस लेना ज़रूरी है, और साँस है कि आ ही नहीं रही।

दहशत।

तलघर में अँधेरा था। इस फ्यूल-टैंक में घुप्प-अँधेरा था। मैंने दाएँ-बाएँ, ऊपर-नीचे देखा, कुछ भी नहीं दिखा। मैंने अपनी आँखों के सामने अपने हाथ लहराए, मगर मुझे न हाथ दिखाई दिए और न ही कोई हलचल। मैंने पलकें झपकीं, फिर से झपकीं। कुछ अंतर मालूम नहीं हुआ। पता ही नहीं चल रहा था कि आँखें खुली हैं या बंद। हवा बिल्कुल भी ठीक नहीं थी, बहुत गाढ़ी थी, लगभग ठोस। हवा ठोस तो नहीं होती! मेरा मन किया कि मैं हवा को पकड़ूँ और हाथों से उसे बारीक-बारीक टुकड़ों में तोड़कर अपनी साँस की नली में भर लूँ। और वह गैसोलीन की बदबू! गैस की फ्यूम्स से मेरी आँखें ऐसे जलने लगीं जैसे किसी ने पलकों को उल्टा करके उन पर नींबू रगड़ दिया हो। हर बार साँस के अन्दर जाने के साथ मेरी नाक और भी ज़्यादा जलन करने लगती थी। 'ऐसी जगह कोई कैसे ज़िन्दा रह सकता है!' मैंने सोचा। मेरी चीख निकलने वाली थी। निकलने ही वाली थी। निकलने वाली ही थी...

मगर तभी एक करिश्मा हुआ। बाबा ने मेरी आस्तीन खींची और अंधेरे में हरा-हरा कुछ चमक उठा। रोशनी! बाबा की घड़ी। मैंने अपनी आँखें घड़ी के फ्लोरोसेंट हरे काँटों पर गड़ाए रखीं। मैं यह सोचकर पलक झपकाने की भी हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था कि कहीं अँधेरे में चमकी रोशनी की यह हल्की सी किरण भी खो न जाए।

धीरे-धीरे मेरे होश-ओ-हवास ठिकाने पर आए और मुझे अपने आसपास की चीज़ों का अहसास होना शुरू हुआ। मुझे लोगों के कराहने और दुआएँ माँगने की आवाज़ें सुनाई देने लगीं। एक बच्चे के रोने की तेज़ आवाज़ और उसकी माँ की उसे चुप कराने की धीमी सी आवाज़ भी सुनाई दी। किसी के उबकाई लेने की आवाज़ सुनाई दी। किसी के शोरावी को कोसने की आवाज़ सुनाई दी। ट्रक इधर-उधर, ऊपर-नीचे उछल रहा

था। लोगों के सिर फ्यूल-टैंक की दीवारों से टकरा रहे थे।

"कुछ अच्छा सोचो," बाबा ने मेरे कान में कहा। "कुछ ख़ुशनुमा।"

कुछ अच्छा। कुछ ख़ुशनुमा। मैंने अपना दिमाग़ दौड़ाना शुरू किया, और मेरा दिमाग़ मुझे ले गया अतीत की इस स्मृति में: जगह पघमन। दिन शुक्रवार। वक़्त दोपहर। घास का एक खुला मैदान। ढेर सारे शहतूत के पेड़। सभी फलों से लदे हुए। हसन और मैं घुटनों तक जंगली घास में खड़े हैं। मैं डोर खींच रहा हूँ और हसन चरखी संभाले हुए है। हमारी आँखें आसमान में उड़ रही अपनी पतंग पर जमी हुई हैं। दोनों ही बिल्कुल ख़ामोश हैं, इसलिए नहीं कि हमारे पास कहने को कुछ नहीं है, बल्कि इसलिए क्योंकि हमें एक-दूसरे से कुछ कहने की ज़रूरत ही महसूस नहीं होती। उन लोगों के बीच ऐसा ही होता है जो होश संभालते से ही एक-दूसरे के साथ रहे होते हैं, जिन्होंने एक ही स्तन से दूध पिया होता है। हवा का एक झोंका आता है, घास हिलने लगती है, हसन चरखी को ढीला छोड़ देता है ताकि पतंग को आसमान में और भी ऊँचा उठाया जा सके। पतंग लहराती है, गोता खाती है, फिर स्थिर हो जाती है। हम दोनों की परछाइयाँ लहराती घास पर नाच रही हैं। मैदान के दूसरे छोर पर खड़ी ईंटों की दीवार के उस पार कहीं से हमें लोगों के बातें करने, हँसने और झरने के गिरने की आवाज़ सुनाई देती है। किसी वाद्य-यंत्र के बजने का स्वर भी सुनाई पड़ रहा है। मेरे ख़याल से कोई रुबाब पर "या मौला" बजा रहा है। तभी वहाँ से हमारे नाम पुकारे जाते हैं। कोई हमें आवाज़ देकर चाय पीने और केक खाने के लिए बुला रहा है।

यह कौन से महीने की बात थी, मुझे याद नहीं पड़ा। साल भी याद नहीं था। मैं बस इतना जानता था कि यह याद अपने आप में हमारे ख़ुशनुमा अतीत की एक दिलकश झलक समेटे हुए थी और हमारी अब बेरंग हो चुकी ज़िन्दगी के कैनवास पर रंगों के एक ब्रशस्ट्रोक की तरह थी।

उस फ्यूल-टैंक में की गई यात्रा का बाक़ी हिस्सा मुझे पूरी तरह याद नहीं है। यादों के कुछ बिखरे हुए टुकड़े हैं, जो कभी याद आ जाते हैं तो कभी खो जाते हैं। इन यादों में से ज़्यादातर आवाज़ों और गंधों के रूप में हैं। जैसे कि ऊपर से गुज़रते हुए मिग विमान; गोलियों की आवाज़; किसी गधे के रेंकने की आवाज़; घंटियों की टन-टन और भेड़ों की मिमियाहट; ट्रक के टायरों के नीचे बजरी के कुचले जाने की आवाज़; अंधेरे में रोते हुए बच्चे की आवाज़; पेट्रोल की बदबू; उल्टी की बदबू; टट्टी-पेशाब की बदबू।

अगली याद जो मेरे ज़ेहन में है वो सुबह-सुबह की उस रोशनी की है जिसने टैंक से बाहर निकलते ही मेरी आँखों को चौंधिया दिया था। मुझे याद है कि मैंने अपना चेहरा आसमान की तरफ़ किया हुआ था, आँखों को मिचमिचाकर उन्हें रोशनी का अभ्यस्त बनाने की कोशिश कर रहा था, और इस तरह साँस ले रहा था मानो दुनिया की हवा ख़त्म हो रही हो।

कुछ पलों बाद मैं एक पथरीली खाई के बग़ल से गुज़रने वाली धूल भरी सड़क के

किनारे पीठ के बल लेटा हुआ सुबह के धूसर आसमान की तरफ़ देख रहा था, हवा के लिए शुक्रगुज़ार महसूस कर रहा था। रोशनी के लिए शुक्रगुज़ार महसूस कर रहा था। ज़िन्दा होने के लिए शुक्रगुज़ार महसूस कर रहा था।

"हम पकिस्तान में हैं, आमिर," बाबा ने कहा। वह मेरे सिरहाने खड़े थे। "करीम कह रहा है कि उसने हमें पेशावर तक पहुँचाने के लिए एक बस का इंतज़ाम किया है।"

अब मैं उल्टा होकर ठण्डी धूल पर छाती के बल लेट गया। तभी मेरी नज़र बाबा के पैरों के दोनों ओर रखे हमारे सूटकेसों पर पड़ी। उनके पैरों के बीच बने उल्टे 'वी' के झरोखे से मैंने देखा कि ट्रक सड़क के किनारे खड़ा था और बाक़ी मुहाजिर (शरणार्थी) एक-एक करके पीछे की सीढ़ी से नीचे उतर रहे थे। धूल-मिट्टी से भरी यह कच्ची सड़क, जिसके किनारे मैं अभी लेटा था, आगे दूर-दूर तक फैले खेतों से होकर गुज़रती थी और फिर कटोरे के आकार की पहाड़ियों के पीछे गायब हो जाती थी। मगर उससे पहले यह उस छोटे-से गाँव से होकर गुज़रती थी जो सूरज की हद से ज़्यादा तपिश झेलने को अभिशप्त ढलान पर बसा हुआ था।

मेरी नज़रें फिर अपने सूटकेसों पर लौट आईं। उन्हें देखकर मुझे बाबा के लिए दुःख हुआ। उन्होंने ज़िन्दगी में कितना कुछ किया था, कितना कुछ बनाया था, कितने मंसूबे बाँधे थे, कितना संघर्ष किया था, कितनी फ़िक्र की थी, कितने सपने देखे थे। मगर आख़िर को उनके हाथ सिर्फ़ यह आया था: एक नाउम्मीद करने वाला बेटा और दो सूटकेस!

तभी किसी के चीखने की आवाज़ सुनकर मैं ख़यालों से बाहर आया। नहीं, चीख नहीं रहा था, विलाप कर रहा था। मैंने देखा कि सभी मुसाफ़िर एक घेरे में इकट्ठा हो रहे थे और इस तरह बातें कर रहे थे जैसे कोई अनहोनी घट गई हो। किसी के मुँह से निकला, "फ्यूम्स।" किसी और ने भी यही शब्द दोहराया। विलाप अब दिल दहला देने वाले रूदन में बदल गया था।

बाबा और मैं जल्दी से उस ओर भागे और वहाँ इकट्ठा लोगों को पीछे धकेलते हुए घेरे के बीच पहुँचे। वहाँ कमाल के बाबा पालथी मारकर बैठे हुए थे और अपनी गोद में रखे कमाल के राख जैसे दिखाए पड़ रहे चेहरे को चूमते हुए बुरी तरह रो रहे थे। उनका पूरा शरीर बुरी तरह काँप रहा था।

"यह साँस नहीं ले पा रहा है! मेरा बच्चा साँस नहीं ले पा रहा है!" वह रो-रोकर कहे जा रहे थे। कमाल का बेजान शरीर उसके बाबा की गोद में पड़ा था। उसका दाहिना हाथ निढाल-सा बाहर लटका हुआ था और उसके बाबा की सिसकियों की लय पर ऊपर-नीचे हो रहा था। "मेरा बच्चा! यह साँस नहीं ले पा रहा है! अल्लाह, इसकी मदद करो! इसको जिला दो!"

बाबा उनके बग़ल में जाकर घुटनों के बल बैठ गए और अपना हाथ उनके कंधे पर

रख दिया। मगर उन्होंने बाबा का हाथ झटक दिया और झटके से उठकर पास ही अपने चचेरे भाई के साथ खड़े करीम पर झपटे। इसके बाद जो हुआ वह इतना जल्दी और इतना छोटा वाकया था कि उसे हाथापाई नहीं कहा जा सकता था। भौचक्के करीम के मुँह से एक चीख निकली और वह कुछ क़दम पीछे हट गया। कमाल के बाबा ने बिजली की तेज़ी से उसे एक मुक्का और एक लात जमाई। और अगले ही पल करीम की हैण्डगन कमाल के बाबा के हाथ में थी।

"मुझे गोली मत मारो!" करीम घिघिआया।

मगर इससे पहले कि हम में से कोई कुछ कह या कर पाता, कमाल के बाबा ने गन की नाल अपने ही मुँह में घुसेड़ ली। गन के उस धमाके की गूँज मैं कभी नहीं भूलूँगा। न ही ख़ून और माँस के लोथड़ों के हवा में छितराने के मंज़र को।

मैं फिर से सड़क किनारे दोहरा हो गया और उल्टी करने लगा।

ग्यारह

फ़्रेमोंट, कैलिफ़ोर्निया / *1980* का दशक

बाबा को अमेरिका का विचार बहुत पसंद आया।

मगर अमेरिका में रहने की कीमत उन्हें अल्सर के रूप में चुकानी पड़ी।

मुझे याद है कि कैसे हम दोनों फ़्रेमोंट में अपने घर से कुछ ही दूर लेक एलिज़ाबेथ पार्क में टहलते थे और लड़कों को बेसबॉल बल्लेबाज़ी का अभ्यास करते हुए और छोटी बच्चियों को खेल के मैदान में झूलों पर खिलखिलाते हुए देखते थे। इस दौरान बाबा सियासत को लेकर अपनी समझ, अपना तजुर्बा, और अपनी राय तफसील से बयान करते थे। "इस दुनिया में केवल तीन ही असल मर्द हैं, आमिर," वह कहते। फिर वह उन्हें उँगलियों पर गिनकर बताते: अक्खड़ रक्षक अमेरिका, ब्रिटेन और इज़रायल। "बाक़ी सब तो उन बूढ़ी औरतों की तरह हैं जो गॉसिप करने के अलावा और कुछ नहीं कर सकतीं।"

फ़्रेमोंट में रहने वाले अफ़ग़ानों के मन में इज़रायल को लेकर ख़ासा गुस्सा था, क्योंकि उनका मानना था कि यहूदी-समर्थक होने के चलते इज़रायल स्वाभाविक रूप से इस्लाम-विरोधी था। उनके सामने इज़रायल की तारीफ़ करना उनको भड़का देता था। बाबा जब भी पार्क में चाय पर उनसे मिलते तो सियासत की अपनी बातों से उन्हें पगला देते थे। बाद में बाबा मुझसे कहते, "वे यह नहीं समझते कि इस सबका मज़हब से कोई लेना-देना नहीं है।" बाबा के विचार में इज़रायल उन अरबों के समंदर में 'असल मर्दों' का एक द्वीप था जो अपने तेल के बल पर अपनी जेबें भरने में इतने मसरूफ थे कि उन्हें ख़ुद की भी परवाह नहीं थी। "इज़रायल ऐसा करता है, इज़रायल वैसा करता है," बाबा अरबी लहज़े की नक़ल करते हुए कहते। "तो फिर तुम कुछ करो न! कोई एक्शन लो। तुम अरब हो, फ़िलिस्तीनियों की मदद करो!"

बाबा जिमी कार्टर से बहुत चिढ़ते थे और उसे 'बड़े दाँतों वाला जाहिल' कहते थे। 1980 में, जबकि हम अभी काबुल में ही थे, अमेरिका ने घोषणा की कि वह मास्को में होने वाले ओलंपिक खेलों का बहिष्कार करेगा। "वाह वाह!" बाबा ने धिक्कार के स्वर में कहा। "इधर यह ब्रेझनेव अफ़ग़ानों का क़त्ल-ए-आम कर रहा है और उधर वह नामर्द बस इतना ही कह सकता है कि मैं तुम्हारे पूल में तैरने नहीं आऊँगा।" बाबा का मानना था कि साम्यवाद के हाथ जितने कार्टर ने मज़बूत किए थे, भले अनजाने में किए हों, उतने तो लियोनिद ब्रेझनेव ने भी नहीं किए थे। "वह इस देश की बागडोर संभालने

के लिए सही आदमी नहीं है। यह ऐसा ही है जैसे किसी ऐसे लड़के को जो बाइक भी नहीं चला सकता, उसे एकदम नई कैडिलैक कार की ड्राइविंग सीट पर बैठा दिया जाए।” उनकी नज़र में अमेरिका और सारी दुनिया को एक सख्त आदमी की ज़रूरत थी। एक ऐसे आदमी की जिसे कोई भी हल्के में न ले सके, जो हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहने के बजाए निर्णायक कार्रवाई करना जानता हो। वह आदमी अमेरिका को मिला रोनाल्ड रीगन के रूप में। और जब रीगन टीवी पर आए और शोरावी को “शैतानी साम्राज्य” कहा, तब बाबा बाज़ार से रीगन की एक थम्ब्स-अप करती हुई तस्वीर ले आए और उसे फ्रेम कराकर हॉलवे में ठीक उस ब्लैक-एण्ड-वाइट तस्वीर के बग़ल में टांग दिया जिसमें वे पतली सी नैक-टाई पहने सुल्तान ज़हीर शाह से हाथ मिलाते नज़र आ रहे थे। फ्रेमोंट में हमारे आस-पड़ोस में रहने वाले ज़्यादातर लोग बस ड्राइवर, पुलिसकर्मी, गैस स्टेशन पर काम करने वाले, और वे बिन ब्याहे माँ बन चुकीं औरतें थीं जिनकी ज़िन्दगी सरकारी वेलफेयर योजनाओं के सहारे ही चल रही थी। कुल मिलाकर, ये वे मेहनतकश लोग थे जो जल्द ही रीगनॉमिक्स के तकिए के नीचे घुटकर दम तोड़ देने वाले थे। हमारी बिल्डिंग में बाबा रिपब्लिकन पार्टी के इकलौते समर्थक थे।

मगर ‘बे एरिया’ (उत्तरी कैलीफोर्निया में सैन फ्रांसिस्को खाड़ी के आसपास का इलाका) के स्मॉग से उनकी आँखों में जलन होती थी, ट्रैफिक के शोर से उनका सिर दुखने लगता था, और हवा में फैले पराग-कणों के चलते उन्हें खाँसी हो जाती थी। वहाँ के फल कभी उतने मीठे नहीं होते थे, पानी कभी उतना साफ़ नहीं होता था, और पेड़ों और खुले-खुले मैदानों का तो वहाँ नाम-ओ-निशान तक नहीं था। दो साल तक मैं बाबा को ईएसएल कक्षाओं में दाख़िला दिलाने की कोशिश करता रहा ताकि उनकी अंग्रेज़ी सुधर जाए। मगर वह हमेशा इसे मज़ाक में उड़ाते रहे। “हाँ, वहाँ जाकर मैं ‘कैट’ लिखना सीखूँगा, ताकि टीचर मुझे ‘वैरी गुड’ दें और मैं भागकर घर आऊँ और तुम्हें दिखाऊँ कि देखो मैंने कितना बड़ा तीर मारा है!” वह हमेशा इसी तरह की बातें करते।

1983 के बसंत की बात है। एक रविवार को मैं पुरानी किताबें बेचने वाली एक छोटी सी दुकान में गया। यह दुकान फ्रेमोंट बुलेवार्ड में एमट्रैक के रेलरोड स्टेशन के पश्चिम में पड़ने वाले उस सिनेमाघर के ठीक बग़ल में थी जो हिन्दुस्तानी फ़िल्में दिखाता था। मैं बाबा से कहकर गया था कि मैं पाँच मिनट में आ जाऊँगा, तब तक वह वहीं रुकें। उन दिनों वह फ्रेमोंट में एक गैस स्टेशन पर काम कर रहे थे और उस दिन उनकी छुट्टी थी। मगर जब मैं किताबों की दुकान में दाख़िल हो रहा था तो मैंने देखा कि वह अपनी जगह पर नहीं थे, वह चहलक़दमी करते हुए ‘फास्ट एंड ईज़ी’ नाम की एक छोटी-सी किराने की दुकान में जा रहे थे। उस दुकान को एक बूढ़े वियतनामी मियाँ-बीवी, मिस्टर और मिसेज़ गुयेन, चलाते थे। दोनों काफी ज़्यादा उम्रदराज़ मगर मिलनसार किस्म के लोग थे। मिसेज़ गुयेन को पार्किन्संस की बीमारी थी, जबकि मिस्टर गुयेन की कूल्हे की हड्डी की सर्जरी हो चुकी थी। “ये (मिस्टर गुयेन) अब ‘सिक्स मिलियन डॉलर मैन’ की तरह हो गए हैं,” मिसेज़ गुयेन अक्सर पोपली हँसी हँसते हुए

मज़ाक में मुझसे कहती थीं। "'सिक्स मिलियन डॉलर मैन' याद है न, आमिर?" तब मिस्टर गुयेन ली मेजर की तरह गुस्से वाला चेहरा बना लेते और स्लो मोशन में दौड़ने की एक्टिंग करके दिखाते।

किताबों की दुकान में खड़ा मैं माइक हैमर के किसी उपन्यास की एक पुरानी कॉपी उलट-पलट कर देखा रहा था कि तभी मैंने चीखने-चिल्लाने और काँच टूटने की आवाज़ सुनी। मैंने किताब रखी और तुरंत भागकर बाहर सड़क पर आया और मेरी नज़र सीधी 'फास्ट एंड ईज़ी' की ओर गई। मैंने देखा कि मिस्टर और मिसेज़ गुयेन काउण्टर के पीछे थे – दोनों के दोनों पीछे दीवार से सटे हुए, दोनों के चेहरे फक्क सफ़ेद पड़े हुए। मिस्टर गुयेन ने बुरी तरह डरी हुईं मिसेज़ गुयेन को बाहों में भरा हुआ था। काउण्टर के इस तरफ़ बाबा खड़े थे और फर्श पर उनके पैरों के पास संतरे, एक उलटा पड़ा मैगज़ीन रैक, बीफ़ जर्की का एक टूटा हुआ जार और काँच के ढेर सारे छोटे-बड़े टुकड़े फैले हुए थे।

जब मैं वहाँ पहुँचा तो मालूम हुआ कि बात बस इतनी थी कि बाबा वहाँ संतरे ख़रीदने गए थे, मगर नकद पैसे न होने के चलते उन्होंने एक चेक लिखकर दे दिया था और मिस्टर गुयेन ने बाबा से उनका परिचय-पत्र माँग लिया था। "यह मेरा लाइसेंस देखना चाहता है," बाबा ने फ़ारसी में चिल्लाते हुए कहा। "लगभग दो बरस से हम इसके यहाँ से फल ख़रीद रहे हैं और इसकी जेब में पैसे डाल रहे हैं और आज यह कुत्ते का बच्चा मेरा लाइसेंस देखना चाहता है!"

"बाबा, मिस्टर गुयेन मनमर्ज़ी से ऐसा नहीं कर रहे हैं, यह यहाँ का कायदा है, चेक देते समय परिचय-पत्र दिखाना पड़ता है," मैंने फारसी में ही बाबा को समझाते हुए कहा, साथ ही मिस्टर एंड मिसेज़ गुयेन की ओर देखकर मुस्कराने की कोशिश की।

"आप अभी के अभी दुकान से बाहर निकल जाइए," मिस्टर गुयेन मिसेज़ गुयेन के सामने खड़े होकर अपनी छड़ी से बाबा की ओर इशारा करते हुए बोले। फिर वह मेरी ओर घूमे और कहने लगे, "तुम अच्छे लड़के हो, मगर तुम्हारा बाप एकदम सनकी है। अब इसको कभी इधर मत भेजना।"

"इसको क्या लगता है कि मैं चोर हूँ?" बाबा ने और भी ज़ोर से चिल्लाते हुए कहा। दुकान के बाहर लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई थी। सब लोग हैरानी से भीतर चल रहा तमाशा देख रहे थे। "किस तरह का मुल्क है यह? कोई किसी का एतबार ही नहीं करता!"

"मैं पुलिस बुला लूँगी," मिसेज़ गुयेन ने मिस्टर गुयेन के पीछे से चेहरा दिखाते हुए कहा। "तुम लोग बाहर निकल जाओ, नहीं तो मैं पुलिस बुला लूँगी।"

"प्लीज़, मिसेज़ गुयेन, पुलिस को मत बुलाइए। मैं इन्हें घर ले जाऊँगा। पर पुलिस को मत बुलाइए, ठीक है? प्लीज़?"

"हाँ, यही ठीक रहेगा कि तुम इन्हें घर ले जाओ," मिस्टर गुयेन ने कहा। वह बात तो

मुझसे कर रहे थे, मगर उनकी नज़रें पूरा समय बाबा पर ही जमी हुई थीं। मैं बाबा को ठेलता हुआ दुकान से बाहर ले आया। रास्ते में उन्होंने फर्श पर पड़ी एक मैगज़ीन पर अपने जूते की एक भरपूर ठोकर जमाकर अपने गुस्से का इज़हार किया। बाहर आकर जब मैंने उनसे यह वादा ले लिया कि अब वे वापस दुकान में नहीं आएँगे, तब मैं उन्हें वहीं छोड़कर वापस दुकान के भीतर गया और मिस्टर और मिसेज़ गुयेन से माफ़ी माँगी। उन्हें बताया कि मेरे बाबा मुश्किल वक़्त से गुज़र रहे थे। फिर मैंने मिसेज़ गुयेन से कहा कि जितना भी नुक़सान हुआ था उसका हिसाब लगाकर मुझे बता दें, और एक काग़ज़ पर अपना टेलीफोन नंबर और पता लिखकर उन्हें थमा दिया। “जैसे ही आपका हिसाब बन जाए आप मुझे फोन कर दीजिएगा। मैं आपके सारे नुक़सान की भरपाई कर दूँगा, मिसेज़ गुयेन। जो कुछ भी हुआ मुझे उसका बहुत अफ़सोस है।” मिसेज़ गुयेन ने मेरे हाथ से काग़ज़ ले लिया और सहमति में सिर हिला दिया। मैंने देखा कि उनके हाथ रोज़ाना की तुलना में कहीं ज़्यादा काँप रहे थे, और यह देखकर मुझे बाबा पर गुस्सा आ गया। किसी बूढ़ी औरत को ऐसी हालत में पहुँचाना कहाँ की बहादुरी थी!

“मेरे बाबा अभी भी अमेरिका की ज़िन्दगी के साथ तालमेल बैठाने की कोशिश कर रहे हैं,” मैंने बाबा के बर्ताव की सफाई देते हुए कहा।

मैं उन्हें बताना चाहता था कि काबुल में तो हम पेड़ की एक टहनी तोड़कर उसे ही क्रेडिट कार्ड की तरह इस्तेमाल कर लेते थे। नान ख़रीदने के लिए मैं और हसन पेड़ से एक टहनी तोड़कर दुकान पहुँच जाते थे। दुकानदार हरेक नान के बदले टहनी पर चाकू से एक निशान बना देता था। महीने के आख़िर में बाबा उसे उतने नानों का भुगतान कर देते थे जितने निशान टहनी पर बने होते थे। इतना आसान सिस्टम था। कोई सवाल नहीं। कोई परिचय-पत्र नहीं।

मगर मैंने उन लोगों को यह बताया नहीं। मैंने उन्हें पुलिस न बुलाने के लिए शुक्रिया कहा। फिर मैं बाबा को लेकर घर आ गया। बाबा का गुस्सा अभी भी ठंडा नहीं हुआ था। उन्होंने एक सिगरेट सुलगा ली और बालकनी में टहलने लगे, जबकि मैं रसोई में जाकर रात के खाने के लिए चिकन-चावल बनाने लगा। पेशावर से यहाँ आए हुए हमें डेढ़ साल होने को आया था, मगर बाबा अभी भी यहाँ की ज़िन्दगी में ढल नहीं पाए थे।

खाना खाते हुए हमारे बीच ख़ामोशी पसरी रही। बाबा ने दो कौर खाकर प्लेट सरका दी।

डाइनिंग टेबल पर उनके सामने बैठे हुए मैंने देखा कि उनके नाख़ून खुरदुरे हो गए थे और उन पर इंजन ऑयल का कालापन जम गया था। उनकी उँगलियों के पोरों पर जगह-जगह खरोंचों के निशान थे। उनके कपड़ों से गैस स्टेशन की धूल-मिट्टी, पसीने और पेट्रोल की गंध आने लगी थी। बाबा की हालत उस आदमी के जैसी थी जिसने अपनी बीवी के मरने के बाद फिर से घर तो बसा लिया था मगर जो अपनी पहली बीवी की यादों को अपने दिल-ओ-दिमाग़ से निकाल नहीं पाया था। उन्हें अभी भी जलालाबाद के गन्ने के खेत और पघमन के बगीचे याद आते थे। उन्हें अपने घर आने-

जाने वाले लोगों की याद आती थी; शोर बाज़ार की चहल-पहल भरी गलियों में घूमने की याद आती थी; और उन लोगों से दुआ-सलाम की याद आती थी, जो उन्हें और उनके बाबा को जानते थे, उनके दादा को जानते थे, जिनके पुरखे बाबा के पुरखों को जानते थे, जिनका अतीत बाबा के अतीत के साथ जुड़ा हुआ था।

मेरे लिए अमेरिका वह जगह थी, जहाँ मैं अतीत की यादों को दफना सकता था।

बाबा के लिए यह वह जगह थी जहाँ वह उन यादों को याद कर-करके दुखी होते थे।

"मेरे ख़याल से हमें पेशावर लौट चलना चाहिए," मैंने अपने पानी के गिलास में पिघलती बर्फ़ को देखते हुए कहा। हमने आईएनएस द्वारा वीज़ा जारी किए जाने का इंतज़ार करते हुए पेशावर में छह महीने बिताए थे। वहाँ हम जिस एक बेडरूम वाले मकान में रहते थे उसमें हमेशा महीनों से न धुले मोजों और बिल्ली की टट्टी जैसी बदबू फ़ैली रहती थी, मगर हमारे आसपास जो लोग थे वे जाने-पहचाने थे (मेरे लिए न सही मगर बाबा के लिए तो थे)। अक्सर वे सारे पड़ौसियों को रात के खाने पर बुला लेते थे, जिनमें से ज़्यादातर अफ़ग़ानिस्तान के ही बाशिंदे थे, जो हमारी ही तरह वीज़ा मिलने का इंतज़ार कर रहे थे। अक्सर उनमें से कोई तबला ले आता था तो कोई हारमोनियम, फिर खाने के बाद चाय के साथ गाने-बजाने की जो महफ़िल सजती तो सुबह सूरज उगने, मच्छरों के सोने जाने, और तालियाँ बजा-बजाकर हाथों के सूज चुकने के बाद ही ख़त्म होती।

"आप वहाँ ज़्यादा ख़ुश थे, बाबा। वह जगह आपके लिए घर जैसी ही थी," मैंने कहा।

"पेशावर मेरे लिए अच्छा था, मगर तुम्हारे लिए नहीं।"

"यहाँ आपको कितनी कड़ी मेहनत करनी पड़ रही है।"

"अब उतनी दिक्कत नहीं है," उन्होंने कहा। उनका मतलब था कि चूँकि अब वह गैस स्टेशन के डे मेनेजर बन गए थे, इसलिए। मगर मैंने देखा था कि नम दिनों में कैसे वह कराहते थे और अपनी कलाइयों को रगड़ते थे। खाने के बाद जब वह एंटासिड की बोतल लेने के लिए हाथ बढ़ाते थे तो कैसे उनके माथे पर पसीना आ रहा होता था। "और फिर मत भूलो कि हम यहाँ मेरे लिए नहीं आए हैं।"

मैं अपनी जगह से उठकर उनके पास गया और उनके हाथ पर हाथ रख दिया। मेरा हाथ, एक छात्र का हाथ, साफ़ और मुलायम। उनका हाथ, एक मज़दूर का हाथ, मैला-कुचैला और भट्टों (कड़ी मेहनत करने से कठोर हुई त्वचा) से भरा हुआ। मेरे ज़ेहन में वे सभी खिलौने, तोहफे, और सुख-ओ-आराम के वे सब साज-ओ-सामान घूम गए जो उन्होंने काबुल में रहते हुए समय-समय पर मुझे ख़रीदकर दिए थे। अब अमेरिका। आमिर के लिए एक आख़िरी तोहफ़ा।

अमेरिका आने के ठीक एक महीने बाद ही बाबा को वॉशिंगटन बुलेवार्ड के पास एक अफ़ग़ान परिचित के गैस स्टेशन पर सहायक के रूप में नौकरी मिल गई थी। उन्होंने अमेरिका आते ही नौकरी तलाशनी शुरू कर दी थी, हफ्ते भर भी इंतज़ार नहीं किया था। मगर यह नौकरी बहुत कठिन थी। बाबा हफ्ते में छह दिन बारह घंटे की शिफ्ट में काम करते थे। गैस भरते थे, रजिस्टर मेंटेन करते थे, तेल बदलते थे और विंडशील्ड धोते थे। कभी-कभी मैं जब उनके लिए दोपहर का खाना लेकर जाता तो पाता कि काम की अधिकता से थकान महसूस कर रहे बाबा शेल्व्स पर सिगरेट का पैकेट ढूँढ रहे होते, जबकि तेल से सने काउंटर के दूसरी तरफ़ एक नया ग्राहक इंतज़ार कर रहा होता। चमकीली फ्लोरोसेंट रोशनी में बाबा का उदास और पीला पड़ा चेहरा देखकर मेरा दिल बैठ जाता। मेरे भीतर क़दम रखने पर दरवाज़े पर लगी इलेक्ट्रॉनिक घंटी बजती तो बाबा मुड़कर देखते, हाथ हिलाते और मुस्कुराते। उस वक़्त मैं देखता कि थकान के कारण उनकी आँखें पनियाई हुईं होतीं।

जिस दिन बाबा को नौकरी मिली, उसी दिन बाबा और मैं सैन जोस में अपनी पात्रता अधिकारी श्रीमती डोबिन्स के पास गए। वह एक भारी-भरकम अश्वेत महिला थीं जिनकी आँखों में हमेशा एक चमक और चेहरे पर डिंपल वाली मुस्कान रहती थी। उन्होंने एक बार मुझे बताया था कि वह चर्च में गाती थीं और मुझे उनकी बात पर यकीन आ गया था, उनकी आवाज़ ऐसी थी जिसे सुनकर मुझे शहद मिले गुनगुने दूध की याद आ जाती थी। बहरहाल, बाबा ने मुफ्त खाने के कूपनों की गड्डी उनके सामने मेज़ पर रखते हुए कहा, “शुक्रिया, मगर मुझे ये नहीं चाहिए। मैं हमेशा मेहनत की रोटी खाता आया हूँ। जब अफ़ग़ानिस्तान में था तब भी कमाकर खाता था, अब अमेरिका में भी कमाकर ही खाऊँगा। बहुत-बहुत शुक्रिया, श्रीमती डोबिन्स, मगर मुझे मुफ्त की रोटी पसंद नहीं है।”

श्रीमती डोबिन्स चौंक गईं। गड्डी उठाकर वह असमंजस से कभी मुझे तो कभी बाबा को देखने लगीं। उन्हें लग रहा था कि कहीं हम उनके साथ कोई मज़ाक तो नहीं कर रहे हैं। “पिछले पंद्रह साल से मैं यह काम कर रही हूँ और आज तक कभी किसी ने भी ऐसा नहीं किया,” आख़िर में उन्होंने कहा। और इस तरह बाबा ने अपने मन पर रखे मुफ्त खाने के कूपनों रूपी बोझ को हटा दिया और अपने इस सबसे बड़े डर को दूर कर दिया कि कोई अफ़ग़ान उन्हें दान के पैसे से खाना ख़रीदते हुए देख लेगा। बाबा वेलफेयर ऑफिस से ऐसे बाहर निकले जैसे उनका ट्यूमर ठीक हो गया हो।

1983 की उन गर्मियों में, बीस बरस की उम्र में, मैं हाई स्कूल ग्रेजुएट हो गया। उस दिन यह डिग्री लेने वाला मैं सबसे ज़्यादा उम्र का सीनियर था। मुझे याद है कि जिस दिन फुटबॉल मैदान पर दीक्षांत समारोह था, उस दिन मैं वहाँ नीले गाउन पहने लड़के-लड़कियों, उनके परिवारों और चमकते कैमरों की भीड़ में बाबा को खोज रहा था। आख़िर-कार मैंने उन्हें ढूँढ ही लिया, वह बीस यार्ड लाइन के पास जेबों में हाथ डाले, गले में कैमरा लटकाए खड़े थे। मगर हमारे बीच इतने सारे लोग –नीले गाऊन में ख़ुशी से चीखतीं-रोतीं और आपस में गले मिलतीं लड़कियाँ, एक-दूसरे को हाई-फाइव देते

लड़के और उनके डैड लोग– और इतनी सारी हलचल थी कि वह कभी दिखाई देते थे और कभी दिखना बंद हो जाते थे। बाबा की दाढ़ी सफ़ेद हो चली थी, सर के बाल भी कम होने लगे थे, और कमर भी कुछ झुक सी गयी थी। आज उन्होंने अपना इकलौता कत्थई रंग का सूट पहना था जो वह अफ़ग़ान शादियों और कफ़न-दफ़न में शामिल होते वक़्त पहनते थे, और उस पर वह लाल टाई लगाई थी जो मैंने उन्हें उनकी पचासवीं सालगिरह पर तोहफे में दी थी। तभी बाबा ने भी मुझे देख लिया और हाथ हिलाया। मुस्कराए। उन्होंने इशारे से मुझे अपना मोर्टारबोर्ड (वह काली टोपी जो छात्र दीक्षांत समारोह में डिग्री लेते वक़्त पहनते हैं) पहनने को कहा और फिर स्कूल के घंटाघर के सामने खड़े करके मेरी एक तस्वीर खींची। उन्हें ख़ुश देखकर मेरे चेहरे पर ख़ुद-ब-ख़ुद मुस्कान आ गई। एक तरह से यह मुझसे ज़्यादा उनका दिन था। फिर वह मेरे पास आए, अपनी बाँह मेरी गर्दन में डाली, और मेरे माथे को चूम लिया। "मैं मोफ्ताख़िर हूँ, आमिर," उन्होंने कहा। उन्हें मुझ पर नाज़ था। यह कहते वक़्त उनकी आँखों में एक अलग ही चमक थी और उस चमक को देखकर मुझे बहुत सुकून महसूस हुआ।

उस रात वह मुझे हेवार्ड के एक अफ़ग़ान कबाब हाउस में ले गए और इतना ज़्यादा खाना मँगवाया जो मैं कभी खा ही नहीं सकता था। उन्होंने फख्र के साथ कबाब हाउस के मालिक को बताया कि इस साल मेरा बेटा कॉलेज जा रहा है। ग्रेजुएशन पूरा होने से कुछ ही दिन पहले मैंने उनसे इस बारे में छोटी सी बहस की थी कि मैं इस साल कॉलेज नहीं जाना चाहता था, मैं कोई नौकरी तलाशना चाहता था, थोड़े पैसे जमा करना चाहता था, उनका थोड़ा हाथ बँटाना चाहता था। कॉलेज मैं एक साल बाद भी जा सकता था। मगर जैसे ही उन्होंने मुझे 'बाबा वाली' सख्त और आग उगलती नज़र से देखा, मेरे शब्द मेरी ज़बान पर ही भाप बनकर उड़ गए।

खाने के बाद बाबा मुझे कबाब हाउस के सामने बने एक बार में ले गए। वहाँ बहुत मद्धम रोशनी थी और हवाओं में बीयर की वही तीखी गंध फ़ैली हुई थी जो मुझे हमेशा से नापसंद थी। बेसबॉल कैप और टैंक टॉप पहने कई सारे आदमी हरी मेज़ों के इर्द-गिर्द इकट्ठे होकर पूल खेल रहे थे, उनके हाथों में थमीं सिगरेटों से उठ रहे धुएँ के बादल मेज़ों के ऊपर जल रही फ्लोरोसेंट रोशनी में गोल-गोल चक्कर खा रहे थे। हमारा पहनावा वहाँ मौजूद लोगों से जुदा था। बाबा कत्थई रंग का सूट पहने थे और मैं प्लेटेड स्लैक्स और स्पोर्ट्स जैकेट में था। इसलिए लोगों की नज़रें ख़ुद-ब-ख़ुद हमारी ओर उठ गयीं। बार पर जाकर हम एक बूढ़े आदमी के बग़ल में बैठ गए। उसके सर के ऊपर जो 'मिकेलोब' का साइन बोर्ड था, उसकी नीली चमक में उसका वक़्त की मार झेला हुआ चेहरा बीमार-सा लग रहा था। बाबा ने एक सिगरेट सुलगा ली और हमारे लिए बियर मँगवाई। "आज मैं बहुत ज़्यादा ख़ुश हूँ," उन्होंने किसी से भी नहीं मगर सभी से कहा। "आज मैं अपने बेटे के साथ पी रहा हूँ। और एक मेरे इस दोस्त के लिए भी।" उन्होंने बग़ल में बैठे बूढ़े की पीठ थपथपाई। बूढ़े आदमी ने मुस्कराते हुए अपनी हैट उठाकर शुक्रिया कहा। उसके मुँह में ऊपर के दाँत नहीं थे।

बाबा ने अपनी बीयर तीन ही घूँट में ख़त्म कर ली और एक और मँगा ली। मैं बड़ी मुश्किल से अपने सामने रखे गिलास का एक-चौथाई ही ख़त्म कर पाया था और उतनी देर में बाबा तीन बीयर गटक चुके थे। साथ ही उस बूढ़े आदमी को एक स्कॉच और पूल खेल रहे चार लोगों को बडवाइज़र का एक पिचर पिला चुके थे। इतनी-सी देर में ही उन लोगों पर बाबा का जादू चल चुका था। वे उनसे हाथ मिला रहे थे, उनकी पीठ ठोक रहे थे, उनके नाम पर जाम उठा रहे थे। कोई उनकी सिगरेट सुलगा रहा था। बाबा ने अपनी टाई ढीली की और उस बूढ़े आदमी को मुट्ठी भर क्वार्टर्स देकर ज्यूकबॉक्स की ओर इशारा करते हुए कहा, “उसे जाकर कहो कि वह अपने पसंदीदा गाने बजाए।” बूढ़े आदमी ने सहमति में सर हिलाया और खड़े होकर बाबा को सलाम किया। जल्द ही कंट्री म्यूज़िक बजने लगा और देखते ही देखते बाबा ने एक पार्टी शुरू कर दी।

थोड़ी देर बाद बाबा अपनी जगह से खड़े हुए, बीयर के गिलास वाला हाथ ऊपर हवा में उठाया, थोड़ी बीयर फर्श पर छलकाई और ज़ोर से चिल्लाए, “रशिया की माँ का भो@#$!” पूरे बार में ज़ोरदार ठहाके गूँज उठे, और फिर वहाँ मौजूद सभी लोगों ने गला फाड़कर उनकी बात को दोहराया। इस पर बाबा ने सभी लोगों के लिए एक राउंड पिचर और ऑर्डर कर दिया।

जब हम वहाँ से जाने लगे तो सभी लोग बेहद उदास हो गए। चाहे काबुल हो, चाहे पेशावर हो, या फिर चाहे हेवार्ड हो, बाबा तो बाबा ही थे, उन्हें बस मौका मिलने की देर थी। यह सोचते हुए मेरे चेहरे पर मुस्कान थिरक उठी।

लौटते वक़्त बाबा की गेरुए पीले रंग की पुरानी ब्यूक सेंचुरी को मैंने ही ड्राइव किया। नशा ज़्यादा होने की वजह से बाबा को झपकी आ गयी और वह खर्राटे भरने लगे। उनके कपड़ों से शराब और तम्बाखू की मीठी-तीखी गंध उठ रही थी। मगर घर पहुँचकर जैसे ही मैंने कार रोकी, वह उठकर बैठ गए और उनींदी आवाज़ में बोले, “ब्लॉक के आख़िर तक ले चलो।”

“क्यों, बाबा?”

“बोला न, चलो।” मैंने गाड़ी आगे बढ़ा दी। उन्होंने मुझे सड़क के दक्षिणी छोर पर पार्क करने को कहा। उन्होंने अपने कोट की जेब में हाथ डालकर चाबियों का एक सेट निकाला और मुझे थमा दिया। फिर सामने खड़ी एक कार की ओर इशारा करते हुए बोले, “उधर।” वह एक पुरानी फोर्ड कार थी, लंबी और चौड़ी। गहरे रंग की, मगर कौन सा रंग था यह चाँद की रोशनी में, मैं ठीक से पहचान नहीं पा रहा था। “थोड़ा रंग-रोगन कराना पड़ेगा, और मैं गैस स्टेशन के किसी आदमी से कहकर इसके शॉक-अप बदलवा दूँगा। मगर चलती बढ़िया है।”

मैं भौचक्का रह गया। मैंने उनसे चाबियाँ लीं और कभी उनको तो कभी कार को देखने लगा।

"कॉलेज जाने के लिए तुम्हें इसकी ज़रूरत पड़ेगी," उन्होंने कहा।

मैंने उनका हाथ अपने हाथ में ले लिया। हौले से दबाया। मेरी आँखें भर आयी थीं। अच्छा हुआ कि उस वक़्त हम दोनों के ही चेहरों पर परछाइयाँ पड़ रही थीं। "शुक्रिया, बाबा जान!" मैंने ख़ुद को संभालते हुए कहा।

हम बाबा की कार से बाहर निकले और जाकर फोर्ड में सवार हो गए। यह ग्रैंड टोरिनो मॉडल था। नेवी ब्लू, बाबा ने बताया। मैंने उसे पूरे ब्लॉक में घुमाकर उसके ब्रेक, रेडियो और इंडिकेटर वगैरह चेक किए। फिर मैंने उसे अपनी इमारत की पार्किंग में लाकर पार्क किया और इंजन बंद कर दिया। "ताशाकोर, बाबा जान!" एक बार फिर मेरे मुँह से निकला। मैं और भी बहुत कुछ कहना चाहता था। मैं उन्हें बताना चाहता था कि उनकी इस रहमदिली ने मेरे दिल को किस कदर छू लिया था। मैं बताना चाहता था कि अब तक उन्होंने मेरे लिए जो कुछ भी किया था, और अभी भी जो कर रहे थे, उसके लिए मैं उनका किस कदर अहसानमंद था। मगर मैं जानता था कि यह सब कहकर मैं उन्हें शर्मिंदा महसूस कराऊँगा। इसीलिए मैंने दुबारा बस इतना ही कहा, "ताशाकोर।"

वह मुस्कराते हुए हेडरेस्ट से सर टिकाकर बैठ गए। उनका माथा लगभग कार की छत को छू रहा था। हम दोनों में से किसी ने कुछ नहीं कहा। हम उसी तरह ख़ामोशी से अँधेरे में बैठे रहे और ठण्डे होते इंजन की टिंक-टिंक और दूर कहीं बजते किसी सायरन की आवाज़ सुनते रहे। फिर एकाएक बाबा ने अपना सर मेरी ओर घुमाया और बोले, "काश, आज हसन भी हमारे साथ होता।"

हसन का नाम सुनते ही मुझे ऐसा लगा जैसे स्टील के दो मज़बूत हाथों ने कसकर मेरा गला दबा दिया हो और मुझसे साँस लेते न बन रहा हो। मैंने खिड़की का काँच नीचे कर लिया। उन स्टील के हाथों की पकड़ ढीले पड़ने का इंतज़ार करने लगा।

अगले दिन मैंने बाबा को बताया कि मैं बसंत में जूनियर कॉलेज की कक्षाओं में दाख़िला लेने वाला था। उस वक़्त वह ठंडी काली चाय पीते हुए इलायची के दाने चबा रहे थे, जो उनके मुताबिक़ रात को ज़्यादा पी लेने के चलते सुबह होने वाले सिरदर्द की भरोसेमंद दवा थी।

"मैं अंग्रेज़ी में मेजर करने की सोच रहा हूँ," मैंने कहा। कह तो मैंने दिया मगर अब भीतर ही भीतर धुकधुकी लगी थी कि पता नहीं वह कैसे रिएक्ट करेंगे, क्या कहेंगे।

"अंग्रेज़ी?"

"रचनात्मक लेखन।"

उन्होंने थोड़ी देर सोचा। चाय के कुछ घूँट भरे। "तुम्हारा मतलब है, कहानियाँ। तुम कहानियाँ बनाओगे।"

मैं नीचे देखने लगा।

“इसके लिए पैसे मिलते हैं, कहानियाँ बनाने के लिए?”

“अगर आप अच्छा लिखते हों तो,” मैंने कहा। “और अगर आपको अच्छा मौका मिले तो।”

“इसकी कितनी संभावना होती है, अच्छा मौका मिलने की?”

“मिलता है,” मैंने कहा।

उन्होंने सर हिलाया। “और जब तक तुम अच्छा नहीं लिखने लगते और तुम्हें कोई अच्छा मौका नहीं मिल जाता, तब तक क्या करोगे? तब तक पैसा कैसे कमाओगे? अगर तुम्हारी शादी हो जाती है तो अपनी खानुम (बीवी) को क्या खिलाओगे?”

मेरी सर उठाकर उनसे नज़रें मिलाने की हिम्मत नहीं हुई। मैंने सर झुकाए-झुकाए ही कहा, “मैं...कोई नौकरी तलाशूँगा।”

“ओह,” उन्होंने कहा। “वाह वाह! तो अगर मैं ठीक समझ रहा हूँ तो तुम कई साल पढ़ाई करके डिग्री हासिल करोगे, फिर तुम मेरी तरह एक टटपूँजिया टाइप की नौकरी करोगे, जो कि तुम्हें आज और अभी ही मिल सकती है। सिर्फ़ इस ज़रा सी उम्मीद के सहारे कि शायद किसी दिन तुम्हारी डिग्री तुम्हें एक ‘अच्छा मौका’ दिलाने में मदद कर दे।” उन्होंने एक गहरी साँस ली और चाय के कप से कुछ घूँट भरे। फिर मुझे यह समझाने की कोशिश की कि मेडिकल स्कूल, लॉ स्कूल और ‘असली काम’ की क्या अहमियत है और क्यों मुझे उनको चुनना चाहिए।

मेरे गाल लाल हो उठे और मुझमें अपराध-बोध भर गया, उनके अल्सर, उनके काले नाख़ूनों और दर्द करती कलाइयों की कीमत पर अपना सपना पूरा करने का अपराध-बोध। मगर मैं तय कर चुका था कि मैं अपने फैसले पर कायम रहूँगा। मैं बाबा के लिए अब और क़ुर्बानी देने को राज़ी नहीं था। पिछली बार जब मैंने ऐसा किया था तो ख़ुद को बहुत कोसा था।

बाबा ने बेचारगी से एक लम्बी साँस छोड़ी और इस बार पूरे मुट्ठी भर इलायची दाने मुँह में डाल लिए।

कभी-कभी मैं अपनी फोर्ड लेकर निकल जाता और यूँही अकेले बेमकसद घूमता रहता – कभी ईस्टबे (पूर्वी खाड़ी) से साउथबे (दक्षिणी खाड़ी) तक; कभी पेनुन्सिला तक और फिर वहाँ से वापस। अपना फ्रेमोंट का इलाका भी मैंने ख़ूब घूमा। मैं अपनी फोर्ड में बैठकर यहाँ की उन सड़कों और गलियों के चक्कर लगाता जिनके दोनों ओर कॉटनवुड पेड़ों की कतारें थीं और जहाँ ऐसे लोगों का बसेरा था जिन्होंने कभी राजाओं से हाथ नहीं मिलाया था, जिनके सपाट एक-मंज़िला मकान इतने जर्जर हो चुके थे कि उनकी खिड़कियाँ तक जाम थीं, जिनके पास मेरे ही जैसी पुरानी कारें थीं जिनसे काले ड्राइव-वे पर तेल टपकता रहता था, जिनके बाड़े में पेंसिल ग्रे रंग की चेन-लिंक बाड़ होती थीं, और जिनके फ्रंट लॉन में टूटे हुए खिलौनों, घिसे हुए टायरों और लेबल

निकली हुईं काँच की बोतलों का कबाड़ इकठ्ठा रहता था। मैं ऐसे पार्कों के सामने से भी गुज़रता था जिनमें घने-घने पेड़ लगे थे और जिनके क़रीब से गुज़रते हुए पेड़ों की छाल जैसी सुगंध आती थी। मैं इतने बड़े मॉल्स के पास से भी गुज़रता था जिन में एक साथ पाँच बुज़कशी मुकाबले आयोजित किए जा सकते थे। कभी-कभी मैं लोस अल्टोस हिल्स के पॉश इलाके में भी चला जाता था, जहाँ लाइन से ऐसी आलीशान कोठियाँ थीं कि मैं देखकर हैरान रह जाता था। लम्बी-चौड़ी खुली-खुली जगहों में बनीं उन कोठियों में बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ थीं और उनके लोहे के फाटकों के दोनों ओर चाँदी के शेरों की मूर्तियाँ लगी थीं। इस इलाके में ऐसे-ऐसे आलीशान घर थे जिनमें मैनीक्योर किए गए वॉक-वेज़ पर लाइन से चेरीब फव्वारे लगे होते थे और ड्राइव-वे में महँगी-महँगी गाड़ियाँ खड़ी होती थीं। ये कोठियाँ और ये घर इतने भव्य, इतने आलीशान थे कि इनके सामने बाबा का वज़ीर अकबर खान का घर नौकरों की कोठरियों जैसा मालूम होता था।

कभी-कभी शनिवार को सुबह मैं जल्दी उठकर अपनी फोर्ड उठाता और दक्षिण की ओर हाईवे 17 पर निकल जाता और घुमावदार पहाड़ी रास्तों पर गाड़ी चलाते हुए सांता क्रूज़ तक चला जाता। वहाँ पुराने लाइटहाउस के पास गाड़ी पार्क करता और गाड़ी में ही बैठकर समंदर से उठते कोहरे को देखते हुए सूरज के क्षितिज से ऊपर उठने का इंतज़ार करता। जब मैं अफ़ग़ानिस्तान में था तब तो समंदर सिर्फ़ फिल्मों में ही देखने को नसीब होता था। सिनेमाघर के अँधेरे में हसन के बग़ल में बैठे हुए मैं हमेशा सोचता था कि क्या वाक़ई मेरी पढ़ी हुई यह बात सच थी कि समुद्री हवा में नमक जैसी गंध होती है। उस वक़्त मैं हसन से कहता था कि एक दिन हम ज़रूर समुद्री शैवाल से भरे किसी समुद्र-तट पर नंगे पैर गीली रेत में टहल रहे होंगे और समंदर के पानी को हमारे टखनों को भिगोकर वापस जाते देख रहे होंगे। पहली बार जब मैंने प्रशांत महासागर देखा तो मैं ख़ुशी के मारे रो पड़ा था। यह उतना ही विशाल और नीला था जितना मैं बचपन में सिनेमाघर के परदे पर देखता था।

कभी-कभी शाम को मैं गाड़ी पार्क करके टहलता हुआ किसी फ़्री-वे ओवरपास तक चला जाता। फिर मैं अपने चेहरे को बाड़ (फेंस) से सटाकर जहाँ तक नज़र जाती वहाँ तक आती-जाती गाड़ियों की चमकती हुई लाल टेललाइट्स को गिनने की कोशिश करने लगता। बीएमडब्ल्यू। साब। पोर्श। ऐसी-ऐसी कारें जो मैंने काबुल में कभी देखी ही नहीं थीं। काबुल में तो ज़्यादातर लोग रूसी वोल्गा, पुरानी ओपेल्स, या ईरानी पायकंस ही चलाते थे।

हमें अमेरिका आए तक़रीबन दो साल हो चुके थे, मगर मैं अभी भी इस देश के आकार और इसके ज़बरदस्त फैलाव को देखकर अचंभित महसूस करता था। ऐसा लगता था कि यहाँ किसी चीज़ का कोई अंत ही नहीं था। एक फ़्री-वे के आगे दूसरा फ़्री-वे, एक शहर के आगे दूसरा शहर, पहाड़ियों से परे नए पहाड़, नए पहाड़ों से परे और नयी पहाड़ियाँ, और उनके आगे और शहर, और लोग।काबुल मेरे लिए बहुत पहले से ही भूतों का शहर बन चुका था–रूसी सेना के अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई करने से भी

पहले, उनके द्वारा घरों को जलाए और स्कूलों को तबाह किए जाने से भी पहले, बारूदी सुरंगों के इसकी धरती में मौत के बीजों की तरह बोए जाने से भी पहले, और यहाँ के बच्चों के मलबे रूपी क़ब्रों में दफन होने से भी बहुत पहले। कटे होंठ वाले भूतों का शहर।

मगर अमेरिका अलग था। अमेरिका एक नदी थी जो अतीत से बेख़बर कल-कलकर बह रही थी। मैं बेख़ौफ़ इसमें उतर सकता था, ताकि मेरे सारे गुनाह इसकी गहराइयों में दफ्न हो जाएँ और यह मुझे बहाकर कहीं दूर ले जाए। किसी ऐसी जगह जहाँ न भूत हों, न यादें हों, और न गुनाह हों।

अगर किसी और चीज़ के लिए नहीं, तो सिर्फ़ इस वजह से ही मैंने ख़ुशी-ख़ुशी अमेरिका को अपना लिया था।

अगली गर्मियों में, 1984 की गर्मियों में, जब मैं इक्कीस का हुआ तो बाबा ने अपनी ब्यूक कार बेच दी और एक पुराने अफ़ग़ान परिचित से, जो पहले काबुल में एक हाई स्कूल में विज्ञान का अध्यापक था, 550 डॉलर में एक जीर्ण-शीर्ण, सन 71 मॉडल की वोक्सवैगन वैन ख़रीद ली। जब हम उस वैन को घर लेकर आए तो सारे पड़ौसी हैरानी से यूँ देखने लगे जैसे कोई अजूबा चला आ रहा हो। बाबा ने इंजन बंद किया और वैन को अपनी पार्किंग वाली जगह पर पार्क कर दिया। हमने बाहर निकलने का उपक्रम नहीं किया और अपनी-अपनी सीटों पर बैठे रहे और हँसते रहे, तब तक हँसते रहे जब तक कि हँसते-हँसते हमारे आँसू नहीं निकल आए, और, उससे भी ज़्यादा ज़रूरी बात यह कि जब तक हमने यह सुनिश्चित नहीं कर लिया कि अब कोई भी पड़ौसी हमारी तरफ़ नहीं देख रहा था। वह वैन सही मायनों में कबाड़ थी। उसकी पूरी बॉडी जंग खाई हुई थी, टूटी खिड़कियों पर काले रंग के कचरे के थैले बंधे हुए थे, टायर पूरी तरह घिस चुके थे, और सीटें इतनी फटी हुई थीं कि भीतर से स्प्रिंग्स झाँकने लगी थीं। मगर उस बूढ़े अफ़ग़ान अध्यापक ने बाबा को भरोसा दिलाया था कि इंजन और ट्रांसमिशन बिल्कुल दुरुस्त था, और बाद में यह बात साबित भी हो गई कि इस मामले में उस आदमी ने झूठ नहीं बोला था।

शनिवार के दिन बाबा मुझे सुबह-सुबह जगा देते। जब तक वह कपड़े पहनकर तैयार होते, तब तक मैं स्थानीय अख़बारों में छपे विज्ञापनों पर नज़र मारता और गराज सेल्स के विज्ञापनों पर गोला लगा लेता। हमने अपना रूट तय किया हुआ था – फ्रेमोंट से यूनियन सिटी, नेवार्क और हेवार्ड, और फिर अगर वक़्त मिला तो सैन जोस, मिलपिटास, सनीवेल और कैंपबेल। वैन का स्टीयरिंग बाबा संभालते थे और मैं रास्ता बताता जाता था। जहाँ-जहाँ भी गराज सेल लगी होतीं, वहाँ जाकर हम मोल-भाव करके वे छोटी-मोटी चीज़ें ख़रीदते जिन्हें लोगों ने थोड़ी-बहुत ख़राब या पुरानी हो जाने के चलते कबाड़ में बेच दिया होता था। मसलन: पुरानी सिलाई मशीन, एक आँख वाली बार्बी गुड़िया, लकड़ी के टेनिस रैकेट, बिना तारों वाले गिटार, और पुराने इलेक्ट्रोलक्स वैक्यूम क्लीनर वगैरह। दोपहर होते-होते हमारी वैन इन सामानों से भर जाती और हम

लौट आते। फिर रविवार को सुबह- सुबह हम बेरीसा के पास लगने वाले सैन जोस फ्ली बाज़ार जाते, वहाँ किराए से एक जगह लेते और शनिवार को ख़रीदे गए सामान को थोड़े-से मुनाफ़े पर बेच देते। मसलन: जिस शिकागो रिकॉर्ड को हमने एक चौथाई डॉलर में ख़रीदा होता था, वह 1 डॉलर में बिक सकता था या पाँच रिकॉर्ड्स का एक सेट 4 डॉलर में बिक सकता था; एक जर्जर सिंगर सिलाई मशीन, जिसे 10 डॉलर में ख़रीदा था, कुछ मोल-तोल के बाद 25 डॉलर में बिक सकती थी।

उस वक़्त तक हालत यह हो गई थी कि सैन जोस फ्ली बाज़ार के एक पूरे हिस्से में सिर्फ़ अफ़ग़ान परिवार ही काम कर रहे थे। और इसीलिए पुराने सामान की ख़रीद-बिक्री वाले उस हिस्से में पूरा समय अफ़ग़ान संगीत गूँजता रहता था। वहाँ काम करने वाले सभी अफ़ग़ानों के बीच एक अलिखित कायदा था कि व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा होते हुए भी व्यवहार में कड़वाहट नहीं रहेगी। और इसीलिए सभी लोग एक-दूसरे से दुआ-सलाम करते थे, एक-दूसरे को थोड़ी सी आलू बोलानी या काबुली खाने का न्यौता देते थे, और खुलकर गपशप करते थे। अगर किसी के परिवार में कोई गमी हो गई हो तो सभी लोग उसके पास जाकर शोक-संवेदना व्यक्त करते थे, बच्चों के जन्म वगैरह पर बधाईयाँ देते थे, और जब बातचीत अफ़ग़ानिस्तान और रूसियों की ओर मुड़ती थी (जो कि होता ही था) तो दुःख और हताशा में डूबकर बेचारगी से सिर झटकते थे। मगर शनिवार की बात कोई नहीं करता था, क्योंकि पूरी संभावना रहती थी कि सामने वाला व्यक्ति वही हो जिसे आपने कल फ्रीवे से बाहर निकलते समय देखकर भी अनदेखा कर दिया था ताकि उसे उस बढ़िया गैराज सेल के बारे में बताना न पड़े जहाँ आप जाने वाले थे।

बाज़ार के उस हिस्से में जो चीज़ चाय से भी ज़्यादा चलती थी, वो थी अफ़ग़ान गॉसिप। फ्ली बाज़ार वह जगह थी जहाँ आप बादाम कोल्चा के साथ ग्रीन टी पीते-पीते यह जान लेते थे कि किसकी बेटी ने सगाई तोड़ दी है और अपने अमरीकी आशिक के साथ भाग गई है, कौन काबुल में ‘परचामी’ (मार्क्सवादी) था, और किसने सरकारी वेलफेयर का फ़ायदा लेते हुए भी बेनामी पैसे से एक घर ख़रीद लिया था।

फ्ली बाज़ार में कभी-कभी दुकान पर बैठने की ज़िम्मेदारी मेरे कन्धों पर आ जाती थी। ऐसा तब होता था जब बाबा बाज़ार में घूमने और अपने काबुल के ज़माने के जानने वाले लोगों से दुआ-सलाम और गपशप करने निकल जाते थे। उनके इन जानने वालों में हाथ से बने ऊनी कोट और साइकिल के हेलमेट बेचने वाले मैकेनिकों और दर्जियों से लेकर पूर्व राजदूत, बेरोज़गार सर्जन, और यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर तक शामिल होते थे।

जुलाई 1984 के एक रविवार की सुबह, जब बाबा अपनी दुकान जमा रहे थे, मैंने रियायती दर पर दो कप कॉफी ख़रीदी और वापस लौटा तो देखा कि बाबा एक अपनी ही उम्र के और अपनी ही तरह कुछ ख़ास-से दिखने वाले व्यक्ति से बातें कर रहे थे। मैंने कॉफ़ी के कप वैन के पिछले बम्पर पर, रीगन/बुश फॉर ’84 स्टिकर के बग़ल में

रख दिए।

“आमिर,” बाबा ने मुझे मुख़ातिब होते हुए कहा, “आप जनरल साहब हैं, मिस्टर इकबाल ताहेरी। आप काबुल में एक माननीय जनरल थे। आपने रक्षा मंत्रालय के लिए काम किया है।”

ताहेरी। यह नाम जाना-पहचाना सा क्यों लग रहा था? जनरल साहब उस आदमी की तरह हँसे जो अक्सर औपचारिक पार्टियों में जाता है और जहाँ उसे अहम लोगों के छोटे-मोटे चुटकुलों पर हँसने का अभ्यास होता है। उनके चाँदी जैसे सफ़ेद लच्छेदार बाल थे जिन्हें उन्होंने अपने धूप से ताम्बिया हुए माथे पर अच्छी तरह पीछे की ओर काढ़ रखा था, और उनकी घनी-घनी भौंहों में भी सफ़ेद बालों के गुच्छे थे। उनके बदन से कोलोन की सुगंध आ रही थी और उन्होंने आयरन-ग्रे रंग का थ्री-पीस सूट पहन रखा था, जो ज़रूरत से ज़्यादा इस्त्री किए जाने के चलते चमक रहा था। कोट की भीतर की जेब से एक जेब घड़ी की सोने की चेन झाँक रही थी।

“आपने बहुत बढ़ा-चढ़ाकर परिचय दिया है,” जनरल साहब ने बाबा से कहा। उनकी आवाज़ गहरी और सलीकेदार थी। फिर मुझसे मुखातिब होकर बोले, “सलाम, मेरे बच्चे!”

“सलाम, जनरल साहिब,” मैंने भी उनसे हाथ मिलाते हुए कहा। उनके दुबले-पतले हाथों की पकड़ बहुत मज़बूत थी, जैसे कि नाज़ुक चमड़ी के नीचे स्टील छिपा हो।

“आमिर एक कामयाब लेखक बनने वाला है,” बाबा ने कहा। मैं बाबा के मुँह से यह सुनकर एकदम से चौंक गया। “इसने अपने कॉलेज का पहला साल पूरा कर लिया है और सभी विषयों में A पाया है।”

“जूनियर कॉलेज,” मैंने उनके कहे में सुधार करते हुए कहा।

“माशाअल्लाह!” जनरल ताहेरी ने कहा। “क्या तुम हमारे मुल्क के बारे में लिखोगे, उसके इतिहास के बारे में? उसकी अर्थव्यवस्था के बारे में?”

“जी मैं फिक्शन लिखता हूँ,” मैंने कहा। कहते हुए मेरे दिमाग़ में वे दर्जन भर से ज़्यादा कहानियाँ घूमने लगीं जो मैंने रहीम ख़ान की दी हुई चमड़े की जिल्द वाली डायरी में लिखी थीं। साथ ही मुझे इस बात से हैरानी भी हो रही थी कि जनरल साहब की मौजूदगी में अचानक मुझे उन कहानियों के बारे में सोचकर शर्मिंदगी-सी क्यों महसूस होने लगी थी।

“अच्छा, किस्सा-गो,” जनरल साहब ने कहा। “हाँ, ऐसे मुश्किल वक़्त में अपनी दुश्वारियों से ध्यान हटाने के लिए लोगों को कहानियों की ज़रूरत पड़ती है।” फिर उन्होंने बाबा के कंधे पर हाथ रखा और मेरी ओर देखकर बोले, “कहानियों की बात निकली है तो मैं तुम्हें बताऊँ कि एक बार जलालाबाद में गर्मियों के मौसम में तुम्हारे बाबा और मैंने मिलकर एक तीतर का शिकार किया था। क्या कमाल का वक़्त था वह

भी! अगर मेरी याद्दाश्त दुरुस्त है तो तुम्हारे बाबा की नज़र शिकार में भी उतनी ही तेज़ थी जितनी कि कारोबार में।"

यह सुनकर बाबा ने नीचे बिछे तिरपाल पर पड़े एक लकड़ी के रैकेट को जूते से ठोकर मारी और बोले, "था कभी कारोबार!"जनरल साहब बाबा के मन की हालत भाँप चुके थे, इसलिए उन्होंने एक साथ एक उदास और विनम्र मुस्कान बिखेरी, एक आह भरी, धीरे से बाबा के कंधे पर थपथपाया और बोले, "ज़िन्दगी मिगज़ारा।" आगे बढ़ते रहने का नाम ही ज़िन्दगी है। फिर उन्होंने नज़रें मेरी ओर घुमाईं और बोले, "बच्चे, हम अफ़ग़ान लोग काफी हद तक चीज़ों को बढ़ा-चढ़ाकर कहने की आदत के शिकार होते हैं, और इसी आदत की मिसाल के तौर पर मैंने कई लोगों को बेमतलब ही महान का तमगा मिलते देखा है। मगर तुम्हारे बाबा उन बहुत थोड़े से लोगों में से हैं जो वाक़ई में इस तमगे के हकदार हैं।" उनका यह छोटा सा भाषण मुझे उनके सूट से मेल खाता मालूम हुआ: अक्सर इस्तेमाल किया जाने वाला और अस्वाभाविक रूप से चमकदार।

"आप मुझे चने के झाड़ पर चढ़ा रहे हैं," बाबा ने कहा।

"नहीं, बिल्कुल नहीं," जनरल साहब ने इंकार में सिर हिलाते हुए और विनम्रता दर्शाने के लिए अपना एक हाथ अपने सीने पर रखते हुए कहा। "बच्चों को अपने माँ-बाप की विरासत के बारे में पता होना चाहिए।" फिर वह मेरी ओर मुड़े। "मेरे बच्चे, क्या तुम अपने बाबा का एहतिराम करते हो? इनके जैसा बनने की चाहत रखते हो?"

"बिल्कुल, जनरल साहब, बिल्कुल," मैंने कहा। मगर मुझे उनका बार-बार 'मेरे बच्चे' कहना अच्छा नहीं लग रहा था।

"मुबारक हो, फिर तो तुम एक ज़बरदस्त आदमी बनने का आधा फासला पहले ही तय कर चुके हो," उन्होंने कहा। उनकी इस बात में न तो हास्य का पुट था और न ही व्यंग्य का। यह संजीदा तारीफ़ थी।

"बाबा जान, आप अपनी चाय तो भूल ही गए।" पीछे से किसी लड़की की आवाज़ कानों में पड़ी। मैंने पलटकर देखा तो एक दुबली-पतली मगर ख़ूबसूरत-सी लड़की, जिसके मखमली और स्याह काले बाल थे, हाथ में एक खुला थर्मस और चाय का कप लेकर खड़ी थी। मैं पलकें झपकाना भूल गया और मेरा दिल ज़ोरों से धड़कने लगा। उसकी मोटी काली भौंहें थीं जो माथे के बीच में मिलकर किसी पक्षी के धनुषाकार पंखों का आभास देती थीं। और उसकी सुतवाँ नाक बिल्कुल वैसी थी जैसी पुराने ज़माने में फारस की शहज़ादियों की हुआ करती थी–शायद वैसी जैसी शाहनामा में रुस्तम की बीवी और सोहराब की माँ तहमीनेह की थी। उसकी अखरोट के रंग जैसी भूरी आँखें, जो कि पंखे की तरह फैली पलकों से ढकी हुई थीं, मेरी आँखों से मिलीं। पल भर को मिली रहीं। और फिर जुदा हो गईं।

"तुम मेरा कितना ख़याल रखती हो, माय डिअर," जनरल ताहेरी ने कहा। उन्होंने

उसके हाथ से कप ले लिया। इससे पहले कि वह जाने के लिए मुड़ती, मैंने देखा कि उसके बाँए जबड़े की हड्डी के ठीक ऊपर की मुलायम त्वचा पर एक भूरे रंग का दरांती के आकार का बर्थ-मार्क (जन्म-चिह्न) था। वह हमसे दो गलियारे दूर खड़ी एक ग्रे कलर की वैन के पास गई और उसका दरवाज़ा खोलकर थर्मस अन्दर रख दिया। उसी वैन के पास उसकी दुकान थी। जब वह पुराने रिकॉर्ड्स और किताबों से भरे बक्सों के बीच घुटनों के बल बैठी, तो उसके बाल एक तरफ़ बिखर गए।

"मेरी बेटी, सोराया जान," जनरल साहब ने कहा। उन्होंने बातचीत का विषय बदलने को आतुर आदमी की तरह एक गहरी साँस भरी और जेब से सोने की घड़ी निकालकर वक़्त देखने लगे। "चलो, अब जाकर दुकान जमाई जाए।" उन्होंने और बाबा ने एक-दूसरे के गाल चूमे और फिर मुझसे हाथ मिलाया। दोनों हाथों से मेरा हाथ थामे-थामे ही उन्होंने मेरी आँखों में देखते हुए कहा, "क़िस्सा-गोई के लिए मेरी ओर से बहुत-बहुत शुभकामनाएँ।" उनकी नीली आँखें उनके मुँह से निकले अलफ़ाज़ की सच्चाई की तसदीक कर रही थीं।

उस दिन जब तक मैं वहाँ रहा, मुझे ख़ुद को बार-बार उस ग्रे कलर की वैन की ओर देखने से रोकने के लिए खासी जद्दोजहद करनी पड़ी।

जब हम लौट रहे थे, तब मेरे दिमाग़ की बत्ती जली। ताहेरी। मुझे लग ही रहा था कि मैंने वह नाम पहले भी कहीं सुना था।

"क्या ये वही जनरल ताहेरी नहीं हैं जिनकी बेटी को लेकर इन दिनों तरह-तरह की बातें की जा रही हैं?" मैंने सामान्य दिखने की भरसक कोशिश करते हुए बाबा से पूछा।

"तुम तो मुझे जानते ही हो," बाबा ने फ्ली बाज़ार से बाहर निकलने के लिए लगी कतार में वैन को आगे बढ़ाते हुए कहा। "जैसे ही लोग गॉसिप करना शुरू करते हैं, मैं वहाँ से उठ जाता हूँ।"

"मगर बातें तो की जा रही थीं न?" मैंने कहा।

"तुम क्यों पूछ रहे हो?" उन्होंने गौर से मुझे देखते हुए पूछा।

मैंने कंधे उचकाए और बड़ी मुश्किल से ख़ुद को मुस्कराने से रोका। "बस जानने की उत्सुकता थी, बाबा।"

"वाक़ई? बस उत्सुकता थी?" उन्होंने कहा। इस बार उनकी आँखों में शरारत उतर आई थी। "या फिर उसने तुम पर अपने हुस्न का जादू चला दिया है?"

मैंने अपने चेहरे को लाल होने से रोकने की भरपूर कोशिश करते हुए कहा, "क्या बाबा, आप भी..."

वह मुस्करा दिए। अब हम फ्ली बाज़ार से बाहर निकल आए थे और हाईवे 680 की ओर बढ़ रहे थे। थोड़ी देर हमारे बीच ख़ामोशी रही। फिर बाबा बोले, "मैंने बस इतना

सुना है कि कभी कोई लड़का था, मगर आख़िर को बात...बनी नहीं।" उन्होंने यह बात इतनी गंभीरता से कही जैसे बता रहे हों कि उसे स्तन कैंसर हो गया था।

"मैंने सुना है कि वो अच्छी लड़की है, मेहनती है, बड़े दिल की है। मगर उस घटना के बाद से अभी तक किसी भी लायक उम्मीदवार ने उसका हाथ माँगने के लिए जनरल का दरवाज़ा नहीं खटखटाया है," बाबा ने कहा और फिर एक गहरी साँस छोड़ी। "बेशक यह गलत है, मगर कुछेक दिनों में ही, और कभी-कभी तो सिर्फ़ एक दिन में ही कुछ ऐसा घट जाता है जो ज़िन्दगी को बदलकर रख देता है, आमिर," उन्होंने कहा।

उस रात मुझे नींद नहीं आई। बिस्तर में लेटे-लेटे मैं सोराया ताहेरी के दरांती के आकार के बर्थ-मार्क, उसकी सुतवाँ नाक, और जिस तरह से उसकी चमकीली आँखें पल भर के लिए मेरी आँखों से मिली थीं, उसी सब के बारे में सोचता रहा। उसके बारे में सोचते ही मेरा दिल धड़कने लगता था। सोराया ताहेरी। बाज़ार में मिली मेरी शहज़ादी।

बारह

अफ़ग़ानिस्तान में जदी महीने की पहली रात को 'येल्दा' कहा जाता है और यह सर्दियों के मौसम की पहली और साल की सबसे लंबी रात होती है। जैसा कि रिवाज़ था, इस रात को हसन और मैं देर तक जागते थे। हम अपने पैर अपनी ख़ास कुर्सी के नीचे दबाए रहते थे, जबकि अली चूल्हे में लकड़ियाँ डालकर उसे जलाए रखता था और साथ ही साथ हमें सुल्तानों और चोरों की प्राचीन कहानियाँ भी सुनाता जाता था, ताकि हम देर तक जाग सकें। अली के मुँह से ही मैंने येल्दा से जुड़ी यह कहानी जानी थी कि कैसे शैतान-समान पतंगे ख़ुद ही मोमबत्ती की लपटों में जल मरे थे और कैसे भेड़िए सूरज की तलाश में पहाड़ों पर चढ़ गए थे। अली कसम खाकर कहता कि अगर तुम येल्दा की रात को तरबूज़ खाओगे तो आने वाली गर्मियों में तुम्हें प्यास नहीं लगेगी।

मगर जब मैं बड़ा हुआ तो मैंने अपनी कविताओं की किताबों में पढ़ा कि येल्दा तारों से खाली आसमान वाली (अमावस) वह रात थी जिसमें प्रेमी जागते थे, अंतहीन अंधेरे को सहते थे, और सूरज के उगने और उसके उजाले के साथ अपने प्रेमी से मिलन के पल के आने का इंतज़ार करते थे। सोराया ताहेरी से मिलने के बाद मेरे लिए हफ्ते की हर रात 'येल्दा' बन गई थी। और इतवार की सुबह जब मैं बिस्तर से उठता था तो सोराया ताहेरी का भूरी आँखों वाला चेहरा पहले से ही मेरे दिमाग़ में घूम रहा होता था। बाबा के साथ वैन में जाते हुए रास्ते भर मैं मीलों की गिनती करता रहता था कि अब कितना रास्ता और बचा है। और बाज़ार पहुँचकर जब तक मैं उसे उसके स्टाल पर गोरी-गोरी एड़ियों को डामर के काले फर्श पर रखकर पीले पड़ चुके पन्नों वाली किताबों से भरे डब्बों को जमाते और अपनी पतली कलाइयों में चाँदी के कंगन छनछनाते नहीं देख लेता था, तब तक मेरे दिल को आराम नहीं आता था। उसके बाल जब उसकी पीठ से फिसलकर किसी मखमली परदे की तरह एक ओर लटक जाते थे तो मैं उनकी ज़मीन पर बनने वाली छाया को देखने में मगन हो जाता था। सोराया। बाज़ार में मिली मेरी शहज़ादी। मेरी येल्दा की सुबह का सूरज।

अब मैंने बीच-बीच में अपने स्टाल से उठकर जाने और ताहेरीज़ के स्टाल के सामने से गुज़रने के लिए नए-नए बहाने ईजाद करने शुरू कर दिए थे। मेरे इन बहानों को बाबा एक शरारती मुस्कान के साथ मंज़ूर कर लेते थे। ताहेरीज़ के स्टाल के सामने से गुज़रते हुए मैं हमेशा की तरह ज़रूरत से ज़्यादा इस्त्री किया हुआ सूट पहने जनरल को देखकर उनकी ओर हाथ हिलाता, और बदले में वह भी वैसा ही करते। कभी-कभी वह डायरेक्टर की अपनी कुर्सी से उठकर आ जाते और मेरी किस्सा-गोई, जंग, और उस दिन बाज़ार में मिल रहीं सबसे अच्छी डील्स के बारे में थोड़ी-बहुत बातें करते। उस वक़्त मुझे अपनी नज़रों को जनरल साहब के चेहरे से हटकर उस तरफ़ जाने से रोकने

के लिए भारी मशक्कत करनी पड़ती थी जहाँ सोराया बैठकर कोई किताब पढ़ रही होती थी। इसके बाद मैं जनरल साहब को अल्लाह हाफ़िज़ कहता और आगे बढ़ जाता।

कभी-कभी सोराया अकेली होती, जनरल साहब गपशप करने दूसरे गलिआरों में गए होते। ऐसे मौकों पर मैं चुपचाप उनके स्टाल के सामने से गुज़र जाता, ऐसा दिखावा करता जैसे मैं उसे जानता ही नहीं था, जबकि हक़ीक़तन मैं उसे जानने के लिए मरा जा रहा था। कभी-कभी सोराया के साथ वहाँ एक अधेड़ उम्र की मोटी-सी मोहतरमा भी बैठी मिलतीं, जिनकी त्वचा फीकी रंगत वाली और बाल लाल रंग से रंगे हुए थे। मैंने ख़ुद से वादा किया था कि मैं गर्मियाँ ख़त्म होने से पहले-पहले उससे बात करके रहूँगा, मगर कॉलेज फिर से खुल गए, पत्ते लाल हो गए, फिर पीले हो गए और गिर गए, सर्दियों की बारिश ने बाबा के जोड़ों के दर्द को जगा दिया, पेड़ों में फिर से नयी कोंपलें उग आईं, मगर मेरे पास अभी भी इतना कलेजा नहीं था कि मैं उसकी आँखों में भी देख सकूँ।

1985 की मई का उत्तरार्ध आ गया। बसंत का मौसम ख़त्म हो गया था। मैंने जनरल एजुकेशन (सामान्य शिक्षा) की अपनी सभी कक्षाओं में बहुत ही उम्दा प्रदर्शन किया था, जो किसी छोटे-मोटे चमत्कार से कम नहीं था, क्योंकि कक्षाओं में बैठकर मेरा ध्यान प्रोफेसर के लेक्चर की तरफ़ कम और सोराया की सुतवाँ नाक की तरफ़ ज़्यादा रहता था।

फिर उन्हीं गर्मियों के एक तपते रविवार को बाबा और मैं फ्ली बाज़ार में अपने काउण्टर पर बैठे अखबार का पंखा बनाकर अपने-अपने चेहरे को हवा खिला रहे थे। सूरज की बेजा तपिश के बावजूद उस दिन बाज़ार में जमकर भीड़ थी और बिक्री भी अच्छी थी। अभी सिर्फ़ दोपहर के 12:30 बजे थे, लेकिन हमने 160 डॉलर कमा लिए थे। मैं उठा, हाथ-पैर सीधे किए, और बाबा से पूछा कि क्या वह कोक पीना पसंद करेंगे। उन्होंने कहा, “मज़ा आ जाएगा।”

मगर जैसे ही मैं चलने को हुआ, बाबा ने कहा, “संभलकर, आमिर।”

“किस बात से, बाबा?”

“मैं अहमक नहीं हूँ, इसलिए मुझसे होशियार बनने की कोशिश मत करो।”

“मुझे नहीं पता आप किस बारे में बात कर रहे हैं।”

“याद रखना,” बाबा ने अपने लफ़्ज़ों पर जोर देते हुए कहा। “वह आदमी कट्टर पश्तून है। नांग और नामूस वाला आदमी है।” नांग। नामूस। आन-बान-शान। नाक और इज़्ज़त। पश्तून मर्दों के उसूल। ख़ास तौर पर जब बात बीवी या बेटी की पाकीज़गी की हो।

“मैं तो बस हम दोनों के लिए कोक लेने जा रहा हूँ।”

“मेरा बस इतना कहना है कि कुछ ऐसा न करना जिससे मुझे शर्मसार होना पड़े।”

“नहीं करूँगा। या अल्लाह, आप भी न बाबा!”

बाबा ने एक सिगरेट सुलगा ली और फिर से पंखा झलने लगे।

मेरे क़दम बढ़े तो थे रियायती बूथ की तरफ़, मगर फिर मैं बाईं ओर मुड़ गया, टी-शर्ट स्टैंड की तरफ़, जहाँ 5 डॉलर में आप एक सफेद नायलॉन टी-शर्ट पर जीसस, एल्विस, जिम मॉरिसन या तीनों का चेहरा बनवा सकते थे। ऊपर मारियाची संगीत बज रहा था, और चारों ओर अचार और ग्रिल्ड मीट की ख़ुशबू फ़ैली हुई थी।

मैंने चारों ओर नज़र दौड़ाई तो ताहेरीज़ की ग्रे वैन को हमारी वैन से दो कतारों की दूरी पर एक मैंगो-ऑन-ए-स्टिक बेचने वाले कियोस्क के बग़ल में खड़े देखा। उस वक़्त वहाँ सोराया अकेली बैठी कुछ पढ़ रही थी। आज उसने टखनों तक आने वाली गर्मियों की सफ़ेद पोशाक पहन रखी थी। पैरों में आगे से खुली हुई सैंडल थीं। बालों को पीछे की ओर खींचकर ट्यूलिप के आकार का जूड़ा बनाया था। मेरा इरादा आज भी चुपचाप उसके सामने से गुज़र जाने का था और मुझे लगा कि मैंने ऐसा ही किया भी, मगर अचानक मैंने ख़ुद को उसके स्टाल के किनारे खड़े होकर वहाँ टँगीं कार्लिंग आयरन्स और पुरानी नैकटाइयों के बीच से उसे देखते हुए पाया। उसने गर्दन उठाई।

“सलाम,” मैंने कहा। “अगर मैंने आपको डिस्टर्ब किया हो तो मैं माफ़ी चाहता हूँ। मेरा कतई यह इरादा नहीं था।”

“सलाम।”

“आज जनरल साहब नहीं आए हैं क्या?” मैंने कहा। मेरे कान गर्म हो गए थे। मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी उससे नज़रें मिलाकर बात करने की।

“आए हैं, उस तरफ़ गए हैं,” उसने हाथ बढ़ाकर दाहिनी ओर इशारा करते हुए कहा। उसका चाँदी का कंगन खिसककर उसकी कोहनी की तरफ़ आ गया। ओलिव के ऊपर चाँदी।

“क्या आप उन्हें बता देंगी कि मैं उन्हें सलाम बोलने के लिए रुका था?”

“मैं बता दूँगी।”

“शुक्रिया,” मैंने कहा। “ओह, और मेरा नाम आमिर है। अगर आपको जानने की ज़रूरत पड़े तो। ताकि आप उन्हें बता सकें…कि मैं आया था। उन्हें…सलाम कहने।”

“ठीक है।”

मैंने बेचैनी से पहलू बदला और हौले से खँखारकर गला साफ़ किया। “मैं अब चलता हूँ। आपको डिस्टर्ब करने के लिए माफ़ी चाहता हूँ।”

“नहीं, आपने मुझे बिल्कुल भी डिस्टर्ब नहीं किया,” उसने कहा।

“ओह। अच्छा।” मैंने अदब से सिर नवाया और एक आधी मुस्कान बिखेरी। “मैं अब चलता हूँ।” क्या मैं यह पहले ही नहीं कह चुका था? “ख़ुदा हाफ़िज़।”

“ख़ुदा हाफ़िज़।”

मैंने क़दम आगे बढ़ा दिए. मगर फिर रुका और उसकी ओर घूमा। इससे पहले कि मेरी हिम्मत जवाब दे जाती, मेरे मुँह से निकल गया, “क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप क्या पढ़ रही हैं?”

उसने पलकें झपकाईं।

मुझे साँस आना बंद हो गई। अचानक मुझे लगा कि जैसे उस फ्ली बाज़ार में मौजूद सभी अफ़ग़ानों की नज़रें हमारी ओर ही उठ गई थीं। जैसे अचानक चारों ओर सन्नाटा छा गया था। लोगों के होंठ मानो बात करते-करते बीच में ही रुक गए थे। सबके सिर हमारी ओर घूम गए थे। जो हो रहा था उसे देखने की गहरी दिलचस्पी के चलते सबकी आँखें सिकुड़ रही थीं।

यह क्या था? अभी तक हमारी जो मुलाक़ात चल रही थी इसके मायने अदब के दायरे में रहने वाली दुआ-सलाम के तौर पर ही निकाले जा सकते थे, जिसमें कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के हालचाल पूछ रहा था। मगर अब मैंने उससे एक सवाल पूछा था और अगर वो इसका जवाब देने लगती है तो इसे...इसे हमारे बीच होने वाली गुटरगूं के तौर पर देखा जाएगा। एक जवान लड़के और एक गैर-शादीशुदा लड़की (वो भी वह लड़की जिसके इश्क के चर्चे पहले भी आम हो चुके थे) के बीच पक रही किसी खिचड़ी के तौर पर। और अगर ऐसा होता है तो इसे गॉसिप का मसला बनने में देर नहीं लगेगी। ज़हरीली ज़बानें तुरंत फड़फड़ाने लगेंगी। और इस ज़हर की सबसे ज़्यादा कीमत उसे चुकानी पड़ेगी, न कि मुझे, क्योंकि इस मामले में, मैं अफ़ग़ान लोगों के दोहरे मापदंडों से अच्छी तरफ़ वाक़िफ़ था। मर्दों के लिए सब जायज़ था और सौ खताएँ भी माफ़ थीं, कसूरवार थीं तो सिर्फ़ औरतें। हमारी मुलाक़ात को भी इसी नज़रिए से देखा जाएगा और उस पर यह लांछन लगेगा कि वह मुझे फँसाने की कोशिश कर रही थी। वही मुझ पर डोरे डालने की फिराक में थी।

अफ़ग़ान मानसिकता के मुताबिक़, मेरा उससे सवाल करना हौसला दिखाने वाला काम था। इसके ज़रिए मैंने अपनी मंशा ज़ाहिर कर दी थी, मैंने इस बारे में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी थी कि मेरी उसमें दिलचस्पी थी। मगर मैं मर्द था, मेरे लिए इसमें बड़े से बड़ा जोखिम था मेरे अहंकार का चोटिल हो जाना। मगर चोटें ठीक हो जाती हैं, चरित्र पर लगा दाग नहीं मिटता। क्या वह मेरे हौसले के बदले में हौसला करेगी। उसने हाथ में थमी किताब का कवर मेरी तरफ़ कर दिया। वर्थरिंग हाइट्स। “क्या आपने पढ़ी है?”

मैंने हाँ में सिर हिला दिया। मैं अपनी आँखों के पीछे अपने दिल की धड़कन महसूस कर सकता था। “यह एक ग़मगीन करने वाली कहानी है।”

“ग़मगीन कहानियाँ ही तो अच्छी किताबें साबित होती हैं,” उसने कहा।

“सो तो है।”

“मैंने सुना है कि आप लिखते हैं?”

उसे कैसे पता? क्या उसके बाबा ने उसे बताया, या उसने ख़ुद अपने बाबा से पूछा? नहीं, ये दोनों ही बातें मुमकिन नहीं थीं। बाप-बेटे आपस में लड़कियों की बातें कर सकते थे। मगर कोई भी अफ़ग़ान लड़की, कोई भी शरीफ़ और मोहतरम अफ़ग़ान लड़की अपने बाबा से किसी जवान लड़के की बाबत सवाल नहीं कर सकती। और कोई भी बाप, खासकर नांग और नामूस वाला पश्तून बाप अपनी बेटी से किसी जवान लड़के के विषय में बात नहीं करेगा, बशर्ते वह लड़का उसकी नज़र में उसकी बेटी के लिए योग्य उम्मीदवार न हो और उसने अपने बाप के ज़रिए से उसके पास निकाह का पैगाम न भिजवाया हो।

जवाब में, मैंने अविश्वसनीय रूप से ख़ुद को यह कहते सुना: “क्या आप मेरी कोई कहानी पढ़ना चाहेंगी?”

“ज़रूर चाहूँगी,” उसने कहा। मगर अब मुझे उसके व्यवहार में एक बेचैनी महसूस होने लगी थी। मैंने देखा कि उसकी नज़रें इधर-उधर देखने लगी थीं। शायद वे जनरल साहब को तलाश रही थीं। मैं सोचने लगा कि अगर जनरल साहब को मालूम हुआ कि मैं उनकी बेटी से इतनी देर से बात कर रहा था तो वह न जाने क्या कहेंगे।

“मैं किसी दिन लेकर आऊँगा आपके लिए कोई कहानी,” मैंने कहा। मैं अभी कुछ और भी कहने वाला था कि तभी मैंने उन्हीं मोहतरमा को उधर आते देखा जो मुझे अक्सर सोराया के साथ वहाँ बैठी दिखाई पड़ती थीं। उनके हाथ में फलों से भरी एक पन्नी थी। हमें देखकर उनकी नज़रों ने बारी-बारी से मेरे और सोराया के चेहरे का मुआयना किया। फिर वे मुस्कराने लगीं।

“आमिर जान, आपको देखकर अच्छा लगा,” उन्होंने पन्नी के सारे फल टेबल पर उलटाते हुए कहा। उनके माथे पर पसीना दिख रहा था। उनके लाल बाल, जो कि सिर पर हेलमेट की तरह जमे हुए थे, सूरज की रोशनी में चमक रहे थे और मुझे बीच-बीच में उन जगहों पर सर की त्वचा दिखाई पड़ रही थी जहाँ के बाल ख़ासे झड़ गए थे। उनके गोभी जैसे गोल चेहरे पर दो छोटी-छोटी हरी आँखें थीं। दाँत उभरे हुए थे। और हाथों की उंगलियाँ छोटी और मोटी थीं। सुनहरे रंग का अल्लाह लिखा हुआ लॉकेट उनके सीने पर लटक रहा था। उस लॉकेट को थामे रखने वाली चेन उनकी गर्दनों की सिलवटों में कहीं गुम थी। “मैं जमीला हूँ, सोराया जान की वालिदा,” उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा।

“सलाम, खाला जान,” मैंने इस बात से शर्मसार होकर कहा कि वह मुझे जानती थीं, मगर मुझे नहीं पता था कि वह कौन थीं। मैं जब अफ़ग़ानों के बीच होता था, तो अक्सर मुझे इस शर्मिंदगी से दो-चार होना पड़ता था।

"आपके बाबा कैसे हैं?" उन्होंने पूछा।

"अच्छे हैं, शुक्रिया।"

"आपको पता है, आपके दादा, गाज़ी साहब, जो कि जज थे, उनके चाचा और मेरे दादा चचेरे भाई थे?" उन्होंने कहा। "कुछ समझे आप? हम रिश्तेदार हैं।" इतना कहकर वह मुस्करा दीं और मैंने देखा कि उनके चेहरे का दाहिना हिस्सा थोड़ा लकवाग्रस्त जैसा था। एक बार फिर उनकी नज़रों ने बारी-बारी से मेरे और सोराया के चेहरों का मुआयना किया।

मैंने एक बार बाबा से पूछा था कि जनरल ताहेरी की बेटी की अब तक शादी क्यों नहीं हुई। इस पर बाबा ने कहा था कि अब तक कोई रिश्ता ही नहीं आया था उसके लिए। कोई ढंग का रिश्ता, अपनी बात में सुधार किया था उन्होंने। मगर इससे ज़्यादा कुछ बताने को वह राज़ी नहीं हुए थे। बाबा जानते थे कि किसी लड़की के बारे में उड़ने वाली अफवाहें उसकी शादी की संभावनाओं के लिए कितनी घातक साबित हो सकती थीं। अफ़ग़ान मर्द, खासकर वे जो इज्ज़तदार घरानों से थे, इस तरह की अफवाहों से बहुत जल्दी बिदक जाते थे। ज़रा-सी फुसफुसाहट हुई नहीं, ज़रा-सा किसी ने कोई इशारा दिया नहीं कि वे चौंके हुए पक्षियों की तरह फुर्र हो जाते थे। इसीलिए एक-एक करके सोराया की हमउम्र लड़कियों की शादियाँ होती चली गईं मगर किसी ने सोराया के लिए 'अहेस्ता बोरो' नहीं गाया, किसी ने उसकी हथेलियों पर मेंहदी नहीं लगाई, किसी ने उसके सिर पर कुरआन नहीं रखी, और हर शादी में जनरल ताहेरी ही उसके साथ नाचते रहे।

यही वजह थी कि आज सोराया की वालिदा की आँखों में, मैंने ख़ुद को लेकर न छुप सकने वाली उम्मीद देखी, उनकी तिरछी मुस्कान में मेरे और सोराया के बीच की बॉन्डिंग को लेकर वह उत्सुकता देखी जो इन हालात में एक माँ के मन में होनी ही चाहिए थी। मुझे उस 'विशेष दर्जे' पर थोड़ी सी शर्मिंदगी महसूस हुई जो अफ़ग़ान समाज द्वारा मुझे दिया गया था, और वह भी सिर्फ़ इसलिए क्योंकि मैंने उस आनुवंशिक लॉटरी में जीत हासिल की थी जिससे मेरे लिंग का निर्धारण हुआ था।

जनरल साहब के मन में क्या था वह उनकी आँखों से पढ़ पाना कठिन था, मगर उनकी खानुम (बीवी) को लेकर मैं इतना दावे के साथ कह सकता था कि अगर सोराया को लेकर मुझे किसी भी तरह के विरोध का सामना करना पड़ा तो वह विरोध उनकी तरफ़ से तो नहीं होगा।

"बैठ जाइए, आमिर जान," उन्होंने कहा। "सोराया, इनके लिए एक कुर्सी ले आओ बेटा। और उन आड़ूओं में से एक को धो लो। वे मीठे और ताज़े हैं।"

"नहीं, शुक्रिया," मैंने कहा। "मुझे अब चलना चाहिए। बाबा इंतज़ार कर रहे होंगे।"

"ओह?" खाला जमीला ने कहा। वह साफ़ तौर पर इस बात से प्रभावित थीं कि मैंने विनम्रता से काम लेते हुए उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था। "तो फिर, कम से

कम ये तो ले लो।" उन्होंने मुट्ठी भर कीवी और कुछ आड़ू एक काग़ज़ के थैले में डाले और ज़ोर दिया कि मैं उन्हें ले लूँ। "अपने बाबा को मेरा सलाम कहिएगा। और दोबारा हमसे मिलने आइएगा।"

"मैं ज़रूर आऊँगा। शुक्रिया, खाला जान," मैंने कहा। आँखों की कोरों से मैंने सोराया की तरफ़ देखा तो पाया कि वह परे देख रही थी।

"मुझे तो लगा था कि तुम हमारे लिए कोक लेने गए हो," बाबा ने मेरे हाथ से काग़ज़ की थैली लेते हुए कहा। वह मुझे एक साथ गंभीर और शरारती; दोनों नज़रों से देख रहे थे। मैंने कोई कहानी गढ़ने की कोशिश की, मगर उससे पहले ही बाबा ने एक आड़ू मुँह में डालते हुए हाथ से मुझे ख़ामोश रहने का इशारा किया। "परेशान मत हो, आमिर। बस वो याद रखो जो मैंने तुमसे कहा है।"

उस रात बिस्तर में लेटे-लेटे मैं सोचता रहा कि कैसे आज सूरज की रोशनी सोराया की आँखों पर पड़ रही थी, और उसकी कॉलरबोन के ऊपर की नाज़ुक खोखली जगहें कितनी सुन्दर लग रही थीं। हमारे बीच जो बातें हुई थीं उन्हें मैंने कई-कई बार ज़ेहन में दोहराया। उसने क्या कहा था – 'मैंने सुना है कि आप लिखते हैं' या फिर यह कि 'मैंने सुना है कि आप लेखक हैं'? क्या कहा था? मैं रात भर बिस्तर में करवटें बदलता रहा और छत को ताक़ता रहा। और अगले रविवार को उससे फिर मिल पाने से पहले की छह बेहद कठिन और कभी न ख़त्म होने वाली मालूम हो रहीं येल्दा रातों के बारे में सोच-सोचकर निराश होता रहा।

कुछ हफ़्तों तक ऐसे ही चलता रहा। मैं जनरल साहब के चहलक़दमी करने जाने का इंतज़ार करता और उनके जाते ही उनके स्टैंड के सामने से गुज़रने का नाटक करता। अगर उस वक़्त खाला जमीला वहाँ होतीं तो वह मुझे चाय पीने और कोलचा खाने के लिए बैठा लेतीं और फिर हम लोग काबुल के पुराने दिनों, जान-पहचान के लोगों, और उनके गठिया वग़ैरह के बारे में बातें करते। बेशक उन्होंने इस बात पर गौर किया ही होगा कि मैं हमेशा उसी वक़्त उनके स्टाल के सामने से गुज़रता था जबकि उनके शौहर वहाँ नहीं होते थे, मगर उन्होंने कभी इस बात को ज़ाहिर नहीं किया। वह हमेशा यही कहतीं: "ओह, आपने अपने काका से मिलने का मौका गँवा दिया, वह अभी-अभी निकले हैं।" असल बात तो यह थी कि उनका वहाँ रहना मुझे अच्छा लगता था, सिर्फ़ इसलिए नहीं क्योंकि वह मुझसे इतने अच्छे से पेश आती थीं, बल्कि इसलिए भी क्योंकि उनकी मौजूदगी में सोराया ज़्यादा बेफिक्र रहती थी, ज़्यादा खुलकर बातें करती थी। मानो कि उनकी मौजूदगी हमारे बीच जो कुछ भी हो रहा था उसे वैधता प्रदान करती थी–बेशक उतनी नहीं जितनी जनरल साहब के वहाँ रहने से होती। खाला जमीला की सरपरस्ती ने हमारी मुलाकातों को अगर गॉसिप-प्रूफ नहीं तो कम से कम गॉसिप के लिहाज़ से कम मसालेदार ज़रूर बना दिया था, भले ही मुझे अपना दामाद बना पाने की उनकी उम्मीद और उनकी आतुरता साफ़ तौर पर सोराया को शर्मिंदा करती मालूम होती थी।

एक दिन उनके स्टाल पर सोराया और मैं अकेले बैठे बातें कर रहे थे। वह मुझे अपने स्कूल के बारे में बता रही थी कि कैसे वह भी फ़्रेमोंट में ओहलोन जूनियर कॉलेज में जनरल एजुकेशन की पढ़ाई कर रही थी।

"आप किस चीज़ में मेजर करेंगी?"

"मैं टीचर बनना चाहती हूँ," उसने कहा।

"वाक़ई? क्यों?"

"मेरी हमेशा से यही इच्छा रही है। वर्जीनिया में रहने के दौरान ही मैंने ESL प्रमाण-पत्र हासिल कर लिया था और अब मैं हफ्ते में एक रात सार्वजनिक पुस्तकालय में पढ़ाती हूँ। मेरी वालिदा (माँ) भी टीचर थीं, जब हम काबुल में थे तब वह ज़रगूना गर्ल्स हाई स्कूल में फ़ारसी और इतिहास पढ़ाती थीं।"

तभी डियरस्टोकर टोपी पहने मोटे पेट वाला एक आदमी स्टाल पर आया और उसने पाँच डॉलर के मोमबत्ती के सेट के लिए तीन डॉलर देने की पेशकश की। सोराया ने उसे वह दे दिया। पैसे उसने अपने पैरों के पास रखे एक छोटे-से कैंडी-बॉक्स में डाल दिए। फिर उसने लजाते हुए मेरी तरफ़ देखा। "मैं आपको एक बात बताना चाहती हूँ," उसने कहा, "मगर बताते हुए मुझे थोड़ा संकोच होता है और शर्म भी आती है।"

"बताइए न।"

"यह बड़ी अहमकाना सी बात है।"

"प्लीज बताओ न।"

वह हँस दी। "अच्छा ठीक है, सुनो। जब मैं चौथी कक्षा में थी, काबुल में, तब मेरे बाबा ने घर के कामों में मदद करने के लिए ज़िबा नाम की एक औरत को काम पर रखा था। ज़िबा की एक बहन ईरान में रहती थी, मशाद में, और चूँकि ज़िबा अनपढ़ थी, इसलिए जब भी कभी उसका अपनी बहन से ख़त-ओ-किताबत करने का मन होता तो वह मुझसे ख़त लिखवाती। और जब उसकी बहन का जवाब आता, तब उन ख़तों को भी वह मुझसे पढ़वाती। एक दिन मैंने उससे पूछा कि क्या वह ख़ुद लिखना-पढ़ना सीखना चाहेगी। मेरी बात सुनकर उसके चेहरे पर एक बड़ी सी मुस्कान खेलने लगी, आँखों में चमक पैदा हो गई और उसने कहा कि उसका बहुत मन है ऐसा करने का। इस तरह मेरा उसको पढ़ाने का सिलसिला शुरू हो गया। मैं जब तक अपना होमवर्क पूरा करती तब तक वह घर के काम निपटा लेती, फिर हम खाने की मेज़ पर बैठते और मैं उसे अलेफ-बेह (फ़ारसी की वर्णमाला) पढ़ाती। मुझे याद है कि कभी-कभी होमवर्क करते समय जब मेरी नज़र रसोई की ओर चली जाती थी तो मैं देखती थी कि ज़िबा बीच-बीच में रसोई में प्रेशर कुकर में पक रहे गोश्त में करछी चलाती और फिर पेंसिल लेकर बैठ जाती और वर्णमाला वाला वह होमवर्क पूरा करने लगती जो मैंने उसे पिछली रात दिया होता था।

“बहरहाल, साल भर के भीतर ज़िबा बच्चों की कहानी की किताबें पढ़ने लगी। हम दोनों आँगन में बैठ जाते और वह मुझे दारा और सारा की कहानियाँ धीरे-धीरे मगर सही-सही पढ़कर सुनाती। उसने मुझे मोलेम सोराया, टीचर सोराया कहना शुरू कर दिया था।“वह फिर से हँस दी। “मुझे पता है कि आपको यह बात बचकानी लगेगी, मगर जब पहली बार ज़िबा ने अपना ख़त ख़ुद लिखा, तो मुझे समझ आ गया था कि मैं सिर्फ़ और सिर्फ़ टीचर ही बनने की तमन्नाई थी। मुझे उस पर इतना फख्र महसूस हो रहा था न, और मुझे लग रहा था कि मैंने वाक़ई कुछ ऐसा किया था जो मानीखेज़ था।”

“वाक़ई,” मैंने कहा। कहने को तो मैंने कह दिया, मगर सोराया की इस कहानी ने मुझे अपने गिरेबान में झाँकने को मजबूर कर दिया था। एक तरफ़ सोराया थी जिसने एक अनपढ़ को पढ़ना-लिखना सिखाने में ज़िन्दगी के असल मायने तलाशे थे, और दूसरी तरफ़ था मैं जिसने हमेशा अपनी पढ़ाई-लिखाई का इस्तेमाल हसन को नीचा दिखाने के लिए ही किया था। कैसे मैं कठिन शब्दों को ढाल बनाकर हसन का मज़ाक उड़ाया करता था।

“मेरे बाबा चाहते हैं कि मैं क़ानून की पढ़ाई करूँ, मेरी माँ हमेशा मेडिकल क्षेत्र को मेरे करियर के तौर पर अपनी पसंद के रूप में ज़ाहिर करती रहती हैं, मगर मैंने तय कर रखा है कि मैं टीचर ही बनूँगी। बेशक इस काम में ज़्यादा पैसा नहीं मिलता, मगर मैं यही करना चाहती हूँ।”

“मेरी वालिदा भी टीचर थीं,” मैंने कहा।

“मुझे पता है,” उसने कहा। “मेरी वालिदा ने बताया।” मगर फिर जैसे ही उसे यह समझ आया कि उसके जवाब का सीधा सा मतलब यह निकलता था कि मेरी गैर-मौजूदगी में उसकी अपनी वालिदा से मुझे लेकर बात होती थी, उसका चेहरा शर्म से लाल हो उठा। मुझे ख़ुद को मुस्कराने से रोकने के लिए बहुत ज़्यादा मशक्कत करनी पड़ी।“वादे के मुताबिक़ मैं आपके लिए कुछ लाया हूँ,” कहते हुए मैंने अपनी पिछली जेब से स्टेपल किए हुए पन्नों का रोल निकाला और अपनी एक छोटी कहानी उसे थमा दी।

“ओह, तुम्हें याद था!” उसने ख़ुशी से चहकते हुए कहा। उसके चेहरे पर एकदम से रौनक बढ़ गई थी। “बहुत-बहुत शुक्रिया!” मुझे इस बात पर गौर करने के लिए पल भर से ज़्यादा की मोहलत ही नहीं मिली कि पहली बार उसने मुझे औपचारिक ‘शोमा’ की बजाए ‘तुम’ कहकर संबोधित किया था, क्योंकि पल भर के भीतर ही उसकी मुस्कान और उसके चेहरे की रौनक गायब हो गई। एकाएक उसके चेहरे का रंग उड़ गया और उसकी नज़रें मेरे पीछे किसी चीज़ पर टिक गईं। मैं पीछे मुड़ा तो देखा कि सामने ही जनरल ताहेरी खड़े थे।

“आमिर जान। हमारे होनहार किस्सा-गो। बहुत ख़ुशी हुई आपसे मिलकर,” उन्होंने कहा। वह हल्के से मुस्करा रहे थे।

"सलाम, जनरल साहब," मैंने फँसी हुई आवाज़ में कहा।

फिर वह स्टाल की ओर बढ़े और सोराया के सामने जाकर खड़े हो गए। "क्या ख़ूबसूरत दिन है, है न?" उन्होंने कहा। उनके एक हाथ का अंगूठा कोट की ऊपर वाली वाली जेब में फँसा हुआ था, जबकि दूसरा हाथ सोराया की ओर बढ़ा हुआ था। उनका इरादा समझकर सोराया ने वे पन्ने उनके हाथ में दे दिए।

"मौसम विभाग वालों का कहना है कि इस हफ्ते बारिश होगी। इस बात पर यकीन करना मुश्किल है, नहीं?" यह कहते हुए उन्होंने वे पन्ने कचरे के डिब्बे में फेंक दिए। फिर चलते हुए मेरे पास आए और धीरे से एक हाथ मेरे कंधे पर रख दिया। फिर हम साथ-साथ कुछ क़दम चले।

"जानते हो बच्चे, मुझे आपसे ख़ासा लगाव हो गया है। मेरे मन में इस बात को लेकर ज़रा भी शक नहीं है कि आप एक अच्छे लड़के हो, मगर–" उन्होंने एक गहरी साँस छोड़ी और बात पूरी करते हुए कहा, "अच्छे लड़कों को भी कभी-कभी याद दिलाने की ज़रूरत पड़ती है। इसलिए मेरा फ़र्ज़ बनता है कि आपको याद दिलाऊँ कि आप इस फ्ली बाज़ार में ऐसे लोगों के बीच हैं जो आपको और हमें अच्छी तरह जानते-पहचानते हैं।" पल भर को वह रुके। अपनी भावहीन आँखों से मेरी आँखों में झाँककर देखने लगे। "आपको पता है, यहाँ हर कोई किस्सा-गो है।" कहकर वह मुस्कराए। "अपने बाबा को मेरा सलाम कहिएगा, आमिर जान।"

फिर उन्होंने मेरे कंधे से हाथ हटा लिया। एक बार फिर मुस्कराए।

"क्या हो गया?" बाबा ने पूछा। वह एक बूढ़ी औरत से लकड़ी के एक घोड़े के पैसे ले रहे थे।

"कुछ नहीं," मैंने कहा। मैं जाकर एक पुराने टीवी पर बैठ गया। थोड़ी देर मैं कश्मकश में रहा, पर आख़िर-कार मैंने उन्हें सबकुछ बता दिया।

"आह, आमिर," उन्होंने एक गहरी साँस छोड़ते हुए कहा।

मगर जो कुछ भी हुआ था उस पर ज़्यादा कुछ सोचने का मुझे मौका ही नहीं मिला, क्योंकि उस हफ्ते के आख़िर में बाबा को सर्दी-जुकाम हो गया था।

इसकी शुरुआत बार-बार उठने वाली खाँसी और लगातार आने वाली छींकों से हुई थी। दो-एक दिन में छींकें तो बंद हो गईं, मगर खाँसी बनी रही। वह बारम्बार जेब से रुमाल निकालते, मुँह पर रखते, वापस जेब में डालते। मैं बारम्बार कहता रहा कि डॉक्टर के पास चलकर जाँच करा लेते हैं, मगर वह हर बार मेरी बात को हवा में उड़ा देते। उन्हें डॉक्टरों और अस्पतालों से नफ़रत थी। मेरी जानकारी के हिसाब से अब तक की ज़िन्दगी में वह सिर्फ़ एक बार डॉक्टर के पास गए थे, तब जब उन्हें हिन्दुस्तान में रहते हुए मलेरिया हुआ था।

दो हफ्ते बाद एक दिन इत्तेफाक से मैंने उन्हें टॉयलेट में ख़ून से सना बलगम थूकते

देख लिया।

“यह कब से हो रहा है आपके साथ?” मैंने पूछा।

“रात के खाने में क्या बना है?” उन्होंने कहा।

“आप मेरे साथ डॉक्टर के पास चल रहे हैं।”

गैस स्टेशन पर बाबा अब मैनेजर की पोस्ट पर थे, मगर फिर भी स्टेशन के मालिक ने बाबा का स्वास्थ्य-बीमा नहीं करवाया था, और अपनी लापरवाह तबियत के चलते बाबा ने इसके लिए इसरार भी नहीं किया था। इसीलिए मैं उन्हें सैन जोस के सरकारी अस्पताल ले गया। पीली-पीली और सूजी हुई आँखों वाले जिस डॉक्टर ने बाबा का चेक-अप किया, वह सेकण्ड ईयर का रेज़िडेंट डॉक्टर था। “यह तुमसे भी ज़्यादा छोटा और मुझसे भी ज़्यादा बीमार दिखता है,” बाबा ने बड़बड़ाते हुए कहा। उस डॉक्टर ने हमें नीचे के माले पर जाकर छाती का एक्स-रे कराने के लिए कहा। हम जब एक्स-रे कराके वापस डॉक्टर के कमरे में पहुँचे, तब वह कोई फॉर्म भर रहा था।

“इसे लेकर फ्रंट डेस्क पर चले जाइए,” उसने जल्दी-जल्दी कुछ लिखते हुए कहा।

“क्या है यह?” मैंने उससे पूछा।

“रेफरल फॉर्म।” उसने जल्दी-जल्दी लिखना जारी रखा।

“किसलिए?”

“पल्मोनरी क्लिनिक भेजे जाने के लिए।”

“वह क्या होता है?”

उसने मुझ पर एक सरसरी नज़र डाली। अपना चश्मा ऊपर किया। फिर से लिखना शुरू कर दिया। “इनके दाहिने फेफड़े पर एक धब्बा है। मैं उसी की जाँच कराना चाहता हूँ।”

“धब्बा?” मेरे मुँह से निकला। अचानक ऐसा लगा जैसे वह कमरा बहुत छोटा हो गया हो।

“कैंसर?” बाबा ने इतनी सहजता से कहा जैसे कोई मामूली सर्दी-जुकाम की बात कर रहा हो।

“हो भी सकता है, संदिग्ध है।” डॉक्टर बुदबुदाया।“क्या आप हमें इस बारे में थोड़ी और जानकारी दे पाएँगे?” मैंने पूछा।

“अभी तो इससे ज़्यादा कुछ नहीं कह पाऊँगा। पहले आपको CAT स्कैन कराने की ज़रूरत है, फिर फेफड़ों के डॉक्टर से मिलना पड़ेगा।” उसने मुझे रेफरल फॉर्म थमा दिया। “आपने कहा था कि आपके डैड स्मोकिंग (धूम्रपान) करते हैं, है न?”

"हॉं।"

उसने असहायता से सिर हिलाया। उसकी नज़रें मुझसे फिसलकर बाबा पर गईं और फिर वापस मुझ पर लौट आईं। "वे लोग आपको दो हफ़्तों के भीतर कॉल करेंगे।"

मैं उससे पूछना चाहता था कि मैं पूरे दो हफ्ते इस 'संदिग्ध' शब्द के साथ कैसे जियूँगा! कैसे मैं खा पाऊँगा, कैसे काम कर पाऊँगा, कैसे पढ़ पाऊँगा! वह मुझे ऐसी कश्मकश में डालकर कैसे छोड़ सकता था! बहरहाल, मैंने फॉर्म लिया और उसे जमा कर दिया। उस रात, मैंने बाबा के सो जाने तक इंतज़ार किया और फिर एक कम्बल मोड़कर फर्श पर रख दिया। फिर उस पर बैठकर सजदे में सिर झुका दिया और कुरआन की वे आधी-अधूरी याद आयतें दोहराने लगा जो स्कूल के दिनों में मुल्लाओं ने हमें याद कराई थीं। किस्मत ने मुझे ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया था कि मैं उस अल्लाह से रहम की दुआ माँग रहा था जिसके होने को लेकर ही मैं आश्वस्त नहीं था। मुझे अब उन मुल्लाओं से रश्क हो रहा था, किसी रूहानी ताक़त के वजूद पर भरोसा रखने की उनकी काबिलियत से रश्क हो रहा था।

दो हफ्ते बीत गए, मगर किसी का फ़ोन नहीं आया। और जब मैंने उन्हें कॉल किया तो वे कहने लगे कि मेरा जमा किया रेफरल फॉर्म ही नहीं मिल रहा। उल्टा वे मुझसे पूछने लगे कि क्या मुझे ठीक तरह याद था कि मैंने फॉर्म जमा कराया था। फिर कहने लगे कि अगले तीन हफ़्तों में फोन करेंगे। इस पर मैं भड़क गया और ख़ूब हंगामा किया, तब जाकर वे अगले एक हफ्ते में CAT स्कैन कराने और दो हफ़्तों के भीतर डॉक्टर से मिलवाने के लिए तैयार हुए।

पल्मोनोलॉजिस्ट डॉ. श्नाइडर के साथ मुलाकात ठीक चल रही थी, मगर तभी बाबा ने उनसे पूछ लिया कि वह किस मुल्क के थे। और जैसे ही डॉ. श्नाइडर ने कहा, रूस, बाबा अपना आप खो बैठे।

"हमें दो मिनट का वक़्त दीजिए, डॉक्टर साहब," मैंने बाबा को एक तरफ़ खींचते हुए कहा। डॉ. श्नाइडर मुस्कराए और पीछे हट गए, स्टेथोस्कोप अभी भी उनके हाथ में था।

"बाबा, मैंने वेटिंग रूम में डॉ. श्नाइडर की जीवनी पढ़ी थी। उनकी पैदाइश मिशिगन की है। मिशिगन! वह अमरीकी हैं, आपसे और मुझसे कहीं ज़्यादा अमरीकी।"

"मुझे परवाह नहीं कि वह कहाँ पैदा हुआ था, मैं बस इतना जानता हूँ कि वह रूसी है," बाबा ने ऐसे मुँह बनाते हुए कहा जैसे कि रूसी कोई गंदा शब्द हो। "उसके माँ-बाप रूसी थे, उसके दादा-दादी रूसी थे। मैं तुम्हारी मरहूम वालिदा की कसम खाकर कहता हूँ कि अगर उसने मुझे छूने की कोशिश की तो मैं उसका हाथ तोड़ दूँगा।"

"डॉ. श्नाइडर के माँ-बाप शोरावी से भागकर यहाँ आ गए थे, आप इस बात को ख़याल में क्यों नहीं लेते? वे उस आदमी का साथ छोड़ आए थे!"

मगर बाबा ने मेरी एक न सुनी। कभी-कभी मुझे लगता है कि केवल एक चीज़ थी जिसे वह अपनी मरहूम बीवी से ज़्यादा प्यार करते थे, और वह था अफ़ग़ानिस्तान, उनका मादर-ए-वतन। मैं इतना झुंझला गया था कि ज़ोरों से चीख पड़ने को दिल कर रहा था। मगर इसकी बजाए मैंने एक गहरी साँस छोड़ी और डॉ. श्नाइडर के पास जाकर उनसे कहा, “मुझे अफ़सोस है, डॉक्टर साहब, वह राज़ी नहीं हैं।”

इसके बाद हम जिस पल्मोनोलॉजिस्ट के पास गए, डॉ. अमानी, वह ईरानी थे और बाबा को उनसे कतई कोई दिक्कत नहीं थी। टेढ़ी-मेढ़ी मूँछों और सफ़ेद बालों वाले डॉ. अमानी मीठी ज़बान वाले आदमी थे, उन्होंने हमें बताया कि उन्होंने CAT स्कैन के नतीजों को देख लिया था और अब उन्हें पैथोलॉजी जाँच के लिए बाबा के फेफड़े से ऊतकों का एक टुकड़ा चाहिए था, जिसके लिए उनकी ब्रोंकोस्कोपी की जानी थी। इसके लिए उन्होंने अगले हफ्ते का वक़्त मुक़र्रर किया। मैंने उनका शुक्रिया अदा किया और बाबा को बाहर ले आया। अब अगले एक हफ्ते मुझे इस नए शब्द – ब्रोंकोस्कोपी– के साथ जीना था, जो मुझे ‘संदिग्ध’ शब्द से भी ज़्यादा अशुभ मालूम पड़ रहा था। मेरे भीतर से आवाज़ आई कि काश इस वक़्त सोराया मेरे साथ होती।

अगले हफ्ते हमें समझ आया कि शैतान की तरह कैंसर के भी कई नाम थे। बाबा वाले को ‘ओट सेल कार्सिनोमा’ कहते थे। एडवांस स्टेज में पहुँच चुका था। ऑपरेशन करके निकाला नहीं जा सकता था। बाबा ने डॉ. अमानी से पूछा कि उनके ठीक होने का चांस कितना था। डॉ. अमानी ने अपना होंठ काटा और कहा, “बहुत कम।” फिर जल्दी से बोले, “बेशक हमारे पास कीमोथेरेपी का ऑप्शन है, मगर उससे केवल इसका उपशमन होगा।”

“इसका क्या मतलब हुआ?” बाबा ने पूछा।

डॉ. अमानी ने एक गहरी साँस छोड़ी। “इसका मतलब है कि इससे अंतिम नतीजे में कोई बदलाव नहीं आएगा, बस आपको थोड़ा ज़्यादा वक़्त मिल जाएगा।”

“हाँ, यह हुआ साफ़-साफ़ समझ आने वाला जवाब। इसके लिए आपका शुक्रिया, डॉक्टर अमानी। मगर मैं कीमो नहीं करवाऊँगा,” बाबा ने कहा। यह कहते हुए बाबा के चेहरे पर वैसा ही दृढ़ निश्चय झलक रहा था जैसा श्रीमती डोबिन्स को मुफ्त खाने के टिकटों की गड्डी लौटाते वक़्त झलका था।

“मगर बाबा–”

“सबके सामने मेरी बात मत काटा करो, आमिर। कभी भी नहीं। तुम क्या समझते हो ख़ुद को?”

जब हम डॉ. अमानी के ऑफिस से बाहर निकले तो देखा कि बाहर अच्छी-खासी बारिश हो चुकी थी, सड़कों पर पानी भर गया था, जो तेज़ रफ़्तार से गुज़रती कारों के साथ उछलकर फुटपाथ पर चलने वालों को भिगो रहा था। मुझे याद आया कि जनरल ताहेरी ने फ्ली बाज़ार में बारिश की बात कही तो थी, मगर वह कुछ हफ़्ते देरी से आई

थी। बाबा ने एक सिगरेट जला ली। फिर जब तक हम घर नहीं पहुँच गए, वह एक के बाद एक सिगरेट पीते रहे।

जब वह लॉबी के दरवाज़े में चाबी घुसा रहे थे, तब मैंने कहा, "बाबा, प्लीज़, कीमोथेरेपी के लिए मान जाइए।"

मैं अब भी बारिश में भीग रहा था। बाबा ने चाबियाँ जेब में रखीं और मेरी बाँह थामकर मुझे इमारत के धारीदार छज्जे के नीचे कर लिया। फिर जिस हाथ में सिगरेट पकड़ रखी थी, उसी हाथ को मेरे सीने पर दबाते हुए बोले, "बस! अब इस बारे में कोई बात नहीं होगी। मैं फैसला कर चुका हूँ।"

"और मेरा क्या होगा, बाबा? मैं आपके बिना क्या करूँगा?" मैंने कहा, मेरी आँखें भर आईं थीं।

उनके बारिश से भीगे चेहरे पर धिक्कार का भाव आया। यह वही भाव था जो मुझे उनके चेहरे पर तब देखने को मिलता था जब बचपन में, मैं चलते-चलते गिर जाता था, मेरे घुटने छिल जाते थे, और मैं रोने लगता था। उस वक़्त भी मेरा रोना उनके चेहरे पर इस भाव के उभरने की वजह बनता था, और आज भी वही वजह बना था। "तुम बाईस साल के हो, आमिर! एक बालिग़ आदमी! तुम..." उन्होंने कुछ कहने के लिए मुँह खोला, मगर फिर बंद कर लिया, फिर खोला, मगर फिर सोच में पड़ गए कि क्या कहें। हम जिस कैनवास के छज्जे के नीचे खड़े थे, उस पर झमाझम बारिश गिर रही थी। "'मेरा क्या होगा, मैं कैसे-क्या करूँगा,' यह पूछ रहे हो तुम? इतने सालों में, मैं तुम्हें जो कुछ भी सिखाने की कोशिश कर रहा था, वह इसीलिए तो था ताकि तुम्हें कभी भी यह सवाल न पूछना पड़े।"

उन्होंने आगे बढ़कर दरवाज़ा खोला। फिर मेरी तरफ़ मुड़े। "और एक बात। इस बारे में किसी को कुछ मालूम नहीं चलना चाहिए, सुना तुमने? किसी को भी नहीं। मुझे किसी की हमदर्दी नहीं चाहिए।" इतना कहकर वह मद्धम रोशनी में नहाई लॉबी में आगे बढ़ गए। वह पूरा दिन उन्होंने टीवी के सामने बैठकर बिना रुके सिगरेट पीते हुए बिताया। मुझे समझ नहीं आया कि वह किसकी अवहेलना कर रहे थे। मेरी? डॉक्टर अमानी की? या शायद उस ख़ुदा की जिसके वजूद को उन्होंने कभी स्वीकारा ही नहीं था।

कुछ वक़्त तक तो कैंसर भी बाबा को फ्ली बाज़ार से दूर नहीं रख पाया। हम पहले की ही तरह हर शनिवार गराज सेल के लिए जाते रहे। पहले की ही तरह बाबा गाड़ी चलाने और मैं रास्ता दिखाने का काम करता रहा। पहले की तरह ही हम हर रविवार फ्ली बाज़ार में पुराने सामानों की दुकान लगाते रहे। पीतल के लैंप। बेसबॉल के दस्ताने। टूटे हुए ज़िपर वाले स्की जैकेट। पहले की ही तरह बाबा का अफ़ग़ानिस्तान के अपने जानने वालों के साथ दुआ-सलाम और ख़रीदारों के साथ एक-एक दो-दो डॉलर्स के लिए मोलभाव करना जारी रहा। जैसे कि ये सब बातें अब भी कोई मायने रखती हों।

जैसे कि हर रविवार के साथ मेरे यतीम होने का दिन क़रीब न आ रहा हो।

कभी-कभी जनरल ताहेरी और ख़ाला जमीला टहलते हुए हमारे स्टाल पर आ जाते थे। जनरल साहब पक्के डिप्लोमेट थे, वह जब भी आते मुझसे मुस्कराकर ही मिलते और पहले की ही तरह हाथ मिलाना भी नहीं भूलते। मगर ख़ाला जमीला अब बहुत ही कम बोलती थीं, जो कि उनके पहले के बर्ताव के लिहाज़ से एक नयी बात थी। उनकी यह ख़ामोशी केवल उनकी उस तिरछी मुस्कान और उन माफ़ी माँगती-सी लगतीं नज़रों से टूटती थी, जो उस वक़्त मेरी ओर भेजी जाती थीं जब जनरल साहब का ध्यान कहीं और लगा हुआ होता था।

उस दौरान मेरे लिए बहुत सारी चीज़ें पहली बार हो रही थीं: पहली बार मैं बाबा को बाथरूम में कराहते हुए सुन रहा था। पहली बार मैं उनके तकिए पर ख़ून देख रहा था। गैस स्टेशन पर काम करते हुए पिछले तीन बरसों में बाबा ने कभी भी बीमार होने का कहकर छुट्टी नहीं ली थी। यह भी पहली बार हो रहा था।

उस बरस हैलोवीन आते-आते यह हालत हो गई कि बाबा शनिवार दोपहर तक इतने थक जाते थे कि वैन में ही बैठे रहते थे और मैं अकेला ही जाकर मोलभाव करके कबाड़ ख़रीदकर लाता था। थैंक्सगिविंग आते-आते वह दोपहर से पहले ही थकने लगे। घरों में सामने के लॉन में स्लेज दिखाई पड़ने और डगलस फ़िर पर नकली बर्फ़ जमना शुरू होने तक नौबत यह आ गई कि बाबा घर पर रहते और मैं अकेले ही वैन लेकर जाता और सामान ख़रीदकर लाता।

अब फ्ली बाज़ार में अक्सर बाबा के मिलने-जुलने वाले उनके घटते वज़न की चर्चा करने लगे थे। शुरू-शुरू में ये चर्चाएँ तारीफ़ के रूप में होती थीं। लोग उनसे उनकी सीक्रेट डाइट के बारे में पूछने लगते थे। मगर जब वज़न घटना बंद नहीं हुआ, कम होता ही चला गया, होता ही चला गया, जब उनके गाल दिन-ब-दिन पिचकते ही गए, पिचकते ही गए, और उनकी आँखें अन्दर को धँसती गईं, धँसती ही चली गईं, तब लोगों ने तारीफ़ करना बंद कर दिया और आशंकाओं से घिरने लगे।

और फिर नए साल के ठीक बाद एक सर्द रविवार को बाबा एक मोटे फिलिपिनो आदमी को एक लैंपशेड बेच रहे थे, जबकि मैं उनके पैरों को ढँकने के लिए वैन में कंबल खोज रहा था।

“अरे सुनो, इस आदमी को मदद की ज़रूरत है!” फिलिपिनो आदमी ने चिल्लाकर कहा। मैंने पलटकर देखा तो बाबा ज़मीन पर पड़े थे। उनके हाथ-पैर झटके खा रहे थे।

“कोमक!” मैं वहीं खड़े-खड़े चीख उठा। “कोई मदद करो!” कहकर मैं तेज़ी से बाबा की ओर लपका। उनके मुँह से झाग निकल रहा था, उनकी दाढ़ी झागदार थूक से भीग गई थी। उनकी आँखों की पुतलियाँ पलट गई थीं और आँखों में केवल सफेदी दिखाई पड़ रही थी।

हमारे इर्द-गिर्द लोगों की भीड़ इकट्ठी होती जा रही थी। भीड़ में से ही किसी को

मैंने कहते सुना कि इन्हें मिर्गी का दौरा पड़ गया है। कोई और चिल्लाया, “911 पर कॉल करो!” भागते हुए क़दमों की आवाज़ मेरे कानों में पड़ी।

बाबा के मुँह से निकलता झाग अब लाल हो गया था। उनकी जीभ उनके दाँतों के बीच फँसी हुई थी। मैं उनकी बग़ल में घुटनों के बल बैठ गया, उनकी दोनों बाँहें थामकर उनका सर अपने सीने से टिका लिया, और कहने लगा, “मैं यहीं हूँ बाबा, मैं आपके पास ही हूँ, आप ठीक हो जाएँगे, मैं यहीं हूँ।” जैसे कि मैं उनकी हालत में कोई सुधार कर सकता था, मिर्गी के दौरे से कह सकता था कि मेरे बाबा को छोड़कर चले जाओ और वह चला जाता। तभी मुझे अपने घुटनों पर गीलापन महसूस हुआ। देखा तो बाबा का पेशाब निकल गया था। *बाबा जान, मैं यहीं हूँ। आपका बेटा यहीं है।*

हम अस्पताल में थे। बाबा का इलाज कर रहा डॉक्टर, जिसकी दाढ़ी सफ़ेद और सिर पूरी तरह गंजा था, मुझे अपने साथ कमरे से बाहर ले गया। “मैं तुम्हारे बाबा के CAT स्कैन के विषय में कुछ बात करना चाहता हूँ,” उसने कहा। फिर उसने स्कैन फिल्म्स को हॉलवे में लगे एक व्यूइंग बॉक्स में रखा और अपनी पेंसिल के रबड़ वाले सिरे से बाबा के कैंसर की तस्वीरों की ओर इशारा किया, जैसे कोई पुलिसवाला पीड़ित के परिवार को कातिल की तस्वीरें दिखा रहा हो। उन तस्वीरों में बाबा का दिमाग़ एक बड़े अखरोट के टुकड़ों जैसा दिख रहा था, जिसमें जगह-जगह टेनिस बॉल के आकार के धूसर धब्बे दिखाई पड़ रहे थे।

“जैसा कि आप देख सकते हैं, कैंसर मेटास्टेसाइज्ड हो गया है। मतलब, फेफड़ों के साथ-साथ अब इनके दिमाग़ में भी फ़ैल गया है,” डॉक्टर ने कहा। “दिमाग़ में सूजन को कम करने के लिए इन्हें स्टेरॉयड और मिर्गी-रोधी दवाएँ लेनी होंगी। और मैं रेडिएशन थेरेपी की भी सलाह दूँगा। आपको पता है न इसका क्या मतलब है?”

मैंने कहा कि हाँ मुझे पता है। कैंसर के बारे में मेरी जानकारी खासी बढ़ गई थी।

“ठीक है तो फिर,” उसने कहा और अपना बीपर चेक किया। “मुझे जाना है, लेकिन अगर आपको कुछ पूछना या जानना हो तो आप कभी भी मुझसे संपर्क कर सकते हैं।”

“शुक्रिया।”

वह पूरी रात मैंने बाबा के सिरहाने एक कुर्सी पर बैठे-बैठे काटी।

अगली सुबह वेटिंग-रूम अफ़ग़ान लोगों से खचाखच भरा था, बल्कि लोग हॉल तक में खड़े थे। इनमें नेवार्क के कसाई से लेकर वह इंजीनियर तक शामिल था जिसने बाबा के साथ उनके यतीमखाने में काम किया था। वे सभी एक-एक करके भीतर आते और दबी हुई आवाज़ में बाबा का हालचाल पूछकर उनके जल्दी ठीक हो जाने की दुआ करते। बाबा तब जाग रहे थे, सुस्त और थके हुए थे, मगर जागे रहे थे।

दोपहर को जनरल ताहेरी और खाला जमीला आए। सोराया भी साथ थी। एक पल

को हमारी नज़रें मिलीं, फिर तत्काल ही हम परे देखने लगे।

“कैसे हो मेरे दोस्त?” जनरल ताहेरी ने बाबा का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा।

बाबा ने अपने हाथ से लटकी हुई IV की ओर इशारा किया और हल्के से मुस्कराए। जवाब में जनरल साहब भी मुस्कराए।

“आप सबको इतनी तकलीफ़ करने की क्या ज़रूरत थी,” बाबा ने कमज़ोर आवाज़ में कहा।

“इसमें तकलीफ़ की क्या बात है,” खाला जमीला ने कहा।

“बेकार की बातें मत करो। यह बताओ कि तुम्हें कुछ चाहिए?” जनरल ताहेरी ने कहा। “कुछ भी? यह मानकर चलना कि तुम अपने भाई से कह रहे हो।”

मुझे याद आया कि बाबा ने एक बार पश्तूनों के बारे में क्या कहा था। उन्होंने कहा था, “हम पश्तून भले ही ज़िद्दी हों, और मुझे पता है कि हम ज़रूरत से ज़्यादा ही अभिमानी हैं, मगर मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि ज़रूरत के वक़्त साथ देने में हमारा कोई सानी नहीं पाओगे तुम।”

बाबा ने तकिए पर अपना सिर हिलाया। “तुम्हारा यहाँ आना ही मेरे लिए काफी है।” सुनकर जनरल साहब मुस्करा दिए और बाबा के हाथ को हौले से दबाया। फिर मुझसे मुखातिब होकर बोले, “आप कैसे हैं, आमिर जान? क्या आपको किसी चीज़ की ज़रूरत है?”

आज उनकी नज़रें बहुत अलग थीं, आज उनकी नज़रों में मुझे अपने लिए रहमदिली नज़र आ रही थी...। “जी नहीं, शुक्रिया, जनरल साहिब। मैं...” कहते-कहते मेरा गला भर आया और आँखें डबडबा गईं। मैं कमरे से बाहर निकल गया।

हॉल-वे में आकर मैं उसी व्यूइंग बॉक्स के बग़ल में खड़ा होकर रोने लगा जहाँ कल रात डॉक्टर ने मुझे कातिल की तस्वीरें दिखाई थीं।

तभी बाबा के कमरे का दरवाज़ा खुला और सोराया बाहर आई। आकर मेरे पास खड़ी हो गई। उसने ग्रे स्वेटशर्ट और जींस पहन रखी थी। आज उसके बाल खुले थे। मैं उसके गले लगकर जी भरके रो लेना चाहता था।

“आई एम सो सॉरी, आमिर,” उसने कहा। “हम सभी जानते थे कि कुछ गड़बड़ है, मगर किसी ने सपने में भी नहीं सोचा था कि ऐसा कुछ होगा।”

मैंने अपनी आस्तीनों से अपनी आँखें पोंछीं। “वह नहीं चाहते थे कि इस बारे में किसी को भी पता चले।”

“तुम्हें कुछ चाहिए?”

“नहीं,” मैंने मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा। उसने अपना हाथ मेरे हाथ पर

रखा। हमारा पहला स्पर्श। मैंने दूसरे हाथ से उसका वह हाथ थामा और उसे अपने चेहरे से छुआया। अपनी आँखों से। फिर छोड़ दिया। “बेहतर होगा कि तुम अब कमरे में लौट जाओ, नहीं तो तुम्हारे बाबा तुम्हें ढूँढते हुए यहाँ आ जाएँगे और उन्हें अच्छा नहीं लगेगा।”

उसने मुस्कराते हुए सहमति में सिर हिलाया। “हाँ, मुझे जाना चाहिए।” वह जाने के लिए मुड़ी। “सोराया!”

“हाँ?”

“मुझे ख़ुशी है कि तुम आईं, यह मेरे लिए बहुत ज़्यादा...किसी भी और चीज़ से ज़्यादा मायने रखता है।”

दो दिन बाद बाबा को अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। मगर उससे पहले उन्होंने बाबा को रेडिएशन थेरेपी के लिए राज़ी करने के इरादे से उन्हें एक रेडिएशन ऑन्कोलॉजिस्ट से मिलवाया। मगर बाबा नहीं माने। फिर अस्पताल वालों ने मुझसे कहा कि मैं बाबा से बात करके उन्हें राज़ी करूँ। मगर मैं बाबा के चेहरे के भाव देख भी चुका था और समझ भी चुका था, इसीलिए उनका शुक्रिया अदा करते हुए डिस्चार्ज फॉर्म पर दस्तख़त कर दिए और बाबा को घर ले आया।

उस रात बाबा कम्बल ओढ़े अपने बिस्तर पर लेटे थे। मैंने उनके लिए गर्मागर्म चाय बनायी और एक प्लेट भुने हुए बादामों के साथ लेकर उनके पास पहुँचा। फिर मैंने उनकी पीठ के गिर्द अपने हाथ डालकर बड़ी आसानी से उन्हें थोड़ा-सा उठाकर बैठा दिया। उनके शोल्डर ब्लेड (पीठ की ओर उभरी हुई कन्धों की हड्डियाँ) मुझे अपनी उंगलियों के नीचे किसी पक्षी के पंख की तरह महसूस हुए। मैंने कम्बल को खींचकर वापस उनकी छाती तक ओढ़ा दिया। किसी समय भीमकाय रहा उनका शरीर आज कृशकाय हो गया था!

“मैं आपके लिए कुछ और कर सकता हूँ, बाबा?”

“नहीं, मेरे बच्चे, शुक्रिया।”

मैं उनके सिरहाने बैठ गया। “तो क्या आप मेरे लिए कुछ करेंगे? अगर आप ख़ुद को बहुत ज़्यादा थका हुआ न पा रहे हों तो।”

“क्या?”

“मैं चाह रहा था कि आप ख़स्तेगारी (लड़के वालों का लड़की वालों के यहाँ रिश्ता लेकर जाना) के लिए जाते और जनरल ताहेरी से मेरी और उनकी बेटी के रिश्ते की बात करते।”

बाबा के सूखे हुए होंठों पर एक मुस्कान तैर गई। जैसे किसी सूखी पत्ती का एक ज़रा सा हिस्सा हरा हो गया हो। “पक्का?” उन्होंने पूछा।

“इतना पक्का मैं आज तक कभी किसी बात को लेकर नहीं हुआ हूँ।”

“अच्छी तरह सोच लिया है?”

“बहुत अच्छी तरह, बाबा।”

“तो फिर फोन दो मुझे। और मेरी डायरी भी उठाओ।”

“अभी?” मैंने हैरानी से कहा।

“और कभी?”

मेरे चेहरे पर मुस्कान खेल गई। “ठीक है।” मैंने उन्हें फोन लाकर दिया और साथ में उनकी वो काली डायरी भी जिसमें उन्होंने अपने तमाम अफ़ग़ान दोस्तों के टेलिफोन नम्बर्स लिख रखे थे।

उसमें उन्होंने जनरल ताहेरी का नंबर ढूँढा। मिलाया। रिसीवर कान से लगाया। मेरा दिल ज़ोरों से धड़कने लगा।

“जमीला जान? सलाम अलैकुम,” उन्होंने कहा। फिर अपना परिचय दिया। कुछ पल खामोशी से सुनते रहे। “पहले से बेहतर हूँ, शुक्रिया। बहुत अच्छा लगा कि आप लोग मुझसे मिलने आए।” फिर कुछ देर खामोशी से सुना। रज़ामंदी में गर्दन हिलाई। “मैं याद रखूँगा, शुक्रिया। जनरल साहब घर पर हैं क्या?” कुछ पलों की चुप्पी। “जी शुक्रिया।”

उन्होंने मेरी ओर नज़रें घुमाईं। पता नहीं क्यों, मेरा मन ज़ोर-ज़ोर से हँसने का करने लगा। या ज़ोर-ज़ोर से चीखने का। मैं अपना हाथ मुँह तक ले गया और दाँतों से उसे काट लिया। मेरी हालत देखकर बाबा हौले-हौले हँसने लगे।

“जनरल साहब, सलाम अलैकुम…जी हाँ, पहले से बहुत बेहतर…पक्का…आप बहुत रहमदिल हैं। जनरल साहब, मैंने यह पूछने के लिए फोन किया था कि क्या कल मैं आपसे और खानुम ताहेरी से मिलने आपके घर आ सकता हूँ? एक बड़े ही अहम मसले पर आपसे बात करनी थी…जी हाँ…ग्यारह बजे ठीक है। तब तक के लिए ख़ुदा हाफ़िज़।”

उन्होंने फोन रख दिया और मेरी ओर देखने लगे। मैं खिलखिलाकर हँसने लगा। बाबा भी उस हँसी में शामिल हो गए।

बाबा ने अपने बालों को गीला करके कंघी की मदद से पीछे की तरफ़ जमाया। मैंने उन्हें एक साफ़ सफ़ेद शर्ट पहनने में मदद की। जब मैं उनकी टाई बाँधने लगा तब मेरा ध्यान इस बात पर गया कि कॉलर की बटन और बाबा की गर्दन के बीच दो इंच का गैप (खाली जगह) हो गया था। मैं उन सभी खाली जगहों के बारे में सोचने लगा जो बाबा अपने पीछे मेरी ज़िन्दगी में छोड़ जाने वाले थे। मगर फिर मैंने अपने दिमाग़ से उन बातों को झटका और ख़ुद को याद दिलाया कि अभी वह गए नहीं थे, और यह भी

कि आज सब अच्छा-अच्छा सोचने का दिन था। मगर जब उन्होंने अपने कत्थई रंग के सूट की जैकेट पहनी तो एक बार फिर से वे सारी बातें ज़ेहन में आने लगीं, क्योंकि वास्तव में ऐसा लग रहा था जैसे जैकेट को किसी हैंगर पर लटका दिया गया हो; इतना वज़न कम हो गया था बाबा का। मुझे जैकेट की बाँहों को मोड़ना पड़ा। फिर मैंने झुककर उनके जूते के फीते बाँधे।

ताहेरी परिवार फ्रेमोंट के जिस आवासीय क्षेत्र में रहता था, वहाँ बड़ी तादाद में अफ़ग़ानों के ही घर थे। वहाँ उनका जो एक मंज़िला फ्लैट था उसमें बाहर को उभरी हुई खिड़कियाँ, ढलवाँ छत, और सामने की तरफ़ एक बंद बरामदा था, जिसमें, मैंने गमलों में लगे जेरेनियम के पौधे देखे। जनरल साहब की ग्रे वैन ड्राइव-वे में खड़ी थी।

मैंने बाबा को कार से बाहर निकलने में मदद की और फिर से ड्राइविंग सीट पर सवार हो गया। उन्होंने झुककर पैसिंजर सीट की तरफ़ की खिड़की से भीतर झाँकते हुए कहा, "घर पर ही रहना, मैं घंटे भर में फोन करूँगा।"

"ठीक है, बाबा," मैंने कहा। "गुड लक।"

वह मुस्करा दिए।

मैं गाड़ी मोड़कर वापस चल दिया। पीछे देखने के लिए लगे शीशे में, मैंने देखा कि बाबा ताहेरी परिवार के ड्राइव-वे में लंगड़ाते हुए चले जा रहे थे – बाप के तौर पर अपने बेटे के लिए एक आख़िरी फ़र्ज़ निभाने।

मैं अपने घर की बैठक में बाबा के फ़ोन के इंतज़ार में चहलक़दमी कर रहा था। पन्द्रह क़दम लंबी। साढ़े दस क़दम चौड़ी। इतनी-सी देर में, मैंने न जाने कितनी बार अपनी बैठक की लम्बाई-चौड़ाई नाप डाली थी। मेरे दिमाग़ में तरह-तरह की आशंकाएँ सर उठा रही थीं। अगर जनरल साहब ने मना कर दिया तो? अगर उन्हें मैं पसंद न हुआ तो? मैं बारम्बार रसोई में जाकर ओवन घड़ी में वक़्त देख आता था।

दोपहर से थोड़ा पहले फोन की घंटी बजी। बाबा का ही फोन था।

"क्या हुआ?" मैंने दम साधे पूछा।

"जनरल साहब को रिश्ता मंज़ूर है।"

मैंने राहत की मीलों लम्बी साँस ली और जहाँ था वहीं बैठ गया। मेरे हाथ काँप रहे थे। "उन्हें मंज़ूर है?"

"हाँ, मगर सोराया जान ऊपर अपने कमरे में हैं। पहले वह तुमसे बात करना चाहती हैं।"

"ठीक है।"

बाबा ने किसी से कुछ कहा, और फिर जब उन्होंने फोन रखा तो दो बार क्लिक

की आवाज़ आई।

“आमिर?” सोराया की आवाज़। “सलाम।”

“मेरे बाबा ने हाँ कर दी।”

“जानता हूँ,” मैंने कहा। मैंने रिसीवर एक हाथ से दूसरे हाथ में शिफ्ट किया। मेरी मुस्कराहट कम होने का नाम नहीं ले रही थी। “मैं इतना ख़ुश हूँ कि समझ ही नहीं आ रहा क्या कहूँ।”

“मैं भी ख़ुश हूँ, आमिर। मैं...यकीन नहीं आ रहा कि यह सच में हो रहा है।”

मैं हँस पड़ा। “जानता हूँ।”

“सुनो,” उसने कहा। “मैं तुम्हें कुछ बताना चाहती हूँ। कुछ ऐसा जो तुम्हें जान लेना चाहिए, इससे पहले कि...”

“मुझे किसी बात की कोई परवाह नहीं है।”

“तुम्हें पता होना चाहिए। मैं नहीं चाहती हूँ कि हमारे रिश्ते की शुरुआत एक-दूसरे से कुछ छिपाकर हो। और मैं नहीं चाहती हूँ कि वह बात तुम किसी और के मुँह से सुनो।”

“अगर बताकर तुम अच्छा महसूस करोगी तो ज़रूर बताओ। मगर बात चाहे जो भी हो, मेरे लिए उससे कुछ भी नहीं बदलेगा।”

रिसीवर के दूसरी ओर देर तक खामोशी छाई रही। फिर आख़िर-कार सोराया की आवाज़ सुनाई दी। “हम जब वर्जीनिया में रहते थे, तब मैं एक अफ़ग़ान आदमी के साथ भाग गई थी। उस वक़्त मैं अठारह की थी...बगावत पर उतारू...नादान, और...वह ड्रग्स के काम में था...। तक़रीबन एक महीने तक हम लोग साथ रहे। वर्जीनिया में सभी अफ़ग़ानों की ज़बान पर हमारा ही किस्सा था।

“बाबा ने आख़िर-कार हमें ढूँढ ही लिया। एक दिन मैंने दरवाज़ा खोला तो वह सामने खड़े थे और...ज़बरदस्ती मुझे घर वापस ले जाने लगे। मैं गुस्से से पागल हो रही थी। चीख रही थी। चिल्ला रही थी। कह रही थी कि मुझे उनसे नफ़रत थी...।

“बहरहाल, मुझे घर वापस आना पड़ा और–” वह रोने लगी थी। “एक्सक्यूज़ मी।” मैंने रिसीवर नीचे रखे जाने की आवाज़ सुनी। “सॉरी,” कुछ पलों बाद वापस उसकी आवाज़ सुनाई दी। उसकी आवाज़ अभी भी भर्राई हुई थी। “घर वापस आकर मैंने देखा कि माँ को ब्रेन स्ट्रोक आया था, उनके चेहरे के दाएँ हिस्से को लकवा मार गया था और...मुझे इतना अपराध-बोध महसूस हुआ कि पूछो मत। उनके साथ ऐसा नहीं होना चाहिए था, इसमें उनका क्या कसूर था।

“उसके कुछ ही दिन बाद हम कैलीफोर्निया आ गए।” इतना कहकर वह खामोश

हो गई।

“अब तुम्हारे और तुम्हारे बाबा के बीच संबंध कैसे हैं?” मैंने पूछा।

“हमारे बीच हमेशा से मतभेद रहे हैं, आज भी हैं, मगर मैं उनकी शुक्रगुज़ार हूँ कि उस दिन वह मुझे लेने आए। मुझे सच में लगता है कि उन्होंने मेरी ज़िन्दगी बर्बाद होने से बचा ली।” इतना कहकर वह थोड़ी देर के लिए खामोश हो गई। “तो, मैंने जो कुछ तुम्हें अभी बताया, उसे सुनकर तुम्हें बुरा लगा?”

“थोड़ा-सा,” मैंने कहा। मेरा इस मामले में उससे सच बोलना ज़रूरी था। मैं उससे यह झूठ नहीं बोल सकता था कि मेरा पुरुष अभिमान, मेरा इफ़्तिख़ार, इस बात से बिल्कुल भी आहत नहीं हुआ था कि वह किसी और मर्द के साथ रह चुकी थी जबकि मैंने उससे पहले कभी किसी औरत को उस तरह से छुआ भी नहीं था। मुझे थोड़ा बुरा तो ज़रूर लगा था, मगर बाबा से खस्तेगारी के लिए जाने को कहने से पहले मैंने हफ़्तों तक इस पर सोच-विचार किया था। और हर बार आख़िर में जो सवाल मेरे मन में आता था, वो ये था: मैं किसी को आज उसके अतीत के लिए सज़ा कैसे दे सकता हूँ?

“क्या यह ‘थोड़ा-सा’ तुम्हारे लिए काफी होगा अपना फैसला बदलने पर मजबूर होने को?”

“नहीं, सोराया। काफी तो छोड़ो, मेरे लिए तो यह कुछ भी नहीं है,” मैंने कहा। “तुमने जो कुछ भी कहा, उससे कुछ भी नहीं बदलेगा। मैं पहले भी तुमसे निकाह करना चाहता था और अब भी चाहता हूँ।”

वह एक बार फिर रोने लगी थी।

मुझे उससे जलन महसूस हो रही थी। उसका राज़ उजागर हो गया था। उसने कह दिया था। उसने उसका सामना कर लिया था। मैंने भी अपना मुँह खोला और उसे यह बताने को हुआ कि कैसे मैंने हसन को धोखा दिया था, झूठ बोला था, उसे घर से ही नहीं बल्कि अफ़ग़ानिस्तान से भी बाहर निकलवा दिया था, और बाबा और अली के बीच का चालीस साल का रिश्ता ख़त्म करवा दिया था। मगर मैं नहीं कह पाया। मुझे इस बात का अहसास था कि कई बातों में सोराया ताहेरी मुझसे बेहतर इंसान थी। हिम्मत उन्हीं में से एक बात थी।

तेरह

अगली शाम 'लफ्ज़' की रस्म (सगाई) के लिए जब हम ताहेरी परिवार के घर पहुँचे तो मुझे अपनी गाड़ी सड़क के दूसरी ओर खड़ी करनी पड़ी। उनका ड्राइव-वे पहले ही कारों से खचाखच भरा हुआ था। मैंने एक नेवी ब्लू सूट पहन रखा था, जो मैंने पिछले दिन बाबा को खस्तेगारी से लौटाकर लाने के बाद बाज़ार जाकर ख़रीदा था। कार से उतरने से पहले मैं रियर-व्यू मिरर में अपनी टाई चेक करने लगा।

"ख़ोशतीप लग रहे हो," बाबा बोल उठे। हैण्डसम।

"शुक्रिया, बाबा। आप ठीक हैं न? आपको दिक्कत तो नहीं होगी न?"

"दिक्कत? कैसी दिक्कत? आज मेरी ज़िन्दगी का सबसे ख़ुशी का दिन है, आमिर," उन्होंने मुस्कराते हुए कहा। मगर थकान उनके चेहरे पर साफ़-साफ़ दिखाई दे रही थी।

जब हम बंद दरवाज़े के पास पहुँचे तो मुझे भीतर से लोगों की गुफ्तगू, हँसी, और हौले-हौले बजते अफ़ग़ान संगीत की स्वर-लहरियाँ सुनाई दीं–उस्ताद सराहंग की कोई शास्त्रीय ग़ज़ल बज रही थी शायद। मैंने दरवाज़े की घंटी बजायी। बरामदे की खिड़की का पर्दा ज़रा सा सरका और किसी ने झाँक कर देखा। "वे लोग आ गए!" मैंने किसी महिला को कहते सुना। गुफ्तगू थम गई। किसी ने संगीत भी बंद कर दिया।

दरवाज़ा खाला जमीला ने खोला। "सलाम अलैकुम," उन्होंने मुस्कराते हुए कहा। उनका चेहरा ख़ुशी से दमक रहा था। मैंने देखा कि उन्होंने अपने बालों को पर्म करवाया हुआ था और एक टखनों तक लंबी काले रंग की ख़ूबसूरत पोशाक पहनी हुई थी। जैसे ही मैंने बरामदे में क़दम रखा, उनकी आँखें नम हो गईं। "आप अभी पूरी तरह घर के भीतर आए भी नहीं हैं और मैं पहले से ही रोने लगी हूँ, आमिर जान," उन्होंने कहा। मैंने उनका हाथ अपने हाथों में लेकर चूम लिया, जैसा कि पिछली रात बाबा ने मुझे समझाया था।

वह हमें एक ख़ासे रोशन दालान से होते हुए बैठक में ले गईं। वहाँ लकड़ी के पैनल्स वाली दीवारों पर मैंने उन लोगों की तस्वीरें देखीं जो मेरा नया परिवार बनने वाले थे: बफ़ैंट-हेयर (फूले हुए बालों वाली एक हेयरस्टाइल) वालीं जवान खाला जमीला और जनरल–नियाग्रा फॉल्स के सामने खड़े हुए; खाला जमीला एक सीमलेस ड्रेस में और जनरल एक पतले लेपल्स वाली जैकेट और पतली टाई में (इस तस्वीर में उनके बाल घने-घने और काले थे); और बच्ची सोराया, जो लकड़ी के रोलर कोस्टर पर चढ़ने वाले पोज़ में है और हाथ हिला रही है और मुस्करा रही है और जिसके दाँतों में लगे चाँदी के तार सूरज की रोशनी में चमक रहे हैं। जनरल साहब की एक तस्वीर, जिसमें वह फ़ौजी वर्दी में हैं और जॉर्डन के राजा हुसैन से हाथ मिला रहे हैं। और एक तस्वीर ज़हीर शाह

को।

बैठक में तक़रीबन दो दर्जन मेहमान मौजूद थे, जो दीवारों के साथ लगी कुर्सियों पर बैठे थे। जैसे ही बाबा बैठक में दाख़िल हुए, सभी उठकर खड़े हो गए। हम एक-एक करके सभी के पास गए, आगे-आगे बाबा और पीछे-पीछे मैं, और उनसे हाथ मिलाकर दुआ-सलाम की। जनरल, जो अभी भी अपना वही ग्रे सूट पहने हुए थे, और बाबा एक-दूसरे के गले लगे और धीरे से एक-दूसरे की पीठ थपथपाई। बहुत ही अदब से दोनों ने धीमी आवाज़ में एक-दूसरे को सलाम कहा।

जनरल साहब ने मुझे अपनी बाँहों में भर लिया और खुलकर मुस्कराए, मानो कह रहे हों, "हाँ, ये है सही तरीक़ा –अफ़ग़ान तरीक़ा– इस काम को करने का, मेरे बच्चे।" हमने एक-दूसरे के गाल को तीन बार चूमा।

फिर हम मेहमानों से खचाखच भरी बैठक में बैठ गए। मैं और बाबा अगल-बग़ल और जनरल साहब और उनकी खानुम हमारे सामने। बाबा की साँसें थोड़ी उखड़ गई थीं और वे बार-बार रूमाल से अपने माथे और सर पर आ रहा पसीना पोंछ रहे थे। उन्होंने मुझे अपनी ओर देखते पाया तो पूरा ज़ोर लगाकर मुस्कराते हुए बोले, "मैं बिल्कुल ठीक हूँ।"

अफ़ग़ान रिवाज़ के मद्देनज़र उस वक़्त सोराया वहाँ मौजूद नहीं थी।

कुछ देर यूँही वहाँ हल्की-फुल्की गपशप चलती रही, फिर जनरल साहब ने खँखारकर गला साफ़ किया। उनके ऐसा करते ही सब लोग एकदम खामोश हो गए और अदब से अपने हाथों की ओर देखने लगे। जनरल साहब ने बाबा की ओर देखकर उनसे बोलने की गुज़ारिश की।

बाबा ने भी खँखारकर गला साफ़ किया। फिर जब उन्होंने बोलना शुरू किया तो वह एक बार में पूरे-पूरे वाक्य नहीं बोल पा रहे थे, उखड़ती हुईं साँसों को संयत करने के लिए उन्हें बीच-बीच में रुकना पड़ रहा था। "जनरल साहब, खानुम जमीला जान... मैं और मेरा बेटा...पूरी अदब-ओ-तहज़ीब के साथ आज आपके घर आए हैं। आप... मुअज़्ज़िज़ (प्रतिष्ठित) लोग हैं...जाने-माने और इज़्ज़तदार घरानों से हैं और...आप लोगों के खानदानों का रुतबा जगज़ाहिर है। मैं अपने मन में सिर्फ़ और सिर्फ़ भरपूर इहितराम...और आपके, आपके परिवार के...और आपके पूर्वजों के लिए...भरपूर इज़्ज़त लेकर यहाँ आया हूँ।" इसके बाद उनको कुछ देर के लिए रुकना पड़ा। उन्होंने अपनी साँसों को सँभाला। अपनी भौंहों के ऊपर छलक आए पसीने को पोंछा, और अपनी अधूरी बात पूरी करनी शुरू की। "आमिर जान मेरे इकलौते बेटे हैं...इकलौती औलाद, और यह बहुत अच्छे बेटे साबित हुए हैं। मुझे उम्मीद है...कि ये आपकी रहमदिली के भी लायक साबित होंगे। मेरी आपसे गुज़ारिश है कि आप आमिर जान को अपने परिवार में शामिल करके...इन्हें और मुझे इज़्ज़त बख़्शें।"

जनरल साहब ने अदब से सिर हिलाकर सहमति दी।

फिर उन्होंने कहना शुरू किया, “हम आप जैसे इन्सान के बेटे का अपने परिवार में स्वागत करके गौरवान्वित हैं। आपकी आन-बान-शान से हम सब बख़ूबी वाक़िफ़ हैं। जब हम काबुल में थे तब भी मैं आपका मुरीद था और अब भी हूँ। यह हमारे लिए बड़ी इज़्ज़त और फख्र की बात है कि हमारा आपके परिवार से नाता जुड़ रहा है।

“आमिर जान! जहाँ तक आपका सवाल है, मैं आपका अपने घर में एक बेटे के रूप में और अपनी उस बेटी के शौहर के रूप में स्वागत करता हूँ जो मेरी आँखों का नूर है। अब से आपका दुख हमारा दुःख है और आपकी ख़ुशी हमारी ख़ुशी। मुझे उम्मीद है कि आप अपनी खाला जमीला और मुझे भी अपने वालिदैन (माँ-बाप) की तरह देखेंगे, साथ ही मैं आपकी और हमारी प्यारी सोराया जान की ख़ुशी के लिए दुआ करता हूँ। हमारा आशीर्वाद आप दोनों के साथ है।”

सभी ने तालियाँ बजाईं और उस संकेत के साथ ही सभी के सिर दालान की ओर मुड़ गए। वह पल आ गया था जिसका मुझे कब से इंतज़ार था।

दालान के परले सिरे पर सोराया नुमायाँ हुई। उसने वाइन के रंग की बेहद ख़ूबसूरत पारंपरिक अफ़ग़ान पोशाक पहनी हुई थी, जिसमें लंबी आस्तीनें और सोने के तारों की सजावट थी। बाबा ने कसकर मेरा हाथ पकड़ लिया था। खाला जमीला की आँखें फिर से बरसने लगी थीं। धीरे-धीरे चलते हुए सोराया हमारे पास आई। उसके पीछे-पीछे रिश्तेदार औरतों और लड़कियों का हुजूम चल रहा था।

उसने बाबा का हाथ चूमा। फिर मेरे पहलू में बैठ गई। आख़िर-कार। उसकी नज़रें नीचे झुकी हुई थीं।

इस बार और भी ज़ोरदार तालियाँ बजीं।

जो अफ़ग़ानी परंपरा थी उसके मुताबिक़ अब सोराया के परिवार को सगाई की पार्टी, जिसे कि ‘शिरीनी-खोरी’ या ‘मिठाई खाने-खिलाने’ की रस्म कहा जाता है, आयोजित करना थी। इसके बाद कुछ महीनों का अंतराल रखा जाता, जिसे ‘इंगेजमेंट पीरियड’ कहा जाता था, और फिर निकाह होता, जिसका सारा खर्च बाबा को करना होता। मगर हम सब इस बात पर राज़ी थे कि सोराया और मैं शिरीनी-खोरी की रस्म नहीं करेंगे। हर किसी को इसकी वजह पता थी, इसलिए किसी को यह नहीं कहना पड़ा कि बाबा के पास चंद महीनों का वक़्त नहीं था।

निकाह की तैयारियों के दौरान सोराया और मैं कभी अकेले बाहर नहीं गए। चूँकि हमारा अभी निकाह नहीं हुआ था, शिरीनी-खोरी भी नहीं हुई थी, इसलिए ऐसा करना ग़ैर-मुनासिब माना जाता था। इसीलिए मुझे कभी-कभी बाबा को लेकर उनके घर डिनर पर जाकर ही दिल को समझा लेना पड़ता था। खाने की मेज़ पर भी मैं और सोराया आमने-सामने बैठते थे। इस दौरान पूरा समय मैं बस यही तसव्वुर करता रहता था कि जब उसका सर मेरी छाती पर होगा तो कैसा महसूस होगा। उसके बालों को सूंघना कैसा होगा। उसे चूमना कैसा होगा। उससे प्यार करना कैसा होगा।

बाबा ने औरोरोसी, यानी कि विवाह समारोह पर पूरे 35,000 डॉलर की रकम खर्च की। अपनी ज़िन्दगी की तक़रीबन पूरी ही बचत उन्होंने खर्च कर दी थी। उन्होंने फ्रेमोंट में एक बड़ा अफ़ग़ान बैंक्वेट हॉल किराए पर लिया था। उसका मालिक उन्हें काबुल से जानता था और इसीलिए उसने उन्हें काफ़ी डिस्काउंट दिया। बाबा ने हमारी शादी की अंगूठियों (जो दूल्हा-दुल्हन दोनों की एक जैसी होनी चाहिए) के लिए भी भुगतान किया और हीरे की उस अंगूठी के लिए भी जो मुझे सोराया को मुँह दिखाई के तौर पर देनी थी। उन्होंने ही निकाह वाले दिन पहनने के लिए मुझे एक टक्सीडो और एक हरे रंग का पारंपरिक अफ़ग़ानी सूट भी दिलाया। और भी बहुत सारी तैयारियाँ की गईं इस शादी के लिए। खासकर खाला जमीला और उनकी सहेलियाँ तो ज़रूरत से ज़्यादा ही उत्साहित थीं इस दिन के लिए। मगर अभी मुझे उनमें से बहुत थोड़ी सी बातें ही याद हैं।

मुझे हमारा निकाह याद है। हम एक मेज़ के इर्द-गिर्द बैठे थे। सोराया और मैंने हरे रंग की पोशाकें पहनी हुई थीं। हरा रंग, जो कि इस्लाम का रंग है, मगर साथ ही साथ यह बसंत और नई शुरुआत का भी रंग है। मैंने अफ़ग़ानी सूट पहना था, जबकि सोराया ने एक घूँघट वाली लंबी आस्तीनों की ड्रेस पहनी थी। मेज़ के इर्द-गिर्द हमारे अलावा बाबा, जनरल ताहेरी (उस दिन तो वह भी टक्सीडो पहने हुए थे), और सोराया के मामा लोग भी बैठे थे। सोराया और मैंने अपनी नज़रें नीची कर रखी थीं, मगर कनखियों से एक-दूसरे को देखने का मौका हम नहीं छोड़ रहे थे। मुल्ला ने गवाहों से सवाल पूछे और कुरान की आयतें पढ़ीं। हमने अपनी कसमें लीं। सर्टिफिकेट्स पर दस्तख़त किए। फिर सोराया के वर्जीनिया वाले मामा, शरीफ़ जान, खड़े हुए और कुछ कहने के लिए उन्होंने खँखारकर अपना गला साफ़ किया। सोराया ने मुझे बताया था कि वह बीस साल से भी ज़्यादा समय से अमेरिका में रह रहे थे। वह आईएनएस के लिए काम करते थे और उन्होंने एक अमरीकी लड़की से शादी की थी। वह मिज़ाज से शायर थे। छोटे से कद के आदमी थे, जिनका चेहरा पंछियों के जैसा और बाल घुंघराले थे। उन्होंने सोराया की नज्र करने के लिए एक बड़ी लम्बी नज़्म लिखी थी, होटल के स्टेशनरी काग़ज़ पर। वह उन्होंने सुनाई। नज़्म पूरी होते ही सभी ने एक स्वर में कहा, “वाह वाह शरीफ़ जान!”

फिर मुझे याद है कि कैसे सोराया और मैं हाथों में हाथ लिए स्टेज की ओर बढ़ रहे थे। अब मैं टक्सीडो में था, जबकि सोराया एक सफ़ेद रंग की ओढ़नी ओढ़े हुए थी। मेरी दूसरी तरफ़ बाबा थे, जो थोड़े लड़खड़ाते हुए चल रहे थे, जबकि सोराया के दूसरी ओर जनरल साहब और उनकी बेगम थीं। सोराया के मामाओं, मामियों, ममेरे भाई-भाभियों और उनके बच्चों का कारवाँ हमारे पीछे थे। हॉल में चारों ओर मेहमानों की तालियाँ गूँज रही थीं और कैमरों की आँखें चौंधिया देने वाली फ़्लैश लाइट्स चमका रही थीं। सोराया के मामा शरीफ़ जान के साहबज़ादे हमारे सरों के ऊपर कुरआन रखकर चल रहे थे। स्पीकर्स पर अफ़ग़ान शादियों में बजने वाला पारंपरिक गीत, अहेस्ता बोरो, बज रहा था–वही गीत जो रूसी फ़ौजी ने महीपर जाँच-चौकी पर उस रात गाया था जब बाबा और मैं काबुल से निकले थे।

सुबह को चाबी बनाओ और उसे कुँए में फेंक दो,
आहिस्ता चलो, मेरे प्यारे चंदा, आहिस्ता चलो। सुबह के सूरज को
पूरब से उगना भुला दो, आहिस्ता चलो, मेरे प्यारे चंदा,
आहिस्ता चलो।

मुझे याद है कि स्टेज पर हमारे बैठने के लिए एक सोफा लगाया गया था, जिस पर बैठकर मुझे ऐसा लग रहा था जैसे मैं शाही तख़्त पर बैठा कोई सुल्तान हूँ और मेरी बग़ल में बैठी हैं मल्लिका-ए-सल्तनत सोराया जान। सामने बैठी तक़रीबन तीन-सौ मेहमानों की भीड़ मुझे हमारी रियाया जैसी मालूम हो रही थी, जो हम पर दिल-ओ-जान से फ़िदा थी। इसके बाद हमने 'आयना मशाफ़' की रस्म की, जिसमें उन्होंने हमें एक आईना दिया और हमारे सिरों पर एक पर्दा डाल दिया, ताकि हम सबकी नज़रों से बचकर आईने में एक-दूसरे का अक्स देख सकें। उस आईने में सोराया के मुस्कराते चेहरे को देखते हुए मैंने पहली बार फुसफुसाकर उससे कहा कि मैं उससे प्यार करता था। उसके गालों पर मेहँदी जैसी लाली खिल गई।

मुझे चोपन कबाब, शोलेह-गोष्टी और वाइल्ड-ऑरेंज राइस की रंग-बिरंगी प्लेटें याद हैं। मुझे याद है कि कैसे सोफे पर हमारे बीच बैठकर बाबा मुस्करा रहे थे। मुझे याद हैं वे पसीने से लथपथ नौजवान जो एक गोल घेरे के भीतर अफ़ग़ानशादियों में किया जाने वाला पारंपरिक डांस 'अत्तान' कर रहे थे। उनके शरीर तबले की तेज़ गति के साथ संगत करते हुए तेज़ी से घूम रहे थे, उछल रहे थे, थिरक रहे थे और वे तब तक थिरके जब तक कि उनमें से कुछ को छोड़कर बाक़ी सभी थक कर घेरे से बाहर नहीं गिर गए। मुझे याद है कि मुझे रहीम खान की कमी बहुत खली थी।

और मुझे याद है कि उस दिन मेरे मन में रह-रहकर यह ख़याल भी आ रहा था कि क्या हसन ने भी शादी कर ली होगी? अगर हाँ, तो उसने परदे की आड़ में आईने में किसका चेहरा देखा होगा? किसके मेहँदी रचे हाथों को उसने हाथों में थाम रखा होगा?

रात के 2 बजे हमारा कारवाँ शादीघर से उठके बाबा के घर पहुँचा। एक बार फिर चाय और गीत-संगीत का दौर चल पड़ा और तब तक चलता रहा जब तक कि पड़ौसियों ने पुलिस नहीं बुला ली। जब सारे मेहमान चले गए और रात ख़त्म होने में बमुश्किल घंटा भर रह गया, तब जाकर सोराया और मुझे सोने का मौका मिला। साथ-साथ। पहली बार। सारी ज़िन्दगी मैं मर्दों से घिरा रहा था, उस रात पहली बार मैंने जाना कि औरत की मुलायमियत (स्त्री की कोमलता) क्या होती है।

यह सोराया ही थी जिसने ख़ुद होकर कहा कि वह मेरे साथ बाबा के ही घर में रहेगी।

"मुझे लगा था कि तुम चाहोगी कि हमारा अपना अलग घर हो," मैंने उससे कहा।

"काका जान को इतनी बीमारी की हालत में छोड़कर?" उसने जवाब दिया। उसने आँखों ही आँखों में मुझे जता दिया कि शादीशुदा ज़िन्दगी शुरू करने का वह सही तरीक़ा नहीं हो सकता था। मुझे उस पर इतना प्यार आया कि मैंने उसे चूम लिया।

"शुक्रिया।"

सोराया जी-जान से बाबा की देखभाल में लग गई थी। वह सुबह उनके लिए नाश्ता बनाती, और उन्हें बिस्तर से निकलने और बिस्तर में लेटने में मदद करती। वही उन्हें समय पर दर्द की दवा देती, उनके कपड़े धोती, और दोपहर के वक़्त अखबार का अंतरराष्ट्रीय ख़बरों वाला पन्ना पढ़कर सुनाती। वह अक्सर उनका मनपसंद खाना – आलू शोरबा– बनाती, हालाँकि बाबा बड़ी मुश्किल से कुछेक चम्मच ही खा पाते थे अब। वही हर दिन थोड़ी देर के लिए उन्हें बाहर घुमाने ले जाती। और जब वह बिस्तर से उठने में नाकाम रहने लगे तब वही हर घंटे में उन्हें करवट बदलवाती ताकि उन्हें बैडसोर न होने पाए।

एक दिन, मैं फार्मेसी से बाबा की मॉर्फिन की गोलियाँ लेकर घर आया। जैसे ही मैंने दरवाज़ा बंद किया, मैंने देखा कि सोराया जल्दी से बाबा के कम्बल के नीचे कुछ सरका रही थी। "हे, मैंने देख लिया! आप दोनों क्या कर रहे थे?" मैंने कहा।

"कुछ भी तो नहीं," सोराया ने मुस्कराते हुए कहा।

"झूठी!" मैंने बाबा का कम्बल उठाया। "यह क्या है?" मैंने कहा, मगर जैसे ही मैंने उस चीज़ को हाथ में लिया, मुझे कुछ पूछने की ज़रूरत नहीं रही। वह वही चमड़े की जिल्द वाली डायरी थी जो रहीम खान ने मुझे मेरी तेरहवीं सालगिरह पर तोहफे के तौर पर दी थी। उसे हाथ में लेते ही मुझे सालगिरह की पार्टी वाली वह रात याद हो आई, आसमान में होती वह रंग-बिरंगी आतिशबाज़ी याद हो आई।

"मुझे नहीं पता था कि तुम इतना अच्छा लिखते हो," सोराया ने कहा।

बाबा ने अपना सिर तकिए पर थोड़ा ऊपर खींचा। "मैंने उसे इसे पढ़ने के लिए उकसाया था। मुझे उम्मीद है कि तुम्हें कोई एतराज़ नहीं होगा।"

मैंने डायरी वापस सोराया को थमा दी और कमरे से बाहर चला गया। बाबा को मेरा रोना अच्छा नहीं लगता था।

निकाह के एक महीने बाद सोराया के वालदैन (माँ-बाप), उसके मामा शरीफ़, मामी सूज़ी और कई मौसियाँ हमारे घर रात के खाने के लिए आईं। सोराया ने सब्ज़ी-चावल पकाया, पालक और मेमने के गोश्त के साथ चावल। खाने के बाद हम सभी ने ग्रीन-टी पी और फिर चार-चार के ग्रुप में बैठकर ताश खेलने लगे। सोराया और मैं मामा शरीफ़ और मामी सूज़ी के साथ कॉफी टेबल पर बैठकर खेल रहे थे। बग़ल में ही वह सोफा था जिस पर कम्बल ओढ़कर बाबा लेटे हुए थे। लेटे-लेटे वह मुझे मामा शरीफ़ के साथ मज़ाक-मस्ती करते, सोराया की उंगलियों में अपनी उंगलियाँ फँसाते, और उसकी चेहरे पर सरक आई लट को वापस कान के पीछे खोंसते देख रहे थे। मैं उनके मन में खेल रही मुस्कान देख सकता था, जो काबुल की उन रातों के आसमान जितनी चौड़ी थी जिन रातों में चिनार ठण्ड से काँप रहे होते थे और बगीचों में झींगुर एकसुर में गा रहे होते थे।

आधी रात से थोड़ा पहले बाबा ने हमें उन्हें बिस्तर में पहुँचने में मदद करने को कहा। सोराया और मैंने उनकी एक-एक बाँह अपने-अपने कन्धों पर रखी और अपनी-अपनी दूसरी बाँह उनकी पीठ के गिर्द लपेट ली। बिस्तर में लेटने के बाद उन्होंने सोराया से कहकर बग़ल में रखा लैंप बंद करवा दिया। फिर उन्होंने हमें झुकने को कहा और बारी-बारी से दोनों के गाल चूम लिए।

"मैं अभी आपकी मॉर्फ़ीन और पानी का गिलास लेकर आती हूँ, काका जान," सोराया ने उनसे कहा।

"आज रहने दो," उन्होंने उसे रोकते हुए कहा। "आज दर्द नहीं है।"

"ठीक है," कहकर उसने उन्हें कम्बल ओढ़ा दिया। फिर हम उनके कमरे का दरवाज़ा बंद करके सोने चले गए। उसके बाद बाबा फिर कभी नहीं जागे।

हेवार्ड की मस्जिद का पार्किंग स्थल खचाखच भरा हुआ था। मस्जिद के पीछे के घास के मैदान में कारें और एसयूवीज़ अस्थायी कतारों में पास-पास खड़ी थीं। हालत यह हो गई थी कि लोगों को पार्किंग तलाशने के लिए मस्जिद से चार-पाँच ब्लॉक दूर तक जाना पड़ रहा था।

मस्जिद में जो मर्दों का सेक्शन था वह एक बड़ा चौकोर कमरा था, जिसका फ़र्श अफ़ग़ान कालीनों से ढँका हुआ था और कालीनों के ऊपर लाइन से पतले गद्दे बिछे हुए थे। मातमपुर्सी के लिए आए सभी मर्द कमरे के बाहर जूते उतारकर भीतर आए और पालथी मारकर गद्दों पर बैठ गए। एक मुल्ला ने माइक्रोफ़ोन में कुरान की आयतें पढ़ीं। मैं दरवाज़े के पास बैठा था, क्योंकि यही रिवाज़ था कि मरने वाले के परिवार के लोगों को दरवाज़े पर रहना होता था। जनरल ताहेरी भी मेरे साथ बैठे थे।

खुले दरवाज़े से मैं लाइन से कारों को अंदर आता देख सकता था। उनकी विंडशील्ड्स से टकराकर सूरज की किरणें झिलमिलामट पैदा कर रही थीं। कारें आतीं, रुकतीं, उनमें से गहरे रंग के सूट पहने मर्द और काले कपड़ों और पारंपरिक सफ़ेद हिजाबों में ढँकी औरतें उतरतीं, फिर कारें पार्किंग लॉट की ओर बढ़ जातीं।

जब कमरे में कुरान की आयतें गूँज रही थीं, तब मेरे ज़ेहन में बलूचिस्तान में बाबा के काले भालू से कुश्ती लड़ने की कहानी घूम रही थी। बाबा ज़िन्दगी भर भालुओं से दो-दो हाथ ही तो करते रहे थे। अपनी जवान बीवी को खो देना। बेटे की अकेले परवरिश करना। अपने जान से भी प्यारे मादर-ए-वतन को छोड़ना। ग़रीबी। रुसवाई। और आख़िर में एक ऐसे भालू से सामना, जिसे हराना उनके लिए मुमकिन न हो सका। मगर वह हारे भी अपनी शर्तों पर।

दुआओं और प्रार्थनाओं के हर दौर के बाद मातमपुरसी के लिए बैठे लोगों में से कुछ लोग उठते और बाहर जाते हुए मुझसे हाथ मिलाते, दिलासा देते, और बाबा के बारे में अपनी भावनाएँ ज़ाहिर करते। उनमें से कितने ही लोग तो ऐसे थे जिन्हें मैं जानता तक नहीं था। मैं खामोशी से उनसे हाथ मिलाता और थोड़ा सा मुस्कराकर

उनकी संवेदनाओं के लिए उनका शुक्रिया अदा करता और बाबा के लिए ज़ाहिर किए जा रहे उनके उद्गारों को सुनता।

"उन्होंने ताइमानी में मेरी घर बनाने में मदद की थी...अल्लाह उनको जन्नत बख्शे...।" "जिस वक़्त कोई मेरी मदद करने को राज़ी नहीं था, उस वक़्त उन्होंने मुझे उधार दिया था...।"

"उन्होंने मेरे लिए नौकरी का इंतज़ाम किया...जबकि वह मुझे ठीक से जानते भी नहीं थे...।"

"मेरे लिए वह भाई की तरह थे।"

लोगों की ये बातें सुनकर मुझे एहसास हुआ कि मेरा तक़रीबन सारा ही वजूद बाबा और लोगों की ज़िन्दगी पर छोड़े गए उनके असर पर टिका था। सारी ज़िन्दगी मेरी पहचान 'बाबा के बेटे' के रूप में ही तो रही थी। मगर अब बाबा नहीं थे। मुझे रास्ता दिखाने के लिए अब बाबा नहीं थे। अब मुझे ख़ुद ही अपना रास्ता तलाशना भी था और उस पर चलना भी था।

यह सोचकर ही मुझे डर लगने लगा था।

मस्जिद में ये सब होने से पहले हम क़ब्रिस्तान के छोटे से मुस्लिम सेक्शन में बाबा को दफनाने गए थे। मेरे देखते-देखते बाबा के बेजान शरीर को क़ब्र में उतार दिया गया। तभी वहाँ मुल्ला और एक अन्य व्यक्ति के बीच इस बात पर बहस हो गई कि क़ब्रिस्तान में कुरान की कौन सी आयत पढ़ी जानी चाहिए थी। अगर जनरल साहब ने बीच-बचाव नहीं किया होता तो बात शायद हाथापाई तक पहुँच जाती। आख़िर में मुल्ला की ही चली और उसने कुरआन में से अपनी मर्ज़ी की एक आयत चुनकर उसे पढ़कर सुनाया, मगर पढ़ते-पढ़ते भी वह उस दूसरे आदमी को खा जाने वाली नज़रों से देखता जा रहा था। फिर पहला फावड़ा भर मिट्टी क़ब्र में डाली गई। इसके बाद मैं वहाँ नहीं रुका था। क़ब्रिस्तान की दूसरी ओर चला गया था और वहाँ पर लाल फूलों से लदे मेपल के एक पेड़ की छाया में बैठ गया था।

बहरहाल, इधर मस्जिद में मातमपुर्सी के लिए आए सभी लोग जा चुके थे; मस्जिद खाली हो चुकी थी। मुल्ला जी माइक्रोफोन का प्लग सॉकेट से निकालकर रखने और कुरआन को एक हरे कपड़े में लपेटने में व्यस्त थे। जनरल साहब और मैं भी बाहर निकल आए। धीरे-धीरे चलते हुए हम कुछ दूर गए। रास्ते में जगह-जगह लोग छोटे-छोटे समूहों में खड़े होकर बातें कर रहे थे। उनके पास से गुज़रते हुए उनकी बातों के कुछ अंश मेरे कानों में पड़े। कोई अगले हफ्ते यूनियन सिटी में होने वाले सॉकर मैच की बात कर रहा था, तो कोई सांता क्लारा में खुले एक नए अफ़ग़ान रेस्तरां की। ज़िन्दगी बाबा को वहीं छोड़कर अपने रास्ते आगे बढ़ चुकी थी।

"कैसे हो मेरे बच्चे?" जनरल ताहेरी ने पूछा।

मैंने अपने जबड़े भींच लिए। सुबह से बहने को मचल रहे आँसुओं को और थोड़ी देर रोके रखा। “मैं जाकर सोराया को देखता हूँ,” मैंने जनरल साहब से कहा।

“ठीक है।”

मैं घूमकर मस्जिद के औरतों वाले हिस्से की ओर गया। सोराया अपनी वालिदा और कुछ और औरतों के साथ, जिन्हें शादी में देखे होने की वजह से मैं थोड़ा-बहुत पहचानता था, सीढ़ियों पर ही खड़ी थी। मैं उसकी ओर बढ़ा। मुझे आता देखकर सोराया ने अपनी वालिदा से कुछ कहा और मेरे पास आ गई।

“थोड़ी देर टहलें?” मैंने कहा।

“ज़रूर।” उसने मेरा हाथ अपने हाथों में ले लिया।

थोड़ी देर तक हम चुपचाप टहलते रहे। फिर एक बैंच पर बैठ गए। हमसे कुछ ही कतार दूर एक बूढ़े मियाँ-बीवी एक क़ब्र के पास घुटनों के बल बैठे थे और क़ब्र के पत्थर के पास डेज़ी के फूलों का एक गुलदस्ता रख रहे थे। “सोराया?”

“हाँ?”

“मुझे उनकी बहुत याद आएगी?”

उसने अपना हाथ मेरी गोद में रख दिया। बाबा की दिलाई हुई शादी की अंगूठी उसकी उंगली में चमक रही थी। उसके पीछे मैं बाबा की मातमपुर्सी के लिए आए हुए लोगों को मिशन बुलेवार्ड पर जाते हुए देख सकता था। जल्द ही हम भी चले जाएँगे और पहली बार बाबा बिल्कुल अकेले होंगे।

सोराया ने मुझे खींचकर अपने सीने से लगा लिया। सुबह से रुके आँसुओं का बाँध आख़िर टूट गया।

चूँकि मुझे और सोराया को सगाई और निकाह के बीच ज़्यादा वक़्त नहीं मिला था, इसलिए उसके परिवार के बारे में, मैंने जो कुछ भी जाना, वो निकाह के बाद ही जाना। मिसाल के तौर पर, मुझे पता चला कि जनरल साहब को महीने में एक बार अंधा करने वाला माइग्रेन का दर्द (ब्लाइंडिंग माइग्रेन) उठता था, जो तक़रीबन एक हफ्ते तक रहता था। जब भी दर्द उठता था तो जनरल साहब ख़ुद को अपने कमरे में बंद कर लेते थे, कपड़े उतारकर और बत्ती बुझाकर सो रहते थे और तभी बाहर आते थे जब दर्द जा चुका होता था। इस बीच किसी को भी न तो उनके कमरे में जाने की और न ही दरवाज़े पर दस्तक देने की इजाज़त होती थी। आख़िर को वह ख़ुद ही बाहर आते थे। नींद और बिस्तर की चादरों की गंध के साथ। सूजी हुईं लाल आँखों के साथ। फिर से अपने उसी ग्रे सूट में। सोराया से ही मुझे यह भी पता चला कि जनरल ताहेरी और उनकी बेगम अलग-अलग कमरों में सोते थे – जब से सोराया को याद पड़ता था, तब से। मैंने जाना कि कैसे कभी-कभी वह बड़ी ओछी हरकतें करते थे। मिसाल के तौर पर, उनकी बेगम उन्हें अपना बनाया कोरमा परोसतीं और वह एक कौर खाते, एक गहरी साँस छोड़ते,

और प्लेट को परे धकेल देते। "मैं कुछ और बना देती हूँ," खानुम ताहेरी कहतीं, मगर वह उनकी बात को अनदेखा कर देते, कुपित हो जाते, और प्याज़ के साथ ब्रेड खाने लगते। उनका ऐसा बर्ताव देखकर सोराया गुस्से से भर उठती जबकि खानुम ताहेरी रोने लगतीं। सोराया ने ही मुझे बताया था कि उसके बाबा अवसाद-रोधी दवाएँ लेते थे। मैंने यह भी जाना कि अमेरिका में आने के बाद से उन्होंने कभी कोई काम नहीं किया था और अपने और अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए सरकारी वेलफेयर पर निर्भर रहते थे। उन्हें लगता था कि कोई छोटा-मोटा काम करना उनके कद के आदमी के लिए शर्म वाली बात थी; सरकार द्वारा जारी खैराती चैक्स को कैश कराते रहना उन्हें ज़्यादा इज़्ज़त की बात लगती थी। फ्ली बाज़ार को भी वह शौकिया तौर पर ही लेते थे, अपने अफ़ग़ान दोस्तों से मिलने-जुलने के बहाने के तौर पर। जनरल को लगता था कि आज नहीं तो कल अफ़ग़ानिस्तान आज़ाद हो जाएगा, वहाँ फिर से राजशाही कायम हो जाएगी, और उन्हें फिर से उनका पुराना काम और रुतबा वापस दे दिया जाएगा। इसलिए हर दिन वह अपना ग्रे सूट पहनकर और अपनी जेब घड़ी जेब में रखकर उस दिन का इंतज़ार करते थे।

मुझे पता चला कि खानुम ताहेरी, जिन्हें मैं अब खाला जमीला कहता था, एक समय काबुल में अपनी मीठी और सुरीली गायकी के लिए मशहूर थीं। उन्होंने कभी पेशेवर गायिका के तौर पर तो नहीं गाया था, मगर उनमें ऐसा करने का हुनर बराबर था। मैंने जाना कि वह लोकगीत, ग़ज़लें, यहाँ तक कि राग भी गा सकती थीं, जो आमतौर पर मर्द गायक ही गाते थे। जनरल ताहेरी संगीत सुनने के तो शौक़ीन थे और अच्छे गायकों की सराहना भी करते थे (वास्तव में, उनके पास अफ़ग़ान और हिंदी गायकों की शास्त्रीय ग़ज़लों का एक बड़ा संग्रह था), मगर उनका मानना था कि गाने-बजाने का काम कम इज्ज़तदार लोगों के लिए ही छोड़ देना चाहिए। जनरल ने खाला जमीला से निकाह ही इस शर्त पर किया था कि वह कभी भी सार्वजनिक तौर पर नहीं गाएँगी। सोराया ने बताया कि खाला जमीला हमारे निकाह में गाना चाहती थीं, सिर्फ़ एक गाना, मगर जनरल ने उन्हें ऐसे घूर कर देखा कि उनकी ख्वाहिश उनके गले में ही दफ्न होकर रह गई। खाला जमीला हफ्ते में एक बार लोट्टो खेलती थीं और हर रात जॉनी कार्सन का शो देखती थीं। दिन उनका बाग़ीचे में बीतता था – अपने लगाए गुलाब, जेरेनियम, आलू की बेलों, और ऑर्किड वगैरह की देखभाल करते हुए।

जब मैंने सोराया से निकाह किया, तो फूल और जॉनी कार्सन पीछे छूट गए। मैं खाला जमीला की ज़िन्दगी में ख़ुशी की नयी वजह था। जनरल के डिप्लोमेटिक और 'दिल की दिल में रखने' वाले व्यवहार के उलट (जब मैंने निकाह के बाद भी उन्हें 'जनरल साहब' कहना जारी रखा, तो उन्होंने एक बार भी मुझे टोका नहीं) खाला जमीला ने इस बात को कभी भी छिपाया नहीं कि वह मुझे कितना पसंद करती थीं। इसकी एक वजह तो यह थी कि मैं आए-दिन नयी-नयी बीमारियों और उससे जुड़ी उनकी शिकायतों की लम्बी फेहरिस्त को इत्मीनान से सुनता था, जबकि जनरल ने बहुत पहले ही इस ओर कान देना बंद कर दिया था। सोराया ने मुझे बताया कि जब से

खाला जमीला को स्ट्रोक हुआ था, तब से उन्हें अपनी छाती में उठने वाले हर दर्द के दिल का दौरा पड़ने, किसी भी जोड़ में किसी भी वजह से उठने वाले किसी भी दर्द के रूमेटाइड गठिया की शुरुआत होने, और आँख में होने वाली किसी भी फड़कन के एक और स्ट्रोक होने की आशंका सताने लगती थी। मुझे याद है कि जब पहली बार खाला जमीला ने मुझसे अपनी गर्दन में गाँठ होने का ज़िक्र किया था तो मैंने उनसे कहा था, "मैं कल स्कूल की छुट्टी करके आपको डॉक्टर के पास ले चलूँगा।" इस पर जनरल ताहेरी मुस्कराते हुए बोले थे, "तब तो फिर अच्छा होगा कि आप अपनी किताबें बेच दें या दान कर दें, आमिर जान। आपकी खाला के मेडिकल चार्ट्स रूमी की रचनाओं से कम नहीं हैं, वे भी कई-कई खंडों में समाते हैं।"

मगर यह इकलौता कारण नहीं था खाला जमीला का मुझे इतना पसंद करने का। मुझे पक्का यकीन था कि अगर मैं राइफल उठाकर कत्लेआम मचाने निकल पड़ता, तब भी उनका प्यार मुझ पर ऐसे ही बरसता रहता। क्योंकि मैंने उनके दिल को उसकी सबसे गंभीर बीमारी से निजात दिला दी थी। मैंने उन्हें उस डर से आज़ाद करा दिया था जो हर अफ़ग़ान माँ के दिल में बसा होता है, इस बात का डर कि कोई भी इज्ज़तदार ख़्स्तगर (वर) उसकी बेटी का हाथ नहीं माँगेगा। कि उसकी बेटी बगैर शादी के, बगैर शौहर के, बगैर बच्चों के ही रह जाएगी। कि उसे ज़िन्दगी अकेले ही काटनी पड़ जाएगी। हर अफ़ग़ान माँ को लगता था कि हर औरत की ज़िन्दगी में शौहर का होना ज़रूरी था। फिर भले वह उसके गीत को उसके गले में ही घोंट देने वाला क्यों न हो। और, सोराया से ही मैंने वह सब जाना था जो वर्जीनिया में हुआ था।

हम एक निकाह में थे। सोराया के मामा, शरीफ़, जो आईएनएस के लिए काम करते थे, अपने बेटे का निकाह नेवार्क की एक अफ़ग़ान लड़की से करा रहे थे। निकाह उसी हॉल में हो रहा था, जहाँ छह महीने पहले सोराया और मेरा निकाह हुआ था। हम मेहमानों की भीड़ में खड़े थे और दुल्हन को दूल्हे के परिवार से अंगूठियाँ लेते हुए देख रहे थे। तभी हमने दो अधेड़ उम्र की औरतों को हमारी ओर पीठ करके बात करते हुए सुना।

"कितनी प्यारी दुल्हन है," उनमें से एक ने कहा। "देखो तो उसे, कितनी मकबूल, बिल्कुल चाँद की तरह।"

"हाँ," दूसरी ने कहा। "और पाकदामन भी। एकदम शरीफ़। कोई बॉयफ्रेंड नहीं।"

"जानती हूँ। सच कहूँ तो कि इस लड़के ने अपनी फुफेरी बहन से निकाह न करके अच्छा किया।"

घर लौटते समय सोराया के सब्र का बाँध टूट गया और वह फूट-फूटकर रोने लगी। मैंने अपनी फोर्ड को किनारे किया और फ्रेमोंट बुलेवार्ड पर एक स्ट्रीट लाइट के नीचे रोक दिया।

"दिल छोटा मत करो, सोराया," मैंने उसके चेहरे पर गिर आईं उसकी जुल्फों को

कान के पीछे खोंसते हुए कहा। “हमें ऐसी बातों की परवाह नहीं करनी चाहिए।”

“यह सरासर गलत है,” वह गुस्से से चिल्लाई।

“भूल जाओ उनको और उनकी बातों को।”

“उनके लड़के गर्म गोश्त की तलाश में नाइट क्लबों में जाते हैं और अपनी गर्लफ्रेंड्स को प्रेग्नेंट कर देते हैं, यहाँ तक कि बिना शादी के बच्चे भी पैदा कर लेते हैं और कोई भी उनसे कुछ नहीं कहता। अरे वे तो लड़के हैं, थोड़ा मौज-मज़ा कर रहे थे! और मैं एक गलती करती हूँ और अचानक हर कोई नांग और नामूस की बात करने लगता है, और ज़िन्दगी भर के लिए मेरे मुँह पर कालिख पोत दी जाती है।”

मैंने अपने अंगूठे से उसके चेहरे पर ढलक आए एक आँसू को पोंछा।

“मैंने तुम्हें बताया नहीं,” सोराया ने अपनी आँखों को पोंछते हुए कहा, “मगर मेरे बाबा उस रात बंदूक लेकर आए थे। उन्होंने कहा...उससे...कि उनकी बन्दूक में दो गोलियाँ थीं और अगर मैं उनके साथ घर नहीं गई तो एक गोली वह उसके भेजे में उतारेंगे और दूसरी ख़ुद के। मैं चीख रही थी, अपने बाप को तरह-तरह की गालियाँ दे रही थी, कह रही थी कि वह मुझे हमेशा के लिए बंद करके नहीं रख सकते, और यह भी कि मैं चाहती थी कि वह मर जाएँ।” पलकों के बाँध को तोड़कर आँसू एक बार फिर उसके गालों पर बह निकले। “मैंने सच में उनसे यही कहा था कि मैं चाहती हूँ कि वह मर जाएँ।

“जब वह मुझे लेकर घर पहुँचे, तो मेरी माँ ने मुझे अपनी बाँहों में भर लिया और रोने लगीं। वह बहुत कुछ कह भी रही थीं, मगर मुझे कुछ भी समझ नहीं आ रहा था, क्योंकि लकवे के चलते वह कुछ भी साफ़-साफ़ नहीं बोल पा रही थीं। तो बाबा मुझे मेरे बेडरूम में ले गए और ड्रेसिंग टेबल के शीशे के सामने बैठा दिया। फिर मुझे एक कैंची थमाई और कहा कि अपने सारे बाल काट डालो। जब तक मैंने उनका कहा मान नहीं लिया, वह वहीं खड़े रहे।

“कई हफ़्तों तक मैं घर से बाहर नहीं निकली। और जब निकलना शुरू किया तो जहाँ भी जाती, फुसफुसाहटें सुनाई देने लगतीं–शुरू-शुरू में सचमुच की, फिर धीरे-धीरे काल्पनिक भी। इस बात को चार साल बीत चुके हैं और हम उस जगह से तीन हज़ार मील दूर आ गए हैं, मगर वे फुसफुसाहटें अब भी सुनाई दे रही हैं।”

“भाड़ में जाने दो उन सबको,” मैंने कहा।

उसने ऐसी आवाज़ निकाली जो आधी सिसकी और आधी हँसी थी। “जब मैंने तुम्हें खस्तेगरी की रात फोन पर इस बारे में बताया, तो मुझे यकीन था कि तुम अपना मन बदल लोगे।”

“सवाल ही नहीं उठता था, सोराया।”

आख़िर-कार उसके चेहरे पर मुस्कान लौटी। उसने प्यार से मेरा हाथ थाम लिया। "मैं बहुत ख़ुशनसीब हूँ कि मुझे तुम मिले। मैं आज तक जितने भी अफ़ग़ान मर्दों से मिली हूँ, तुम उन सबसे बहुत अलग हो।"

"इस बारे में हम फिर कभी कोई बात नहीं करेंगे, ठीक है?"

"ठीक है।"

मैंने उसका गाल चूमा और गाड़ी को वापस सड़क पर ले आया। गाड़ी चलाते-चलाते मैं सोचने लगा कि मैं क्यों अलग था। शायद इसलिए क्योंकि मेरी परवरिश मर्दों ने की थी; मैं औरतों के बीच नहीं पला-बढ़ा था और इसलिए मुझे कभी भी उस दोहरे मापदंड का सामना नहीं करना पड़ा था जो अफ़ग़ान समाज कभी-कभी उनके साथ अपनाता था। शायद इसलिए क्योंकि बाबा एक अलहदा किस्म के अफ़ग़ान बाप थे, एक ऐसे उदारवादी इंसान जो अपने ही बनाए नियमों से जीते थे; अलहदा सोच वाले एक ऐसे इंसान जिन्होंने उन्हीं सामाजिक रस्म-ओ-रिवाज़ों को अपनाया जो उन्हें सही लगे, जो उन्हें सही नहीं लगे उनकी उन्होंने खुलकर अवहेलना की।

मगर मुझे लगता है कि सोराया के अतीत की परवाह न करने का एक बड़ा कारण यह था कि मेरा भी ऐसा ही एक अतीत था। मैं जानता था कि पछतावा क्या होता है।

बाबा के गुज़रने के कुछ ही दिनों बाद सोराया और मैं फ़्रेमोंट में एक बेडरूम वाले उस घर में रहने चले गए जो जनरल और खाला जमीला के घर से कुछ ही ब्लॉक दूर था।

गृह-प्रवेश के उपहार के तौर पर सोराया के वालिद-वालिदा ने हमें एक कत्थई रंग के चमड़े वाला सोफा और मिकासा बर्तनों का एक सेट ख़रीदकर दिया। जनरल मेरे लिए अलग से भी एक गिफ्ट लाए थे – एक नया आईबीएम टाइपराइटर। बक्से में उन्होंने फ़ारसी में लिखा एक नोट भी रखा था:

आमिर जान,

मुझे उम्मीद है कि इस टाइपराइटर पर बैठकर आप बहुत सारी कहानियाँ लिखेंगे।

जनरल इकबाल ताहेरी

मैंने बाबा की वोक्सवैगन वैन बेच दी, और फिर कभी फ्ली बाज़ार का रुख़ नहीं किया। हर शुक्रवार मैं बाबा की क़ब्र पर जाता था, और कभी-कभी जब मुझे वहाँ क़ब्र के पत्थर के पास ताज़े फ़्रीज़िया फूलों का गुलदस्ता रखा मिलता तो मैं समझ जाता कि सोराया भी वहाँ आई थी।

सोराया और मैं शादीशुदा ज़िन्दगी की दिनचर्या –और छोटे-मोटे आश्चर्यों– में रम गए। हम टूथब्रश और मोज़े साझा करते थे, सुबह टॉयलेट में बैठकर एक-दूसरे से

टॉयलेट पेपर का आदान-प्रदान करते थे। वह बिस्तर के दाईं ओर सोती थी, जबकि मुझे बाईं ओर सोना पसंद था। उसे मुलायम तकिए पसंद थे, जबकि मुझे सख़्त। उसे नाश्ते में सूखा सीरिअल खाना पसंद था, स्नैक की तरह, जबकि मुझे उसके साथ दूध चाहिए होता था।

उस बरस गर्मियों में मुझे सैन जोस स्टेट में दाख़िला मिल गया और मैं इंग्लिश मेजर घोषित हो गया। साथ ही मैंने सनीवेल के एक फर्नीचर गोदाम में सिक्योरिटी की नौकरी कर ली, स्विंग शिफ्ट में (शाम से लेकर देर रात तक)। यह काम बहुत ही उबाऊ था, मगर इसका एक बड़ा फ़ायदा यह था कि शाम 6 बजे के बाद सभी लोग चले जाते थे और एकदम शान्ति हो जाती थी, तब मैं अपनी किताबें निकालकर पढ़ने बैठ जाता था। उस फर्नीचर गोदाम के पाइन-सोल की गंध से महकने वाले ऑफिस में बैठकर ही मैंने अपना पहला उपन्यास लिखना शुरू किया था।

अगले साल सोराया भी सैन जोस स्टेट आ गई और जनरल की नाराज़गी के बावजूद उसने टीचिंग में ही दाख़िला लिया।

"समझ नहीं आता कि आप अपनी लायकियत को इस तरह ज़ाया क्यों कर रही हैं?" एक रात खाने के दौरान जनरल ने कहा। फिर वह मेरी ओर मुड़े और कहने लगे, "आपको पता है, आमिर जान, इनको हाईस्कूल के दौरान हमेशा हर विषय में A ही मिलता था।" फिर दुबारा सोराया की ओर मुड़े और कहने लगे, "आपके जैसी इंटेलीजेंट लड़की चाहे तो वकील बन सकती है, पॉलिटिकल साइंटिस्ट बन सकती है। और, इंशाअल्लाह, जब अफ़ग़ानिस्तान आज़ाद होगा तो उसका नया संविधान लिखने में भी मदद कर सकती हैं। उस वक़्त आपके जैसे नयी उम्र के टैलेंटेड अफ़ग़ानी लड़के-लड़कियों की बहुत ज़रूरत होगी। बल्कि आपको आपके खानदान के नाम की बिना पर मंत्रालय में कोई पद भी दिया जा सकता है।"

मैं देख रहा था कि सोराया अन्दर ही अन्दर गुस्से से उबली जा रही थी, उसके चेहरे पर तनाव बढ़ता जा रहा था। "मैं कोई नयी उम्र की लड़की नहीं हूँ, बाबा। मैं एक शादीशुदा औरत हूँ। इसके अलावा, उस वक़्त उन्हें टीचर्स की भी ज़रूरत पड़ेगी।" बड़ी मुश्किल से ख़ुद को रोकते-रोकते भी सोराया ने कह ही दिया।

"पढ़ा तो कोई भी सकता है।" जनरल साहब ने मानो आग में घी डालने वाला काम कर दिया।

"थोड़े और चावल हैं क्या, अम्मी जान?" सोराया ने खाला जमीला की ओर देखकर कदरन ऊँची आवाज़ में कहा।

खाना खाने के बाद जनरल हेवार्ड में अपने किसी दोस्त से मिलने जाने का कहकर वहाँ से निकल गए। तब खाला जमीला ने सोराया को थोड़ा ढाँढस बंधाने की कोशिश की। "उनकी मंशा बुरी नहीं है। वह बस आपको कामयाब देखना चाहते हैं।"

"ताकि अपने दोस्तों के सामने अपनी वकील बिटिया के नाम की शेखी बघार सकें।

ताकि जनरल के सीने पर एक और तमगा सज सके," सोराया ने तमककर कहा।

"क्या अनाप-शनाप कहे जा रही हैं!"

"कामयाब?" सोराया ने भड़कते हुए कहा। "मैं कम से कम उनके जैसी तो नहीं हूँ जो जाकर शोरावी से लड़ने की बजाए यहाँ बैठकर इंतज़ार कर रहे हैं कि कब हो तो दूसरों के दिलाए अफ़ग़ानिस्तान को आज़ादी मिल जाए और उसके बाद ये शान से वहाँ जाकर फिर से अपनी शानदार सरकारी नौकरी पर काबिज़ हो जाएँ। टीचिंग में भले ज़्यादा कमाई न होती हो, मगर मैं यही करना चाहती हूँ! मुझे इसी काम से प्यार है, और हाँ, यह काम करना सरकारी खैरात पर जीने से लाख गुना बेहतर है।"

"अगर उन्होंने कभी आपको ऐसा कहते हुए सुन लिया, तो फिर कभी आपसे बात नहीं करेंगे," खाला जमीला ने ख़ुद को ज़ब्त करते हुए धीमी आवाज़ में कहा।

"चिंता मत कीजिए," सोराया ने नैपकिन मेज़ पर फेंकते हुए तमककर कहा। "मैं उनके बेशकीमती गुरूर को आहत नहीं करूँगी।"

1988 की गर्मियों में, सोवियत संघ के अफ़ग़ानिस्तान से हटने से लगभग छह महीने पहले, मैंने अपना पहला उपन्यास पूरा कर लिया। यह काबुल की पृष्ठभूमि में एक बाप-बेटे की कहानी थी, जिसे मैंने ज़्यादातर उसी टाइपराइटर पर लिखा था जो जनरल ने मुझे दिया था। मैंने तक़रीबन एक दर्जन एजेंसियों को अपने उपन्यास को प्रकाशित करवाने बाबत ख़त भेजे और अगस्त महीने के एक दिन मैं तब दंग रह गया जब मैंने अपना मेलबॉक्स खोला और पाया कि न्यूयॉर्क की एक एजेंसी ने पूरा उपन्यास भेजने के लिए लिखा था। मैंने अगले ही दिन भेज दिया। एक लिफ़ाफ़े में अच्छी तरह पैक करके उपन्यास को भेजने से पहले सोराया ने उसे चूमा और खाला जमीला ने ज़ोर दिया कि हम उसे थोड़ी देर के लिए कुरआन के नीचे रख दें। फिर उन्होंने मुझसे कहा कि वह मेरे लिए नज्र करने का सोच रही थीं, मतलब कि यह मन्नत मान रही थीं कि अगर मेरी किताब प्रकाशित हो गई तो वह एक भेड़ की क़ुर्बानी देंगी और उसका माँस ग़रीबों में बाँटेंगी।

"प्लीज़, खाला जान, कोई नज्र नहीं," मैंने उनके माथे को चूमते हुए कहा। "आप बस ज़कत कीजिए, किसी ज़रूरतमंद को पैसे दे दीजिए, ठीक है? हम कोई भेड़-वेड़ नहीं काटेंगे।"

छह हफ्ते बाद न्यूयॉर्क से किसी मार्टिन ग्रीनवॉल्ट नाम के आदमी ने फोन किया और मेरा एजेंट बनने की पेशकश की। मैंने इस बारे में सिर्फ़ सोराया को बताया। "सिर्फ़ एजेंट रख लेने का मतलब यह नहीं है कि मेरी किताब छप ही जाएगी। जिस दिन मार्टिन किसी प्रकाशक को राज़ी कर लेगा, उस दिन हम जश्न मनाएँगे।"

एक महीने बाद मार्टिन ने फोन करके बताया कि मेरा उपन्यास छपने जा रहा था। मैंने यह बात जब सोराया को बताई तो वह ख़ुशी से चीख पड़ी।

इस ख़बर का जश्न मनाने उस रात हमने सोराया के वालिदैन को अपने घर डिनर पर बुलाया। खाला जमीला ने ख़ुद अपने हाथों से कोफ्ता-चावल और सफ़ेद फ़र्नी बनायी। जनरल ने कहा कि उन्हें मुझ पर नाज़ था, और मुझे हैरानी यह देखकर हुई कि यह कहते वक़्त उनकी आँखों में नमी थी। जनरल ताहेरी और खाला जमीला के चले जाने के बाद सोराया और मैंने मर्लोट की उस महँगी बोतल को खोलकर जश्न मनाया जो मैं उस शाम घर लौटते वक़्त ख़रीदकर लाया था। चूँकि जनरल को औरतों का शराब पीना पसंद नहीं था और सोराया उनकी मौजूदगी में नहीं पीती थी, इसलिए हमें उनके जाने तक इंतज़ार करना पड़ा।

"मुझे तुम पर बहुत नाज़ है," उसने अपना गिलास मेरी तरफ़ उठाते हुए कहा। "काका को भी होता।"

"जानता हूँ," मैंने कहा। मैं भी बाबा के बारे में सोचने लगा, काश आज वह भी इस ख़ुशी में शरीक होते।

उस रात, जब सोराया गहरी नींद में थी (वाइन पीकर उसे हमेशा नींद आने लगती थी), मैं जाकर बालकनी में खड़ा हो गया और गर्मियों की ठंडी हवा का आनंद लेने लगा। मेरे ज़ेहन में रहीम खान का ख़याल तैरने लगा। मुझे उनका लिखा वह छोटा-सा नोट याद आ गया जो मेरी पहली कहानी पढ़ने के बाद उन्होंने मुझे दिया था और जिसकी वजह से मुझे लिखने के अपने शौक को ज़िन्दा रखने और यहाँ तक लाने का मौका मिला था। फिर मुझे हसन का भी ख़याल आया। 'एक दिन, माशाअल्लाह, आप बहुत बड़े किस्सा-गो बनेंगे और दुनिया भर के लोग आपकी लिखी कहानियाँ पढ़ेंगे,' उसने एक बार कहा था। मेरी ज़िन्दगी में कितनी अच्छी-अच्छी चीज़ें थीं। कितनी सारी ख़ुशियाँ थीं। मगर क्या मैं इनमें से किसी का भी हकदार था?

अगले बरस, यानी कि 1989 की गर्मियों में मेरी किताब छपकर आ गई और पब्लिशर ने मुझे उसके प्रचार-प्रसार के लिए पाँच अलग-अलग शहरों में बुक-टूर करने भेजा। अफ़ग़ान समुदाय के बीच मैं एक छोटी-मोटी हस्ती बन चुका था। उसी साल शोरावी की फ़ौज की अफ़ग़ानिस्तान से वापसी भी पूरी हो गई थी। देखा जाए तो यह अफ़ग़ान लोगों के लिए अपनी खोई हुई ख़ुशियाँ और अपना पुराना गौरव फिर से हासिल करने का समय होना चाहिए था। मगर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। जंग जारी रही। अब यह जंग अफ़ग़ानों, मुजाहिदीनों और सोवियत संघ की शै पर बनी नजीबुल्लाह की कठपुतली सरकार के बीच चल रही थी। यह वह साल था जब शीत-युद्ध ख़त्म हुआ था, जब बर्लिन की दीवार गिरी थी। यह तियानमेन स्क्वायर का साल था। इतनी बड़ी-बड़ी घटनाओं के बीच, अफ़ग़ानिस्तान को भुला दिया गया। और इसके चलते जनरल ताहेरी की उम्मीदें, जो सोवियत सेना के अफ़ग़ानिस्तान छोड़ने के बाद जाग उठी थीं, एक बार फिर नामालूम कब ख़त्म होने वाले इंतज़ार में बदल गईं।

यही वो साल था जब मैंने और सोराया ने माँ-बाप बनने की कोशिश शुरू की थी।

बाप बनने के ख़याल से मेरे भीतर जज़्बात का तूफान-सा उठ खड़ा हुआ था। मैं एक साथ डर, रोमांच, फिकर, और ख़ुशी जैसे तमाम जज़्बात अपने भीतर उमड़ते महसूस कर रहा था। मैं सोचता कि मैं किस तरह का बाप बनूँगा। मैं बिल्कुल बाबा जैसा बनना चाहता था और मैं उनके जैसा बिल्कुल भी नहीं बनना चाहता था।

कोशिश करते-करते एक बरस बीत गया, मगर कोई नतीजा नहीं मिला। मासिक-धर्म के हर नाकाम चक्र के साथ सोराया और भी ज़्यादा निराश, और भी ज़्यादा अधीर, और भी ज़्यादा चिड़चिड़ी होती गई। खाला जमीला शुरू-शुरू में जो बात इशारों-इशारों में पूछती थीं, अब खुलकर पूछने लगीं। “और कितना इंतज़ार करवाओगे ख़ुशख़बरी के लिए?” या “मैं अपने छोटे से नवासे के लिए अल्लाहू कब गाऊँगी?” हालाँकि जनरल साहब ने इस बाबत कभी कोई सवाल नहीं किया। वह पक्के पश्तून थे, जानते थे कि ऐसा कोई सवाल करने का मतलब था अपनी बेटी और किसी आदमी के बीच सेक्स होने को लेकर बात करना, भले वह आदमी पिछले चार बरसों से उनकी बेटी का शौहर ही क्यों न हो। मगर जब भी खाला जमीला हमसे इस तरह के सवाल करती थीं तो जनरल साहब के कान भी मनचाहा जवाब सुनने के लिए खड़े हो जाते थे।

“कभी-कभी, थोड़ा वक़्त लगता है,” एक रात मैंने सोराया से कहा।

“एक साल थोड़ा वक़्त नहीं होता, आमिर!” सोराया ने रुखाई से कहा। इस तरह रुखाई से बात करना उसके स्वभाव में नहीं था।

“हाँ, मुझे भी लग रहा है कि कुछ दिक्कत है।”

“तो चलो डॉक्टर को दिखाते हैं।”

हम डॉ. रोसेन के पास पहुँचे, जो एक गोल-मटोल से पेट और उसी से मेल खाते चेहरे वाले आदमी थे। उनके बातचीत के लहज़े में कुछ हद तक पूर्वी यूरोप के लोगों (स्लाविक लोगों) के लहज़े की झलक मिलती थी। उन्हें रेलगाड़ियों का बहुत शौक था, बहुत ही ज़्यादा, इतना ज़्यादा कि उनका दफ्तर रेलरोड का इतिहास बताने वाली किताबों, तरह-तरह के रेल इंजनों के मॉडल्स, और हरी-भरी पहाड़ियों और पुलों के ऊपर से गुज़रतीं रेलगाड़ियों की पेंटिंग्स से भरा पड़ा था। उनकी मेज़ के ऊपर एक साइनबोर्ड लगा था, जिस पर लिखा था: ज़िन्दगी एक रेलगाड़ी है। आइए, सवार हो जाइए।

उन्होंने हमारे लिए चेक-अप की योजना बनाई। सबसे पहले मेरा चेक-अप होना था। “मर्द आसान होते हैं,” उन्होंने अपनी महोगनी मेज़ पर उंगलियाँ ठकठकाते हुए कहा। “मर्दों की प्लंबिंग उनके दिमाग़ की तरह होती है: सीधी-सरल। उसमें हैरानी या उलझन में डालने वाली चीज़ें न के बराबर होती हैं। दूसरी ओर, आप औरतें... ऊपरवाले ने आप लोगों को बनाने में बहुत दिमाग़ लगाया है।” यहाँ डॉ. रोसेन ने ‘प्लंबिंग’ शब्द का प्रयोग जननांगों की बनावट के लिए किया था। मैं सोचने लगा कि क्या वह ऐसा अपने सभी मरीज़ों के साथ करते थे या सिर्फ़ हमारे मामले में ही किया

था?

"हम लोग ख़ुशकिस्मत हैं," सोराया ने जवाब दिया।

इस पर डॉ. रोसेन हँस दिए। मगर उनकी हँसी थोड़ी बनावटी मालूम हुई। फिर उन्होंने मुझे एक लैब स्लिप और एक प्लास्टिक जार थमा दिया और सोराया को कुछ आम-सी ख़ून की जाँचें कराने को कहा। हमने उनसे हाथ मिलाया और चलने को हुए तो उन्होंने कहा, "रेलगाड़ी में आपका स्वागत है।"

मेरी सभी रिपोर्ट्स नॉर्मल आईं।

मगर सोराया को अगले कुछ महीनों तक न जाने किन-किन जाँचों से गुज़रना पड़ा – बेसल बॉडी टेम्परेचर्स की जाँच, हर तरह के हॉरमोंस के लिए ख़ून की जाँचें, पेशाब की जाँचें, 'ग्रीवा म्यूकस टेस्ट' नाम की एक जाँच, अल्ट्रासाउंड, और भी न जाने कैसी-कैसी ख़ून की जाँचें, और भी कई सारी पेशाब की जाँचें।

फिर सोराया को हिस्टेरोस्कोपी नाम की जाँच से गुज़ारा गया, जिसमें डॉ. रोसेन ने सोराया के गर्भाशय में एक दूरबीन डाली और उसकी अच्छी तरह जाँच की। मगर उन्हें कहीं कोई ख़राबी नहीं मिली। "प्लम्बिंग तो एकदम सही है," उन्होंने अपने रबड़ के दस्ताने उतारते हुए कहा। मुझे उनके जननांगों की बनावट को बार-बार प्लंबिंग कहने पर बड़ी कोफ़्त हो रही थी। हम कोई बाथरूम नहीं थे! बहरहाल, सारी जाँचें कर चुकने के बाद उन्हें कहना पड़ा कि उन्हें इसकी कोई वजह नहीं मिली थी कि क्यों हम माँ-बाप नहीं बन पा रहे थे। और साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि ऐसा पहली बार या सिर्फ़ हमारे साथ नहीं हो रहा था, इसे मेडिकल साइंस की भाषा में 'अनएक्सप्लेंड इनफर्टिलिटी' (अज्ञात बाँझपन) कहा जाता था।

इसके बाद बारी आई इलाज की। डॉक्टर ने सोराया को क्लोमीफीन नामक दवा और hMG इंजेक्शन दिए। जब इनसे कोई फ़ायदा नहीं हुआ तब डॉ. रोसेन ने इन-विट्रो फर्टिलाइज़ेशन की सलाह दी। जब हमने हेल्थ मेंटेनेंस ऑर्गेनाइज़ेशन (HMO) से संपर्क किया तो उन्होंने खेद जताते हुए कहा कि इस इलाज की लागत हमारे स्वास्थ्य बीमा प्लान के तहत वहन नहीं की जा सकती थी।

तब हमने उस रकम का इस्तेमाल किया जो मुझे अपने उपन्यास के लिए पेशगी के तौर पर मिली थी। इन-विट्रो फर्टिलाइज़ेशन की प्रक्रिया लम्बी, जटिल, थकाऊ, पकाऊ, और आख़िर-कार नाकाम साबित हुई। महीनों तक वेटिंग रूम्स में बैठकर 'गुड हाउसकीपिंग' और 'रीडर्स डाइजेस्ट' जैसी पत्रिकाएँ पढ़ने के बाद, महीनों तक अंतहीन पेपर गाउन्स और फ्लोरोसेंट रोशनी से जगमगाते ठंडे और जीवाणु-रहित किए गए परीक्षण-कक्षों से जूझने के बाद, महीनों तक अजनबी विशेषज्ञों के साथ अपने यौन जीवन की हर छोटी-बड़ी बात डिस्कस करने की शर्मिंदगी से गुज़रने के बाद, महीनों तक न जाने कौन-कौन से और कितने ही इंजेक्शनों और जाँचों और स्पेसीमेन कलेक्शंस की मार झेलने के बाद हम फिर एक बार डॉ. रोसेन और उनकी रेलगाड़ियों

के पास जा पहुँचे।

उन्होंने हमारी सारी बातें सुनीं, सारी जाँच रिपोर्ट्स देखीं, महोगनी मेज़ पर अपनी उंगलियाँ ठकठकाईं, और आख़िर में कहा कि अब हमारे पास बच्चा गोद लेने के अलावा कोई और विकल्प बाक़ी नहीं था। घर लौटते हुए रास्ते भर सोराया रोती रही।

उसी सप्ताहांत सोराया ने यह बात अपने वालिदैन को बता दी। उन्होंने हमें घर बुलाया। सोराया का मन हल्का करने के लिहाज़ से उन्होंने घर के पीछे वाले आँगन में पिकनिक कुर्सियाँ लगाईं थीं। वहीं बैठकर हम लोग ट्राउट (मछली) ग्रिल करते हुए और ठंडी-ठंडी लस्सी पीते हुए बातें कर रहे थे। यह 1991 के मार्च महीने की एक शाम थी। खाला जमीला ने कुछ ही देर पहले अपने गुलाबों और हनीसकल के फूलों को पानी दिया था और उनकी ख़ुश्बू पकती हुई मछली की गंध के साथ मिल गई थी। उस शाम यह तीसरी बार था जब वह अपनी जगह से उठकर सोराया के पास गईं थीं और प्यार से उसके बालों को सहलाते हुए कहा था, “अल्लाह की मर्ज़ी के आगे किसी की नहीं चलती। शायद ऐसा होना लिखा ही नहीं था…शायद यही उसकी मर्ज़ी थी।”

सोराया सर नीचे किए अपने हाथों की ओर देखती रही। वह इस सब से थक चुकी थी। तंग आ चुकी थी।

“डॉक्टर ने कहा कि हम गोद ले सकते हैं,” उसने बुदबुदाते हुए कहा।

यह सुनते ही जनरल ताहेरी ने झटके से मुड़कर सोराया की ओर देखा। बारबेक्यू की आग बुझा दी। “उसने ऐसा कहा?”

“उसने कहा कि यह एक विकल्प है,” सोराया ने कहा।

घर पर हम इस बारे में बात कर चुके थे। सोराया तय नहीं कर पा रही थी कि क्या फैसला ले। उसका मन कभी हाँ कहता तो कभी न। “मुझे पता है कि मेरा ऐसा सोचना बेवक़ूफ़ी है और शायद इससे कुछ हासिल भी नहीं होगा,” उसने अपने वालिद-वालिदा के घर जाते हुए रास्ते में मुझसे कहा। “मगर मैं क्या करूँ, मैं ख़ुद को ऐसा सोचने से नहीं रोक पाती हूँ। मैं हमेशा से यही सपना देखती आई हूँ कि एक दिन मैं अपनी कोख से जने बच्चे को अपनी बाँहों में थामूँगी, इस अहसास के साथ कि मैंने उसे नौ महीनों तक अपने ख़ून से सींचा है; कि एक दिन मैं उसकी आँखों में देखूँगी और इस अहसास से मेरा रोम-रोम पुलक उठेगा कि वे आँखें तुम्हारी या मेरी हैं; कि एक दिन वह बच्चा बड़ा होगा और उसकी मुस्कान देखकर मैं इस अहसास से भर उठूँगी कि वह मुस्कान तुम्हारी या मेरी है। इन अहसासों के बिना…क्या यह गलत है?”

“नहीं,” मैंने कहा था।

“क्या मैं स्वार्थी हो रही हूँ?”

“नहीं, सोराया।”

"क्योंकि अगर तुम सच में ऐसा करना चाहते हो तो..."

"नहीं," मैंने उसकी बात को बीच में ही काटते हुए कहा। "हम ऐसा तभी करेंगे जब हमारे मन में इसे लेकर ज़रा सा भी संशय न हो और हम दोनों की राय एक हो। नहीं तो यह उस बच्चे के लिए अच्छा नहीं होगा जिसे हम घर लाएँगे।"

उसने अपना सिर खिड़की पर टिका दिया और बाक़ी का रास्ता खामोशी में कटा।

अब जनरल साहब उठकर सोराया के पास आए और उसकी बग़ल में बैठ गए। "बेटा, यह गोद लेने वाली बात...मुझे नहीं लगता कि यह हम अफ़ग़ानों के लिए है।" सोराया ने थकी हुई नज़रों से मेरी तरफ़ देखा और एक गहरी साँस छोड़ी।

"इसमें एक दिक्कत तो यह होती है कि बड़े होकर वे जानना चाहते हैं कि उनके असली माँ-बाप कौन हैं," जनरल साहब ने अपनी बात को आगे बढ़ाया। "और इसके लिए आप उन्हें दोष भी नहीं दे सकते हैं। कभी-कभी वे अपने असल माँ-बाप को तलाशने के लिए आपका घर छोड़कर चले जाते हैं, वह घर जिसमें आपने सालोंसाल जीतोड़ मेहनत करके उनकी परवरिश की थी। ख़ून बहुत ताक़तवर चीज़ होती है बेटा, इस बात को याद रखना।"

"मैं इस बारे में और बात नहीं करना चाहती हूँ," सोराया ने कहा।

"मैं एक और बात कहना चाहूँगा," जनरल साहब ने मानो सोराया की बात सुनी ही नहीं। मैं साफ़ देख रहा था कि वह फ्लो में आ रहे थे; हमें अब उनका एक छोटा-मोटा भाषण सुनने को मिलने वाला था। "अब आमिर जान को ही ले लो। हम सभी इनके बाबा को जानते थे। मैं जानता हूँ कि काबुल में इनके दादा कौन थे और उससे पहले इनके परदादा कौन थे। अगर तुम कहो तो मैं यहीं बैठकर इनकी पिछली कई पीढ़ियों का इतिहास पता लगा सकता हूँ। इसीलिए तो जब इनके बाबा –अल्लाह उन्हें जन्नत बख्शे– ख़स्तेगरी के लिए आए, तो मैंने ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई। और मेरा यकीन करो, इनके बाबा तुम्हारा हाथ माँगने को कभी राज़ी नहीं होते अगर उन्हें नहीं पता होता कि तुम्हारी रगों में किनका ख़ून दौड़ रहा है। ख़ून बड़ी ताक़तवर चीज़ है बेटा, और जब हम किसी बच्चे को गोद लेते हैं तो हमें नहीं पता होता कि हम किसके ख़ून को घर ला रहे हैं।

"हाँ, अगर तुम अमरीकी होतीं तो तुम्हें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यहाँ के लोग प्यार के लिए शादी करते हैं, उसके लिए वे घर-परिवार या खानदान या वंश-परंपरा जैसी चीज़ों को ख़याल में नहीं लेते। और यही बात बच्चा गोद लेने पर भी लागू होती है। उन्हें बस इस बात से मतलब होता है कि बच्चा स्वस्थ हो, सुन्दर हो; उसकी रगों में किसका ख़ून है, इस बात से उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। मगर हम अफ़ग़ान हैं, बेटा।"

"मछली तैयार हो गई क्या?" सोराया ने खाला जमीला की ओर देखते हुए कहा। मगर जनरल ताहेरी की नज़रें उस पर टिकी रहीं।

उन्होंने उसके घुटने थपथपाए। “तुम्हारे पास अच्छी सेहत और एक अच्छा शौहर है, तुम्हारे लिए इतना ही काफी होना चाहिए ख़ुश रहने को।”

“आप क्या कहते हैं, आमिर जान?” खाला जमीला ने पूछा।

मैंने अपना गिलास क्यारी के किनारे पर रख दिया, जहाँ उनके गमलों में लगे जेरेनियम के पौधों से पानी टपक रहा था। “मुझे लगता है कि मैं जनरल साहब से सहमत हूँ।”

मेरी बात सुनकर जनरल साहब आश्वस्त हो गए और उठकर वापस ग्रिल पर चले गए।

बच्चा गोद लेने के लिए राज़ी न होने के हम सबके अपने-अपने कारण थे। सोराया के पास अपनी वजह थी, जनरल साहब के पास अपनी। मेरी वजह यह थी कि अतीत में, मैंने जो गलतियाँ (या गुनाह) की थीं, शायद उनके चलते किसी ने, कहीं बैठकर यह तय किया था कि मुझे बाप बनने की ख़ुशी न दी जाए। शायद यह मेरी सज़ा थी, और शायद यह जायज़ भी थी। ‘ऐसा होना लिखा ही नहीं था,’ खाला जमीला ने कहा था। या शायद, यही लिखा था कि ऐसा न हो।

कुछ महीनों बाद जब मुझे अपने दूसरे उपन्यास के लिए पेशगी रकम मिली तो उससे हमने सैन फ्रांसिस्को के बर्नल हाइट्स में एक ख़ूबसूरत, दो बेडरूम वाले विक्टोरियन घर का डाउन पेमेंट कर दिया। इसकी छत ढलवाँ थी, फर्श सख्त लकड़ी का बना था, और पीछे एक छोटा सा बाड़ा भी था, जिसके आख़िर में एक सन डेक (बैठकर धूप सेंकने की जगह) और एक चूल्हा बना था। जनरल ने डेक को फिर से तैयार करने और दीवारों को रंगने में मेरी मदद की। खाला जमीला इस बात से दुखी थीं कि हम उनके घर के पास वाला मकान छोड़कर तक़रीबन एक घंटे की ड्राइव की दूरी पर रहने जा रहे थे, ख़ास तौर से उस वक़्त पर जब उन्हें लगता था कि सोराया को उनके प्यार और साथ की सबसे ज़्यादा ज़रूरत थी। मगर वह इस बात से अनजान थीं कि उनकी हद से ज़्यादा हमदर्दी (बेशक उनकी नीयत नेक थी) ही सोराया को उनसे दूर जाने के लिए मजबूर कर रही थी।

कभी-कभी, जब सोराया मेरे बग़ल में सो रही होती थी मगर नींद न आने की वजह से मैं जाग रहा होता था, तब मैं बिस्तर में लेटे-लेटे स्क्रीन के दरवाज़े के हवा के साथ खुलने और बंद होने की, आँगन में झींगुरों के एक स्वर में गाने की आवाज़ें सुनता रहता था। उस वक़्त मैं सोराया के गर्भ में पल रहे खालीपन को महसूस करने लगता था, जैसे कि वह कोई ज़िन्दा, साँस लेने वाली चीज़ हो। यह खालीपन हमारी शादीशुदा ज़िन्दगी में, हमारी हँसी में, और हमारी प्रेम-क्रीड़ा में समा गया था। और रात के उस पहर, कमरे के अँधेरे में मुझे ऐसा महसूस होता कि वह खालीपन सोराया के गर्भ से निकलकर हमारे बीच बस रहा था। हमारे बीच सो रहा था।

किसी नवजात बच्चे की तरह।

चौदह

जून *2001*

मैंने रिसीवर वापस क्रेडिल पर रखा और फिर बड़ी देर तक उसे घूरता रहा। जब तक अफलातून (हमारा पालतू कुत्ता) ने भौंककर मुझे चौंका नहीं दिया, तब तक मुझे अहसास ही नहीं हुआ कि एकाएक कमरे में कितना सन्नाटा पसर गया था। सोराया ने टीवी की आवाज़ बंद कर दी थी।

"तुम्हारे चेहरे का रंग क्यों उड़ा हुआ मालूम हो रहा है, आमिर?" उसने उसी सोफे पर से पूछा जो उसके वालिद-वालिदा ने हमें हमारे पहले घर में गृह-प्रवेश के तोहफे के तौर पर दिया था। वह सोफे पर लेटी हुई थी और अफलातून का सिर उसके सीने पर टिका हुआ था और उसके पैर तकियों के नीचे दबे हुए थे। वह एक साथ दो काम कर रही थी – एक तो टीवी पर 'मिनेसोटा में भेड़ियों की दुर्दशा' पर एक पीबीएस डाक्यूमेंट्री देख रही थी, और साथ ही साथ अपनी समर-स्कूल (ग्रीष्मकालीन-स्कूल) क्लास के बच्चों के लिखे निबंधों को दुरुस्त भी करती जा रही थी। इस स्कूल में वह पिछले छह बरसों से पढ़ा रही थी। मेरी हालत देखकर वह उठकर बैठ गई और अफलातून भी सोफे से उतर गया। हमारे कॉकर स्पैनियल नस्ल के कुत्ते को 'अफलातून' नाम जनरल ने दिया था। फ़ारसी में इसका मतलब होता था 'प्लेटो'। यह नाम देने के पीछे की वजह बताते हुए जनरल ने कहा था कि अगर आप इस कुत्ते की काली आँखों में गौर से और देर तक झाँकें तो आप पाएँगे कि यकीनन उसके दिमाग़ में बहुत ही अक्लमंदी भरे ख़याल चल रहे होते हैं।

सोराया की ठोड़ी के नीचे का हिस्सा अब थोड़ा फूला हुआ सा लगने लगा था; वहाँ पर हल्की-सी चर्बी बढ़ी हुई मालूम पड़ने लगी थी। गुज़िश्ता दस बरसों ने उसके कूल्हों का आकार थोड़ा-सा बढ़ा दिया था और उसके कोयले की तरह काले बालों में भी कहीं-कहीं चाँदी के तार नज़र आने लगे थे। मगर उसका चेहरा अभी भी किसी शहज़ादी की तरह ख़ूबसूरत और दिलकश था। उसकी भौंहें अब भी किसी उड़ते हुए पक्षी के पंखों की तरह लगती थीं। और उसकी नाक अब भी प्राचीन अरबी लिपि के अक्षरों की तरह घुमावदार मालूम होती थी।

"तुम्हारे चेहरे का रंग क्यों उड़ा हुआ मालूम हो रहा है?" उसने हाथ के काग़ज़ों को मेज़ पर रखते हुए अपनी बात दोहराई।

"मुझे पाकिस्तान जाना पड़ेगा।"

यह सुनते ही वह उठकर खड़ी हो गई। “पाकिस्तान?”

“रहीम खान बहुत बीमार हैं।” उन लफ़्ज़ों को मुँह से निकालते हुए मेरे भीतर एक तूफ़ान-सा उमड़ रहा था।

“काका के पुराने बिज़नेस पार्टनर?” वह कभी रहीम खान से मिली नहीं थी, मगर मैंने उसे उनके बारे में सबकुछ बताया था। मैंने हाँ में सिर हिला दिया।

“ओह,” उसने कहा। “आई एम सो सॉरी, आमिर।”

“हम बहुत क़रीब थे,” मैंने कहा। “बचपन में वह इकलौते बड़े शख़्स थे जिन्हें मैं अपना दोस्त मानता था।” यह कहते हुए मेरे ज़ेहन में रहीम खान के बाबा के साथ उनकी स्टडी में बिताए पलों की यादें ताज़ा हो उठीं। कैसे दोनों वहाँ बैठकर साथ-साथ चाय का लुत्फ़ लेते थे, कैसे साथ-साथ खिड़की पर खड़े होकर धुएँ के छल्ले उड़ाते थे, और कैसे खिड़की के साथ लगे बगीचे की ठंडी-ख़ुश्बूदार हवा आकर उन धुएँ के छल्लों को तितर-बितर कर देती थी।

“मुझे याद है, तुमने बताया था,” सोराया ने कहा। फिर कुछ पल खामोश रहकर उसने पूछा, “कितने दिनों के लिए जाना होगा?”

“पता नहीं। वह मुझसे मिलना चाहते हैं।”

“इसमें कोई...”

“नहीं, कोई ख़तरा नहीं है। मैं पूरी तरह हिफ़ाज़त से रहूँगा, सोराया।” वह यही पूछना चाह रही थी। पंद्रह साल की शादी ने हम दोनों को एक-दूसरे का दिमाग़ पढ़ना सिखा दिया था। “मैं ज़रा सैर करके आता हूँ।”

“मैं भी चलूँ?”

“नहीं, मैं अकेले ही जाना चाहूँगा।”

मैंने गाड़ी निकाली और गोल्डन गेट पार्क पहुँच गया। फिर पार्क के उत्तरी किनारे पर बनी स्प्रेकेल्स झील के किनारे टहलने लगा। उस दिन रविवार था। दोपहर हो चली थी। मौसम सुहाना था। सूरज की किरणें झील के पानी पर अठखेलियाँ कर रही थीं। दर्जनों छोटी-छोटी कश्तियाँ सैन फ्रांसिस्को की ठंडी हवा के झोंकों के सहारे झील के सीने पर तैर रही थीं। मैं वहीं लगी एक बेंच पर बैठ गया। पास में ही एक आदमी अपने छोटे-से बेटे के साथ फुटबॉल खेल रहा था। वह उसे समझा रहा था कि बॉल को साइडआर्म थ्रो नहीं करना है बल्कि कंधे के ऊपर से फेंकना है। अचानक मेरी नज़र ऊपर आसमान की तरफ़ गई तो मुझे दो पतंगें उड़ती हुई दिखाई दीं। लम्बी नीली पूँछों वाली लाल पतंगें। वे बहुत ऊँची उड़ रही थीं – पार्क के पश्चिमी छोर पर लगे पेड़ों से भी ज़्यादा ऊँची, पवन-चक्कियों से भी ऊपर।

मैं उस बात के बारे में सोचने लगा जो रहीम खान ने फोन रखने से ठीक पहले

कही थी। फोन रखते-रखते ही कही थी, जैसे कि पहले से सोचकर न रखी हो बल्कि फोन रखते-रखते अचानक ही दिमाग़ में आ गई हो। मैंने आँखें बंद कर लीं और इस बात की कल्पना करने लगा कि फोन के दूसरे सिरे पर रिसीवर थामे रहीम खान किस हालत में होंगे। मैंने देखा कि रहीम खान के होंठ थोड़े से खुले थे और सिर तकिए पर एक ओर को झुका हुआ था। रिसीवर कान से लगा हुआ था। और एक बार फिर उनकी अथाह काली आँखों में कुछ ऐसा था जो हमारे बीच एक अनकहे राज़ की ओर इशारा कर रहा था। फर्क सिर्फ़ इतना था कि इस बार मुझे पता था कि वह जानते थे। इतने बरसों में मुझे जिस बात का अंदेशा सताता रहा था, वह सही साबित हुआ था। वह सब जानते थे – अस्सेफ़ के बारे में, पतंग के बारे में, लिफाफों में बंद पैसों के बारे में, कड़कती बिजली जैसे काँटों वाली घड़ी के बारे में। उन्हें हमेशा से पता था।

'आ जाओ। फिर से अच्छा बनने का एक रास्ता है,' रहीम खान ने फोन रखने से ठीक पहले कहा था, इस तरह जैसे कि पहले से सोचा न हो बल्कि फोन रखते-रखते अचानक ही दिमाग़ में आ गया हो।

फिर से अच्छा बनने का रास्ता।

जब मैं घर लौटा तो देखा कि सोराया फ़ोन पर अपनी वालिदा से बात कर रही थी। "नहीं, ज़्यादा दिनों के लिए नहीं, अम्मी जान। एक हफ्ता, या शायद दो…हाँ, आप और बाबा आकर मेरे साथ रह सकते हैं।"

दो बरस पहले जनरल के दाहिने कूल्हे की हड्डी टूट गई थी। उन्हें फिर से माइग्रेन का दौरा पड़ा था और फिर से उन्होंने ख़ुद को अपने कमरे में बंद कर लिया था। दौरा ख़त्म होने के बाद जब वह उनींदी हालत में अधखुली आँखों के साथ बाहर निकले तो कारपेट के एक सिरे से उलझकर गिर पड़े। उनकी चीख सुनकर खाला जमीला रसोई से भागती हुई आईं। बाद में इस घटना के बारे में बात करते हुए वह सभी से यही कहतीं कि "ऐसी आवाज़ आई जैसे किसी झाड़ू का डंडा बीच में से टूट गया हो।" हालाँकि डॉक्टर का कहना था कि उन्हें ऐसी किसी आवाज़ के सुनाई देने का सवाल ही नहीं उठता था। जनरल के कूल्हे की हड्डी टूटने की घटना ने –और उसके बाद होने वाली सभी जटिलताओं, जैसे कि निमोनिया, ब्लड पॉइज़निंग (रक्त विषाक्तता), लम्बे अरसे तक नर्सिंग होम में रहने ने– खाला जमीला की उन शिकायतों के सिलसिले को ख़त्म कर दिया था जो लम्बे अरसे से वह अपनी सेहत को लेकर करती आ रही थीं। अब एक नया सिलसिला शुरू हो गया था जनरल की सेहत के बारे में बात करने का। अब जो कोई भी उनकी बात सुनने को राज़ी होता उसे वह बतातीं कि डॉक्टर्स कह रहे थे कि जनरल साहब की किडनियाँ जवाब देने वाली थीं। "मगर वे ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि उन्होंने कभी अफ़ग़ान किडनियाँ देखी नहीं हैं, बताइए गलत कह रही हूँ क्या मैं?" वह बड़े फख्र से कहतीं। मगर जनरल के अस्पताल में रहने के दौरान की जो बात मुझे सबसे ज़्यादा याद है, वह यह कि कैसे खाला जमीला जनरल के सो जाने तक इंतज़ार करती थीं और फिर अपनी मीठी आवाज़ में उनके लिए गीत गाती थीं, काबुल

में गाए जाने वाले गीत, जो बाबा के पुराने ट्रांजिस्टर रेडियो पर बजते थे।

जनरल की कमज़ोरी –और वक़्त– ने उनके और सोराया के रिश्ते की तल्खी भी कम कर दी थी। अब वे अक्सर साथ-साथ सैर पर जाते थे, शनिवार को लंच पर जाते थे, और कभी-कभी जनरल जाकर सोराया की कुछ कक्षाओं में भी बैठ जाया करते थे। अपना वही चमकीला पुराना ग्रे सूट पहनकर और अपनी छड़ी को गोद में रखकर वह कक्षा में सबसे पीछे बैठते थे, और सोराया को अपना मनपसंद काम करते देखकर मंद-मंद मुस्कराते थे। कभी-कभी तो वह उसकी कही कुछ बातों को अपनी डायरी में दर्ज भी कर लेते थे।

बहरहाल, उस रात सोराया और मैं बिस्तर पर लेटे थे, उसकी पीठ मेरी छाती से सटी हुई थी और मेरा चेहरा उसके बालों में दबा हुआ था। मुझे वह वक़्त याद आने लगा जब हम रति-क्रिया (लव-मेकिंग) का सुख लेने के बाद माथे से माथा सटाकर लेटते थे, एक-दूसरे को चूमते थे और एक-दूसरे से उस नन्हें मेहमान की बाबत खुसफुस करते थे जिसके जल्द ही हमारी ज़िन्दगी में आने की हमें उम्मीद थी। उसके नन्हें-नन्हें पैर, उसकी पहली-पहली मुस्कान, उसके मुँह से फूटने वाले पहले-पहले बोल, उसके पहले-पहले क़दम; इन्हीं सब चीज़ों के बारे में बात करते-करते न जाने कब हमारी आँख लग जाती और हम सपनों की दुनिया की सैर पर निकल जाते। अभी भी कभी-कभी हमारे बीच वह खुसफुस होती है, मगर अब बातों के विषय अलग होते हैं, अब हम स्कूल के विषय में, मेरी नयी किताब के विषय में, या पार्टी में किसी की वाहियात ड्रेस के विषय में खुसफुसाते हैं। हमारी रति-क्रिया (लव-मेकिंग) अभी भी अच्छी थी, बल्कि कभी-कभी तो अच्छी से भी अच्छी, मगर कभी-कभी मुझे यह सोचकर बड़ी राहत महसूस होती थी कि चलो ख़त्म हुआ, कि चलो अब मैं इस अहसास से दूर जाने के लिए, इसे भूलने के लिए आज़ाद था (भले कुछ वक़्त के लिए ही सही) कि अभी-अभी जो हमने किया वो कितना निस्सार था। सोराया ने कभी ऐसा कहा नहीं, मगर मुझे मालूम था कि कभी-कभी उसे भी ऐसा ही महसूस होता था। उन रातों को हम बिस्तर के अपने-अपने हिस्से में लेटते और अपने-अपने शफी (मुक्तिदाता) की शरण में चले जाते। सोराया का शफी नींद थी। मेरा, किताब।

वह रात मेरी पूरी आँखों ही में कटी। रात भर मैं बिस्तर में लेटा-लेटा खिड़की से भीतर आ रही चाँदनी की दीवार पर बनती जालीदार परछाईं को ही देखता रहा। पौ फटने से थोड़ा पहले किसी वक़्त मेरी आँख लग गई। और मैंने सपना देखा कि हसन बर्फ़ में दौड़ रहा है, उसके हरे चपन का किनारा उसके पीछे घिसट रहा है, उसके काले रबर के जूतों के नीचे बर्फ़ चरमरा रही है। वह मुड़कर, मेरी ओर देखकर चिल्लाते हुए कह रहा है, "आपकी ख़ातिर, एक बार नहीं हज़ारों बार!"

एक हफ्ते बाद, मैं पाकिस्तानी इंटरनेशनल एयरलाइंस की एक फ्लाइट में खिड़की वाली सीट पर बैठा था और दो वर्दीधारी एयरलाइन कर्मचारियों को व्हील चॉक हटाते हुए देख रहा था। विमान टर्मिनल से बाहर निकला और जल्द ही हम बादलों को चीरते

हुए हवा में उड़ रहे थे। मैंने अपना सिर खिड़की से टिका दिया। सोने की कोशिश करने लगा, मगर नींद नहीं आई।

पंद्रह

पेशावर में विमान से उतरने के तीन घंटे बाद, मैं धुएँ से भरी एक टैक्सी की फटे हुए कवर वाली पिछली सीट पर बैठा था। उस टैक्सी का ड्राइवर घोलम नाम का ठिगना-सा आदमी था। वह पसीने से लथपथ था और लगातार सिगरेट पिए जा रहा था। रास्ते भर वह बहुत ही लापरवाही से गाड़ी चलाता रहा, कितनी ही बार दूसरी गाड़ियों से हमारी टैक्सी की टक्कर होते-होते बची। पूरे रास्ते न उसकी सिगरेट बंद हुई, न उसकी ख़राब ड्राइविंग बंद हुई, और न ही उसका मुँह बंद हुआ। वह जो एक बार शुरू हुआ तो फिर उसकी ज़बान की रेल ने बंद होने का नाम ही नहीं लिया। और बोलने के लिए उसका मनपसंद विषय था – अफ़ग़ानिस्तान। तुम्हारे वतन में जो हो रहा है वो बहुत ही बुरा है, यार/ मैं क्या बोलता हूँ कि अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान के लोग तो भाई-भाई हैं/ मुस्लिमों को ही मुस्लिमों की मदद करनी पड़ेगी, तभी...”

थोड़ी देर बाद मैंने उसकी बातों का जवाब देना बंद कर दिया और चुपचाप गर्दन हिलाता रहा। मुझे पेशावर अच्छी तरह याद था, क्योंकि बाबा और मैंने 1981 में यहाँ कुछ महीने बिताए थे। हम सैनिक छावनी और उसके आलीशान, ऊँची दीवारों वाले घरों को पीछे छोड़कर अब जमरूद रोड पर पश्चिम की ओर बढ़ रहे थे। पेशावर की पीछे छूटती चिल्ल-पौं और भीड़-भाड़ ने मुझे काबुल के इससे भी ज़्यादा भीड़-भाड़ और शोरगुल भरे इलाकों की याद दिला थी, खासकर कोचेह मोरघा या चिकन बाज़ार की, जहाँ जाकर हसन और मैं चटनी में डूबे आलू और चेरी का पानी ख़रीदा करते थे। सड़कें साइकिल सवारों, पैदल चलने वालों और नीला धुआँ छोड़ते रिक्शाओं से भरी हुई थीं। पूरे शहर में ऐसी ही सँकरी और भीड़ भरी सड़कों और गलियों का भूलभुलैयानुमा जाल बिछा हुआ था। इन सड़कों और गलियों के दोनों ओर सट-सटकर बने स्टाल्स में पतले कम्बल ओढ़कर बैठे हुए दाढ़ी वाले दुकानदार जानवरों की खाल से बने लैंपशेड, कालीन, कढ़ाई वाले शॉल और तांबे के सामान बेच रहे थे। पूरा शहर तरह-तरह के शोर-ओ-गुल से आबाद था। मेरे कानों में दुकानदारों के ऊँचे स्वर में चिल्लाने की आवाज़ें, ज़ोर-ज़ोर से बजते हिंदी गानों की आवाज़ें, रिक्शाओं के इंजनों और हॉर्न वगैरह की आवाज़ें और घोड़ा-गाड़ियों की झंकारें; सब एक साथ गूँज रही थीं। तमाम तरह की तेज़ गंधें –अच्छी भी और ख़राब भी– आपस में गड्ड-मड्ड होकर पैसेंजर सीट की खिड़की से भीतर आ रही थीं और मेरे नथुनों से टकरा रही थीं। इन गंधों में पकौड़ों और निहारी (जो कि बाबा को बहुत पसंद थी) की मसालेदार ख़ुश्बू भी थी, डीजल के धुएँ की तीखी गंध भी थी, कचरे और टट्टी-पेशाब की बदबू भी थी, और सड़ी-गली चीज़ों की सड़ांध भी थी।

पेशावर यूनिवर्सिटी की लाल ईंटों वाली इमारतों से थोड़ा आगे बढ़ने पर हम उस

इलाके में जा पहुँचे, जिसे मेरा बातूनी ड्राइवर ‘अफ़ग़ान टाउन’ कहता था। वहाँ मिठाई की दुकानें थीं, कालीन बेचते दुकानदार थे, कबाब की दुकानें थीं, धूल-मिट्टी से सने हाथों से सिगरेट बेचते बच्चे थे और छोटे-छोटे रेस्तरां थे, जिनकी खिड़कियों पर अफ़ग़ानिस्तान के नक्शे बने हुए थे। ये सब लोग स्थानीय सहायता एजेंसियों की मदद से अपनी गुज़र-बसर कर पा रहे थे। “तुम्हारे बहुत सारे भाई लोग इधर रहते हैं, यार। उनमें से कुछ ने कई तरह के काम-धंधे शुरू किए हैं, मगर ज़्यादातर बहुत ग़रीब हैं।” मेरे ड्राईवर ने अफ़सोस जताते हुए कहा। “बहरहाल, हम बस पहुँचने ही वाले हैं।”

मैं रहीम खान से उस आख़िरी मुलाक़ात के बारे में सोचने लगा जो 1981 में हुई थी। जिस रात बाबा और मैं काबुल छोड़ने वाले थे, उसी रात वह हमें अलविदा कहने आए थे। मुझे याद है कि कैसे बाबा और रहीम खान बरामदे में एक-दूसरे के गले लगकर रो रहे थे। अमेरिका आने के बाद भी बाबा का उनसे संपर्क बना हुआ था। वे लोग साल में चार-पाँच बार तो बात करते ही थे, और इस दौरान कभी-कभी आख़िर में बाबा रिसीवर मुझे थमा देते थे। आख़िरी बार रहीम खान से मेरी बात बाबा के गुज़रने के कुछ ही दिनों बाद हुई थी। बाबा के इंतकाल की ख़बर काबुल तक पहुँच गई थी और इसलिए उन्होंने फोन किया था। मगर हमारी कुछ ही मिनट बात हो पाई थी और कनेक्शन कट हो गया था।

ड्राइवर ने दो घुमावदार सड़कों के मिलने से बने और चहल-पहल से आबाद एक मोड़ पर खड़ी एक सँकरी इमारत के पास रिक्शा रोक दिया। मैंने ड्राइवर को पैसे दिए, अपना सूटकेस लिया और इमारत के पेचीदा नक्काशी वाले दरवाज़े की ओर बढ़ गया। इमारत में खुले हुए शटर वाली लकड़ी की बालकनियाँ थीं, जिनमें से कई पर कपड़े धूप में सूखने के लिए लटके हुए थे। मैं चरमराती सीढ़ियाँ चढ़कर दूसरी मंज़िल पर पहुँचा, फिर एक नाममात्र के रोशन गलियारे से होते हुए दाईं ओर के आख़िरी दरवाज़े के सामने पहुँचकर रुक गया। हाथ में थामे काग़ज़ को देखकर मैंने एक बार पक्का किया कि मैं सही पते पर आया था। फिर दरवाज़ा खटखटाया।

ज़रा देर बाद, चमड़ी और हड्डियों से बनी एक चीज़ ने –जो रहीम खान होने का आभास दे रही थी– दरवाज़ा खोला।

सैन जोस स्टेट में रचनात्मक लेखन विषय के हमारे एक टीचर ‘घिसी-पिटी कहावतों’ के बारे में कहा करते थे कि “उनसे वैसे ही बचना चाहिए जैसे लोग प्लेग से बचते हैं।” फिर ख़ुद ही अपने मज़ाक पर हँसने लगते थे। क्लास में बैठे सारे लड़के-लड़कियाँ भी हँसी में उनका साथ देते थे, मगर मुझे हमेशा लगता था कि इस तरह की कहावतों को बेकार ही बदनाम कर दिया गया था। क्योंकि अक्सर वे बिल्कुल सटीक होती हैं। मगर बदकिस्मती से इनकी सटीकता इनकी प्रकृति (ज़रूरत से ज़्यादा इस्तेमाल की जा चुकीं) के साए तले दबकर रह जाती है। मिसाल के लिए, ‘एलीफैंट इन द रूम’ (कमरे में हाथी) कहावत को ही ले लें। रहीम खान के साथ मेरे पुनर्मिलन के इन शुरुआती पलों को जितनी अच्छी तरह इस कहावत के माध्यम से बताया जा

सकता था, उतना किसी और कहावत के माध्यम से संभव नहीं था।

हम खिड़की के सामने वाली दीवार के साथ लगकर फर्श पर बिछे पतले गद्दे पर बैठे थे। खिड़की से झाँकने पर नीचे की शोर-शराबे भरी सड़क दिखाई पड़ती थी। खिड़की से आ रही सूरज की रोशनी नीचे फर्श पर बिछे अफ़ग़ानी कालीन पर पड़ रही थी। फोल्डिंग वाली दो कुर्सियाँ एक दूसरी दीवार से टिकी हुई थीं। एक कोने में ताम्बे का एक समोवर (चाय की केतली) रखा हुआ था। मैंने दो कप उठाए और समोवर में से उनमें चाय उड़ेली।

"आपने मुझे तलाशा कैसे?" मैंने पूछा।

"अमेरिका में किसी को ढूँढना मुश्किल नहीं है। मैंने अमेरिका का नक्शा ख़रीदा और उसमें से उत्तरी कैलिफ़ोर्निया के शहरों की जानकारी जुटा ली," उन्होंने कहा। "तुम्हें यूँ एक वयस्क आदमी के रूप में देखना अच्छा भी लग रहा है और हैरान भी कर रहा है।"

मैं मुस्करा दिया और शक्कर की तीन डलियाँ उठाकर अपने कप में डाल लीं। मगर उन्होंने अपनी चाय में न दूध डाला और न ही शक्कर। "बाबा को आपको बताने का मौका नहीं मिल पाया, मगर पंद्रह बरस पहले मैंने शादी कर ली थी।" हक़ीक़त यह थी कि तब तक कैंसर बाबा के दिमाग़ में इस कदर फ़ैल चुका था कि उन्हें चीज़ें याद रखने में बहुत मुश्किल होती थी।

"तुमने शादी कर ली? किससे?"

"उसका नाम सोराया ताहेरी है।" सोराया का नाम लेते ही मेरी आँखों के सामने उसका मेरे लिए फिक्रमंद चेहरा घूम गया। मेरे लिए राहत की बात यह थी कि घर पर वह अकेली नहीं थी।

"ताहेरी...किनकी साहबज़ादी हैं?"

मैंने बताया। उनकी आँखें चमक उठीं। "ओह, हाँ, याद आया। ये जनरल ताहेरी वही तो नहीं जिनका शरीफ़ जान की बहन से निकाह हुआ था? क्या नाम था उसका..."

"जमीला जान।"

"ठीक!" उन्होंने मुस्कराते हुए कहा। "काबुल में, मैं शरीफ़ जान को बहुत पहले से जानता था, उसके अमेरिका जाने से पहले से।"

"वह वहाँ सालों से INS के लिए काम कर रहे हैं। बहुत सारे अफ़ग़ान मामले संभालते हैं।"

"हूँ!" उन्होंने एक गहरी साँस छोड़ी। "तुम दोनों के बच्चे हैं?"

“नहीं।”

“ओह।” इसके आगे उन्होंने कुछ नहीं पूछा और घूँट-घूँट करके अपनी चाय ख़त्म की। रहीम खान की एक बहुत बड़ी ख़ूबी यह थी कि वह बहुत सारी बातें बिना बताए ही समझ जाते थे।

मैंने उन्हें बाबा के बारे में बहुत सारी बातें बताईं। उनकी नौकरी के बारे में, फ्ली बाज़ार के बारे में, और इस बारे में भी कि आख़िरी वक़्त में वह कितने ख़ुश थे। मैंने उन्हें अपनी पढ़ाई के बारे में बताया, और यह भी बताया कि मेरे अब तक चार उपन्यास छप चुके थे। यह सुनकर वह मुस्करा दिए और कहा कि उन्हें इस बात में कभी कोई शक नहीं था कि एक दिन मैं बड़ा किस्सा-गो (कहानीकार) बनूँगा। मैंने उन्हें यह भी बताया कि जो चमड़े की जिल्द वाली डायरी उन्होंने मुझे दी थी, उसे मैंने कहानियाँ लिख-लिखकर भर दिया था, मगर उन्हें उस डायरी के बारे में कुछ भी याद नहीं था।

फिर हमारी बातचीत तालिबान की तरफ़ मुड़ गई।

“क्या वे उतने ही बुरे हैं जितना मैंने उनके बारे में सुना है?” मैंने पूछा।

“नहीं, उससे भी ज़्यादा। बहुत ज़्यादा,” उन्होंने कहा। “वे आपको इंसान नहीं रहने देते।” उन्होंने अपनी दाहिनी आँख के ऊपर एक निशान की ओर इशारा किया, जहाँ उनकी घनी भौंह के बीच से लेकर ऊपर तक एक गहरा कट दिखाई पड़ रहा था। “1998 में, मैं गाज़ी स्टेडियम में बैठा एक फुटबॉल मैच देख रहा था। काबुल बनाम मज़ार-ए-शरीफ़ था शायद। और जाहिली की हद देखो कि खिलाड़ियों को शॉर्ट्स नहीं पहनने दिए गए थे, वे पाजामे पहनकर खेल रहे थे, क्योंकि उन जाहिलों (तालिबानियों) की नज़रों में शॉर्ट्स पहनना ‘अश्लीलता’ फैलाना था!” कहकर वह एक थकी हुई हँसी हँसे। “बहरहाल, जैसे ही काबुल की टीम ने एक गोल दागा, मेरे बग़ल में बैठे आदमी ने चिल्लाकर ख़ुशी का इज़हार किया और खिलाड़ियों को दाद दी। तभी अचानक वहाँ गलियारों में गश्त कर रहा एक नयी उम्र का दाढ़ी वाला लड़का, जिसकी शक्ल से लग रहा था कि उसकी उम्र बमुश्किल अठारह रही होगी, मेरे पास आया और अपनी कलाश्निकोव के बट से मेरे माथे पर एक ज़ोरदार वार कर दिया। और फिर बोला, ‘अगर दोबारा ऐसा किया तो मैं तेरी जीभ काट दूँगा, बूढ़े खच्चर!’ रहीम खान हाथ से उस निशान को सहलाने लगे। “मैं उसके दादा की उम्र का था, मेरा चेहरा मेरे ही ख़ून से भीग रहा था, और मैं उस कुत्ते के बच्चे से माफ़ी माँग रहा था।”

मैंने उनके कप में थोड़ी और चाय डाली। रहीम खान और कुछ देर बातें करते रहे, जिनमें से ज़्यादातर वे थीं जो मुझे पता थीं। कुछेक थीं जो नहीं पता थीं। जैसे कि उन्होंने मुझे बताया कि बाबा और उनके बीच हुए करार के मुताबिक़ वह 1981 से बाबा के घर में रह रहे थे। यह बात मुझे पता थी। हमारे काबुल छोड़ने से कुछ ही वक़्त पहले बाबा ने वह घर रहीम खान को ‘बेच’ दिया था। उस वक़्त बाबा को लगता था कि

अफ़ग़ानिस्तान में जो कुछ चल रहा था वह ज़्यादा दिन नहीं चलने वाला था और जल्द ही वज़ीर अकबर खान के उनके घर में पार्टियों और पगमन में पिकनिक के दिन निश्चित रूप से लौट आने वाले थे। इसलिए उन्होंने घर को उस दिन तक के लिए रहीम खान की निगरानी में सौंप दिया था।

रहीम खान ने मुझे बताया कि 1992 से 1996 के बीच जब काबुल पर उत्तरी गठबंधन का कब्ज़ा हुआ तो कैसे अलग-अलग गुटों ने काबुल के अलग-अलग हिस्सों को आपस में बाँट लिया। “अगर आपको कालीन ख़रीदने के लिए शर-ए-नौ सेक्शन से केरते-परवान जाना होता, तो आपको तमाम चौकियों को पार करके जाना होता और इस दौरान आपके सर पर लगातार इस बात का ख़तरा मँडराता रहता कि कहीं कोई स्नाइपर आपको गोली न मार दे या कोई आपको रॉकेट से न उड़ा दे। एक मोहल्ले से दूसरे मोहल्ले जाना हो तो वीसा लगता था। सच में। इसीलिए लोगों ने घर से निकलना बंद कर दिया था और हरदम यही दुआ करते थे कि अगला रॉकेट कहीं उनके घर पर न आ गिरे।” उन्होंने मुझे बताया कि कैसे लोगों ने घरों के भीतर ही भीतर अपनी-अपनी दीवारों में छेद बना-बनाकर एक ब्लॉक से दूसरे ब्लॉक तक आने-जाने का इंतज़ाम कर लिया था, ताकि उन्हें ख़तरनाक सड़कों से होकर न गुज़रना पड़े। काबुल के दूसरे हिस्सों में लोगों ने आने-जाने के लिए भूमिगत सुरंगें तैयार कर ली थीं।

“आपने काबुल छोड़ क्यों नहीं दिया?” मैंने पूछा।

“काबुल मेरा घर था। अब भी है।” वह मुस्कराए। “तुम्हें वह सड़क याद है जो तुम्हारे घर से क़िशला तक जाती थी, इस्तिक़ियाल स्कूल के बग़ल में बनीं फ़ौजी बैरकों तक?”

“हाँ।” वह स्कूल का शॉर्टकट रास्ता था। मुझे वह दिन याद हो आया जब हसन और मैं उस रास्ते से गुज़र रहे थे और बैरकों में मौजूद फौजियों ने हसन को उसकी वालिदा को लेकर चिढ़ाया था। उस घटना के बाद सिनेमाघर में बैठकर हसन कितना रोया था और कैसे मैंने अपना हाथ उसके गले में डालकर उसे दिलासा दिया था।

“जब तालिबान काबुल में दाख़िल हुआ और उसने उत्तरी गठबंधन को बाहर खदेड़ दिया, तो मैं ख़ुशी के मारे उस सड़क पर नाच रहा था,” रहीम खान ने कहा। “और यकीन जानो, ऐसा करने वाला मैं अकेला नहीं था। लोग चमन में, देह-मज़ांग में जश्न मना रहे थे, सड़कों पर तालिबान का इस्तकबाल कर रहे थे, उनके टैंकों पर चढ़ रहे थे और उनके साथ तस्वीरें खिंचवा रहे थे। लोग लगातार चलने वाली जंग से बहुत तंग आ चुके थे, रॉकेट, गोलीबारी और धमाकों से तंग आ चुके थे, गुलबुद्दीन और उसके साथियों को हर चलती-फिरती चीज़ पर गोली चलाते देखकर तंग आ चुके थे। गठबंधन ने काबुल को शोरावी से भी ज़्यादा नुक़सान पहुँचाया था। तुम्हें पता है, उन्होंने तुम्हारे बाबा के बनाए यतीमखाने को भी तबाह कर दिया था?”

“क्यों?” मैंने कहा। “वे किसी यतीमखाने को तबाह क्यों करेंगे?” मुझे वो दिन याद

आ गया जब यतीमखाने के शुभारम्भ वाले दिन मैं बाबा के पीछे बैठा था। हवा से बाबा की कैराकुल टोपी उड़ गई थी और सभी लोग हँस पड़े थे, फिर जब उन्होंने अपना भाषण ख़त्म किया तो सभी खड़े होकर तालियाँ बजाने लगे थे। और अब यह सिर्फ़ मलबे का एक और ढेर था। बाबा ने कितना पैसा खर्च किया था वो यतीमखाना बनाने के लिए। उसका नक्शा तैयार करने के लिए कितनी रातें जागे थे वह। कितने दौरे किए थे उन्होंने कंस्ट्रक्शन साइट के ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि हर ईंट, हर बीम और हर ब्लॉक बिल्कुल सही तरीक़े से लगे...। और एक झटके में उसे तबाह कर दिया गया!

"शोरावी के लड़ाकों के वहाँ पनाह लिए होने के चलते," रहीम खान ने कहा। "मैं बयान नहीं कर सकता, आमिर जान, कि उसके मलबे को हटाने पर कैसा हौलनाक मंज़र हमारी आँखों के सामने से गुज़रा था। जगह-जगह बच्चों के शरीर के कटे-फटे टुकड़े दबे पड़े थे।"

"तो जब तालिबान आया..."

"वे हमारे लिए नायकों की तरह थे," रहीम खान ने कहा। "हमें लगा कि चलो आख़िर-कार अमन-चैन कायम हुआ।"

"हाँ, उम्मीद बड़ी अजीब चीज़ है। आख़िर-कार अमन-चैन। मगर किस कीमत पर?" रहीम खान को खाँसी का एक भयंकर दौरा उठा और उनका सूखे काँटे जैसा शरीर बुरी तरह हिल गया। जब उन्होंने अपने रूमाल में थूका तो वह तुरंत लाल हो गया। मुझे लगा कि यह उस छोटे से कमरे में हमारे साथ पसीना बहा रहे हाथी को संबोधित करने का सबसे अच्छा समय था।

"आप कैसे हैं?" मैंने पूछा। "मेरा मतलब है, सच में, आप कैसे हैं?"

"मरने वाला हूँ," उन्होंने घरघराती आवाज़ में कहा। खाँसी का एक और दौरा। रूमाल में और ज़्यादा ख़ून। उन्होंने अपना मुँह पोंछा, अपनी आस्तीन से अपने पसीने से भीगे माथे को एक कनपटी से दूसरी कनपटी तक पोंछा और फिर मेरी तरफ़ एक सरसरी नज़र डाली।

जब उन्होंने 'न' में सिर हिलाया, तो मुझे पता चल गया कि उन्होंने मेरे चेहरे पर अगला सवाल पढ़ लिया था। "ज़्यादा वक़्त नहीं है," उन्होंने एक गहरी साँस ली।

"कितना?"

उन्होंने कंधे झटके। फिर से खाँसा। "मुझे नहीं लगता कि मैं इस गर्मी के मौसम की विदाई देख पाऊँगा," उन्होंने कहा।

"मैं आपको अपने साथ घर ले जाऊँगा। हम आपके लिए कोई अच्छा-सा डॉक्टर तलाशेंगे। वहाँ लगातार नए-नए इलाज खोजे जा रहे हैं। कई सारी नयी-नयी दवाएँ और थेरेपीज़ हैं वहाँ। हम आपके लिए कोई न कोई कारगर दवा या थेरेपी ढूँढ लेंगे और

उससे आपका इलाज हो जाएगा, आप ठीक हो जाएँगे...” मैं जो कह रहा था वह बेमानी था, और मुझे भी यह बात पता थी। मगर यह रोने से बेहतर था। अगर मैं यूँ बड़बड़ा नहीं रहा होता तो यकीकन रो पड़ता।

वह भाप के इंजन की तरह छुक-छुक करते हुए हँसने लगे। मैंने देखा कि उनके नीचे के कोने वाले दो दाँत नहीं थे। इससे ज़्यादा थकी हुई हँसी मैंने कभी नहीं सुनी थी। “देख रहा हूँ कि अमेरिका ने आपके भीतर वह आशावाद भर दिया है जिसने उसे इतना अज़ीम मुल्क बनाया है। यह बहुत अच्छी बात है। हम उदास और हताश लोग हैं, हम अफ़ग़ान, है न? अक्सर हम ज़रूरत से ज़्यादा ग़मखोरी में डूबे रहते हैं; ख़ुद पर तरस खाते रहने से ही फुर्सत नहीं मिलती हमें। हम नुक़सान के आगे, गम के आगे हथियार डाल देते हैं, इसे नियति मानकर मंज़ूर कर लेते हैं, इसे ज़िन्दगी की सच्चाई मानने लगते हैं, यहाँ तक कि इस बात पर भी यकीन करने लग पड़ते हैं कि यह ज़रूरी है। ‘ज़िन्दगी मिगज़रा,’ हम कहते हैं, ज़िन्दगी चलती रहती है। मगर मैं यहाँ किस्मत के आगे हथियार डालने वाली बात नहीं कर रहा हूँ, मैं व्यावहारिक बात कर रहा हूँ। मैं यहाँ बहुत से अच्छे डॉक्टर्स को दिखा चुका हूँ और सभी ने एक जैसा ही जवाब दिया है। मुझे उनकी बात पर यकीन है। अल्लाह की मर्ज़ी भी कोई चीज़ होती है।”

“सबकुछ इस बात पर निर्भर करता है कि हम क्या करते हैं और क्या नहीं करते हैं,” मैंने कहा।

रहीम खान फिर से हँस पड़े। “आपकी बात सुनकर मुझे आपके बाबा की याद आ गई। वह भी बिल्कुल ऐसी ही बातें करते थे। मुझे उनकी बहुत याद आती है। मगर यह अल्लाह की मर्ज़ी है, आमिर जान। आप मानो या न मानो, मगर यही सच है।” वह कुछ पलों के लिए रुके। “इसके अलावा, एक और वजह भी है जिसके चलते मैंने आपको यहाँ आने के लिए कहा। बेशक मरने से पहले मैं आपसे मिलना चाहता था, यह वजह तो थी ही, मगर कुछ और बात भी थी।”

“बताइए न, क्या बात है?”

“आप जानते हैं कि आप लोगों के काबुल से जाने के बाद इतने बरस मैं आपके बाबा के घर में ही रहा?”

“हाँ।”

“मैं अकेला नहीं रहा था वहाँ। हसन भी वहाँ मेरे साथ रहता था।”

“हसन!” मैंने कहा। मैं सोचने लगा कि आख़िरी बार कब यह नाम मेरे मुँह से निकला था? उस अपराध-बोध के नुकीले काँटे एक बार फिर मुझे चुभने लगे जिससे बचने के लिए मैंने वह सब किया था जो मुझे नहीं करना चाहिए था। ऐसा लगा मानो हसन का नाम लेने से कोई तिलिस्म टूट गया हो और वे काँटे मुझे फिर से पीड़ा देने के लिए आज़ाद हो गए हों। अचानक ही रहीम खान के उस छोटे से फ्लैट की हवा बहुत गाढ़ी, बहुत गर्म और नीचे वाली सड़क की गंध से लबरेज़ हो गई।

“मैंने पहले भी कई बार सोचा कि इस बारे में आपको लिखूँ और बताऊँ, मगर मैं इस बात को लेकर आश्वस्त नहीं था कि आप यह बात जानना चाहते हैं। क्या मैं गलत था?”

सच्चा जवाब था ‘नहीं’। झूठा जवाब था ‘हाँ’। मैंने बीच का रास्ता चुना। “पता नहीं।”

उन्हें फिर से खाँसी का दौरा उठा और फिर से उनका रूमाल लाल हो गया। जब वह थूकने के लिए नीचे झुके तो मैंने उनके सिर में कुछ फोड़े देखे, जिनके ऊपर शहद के रंग की पपड़ी जम गई थी। “मैंने आपको यहाँ इसलिए बुलाया है क्योंकि मैं आपसे कुछ माँगना चाहता हूँ। मैं आपसे अपने लिए कुछ करवाना चाहता हूँ। मगर इससे पहले कि यह बताऊँ कि वह क्या है, मैं आपको हसन के बारे में बताना चाहता हूँ। आप समझ रहे हैं न?”

“हाँ,” मैं हौले से बुदबुदाया।

“मैं आपको उसके बारे में बताना चाहता हूँ। मैं आपको सबकुछ बताना चाहता हूँ। सुनेंगे?”

मैंने हाँ में सिर हिला दिया।

फिर उन्होंने थोड़ी और चाय पी। अपना सिर दीवार से टिका लिया और बोलना शुरू किया।

सोलह

1986 में मेरे हसन को तलाशने हज़ाराजात जाने के पीछे कई सारी वजहें थीं। सबसे बड़ी वजह, अल्लाह मुझे माफ़ करे, यह थी कि मैं अकेला था। उस वक़्त तक मेरे ज़्यादातर दोस्त और रिश्तेदार या तो मारे जा चुके थे या वतन छोड़कर पाकिस्तान और ईरान भाग गए थे। मैं अब काबुल में, उस शहर में जहाँ मैंने अपनी पूरी ज़िन्दगी गुज़ारी थी, किसी को भी नहीं जानता था। मेरी जान-पहचान का हर शख़्स काबुल छोड़कर जा चुका था। मैं जब टहलते हुए करतेह परवान सेक्शन जाता, जहाँ पुराने दिनों में तरबूज़ बेचने वाले लोग बैठा करते थे, आपको वह जगह याद है? मगर मुझे वहाँ कोई भी जाना-पहचाना आदमी नज़र नहीं आता। कोई ऐसा नहीं मिलता जिससे दुआ-सलाम हो सके, जिसके साथ बैठकर चाय पी जा सके, जिससे थोड़ी गपशप हो सके। हर जगह बस रूसी फ़ौजी पेट्रोलिंग करते नज़र आते थे। इसीलिए धीरे-धीरे मैंने शहर जाना बंद कर दिया।

अब मेरा पूरा दिन आपके बाबा के घर में ही बीतता, ऊपर उनकी स्टडी में। मैं आपकी वालिदा की पुरानी किताबें पढ़ता, रेडियो पर ख़बरें सुनता, टीवी पर मार्क्सवादियों का प्रोपेगेंडा देखता। फिर नमाज़ पढ़ता, खाने के लिए कुछ बनाता, खाता, थोड़ा और पढ़ता, फिर नमाज़ अदा करता, और सोने चला जाता। सुबह उठता, नमाज़ पढ़ता, और फिर से वही दिनचर्या शुरू हो जाती।

और जैसे-जैसे मेरी गठिया की समस्या बढ़ती जा रही थी, वैसे-वैसे मेरे लिए घर को सही से रखना मुश्किल होता जा रहा था। मेरे घुटने और कमर हमेशा दर्द करती रहती थी। सुबह उठने के बाद, ख़ास तौर से सर्दियों के मौसम में, मुझे कम से कम एक घंटा लगता था अपने जोड़ों की जकड़न दूर करके ख़ुद को चलने-फिरने लायक बनाने में। मैं आपके बाबा के घर को भूतों का डेरा नहीं बनने देना चाहता था। आख़िर को हम सबने उस घर में बहुत अच्छे पल बिताए थे; बहुत सारी यादें जुड़ी थीं हमारी उससे, आमिर जान। यह सही नहीं होता। आपके बाबा ने उस घर को ख़ुद डिज़ाइन किया था, यह उनके लिए बहुत मायने रखता था, और इसके अलावा, जब आप लोग काबुल छोड़कर जा रहे थे तब मैंने उनसे वादा किया था कि मैं इस घर की देखभाल करूँगा। मगर अब बस यह घर था और मैं था...मैंने अपनी तरफ़ से पूरी-पूरी कोशिश की। मैंने कोशिश की कि टाइम-टाइम पर पौधों को पानी मिलता रहे, लॉन की घास बड़ी न होने पाए, फूलों की ठीक तरह देखभाल हो, जिन चीज़ों को मरम्मत की ज़रूरत थी उनकी मरम्मत होती रहे। मगर दिक्कत यह थी कि मैं अब जवान नहीं रहा था।

मगर फिर भी मैं किसी तरह सबकुछ मैनेज करता रहता। कम से कम कुछ और वक़्त तक। मगर जब आपके बाबा के इंतकाल की ख़बर मुझे मिली...पहली बार,

पहली बार मैंने उस घर में घनघोर अकेलापन महसूस किया। सहन न किया जा सकने वाला खालीपन।

इसीलिए एक दिन मैंने अपनी ब्यूक में डीज़ल भरवाया और हज़ाराजात की तरफ़ चल दिया। मुझे याद आया कि अली और हसन के घर से चले जाने के बाद आपके बाबा ने मुझे बताया था कि वह और हसन बामियान के बाहर एक छोटे से गाँव में रहने लगे थे। वहाँ अली का कोई चचेरा भाई रहता था शायद। मुझे कोई अंदाज़ा नहीं था कि हसन अभी भी वहाँ होगा या नहीं, या किसी को उसके ठौर-ठिकाने के बारे में कुछ पता भी होगा। आख़िर को उन दोनों को यहाँ से गए दस बरस बीत चुके थे। अब तक (1986 में) तो हसन जवान हो चुका होगा, बाईस, या शायद तेईस बरस का। बशर्ते कि वह अब तक ज़िन्दा होता। मेरा सोचना बेबुनियाद नहीं था क्योंकि तब तक शोराबी, उसने हमारे वतन का जो हाल किया है उसके लिए अल्लाह उसे और उसके साथियों को दोजख की आग में जलाए, हमारे कितने ही नौजवानों को मौत के घाट उतार चुका था। वैसे, मुझे आपको यह बताने की ज़रूरत तो नहीं है, इस बारे में तो सारी दुनिया जानती है।

मगर अल्लाह की मेहरबानी से मुझे वहाँ हसन का पता चल गया। बहुत ही कम खोजबीन करनी पड़ी मुझे, मैंने बस बामियान में कुछ लोगों से कुछ सवाल पूछे और लोगों ने मुझे उसके गाँव का पता बता दिया। मुझे उसका नाम याद नहीं आ रहा अभी, या पता नहीं कोई नाम था भी या नहीं। मगर मुझे यह याद है कि वह गर्मियों का दिन था, चिलचिलाती धूप सबकुछ झुलसा देने पर आमादा थी, और मैं एक ऐसी ऊबड़-खाबड़, धूल भरी कच्ची सड़क पर गाड़ी चला रहा था जिसके दोनों तरफ़ कुछ भी नहीं था, सिवाए धूप से झुलसी हुईं झाड़ियों, काँटेदार पेड़ों के बगैर पत्ते वाले टेढ़े-मेढ़े तनों, और सूखी हुई घास के। चलते-चलते मुझे सड़क के किनारे एक खच्चर की सड़ी हुई लाश पड़ी दिखाई दी। फिर थोड़ा आगे जाकर एक मोड़ मुड़ते ही मुझे उस उजाड़-बंजर ज़मीन के बीचों-बीच मिट्टी के कुछेक घरों की बसाहट दिखाई दी। उन घरों के चारों ओर दूर-दूर तक कोई और बस्ती या ज़िन्दगी का कोई नाम-ओ-निशान मौजूद नहीं था, सिर्फ़ और सिर्फ़ आकाश का अनंत विस्तार और ऊँची-नीची पहाड़ियाँ।

बामियान में लोगों ने मुझसे कहा था कि गाँव में मुझे हसन का घर ढूँढने में कोई मुश्किल नहीं होगी, क्योंकि पूरे गाँव में एक उसी का घर था जिसमें चारदीवारी से घिरा एक बाग़ीचा था। वह एक छोटा-सा मकान था, जिसे मकान कहना भी जायज़ नहीं था, एक सजी-सँवरी झोपड़ी ही कही जा सकती थी ज़्यादा से ज़्यादा। उसके चारों ओर मिट्टी की एक ज़रा-सी ऊँची चारदीवारी थी, जिसमें ढेर सारे छेद थे। बाहर सड़क पर कुछ बच्चे खेल रहे थे। उनके पाँवों में जूते-चप्पल जैसी कोई चीज़ नहीं थी और खिलौने के नाम पर एक फटी हुई टेनिस की गेंद थी जिसे वे पेड़ की सूखी टहनियों को तोड़कर बनाए गए डंडों से मारकर खेल रहे थे। जब मैंने हसन के घर के बाहर पहुँचकर गाड़ी रोकी और इंजन बंद किया तो सब बच्चे एकटक मुझे ही देखने लगे। मैंने लकड़ी के छोटे-से फाटक पर दस्तक दी और फिर उसे ठेलकर भीतर एक छोटे से आँगन में

दाख़िल हुआ, जिसमें एक सूखे हुए स्ट्रॉबरी पैच और एक बिना पत्तियों वाले नींबू के पेड़ को छोड़कर और ज़्यादा कुछ नहीं था। आँगन के एक कोने में बबूल के एक पेड़ की छाया में एक तंदूर बना था, जिसके पास एक आदमी उकड़ू बैठा हुआ था। उसके सामने गूंथा हुआ आटा रखा था, जिसकी छोटी-छोटी लोइयाँ बनाकर और उन लोइयों को लकड़ी के एक बड़े स्पेटुला पर रखकर वह उन्हें तंदूर की अंदरूनी दीवारों पर चिपकाता जा रहा था। जैसे ही उसने मुझे देखा, आटा और स्पेटुला नीचे रख दिया और दौड़कर मेरे पास आया और मेरे हाथों को बेतहाशा चूमना शुरू कर दिया। आख़िर-कार मुझे ही उसे ऐसा करने से रोकना पड़ा।

"ज़रा ठीक से देखने तो दो तुम्हें," मैंने कहा। वह थोड़ा पीछे हट गया। उसने इतना लम्बा कद निकाला था कि मैं पंजों के बल खड़ा होकर भी उसकी ठुड्डी तक ही पहुँच पा रहा था। बामियान की धूप ने उसकी चमड़ी को सख्त बना दिया था और बचपन की तुलना में उसकी रंगत थोड़ी ज़्यादा गहरी हो गई थी। इसके अलावा, उसने अपने आगे के कुछ दाँत भी खो दिए थे। और उसकी ठुड्डी पर दाढ़ी के चंद बाल उग आए थे। इसके अलावा बाक़ी सब जस का तस था – वे ही छोटी-छोटी हरी आँखें, ऊपरी होंठ पर कटे का वही निशान, वही गोल चेहरा, वही दिलकश मुस्कान।

वह मुझे घर के अन्दर ले गया। वहाँ एक कोने में एक नयी उम्र की गोरी रंगत वाली हज़ारा लड़की शॉल सिल रही थी। उसे देखकर समझ आया कि वह उम्मीद से थी। "यह मेरी खानुम (बीवी) है, रहीम खान साहब," हसन ने फख्र से कहा। "इसका नाम फरज़ाना जान है।" वह एक बेहद शर्मीली लड़की थी और इतनी बा-अदब कि फुसफुसाहट से ज़रा ही ऊँचे स्वर में बोलती थी और जितनी देर मैं वहाँ खड़ा रहा, उसने मुझसे नज़रें मिलाकर बात नहीं की; उसकी नज़रें नीचे ही झुकी रहीं। मगर जिस तरह से वह हसन को देखती थी, हसन ख़ुद को किसी सल्तनत के शहंशाह से कम महसूस नहीं करता होगा।

"ख़ुशख़बरी कब तक मिलने वाली है?" जब हम सब लोग बैठ गए, तब मैंने पूछा। कमरे में कुछ भी नहीं था, बस एक फटा हुआ गलीचा, कुछ बर्तन, एक जोड़ी गद्दे और एक लालटेन थी।

"इंशाअल्लाह, इन्हीं सर्दियों में," हसन ने कहा। "मैं दुआ कर रहा हूँ कि लड़का हो, जो मेरे बाबा का नाम आगे बढ़ाए।"

"तुम अली की बात कर रहे हो न, कहाँ है वह?"

हसन ने नज़रें नीची कर लीं। उसने बताया कि अली और उसका चचेरा भाई, जो उस घर का मालिक था, दो साल पहले बामियान के बाहर एक बारूदी सुरंग फटने से मारे गए थे। बारूदी सुरंग। क्या मरने का इससे ज़्यादा अफ़ग़ानी तरीक़ा कोई और हो सकता है, आमिर जान? और पता नहीं क्यों, मगर मुझे लगा कि यकीनन यह अली का दाहिना पैर ही रहा होगा –उसका मुड़ा हुआ पोलियो वाला पैर– जिसने आख़िर-कार

उसे धोखा दिया होगा और बारूदी सुरंग पर पड़ गया होगा। अली की मौत की ख़बर सुनकर मेरे दिल को बहुत तकलीफ़ हुई। आप जानते ही हैं कि आपके बाबा और मैं एक साथ बड़े हुए थे, और जब से मैंने होश सँभाला, तब से अली को उनके साथ ही पाया। मुझे याद है वह साल जब अली को पोलियो हुआ था और वह मरते-मरते बचा था। उस वक़्त हम लोग बहुत छोटे-छोटे थे। तब आपके बाबा दिन भर घर में रोते हुए घूमते थे।

फरज़ाना ने हमारे लिए बीन्स, शलजम और आलू का शोरवा बनाया। हमने अपने-अपने हाथ धोए और तंदूर से ताज़ा नान निकालकर शोरवा में डुबोया। महीनों बाद मैंने इतना अच्छा खाना खाया था। खाना खाते-खाते ही मैंने हसन से काबुल चलने की बात कही। मैंने उसे आपके बाबा के घर के बारे में बताया, यह भी बताया कि कैसे मेरे लिए अकेले उस जगह को संभालना मुश्किल हो रहा था। मैंने उससे कहा कि मैं उसे अच्छी तनख्वाह दूँगा और वह और उसकी खानुम वहाँ आराम से रहेंगे। वे दोनों एक-दूसरे की तरफ़ देखने लगे, मगर कहा कुछ नहीं। खाने के बाद जब हम हाथ धोकर उठ गए, तब फ़रज़ाना ने हमारे सामने अंगूर लाकर रख दिए। और तब हसन ने कहा कि अब वह गाँव ही उसका घर था; उसने और फरज़ाना ने वहाँ अपनी एक दुनिया बसा ली थी।

"और यहाँ से बामियान बहुत नज़दीक है। वहाँ हमारे बहुत से जान-पहचान के लोग हैं। मुझे माफ़ कर दीजिए, रहीम खान साहब। मैं दुआ करता हूँ कि आप मेरी मुश्किल समझेंगे।"

"बेशक," मैंने कहा। "तुमने ऐसा कुछ भी नहीं किया है कि तुम्हें माफ़ी माँगनी पड़े। मैं तुम्हारी मुश्किल समझता हूँ।"

इसके बाद फ़रज़ाना ने हमारे लिए चाय बनायी। चाय पीते-पीते हसन आपके बारे में पूछने लगा। मैंने उसे बताया कि आप अमेरिका में थे, और यह भी कहा कि मुझे भी आपके बारे में बहुत ज़्यादा जानकारी नहीं थी। हसन के मन में आपको लेकर इतने सारे सवाल थे कि क्या कहूँ। क्या आपकी शादी हो गई थी? क्या आपके बच्चे थे? आपका कद कितना ऊँचा हो गया था? क्या आप अब भी पतंग उड़ाते थे और सिनेमा देखने जाते थे? क्या आप ख़ुश थे? उसने बताया कि उसने बामियान में एक बूढ़े फारसी टीचर से दोस्ती कर ली थी, जिसने उसे लिखना-पढ़ना सिखा दिया था। उसने मुझसे पूछा कि अगर वह आपके नाम एक ख़त लिखकर दे तो क्या मैं उसे आप तक पहुँचा दूँगा? और क्या मुझे लगता था कि आप उसके ख़त का जवाब देंगे? आपके बाबा के साथ फोन पर हुई बातचीतों के ज़रिए मुझे जो कुछ भी आपके बारे में पता चला था, वो सब मैंने उसे बता दिया, मगर फिर भी मेरे पास उसके ज़्यादातर सवालों के जवाब नहीं थे। फिर उसने मुझसे आपके बाबा के बारे में पूछा। जब मैंने बताया, तो हसन ने अपना चेहरा अपनी हथेलियों में छिपा लिया और रोने लगा। वह पूरी रात बच्चों की तरह रोता रहा।

उन दोनों ने ज़िद करके मुझे रात वहीं रुकने के लिए राज़ी कर लिया। फरज़ाना ने

मेरे लिए एक खाट बिछा दी और सिरहाने एक गिलास पानी रख गई, ताकि रात में अगर मुझे प्यास लगे तो मैं पी सकूँ। पूरी रात मुझे फरज़ाना के फुसफुसाकर बात करने और हसन के सुबकने की आवाज़ें सुनाई पड़ती रहीं।

सुबह उठने पर हसन ने मुझे बताया कि उसने और फरज़ाना ने मेरे साथ काबुल जाने का फैसला कर लिया था।

“मुझे यहाँ आना ही नहीं चाहिए था,” मैंने कहा। “तुम सही थे, हसन जान। यहाँ तुम्हारी जमी-जमाई ज़िन्दगी है। यह बिल्कुल ही नाजायज़ बात है कि मैं अचानक आकर खड़ा हो गया और तुमसे सबकुछ छोड़कर साथ चलने को कह दिया। माफ़ी तो मुझे तुमसे माँगनी चाहिए।”

“पीछे छोड़ जाने को हमारे पास ऐसा कुछ ख़ास नहीं है, रहीम खान साहब।” उसकी आँखें अब भी लाल और सूजी हुई थीं। “हम आपके साथ चलेंगे। हम उस घर की देखभाल में आपकी मदद करेंगे।”

“एक बार फिर सोच लो।”

“सोच लिया,” उसने कहा और सर झुका लिया। “आगा साहब मेरे लिए मेरे दूसरे बाबा थे...अल्लाह उन्हें जन्नत बख्शे।”

उन लोगों के पास जो नाममात्र का सामान था, उसे उन्होंने कुछ फटे-पुराने कपड़ों के बीच रखा और चारों कोनों को पकड़कर गाँठ लगा दी। फिर हमने उस गठरी को गाड़ी में लाद दिया। हसन घर की दहलीज़ पर कुरआन हाथ में लेकर खड़ा हो गया। हम सब ने बारी-बारी से उसे चूमा और उसके नीचे से गुज़रे। फिर हम काबुल के लिए रवाना हो गए। मुझे याद है, जब मैंने गाड़ी आगे बढ़ाई तो हसन मुड़कर एक आख़िरी बार अपने घर को देखने लगा। जब हम काबुल में आपके बाबा के घर पहुँचे, तो हसन ने घर के भीतर आकर रहने से इंकार कर दिया। “मगर तमाम कमरे खाली पड़े हैं, हसन जान। कोई उनमें रहने वाला नहीं है,” मैंने कहा।

मगर वह नहीं माना। बोला कि बात इहितराम की है, आदर की है। उसने और फरज़ाना ने अपना सामान उसी मिट्टी की कोठरी में रख लिया जिसमें वह पैदा हुआ था। मैंने उससे बहुत मिन्नतें कीं कि चलकर ऊपर के माले पर बने मेहमानों के कमरे में रहे, मगर हसन कुछ भी सुनने को तैयार नहीं हुआ। “आमिर आगा क्या सोचेंगे?” उसने मुझसे कहा। “लड़ाई ख़त्म होने के बाद जब वह वापस काबुल लौटेंगे और देखेंगे कि मैंने घर में उनकी जगह ले ली है तो वह क्या सोचेंगे?” फिर, आपके बाबा की मातमपुरसी के लिए हसन ने अगले चालीस दिनों तक सिर्फ़ काले कपड़े ही पहने।

मैं नहीं चाहता था कि वे दोनों घर के काम करें, मगर उन्होंने मेरी एक न सुनी और खाना पकाने से लेकर साफ़-सफाई तक सारे काम अपने हाथ में ले लिए। हसन ने बगीचे में फूलों की देखभाल शुरू कर दी, पौधों को पानी देना शुरू कर दिया, पीली पड़ रही पत्तियों को हटाया, घास काटी, और गुलाब के नए पौधे लगाए। दीवारों की

रंगाई-पुताई की। जिन कमरों में सालों से कोई सोया नहीं था, उन कमरों को खोलकर उसने उन्हें बुहारा। जिन गुसलखानों में कोई बरसों से नहाया नहीं था, उन्हें उसने साफ़ किया। ऐसा लग रहा था जैसे वह घर को किसी की घर-वापसी के लिए तैयार कर रहा हो। आपको अपने बाबा की लगाई मकई की कतार के पीछे की वह दीवार याद है, आमिर जान? आप और हसन उसे क्या कहते थे? 'बीमार मकई की दीवार'? उस बसंत की शुरुआत में एक रात एक रॉकेट ने उस दीवार के एक हिस्से को पूरी तरह तबाह कर दिया था। हसन ने उस दीवार को फिर से खड़ा किया, अपने हाथों से, ईंट-दर-ईंट। अगर वह वहाँ नहीं होता तो पता नहीं मैं कैसे वहाँ रह पाता। फिर बसंत के आख़िर में फरज़ाना ने एक मरी हुई बच्ची को जन्म दिया। हसन ने बच्ची के बेजान चेहरे को चूमा और हमने उसे पिछवाड़े में, गुलाब की झाड़ियों के पास दफना दिया और उस छोटी-सी क़ब्र को चिनार की सूखी पत्तियों से ढँक दिया। मैंने उसके लिए दुआ पढ़ी। फरज़ाना दिन भर कोठरी से बाहर नहीं निकली और बिलख-बिलखकर रोती रही। किसी माँ को इस तरह विलाप करते सुनना दिल को बुरी तरह झकझोर देता है, आमिर जान। मैं अल्लाह से दुआ करता हूँ कि आपको कभी यह विलाप न सुनना पड़े।

उस घर की दीवारों के पार जंग चल रही थी। मगर हम तीनों ने आपके बाबा के घर में अपनी एक छोटी-सी प्यारी-सी दुनिया बसा ली थी। 1980 के दशक के आख़िरी सालों में मेरी नज़र कमज़ोर होनी शुरू हो गई थी, तो मेरी दरख़्वास्त पर हसन मुझे आपकी वालिदा की किताबें पढ़कर सुनाता था। हम बरामदे में स्टोव के बग़ल में बैठ जाते और हसन मुझे 'मसनवी' या 'खय्याम' को पढ़कर सुनाता। उधर रसोई में फरज़ाना हमारे लिए खाना पका रही होती थी। हर सुबह हसन गुलाब की झाड़ियों के क़रीब बनी उस छोटी सी क़ब्र पर एक फूल रखना नहीं भूलता था।

1990 की शुरुआत में फरज़ाना फिर से उम्मीद से हो गई। उसी साल, गर्मियों के मौसम की एक सुबह को आसमानी रंग का बुरका ओढ़े एक औरत ने बाहर वाले फाटक पर दस्तक दी। मैं जब फाटक पर पहुँचा तो देखा कि वह बुरी तरह लड़खड़ा रही थी, ऐसा मालूम हो रहा था जैसे उसमें अपने पैरों पर खड़े होने तक की ताक़त नहीं बची थी। मैंने उससे कई बार पूछा कि उसे क्या चाहिए, मगर उसने कोई जवाब ही नहीं दिया।

"कौन हैं आप?" मैंने एक बार फिर पूछा। मगर जवाब देने की बजाए वह धड़ाम से वहीं गिर पड़ी। मैंने चिल्लाकर हसन को बुलाया और उसकी मदद से उस औरत को घर के अन्दर लेकर आया। हमने उसे बैठक में सोफे पर लिटा दिया और उसका बुरका हटाया। वह एक पोपले मुँह वाली औरत थी, जिसके बाल सफ़ेद हो चुके थे और बाँहों पर घाव थे। ऐसा लगता था जैसे उसने कई दिनों से कुछ न खाया हो। मगर सबसे बुरी हालत थी उसके चेहरे की। किसी ने चाकू से बड़े ही बेरहम ढंग से उसका हुलिया बिगाड़ा था...आमिर जान; आढ़े-तिरछे जाने कितने ही वार किए थे ज़ालिम ने। गहरे-गहरे घाव लगे थे चेहरे पर। एक घाव तो गाल की हड्डी से लेकर ऊपर माथे तक गया था

और उसने रास्ते में आने वाली उसकी बाईं आंख को भी नहीं बख्शा था; आँख फूट गई थी। बहुत ही वीभत्स नज़ारा था उस चेहरे का। मैंने उसकी भौंहों को गीले कपड़े से पोंछा तो उसने आँखें खोल दीं। "हसन कहाँ है?" वह कमज़ोर आवाज़ में बुदबुदाई।

"मैं यहीं हूँ," हसन ने कहा। उसने उस औरत का हाथ अपने हाथ में लेकर नरमी से दबाया।

उस औरत की सलामत आँख हसन की ओर उठ गई। "मैं यह देखने के लिए बहुत दूर से चलकर आई हूँ कि क्या तुम हक़ीक़त में भी उतने ही ख़ूबसूरत हो जितने मेरे ख़्वाबों में दिखाई देते हो। तुम वाकई हो। बल्कि उससे भी ज़्यादा हो।" फिर उसने हसन का हाथ अपने चाकू से गुदे चेहरे से छुआया और बोली, "बरा-ए-मेहरबानी मेरे लिए एक बार मुस्करा दो।"

हसन मुस्करा दिया, जिसे देखकर वह औरत रोने लगी। "क्या तुम्हें कभी किसी ने बताया कि तुम्हारी मुस्कान बिल्कुल मेरे जैसी है? और एक मैं हूँ जिसने तुम्हें गोद में उठाने से भी इंकार कर दिया था। या अल्लाह मुझे माफ़ कर देना, मैंने तुम्हें गोद में लेने से भी इंकार कर दिया था।"

हममें से किसी ने भी सनोबर को तब से नहीं देखा था जब 1964 में हसन को जन्म देने के फ़ौरन बाद वह नाचने-गाने वाले बंजारों के एक कबीले के साथ भाग गई थी। आपने उसे कभी नहीं देखा, आमिर, मगर अपनी जवानी के दिनों में वह देखने लायक थी। जब वह हँसती थी तो उसके दोनों गालों में गहरे डिंपल पड़ते थे और उसकी चाल इतनी मदमस्त थी कि मर्द अपनी सुध-बुध खो बैठते थे। सड़क से जाते हुए जो भी उसके अगल-बग़ल से गुज़रता था, चाहे आदमी हो या औरत, उसे मुड़-मुड़कर देखे बिना नहीं रह पाता था। और अब वही सनोवर...

हसन ने उसका हाथ छोड़ दिया और दनदनाता हुआ घर से बाहर चला गया। मैं उसके पीछे गया, मगर तब तक वह गेट से बाहर निकल चुका था। मैंने उसे उस पहाड़ी की ओर जाते देखा जहाँ तुम दोनों खेला करते थे। वह अपने पीछे धूल के गुबार उड़ाता भागा जा रहा था। मैंने उसे रोकने की कोशिश नहीं की। मैं दिन भर सनोबर के पास बैठा रहा। सुबह से शाम हो गई, मगर हसन नहीं लौटा। रात घिर आई और आसमान में चाँदनी फ़ैल गई, मगर तब भी हसन वापस नहीं आया। सनोबर रो-रोकर कहती रही कि उसने वापस आकर गलती कर दी थी, शायद उसे छोड़कर जाने से भी बड़ी गलती। मगर मैंने उसे रोके रखा। मैं जानता था कि हसन लौट आएगा।

वह अगली सुबह वापस आया, थका हुआ और कमज़ोर लग रहा था, जैसे पूरी रात सोया ही न हो। उसने सनोबर का हाथ अपने दोनों हाथों में लिया और उससे कहा कि अगर वह चाहे तो रो सकती है, मगर अब उसे रोने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि अब वह अपने घर में है, अपने परिवार के साथ। उसने उसके चेहरे के निशानों को छुआ, और उसके बालों में हाथ फिराया।

हसन और फरज़ाना की तीमारदारी से जल्द ही सनोबर भली-चंगी हो गई। वे उसे अपने हाथों से खाना खिलाते और उसके कपड़े धोते। मैंने उसे रहने के लिए ऊपर के माले पर एक मेहमानखाना दे दिया था। कभी-कभी, मैं खिड़की से बाहर आँगन में झाँकता तो हसन और सनौबर घुटनों के बल बैठकर टमाटर तोड़ते या गुलाब की झाड़ी काटते-काटते बातें करते हुए दिखाई पड़ते। ऐसा लगता जैसे वे उन सारे खोए हुए बरसों की भरपाई करना चाहते थे। जहाँ तक मुझे पता था, हसन ने कभी सनौबर से नहीं पूछा कि वह इतने बरस कहाँ रही या उसे छोड़कर क्यों गई, और न ही सनोबर ने उसे कुछ बताया। मुझे लगता है कि कुछ कहानियों को कहे जाने की ज़रूरत नहीं होती।

1990 की सर्दियों में सनौवर ने अपने हाथों से हसन के बेटे की डिलीवरी करवाई। अभी बर्फ़ पड़नी शुरू नहीं हुई थी, मगर आँगन में ठंडी हवाएँ बहने लगी थीं, जो फूलों की क्यारियों को झुका रही थीं और पत्तियों में सरसराहट पैदा कर रही थीं। मुझे याद है कैसे सनोबर अपने पोते को गोद में लेकर कोठरी से बाहर आई थी। उसने उसे ऊनी कम्बल में लपेटा हुआ था। वह हल्के काले आसमान के नीचे मुस्कराती हुई खड़ी थी, उसके गालों पर आँसू बह रहे थे, सुई की चुभन जैसी ठंडी हवा उसके बालों को उड़ा रही थी, और उसने उस बच्चे को अपनी बाहों में ऐसे जकड़ रखा था जैसे वह उसे कभी छोड़ना ही नहीं चाहती थी। अबकी बार नहीं। उसने उसे हसन की गोद में दे दिया और हसन ने उसे मेरी गोद में रख दिया। मैंने उस नवजात बच्चे के कान में आयत-उल-कुर्सी पढ़ी।

उन्होंने उसका नाम रखा सोहराब, शाहनामा में हसन के पसंदीदा किरदार के नाम पर। आप से बेहतर यह बात कौन जानता है, आमिर जान। वह बहुत ही ख़ूबसूरत बच्चा था, बिल्कुल शक्कर की तरह मीठा, और उसने बिल्कुल अपने बाबा का मिज़ाज पाया था। आपको सनोबर को उस बच्चे के साथ देखना चाहिए था, आमिर जान। वह उसके अस्तित्व का केंद्र बन गया था। वह उसके लिए कपड़े सिलती थी। लकड़ी से, चिथड़ों से और सूखी घास के टुकड़ों से उसके लिए खिलौने बनाती थी। जब कभी उसे बुख़ार हो जाता तो रात-रात भर जागकर उसकी तीमारदारी करती और तीन-तीन दिन के रोज़े रखती। तवे पर इस्बंद जलाकर उसकी नज़र उतारती। दो बरस का होते-होते सोहराब सनोबर को सासा कहकर पुकारने लगा। दोनों मानो दो जिस्म इक जान थे।

सोहराब के चार बरस का होने तक दोनों का साथ बना रहा। फिर एक रात वह जो सोयी तो फिर कभी नहीं उठी। उसके मुर्दा चेहरे पर भरपूर इत्मीनान और तसल्ली थी, मानो उसे अब मरने से कोई परेशानी नहीं थी। हमने उसे पहाड़ी पर अनार के पेड़ के पास वाले क़ब्रिस्तान में दफनाया और मैंने उसके लिए भी दुआ पढ़ी। हसन पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा था। आदमी के पास कुछ न हो तो उसे उतना दुःख नहीं होता, जितना होकर खो जाने से होता है। मगर उससे भी बड़ा पहाड़ टूटा था नन्हें सोहराब पर। वह पूरे घर में घूम-घूमकर सासा को ढूँढता रहता। मगर बच्चों के साथ एक अच्छी बात यह होती है कि वे बहुत जल्दी भूल जाते हैं।

तब तक, यानी कि 1995 तक, शोरावी की हार हो चुकी थी और उसे अफ़ग़ानिस्तान छोड़े भी बहुत अरसा बीत गया था। काबुल पर अब मसूद, रब्बानी और मुजाहिदीन का कब्ज़ा था। इन गुटों की आपसी जंग बहुत भयंकर थी और काबुल में किसी भी बाशिंदे को नहीं पता होता था कि वह दिन ख़त्म होने तक ज़िन्दा रहेगा या नहीं। हमारे कान गिरते हुए बमों और रॉकेटों की आवाज़ों और गोलियों की गड़गड़ाहट सुनने के आदी हो चुके थे। हमारी आँखें मलबे के ढेर से लाशें निकालते लोगों के नज़ारे की आदी हो चुकी थीं। ऊपर आसमान में कोई दोजख है या नहीं वो तो मुझे नहीं मालूम, मगर, आमिर जान, उन दिनों का काबुल धरती पर दोजख से कम नहीं था। हालाँकि अभी तक तो हम पर अल्लाह की मेहरबानी बनी हुई थी। वज़ीर अकबर खान इलाके पर अभी तक उस तरह से हमला नहीं हुआ था, इसलिए हमारे यहाँ हालात उतने बुरे नहीं थे जितने और दूसरे इलाकों में थे।

बीच-बीच में जब कुछ दिनों के लिए बमों और रॉकेटों का दागा जाना और गोलियों का चलना थोड़ा कम हो जाता था, तब हसन सोहराब को चिड़िया-घर में मारज़ान शेर दिखाने या फिर सिनेमा दिखाने ले जाता था। हसन ने उसे गुलेल चलाना भी सिखाया और आठ साल का होते-होते सोहराब कमाल का निशानेबाज़ बन गया। वह छत पर खड़ा होकर बीच आँगन में रखी बाल्टी पर रखे पाइनकोन (एक तरह का फल) पर निशाना लगा सकता था। हसन ने उसे लिखना-पढ़ना भी सिखाया, यह पक्का किया कि उसकी तरह उसका बेटा अनपढ़ रहकर बड़ा न हो। मुझे उस छोटे बच्चे से बहुत लगाव हो गया था। और क्यों न हो, मैंने उसे पहले-पहल चलते देखा था, मैंने उसे मुँह से पहला शब्द निकालते सुना था। और इसीलिए मैं सिनेमा पार्क के पास वाली किताबों की दुकान से–उन लोगों ने बाद में उसे भी तबाह कर दिया–सोहराब के लिए कहानियों की किताबें ख़रीदकर लाता, और वह उन किताबों को तुरंत ही पढ़ डालता। उसे देखकर मुझे आपकी याद आ जाती थी, आमिर जान, कि कैसे बचपन में आप भी पढ़ने के बेहद शौक़ीन हुआ करते थे। कभी-कभी रात में, मैं उसे कुछ पढ़कर सुनाता था, उसके साथ पहेलियाँ बूझने का खेल खेलता था, उसे ताश के खेल सिखाता था। मुझे उसकी बहुत याद आती है।

सर्दियों के दिनों में हसन उसे पतंग लूटना सिखाने ले जाता। अब पहले की तरह पतंगबाज़ी के उतने मुकाबले नहीं होते थे क्योंकि कोई भी ज़्यादा देर घर से बाहर रहना महफूज़ नहीं समझता था, मगर फिर भी होते ज़रूर थे। हसन सोहराब को अपने कंधे पर बिठा लेता और फिर वे सड़कों पर घूमते, कटी हुई पतंगों का पीछा करते, उन पेड़ों पर चढ़ते जहाँ पतंगें गिरने वाली होतीं। आपको याद है, आमिर जान, पतंग लूटने के मामले में हसन कितना तेज़ हुआ करता था? अभी भी उतना ही तेज़ था। सर्दियाँ ख़त्म होते-होते हसन और सोहराब ढेर सारी पतंगें लूट चुके होते थे, जिन्हें वे बरामदे की दीवार पर पेंटिंग्स की तरह लटका देते थे।

मैं आपको बता ही चुका हूँ कि 1996 में जब तालिबान ने तमाम गुटों का सफाया करके रोज़ाना के ख़ून-ख़राबे को ख़त्म किया, तब हम सबने कैसे जश्न मनाया था। मुझे

याद है कि उस रात जब मैं जश्न मनाकर घर लौटा तो हसन रसोई में काम करते-करते रेडियो पर ख़बरें सुन रहा था। उसकी आँखों में परेशानी का आलम था। मैंने उससे पूछा कि क्या हुआ, तो उसने बेचारगी से सिर झटकते हुए कहा, “अब तो हज़ाराओं का अल्लाह ही मालिक है, रहीम खान साहब।”

“जंग ख़त्म हो चुकी है, हसन,” मैंने कहा। “अब अमन-चैन कायम होगा, इंशाअल्लाह, अब हँसी-ख़ुशी के दिन वापस लौट आएँगे। अब और रॉकेट नहीं गिरेंगे, अब और क़त्ल-ए-आम नहीं होगा, अब और आख़िरी रस्में नहीं होंगी!” मगर उसने रेडियो बंद कर दिया और सोने जाने से पहले मुझसे पूछा कि मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं थी।

कुछ ही हफ़्तों बाद तालिबान ने पतंगबाज़ी पर रोक लगा दी। और दो साल बाद, 1998 में, उन्होंने मज़ार-ए-शरीफ़ में हज़ाराओं का क़त्ल-ए-आम किया।

सत्रह

रहीम खान ने आहिस्ता से अपने मुड़े हुए पैरों को खोला और उतने ही आहिस्ता से पीछे दीवार से टेक लगाई। उनकी हालत शायद इतनी ख़राब हो चुकी थी कि ज़रा सी भी हरकत से उनके बदन में दर्द की लहरें उठने लगती थीं। बाहर एक गधा रेंक रहा था और कोई उर्दू में कुछ चिल्ला रहा था। सूरज डूबने को था, जर्जर इमारतों के बीच की दरारों से शाम की लालिमा झाँकने लगी थी।

मुझे फिर से याद आने लगा कि मैंने उन सर्दियों और उसके बाद की गर्मियों में क्या-क्या किया था। मेरे दिमाग़ में ये नाम गूँजने लगे: हसन, सोहराब, अली, फरज़ाना और सनोबर। रहीम खान के मुँह से अली का नाम सुनना ऐसा था जैसे कोई ऐसा पुराना धूल खाया हुआ रिकॉर्ड प्लेयर मिल गया हो, जिसे सालों से बजाया न गया हो; तुरंत धुन बजने लगी: आज तूने किसे खाया, बबालू? ओए भेंगी आँखों वाले बबालू! बोल न, आज किसे खाया तूने? मैंने अली के चेहरे को याद करने की कोशिश की, उसकी हर हाल में निर्विकार बनी रहने वाली आँखों को याद करने की कोशिश की, मगर वक़्त बड़ी लालची चीज़ है, कभी-कभी यह सारी जानकारियाँ अपनी तिजोरी में बंद करके बैठ जाता है।

“क्या हसन अब भी उसी घर में रह रहा है?” मैंने पूछा।

रहीम खान ने अपना चाय का प्याला सूखे होंठों से लगाया और एक घूँट भरा। फिर अपनी जैकेट की जेब से एक लिफाफा निकाला और मुझे थमा दिया। “आपके लिए।”

मैंने उस सीलबंद लिफ़ाफ़े को खोला। अंदर मुझे पोलेरॉइड कैमरे से निकाली गई एक तस्वीर और एक तह किया हुआ ख़त मिला। मैं पूरे एक मिनट तक उस तस्वीर को देखता रहा।

एक ऊँचे कद का आदमी, जिसने सफेद पगड़ी और हरे रंग की धारीदार चपन पहन रखी थी, एक छोटे लड़के के साथ एक लोहे के फाटक के सामने खड़ा था। सूरज की रोशनी उसके चेहरे के बाईं ओर से आ रही थी, जिससे उसके गोल चेहरे के दाएँ हिस्से पर छाया पड़ रही थी। वह कैमरे की तरफ़ देखकर मुस्करा रहा था। उसके आगे के दो दाँत नहीं थे। उस धुंधली तस्वीर में भी साफ़ दिखाई पड़ रहा था कि चपन पहनकर खड़ा वह आदमी सरलता, सहजता, और आत्म-विश्वास के मामले में कितना अमीर था। यह बात उसके खड़े होने के ढंग से मालूम पड़ रही थी। वह दोनों पैरों को थोड़ा-सा खोलकर, हाथों को आराम से छाती पर बाँधकर, और सर को थोड़ा सा सूरज की तरफ़ घुमाकर खड़ा था। मगर उसकी सरलता, सहजता, और आत्म-विश्वास सबसे ज़्यादा पता चल रहा था उसके मुस्कराने के ढंग से। तस्वीर को देखकर कोई भी इस

नतीजे पर पहुँच सकता था कि यह एक ऐसा आदमी है जो मानता है कि दुनिया ने उसके साथ सब अच्छा ही किया है। रहीम खान सच कह रहे थे, अगर मैं उससे कहीं रास्ते में भी टकरा जाता तो फ़ौरन पहचान लेता कि वह कौन था। तस्वीर में जो छोटा बच्चा था वह नंगे पैर खड़ा था, उसका एक हाथ अपने बाबा की जाँघ के गिर्द लिपटा हुआ था जबकि उसका चिकना सिर उनके कूल्हे पर टिका हुआ था। वह भी कैमरे में देखकर मुस्करा रहा था।

अब मैंने ख़त को खोला। यह फारसी में लिखा गया था। न कहीं कोई नुक्ता छूटा था, न कोई क्रॉस भुलाया गया था, न ही ऐसा था कि कहीं दो लफ्ज़ आपस में गड्ड-मड्ड हो गए हों। लिखावट उतनी ही साफ़-सुथरी थी जितनी अमूमन स्कूल में लिखावट सुधारने की कक्षाओं में जाने वाले बच्चों की होती है। मैंने पढ़ना शुरू किया:

उस अल्लाह के नाम पर जो सबसे बड़ा कारसाज़ और सबसे बड़ा बंदा-परवर है।

आमिर आगा! पूरी अदब-ओ-इज़्ज़त के साथ

फरज़ाना जान, सोहराब, और मैं दुआ करता हूँ कि यह ख़त आपको अच्छी सेहत और अल्लाह की नेमतों के साए में हासिल हो। इस ख़त को बरा-ए-मेहरबानी आप तक पहुँचाने के लिए मेरी ओर से रहीम खान साहब का दिली शुक्रिया अदा कीजिएगा। मुझे उम्मीद है कि एक दिन मेरे हाथों में भी आपका लिखा ख़त होगा जिसकी मार्फ़त मैं अमेरिका में आपकी ज़िन्दगी के बारे में जान सकूँगा। और शायद उस ख़त के साथ मिलने वाली आपकी तस्वीर हमारी आँखों की चमक बढ़ा रही होगी। मैंने आपके बारे में फरज़ाना जान और सोहराब को बहुत कुछ बताया है, कि किस तरह हम साथ-साथ बड़े हुए, साथ-साथ खेले और सड़कों पर धमा-चौकड़ी मचाई। वे उन सभी शरारतों के किस्से सुनकर ख़ूब हँसते हैं, जो आप और मैं साथ मिलकर किया
करते थे!

आमिर आगा,

अफ़सोस है कि हमारे बचपन का अफ़ग़ानिस्तान बहुत पहले ही ख़त्म हो चुका है। अमन और रहमदिली जैसी चीज़ें तो यहाँ अब रहीं ही नहीं, हर वक़्त बस क़त्ल-ए-आम मचा रहता है। किसी को नहीं पता कौन कब कहाँ क़त्ल कर दिया जाएगा। काबुल में अब हर जगह डर का ही डेरा है - सड़कों पर, स्टेडियम में, बाज़ारों में; यह अब हमारी ज़िन्दगी का हिस्सा बन चुका है। आमिर आगा, हमारे वतन पर हुकूमत करने वाले बर्बर लोग इंसान और इंसानियत की परवाह नहीं करते। अभी एक दिन मैं फरज़ाना जान के साथ बाज़ार गया, आलू और नान ख़रीदने। फरज़ाना ने दुकानदार

से पूछा कि आलू क्या भाव दिए, मगर पता नहीं वह दुकानदार बहरा था या ऊँचा सुनता था, उसने सुना नहीं। इस पर फरज़ाना ने दोबारा थोड़ी ऊँची आवाज़ में पूछा। तभी अचानक कहीं से एक नौजवान तालिब दौड़ता हुआ आया और उसने हाथ में पकड़ी हुई लाठी से फरज़ाना की जाँघों पर एक भरपूर वार किया। उसने इतनी ज़ोर से मारा था कि फरज़ाना गिर पड़ी। और ऊपर से वह उस पर चिल्लाने लगा, गालियाँ देने लगा और कहने लगा कि 'नेकी और बदी महकमा' औरतों को ऊँची आवाज़ में बोलने की इजाज़त नहीं देता। फरज़ाना की जाँघों पर कई दिनों तक नील पड़ा रहा, मगर मैं करता भी तो क्या, मेरे पास खड़े-खड़े अपनी खानुम को पिटते देखने के अलावा और चारा क्या था? अगर मैं लड़ता तो वह कुत्ता पक्का मुझे गोली मार देता, ख़ुशी-ख़ुशी! फिर मेरे सोहराब का क्या होता? काबुल की गलियों में पहले ही इतनी तादाद में भूखे अनाथ बच्चे घूम रहे हैं। मैं हर दिन अल्लाह का शुक्रिया अदा करता हूँ कि मैं ज़िन्दा हूँ, इसलिए नहीं कि मैं मरने से डरता हूँ, बल्कि इसलिए क्योंकि मैं अपनी खानुम का शौहर और अपने बेटे का बाप भी हूँ। मैं उन दोनों के अनाथ और बेसहारा हो जाने से डरता हूँ।

मेरा बड़ा मन है कि आप सोहराब को देखते। वह अच्छा लड़का है। रहीम खान साहब और मैंने उसे लिखना-पढ़ना सिखाया है ताकि वह अपने बाप की तरह अनपढ़-गँवार न रह जाए। और गुलेल चलाने में तो वह मेरा भी बाप बन गया है! कभी-कभी मैं उसे बाहर घुमाने ले जाता हूँ और कैंडी दिलवाता हूँ। शर-ए-नौ में अभी भी एक मदारी है, जब भी वह हमें मिल जाता है तो मैं उसे पैसे देता हूँ और वो सोहराब के लिए बन्दर नचाता है। उसे देखकर सोहराब इतना हँसता है कि पूछिए मत! हम दोनों अक्सर पहाड़ी वाले क़ब्रिस्तान जाते हैं। आपको याद है कैसे हम पहाड़ी पर उस अनार के पेड़ के नीचे बैठते थे और आप मुझे शाहनामा पढ़कर सुनाते थे? लगातार पड़ने वाले सूखे की वजह से पहाड़ी पूरी सूख गई है और उस अनार के पेड़ में बरसों से कोई फल नहीं लगा, मगर सोहराब और मैं अभी भी उसकी छाँव में बैठते हैं और मैं उसे शाहनामा पढ़कर सुनाता हूँ। कहने की ज़रूरत नहीं कि उसमें उसकी पसंदीद दास्तान वही है जिसका नाम उसके अपने नाम पर है – रुस्तम और सोहराब। जल्दी ही वह ख़ुद उस किताब को पढ़ने लायक हो जाएगा। मैं बहुत ही फख्रमंद और ख़ुशकिस्मत बाप हूँ।

आमिर आगा,

रहीम खान साहब बहुत बीमार हैं। दिन भर खाँसते रहते हैं और जब कमीज़ की बाँह से मुँह पोंछते हैं तो वह लाल हो जाती है। उनका वज़न भी बहुत घट गया है। फरज़ाना जान उनके लिए शोरवा-चावल बनाती हैं और

मैं उन्हें खिलाने की कोशिश करता हूँ, मगर वह कौर-दो कौर से ज़्यादा नहीं खाते, वह भी शायद फरज़ाना की फ़िक्र और मेहनत का मान रखने के वास्ते। मैं उनके लिए बहुत फिक्रमंद हूँ और हर दिन उनके लिए दुआ करता हूँ। कुछ दिनों में वह पाकिस्तान के लिए निकलने वाले हैं ताकि वहाँ कुछ अच्छे डॉक्टरों को दिखा सकें और, इंशाअल्लाह, वह ख़ुशख़बरी के साथ ही लौटेंगे। मगर दिल ही दिल में बहुत डरता हूँ। फरज़ाना जान और मैंने सोहराब को कहा है कि रहीम खान साहब जल्दी ही अच्छे हो जाएँगे। और हम क्या कर सकते हैं? वह सिर्फ़ दस साल का है और रहीम खान साहब को बहुत पसंद करता है। वे एक-दूसरे के बहुत क़रीब आ गए हैं। पहले रहीम खान साहब उसे बाज़ार लेकर जाते थे और बिस्किट और गुब्बारे दिलाते थे, मगर अब वह बहुत कमज़ोर हो गए हैं और ऐसा करने की हालत में नहीं हैं।

पिछले कुछ दिनों से मुझे बहुत सपने आने लगे हैं, आमिर आगा। इनमें से कुछेक सपने डरावने और भयानक होते हैं, जैसे कि मैं देखता हूँ कि फुटबॉल के मैदान में बहुत सारी लाशें फंदों पर लटकी हुई हैं, सड़ रही हैं, और नीचे की घास उनके ख़ून से लाल हो गई है। जब भी ऐसे सपने आते हैं तो मैं डरकर उठ जाता हूँ और पाता हूँ कि मेरी साँसें धौंकनी की तरह तेज़ चल रही होती हैं और मेरा बदन पसीने से लथपथ होता है। हालाँकि ज़्यादातर तो मैं अच्छे सपने ही देखता हूँ और अल्लाह से दुआ करता हूँ कि वे सच हों। मैं सपना देखता हूँ कि रहीम खान साहब फिर से सेहतमंद हो जाएँगे। मैं सपना देखता हूँ कि मेरा बेटा बड़ा होकर एक नेक इंसान, आज़ाद इंसान, और एक बा-रसूख इंसान बनेगा। मैं सपना देखता हूँ कि काबुल की गलियों में फिर से लावला के फूल खिलेंगे, समोवर घरों में फिर से रुबाब संगीत बजेगा, और फिर से आसमान में पतंगें उड़ेंगी। और मैं सपना देखता हूँ कि किसी दिन आप काबुल वापस लौटेंगे, हमारे बचपन की धरती पर फिर से क़दम रखेंगे। अगर आप ऐसा करेंगे तो आपको एक पुराना वफ़ादार दोस्त आपका इंतज़ार करता हुआ मिलेगा।

अल्लाह हमेशा आपके साथ रहे।

-हसन

मैंने पूरे ख़त को दो बार पढ़ा। फिर उसे वापस तह किया और उस तस्वीर को फिर क़रीब एक मिनट तक देखता रहा। फिर दोनों चीज़ों को जेब में रख लिया। “कैसा है वह?” मैंने पूछा।

“वह ख़त छह महीने पहले लिखा गया था, मेरे पेशावर आने से कुछ दिन पहले,” रहीम खान ने कहा। यह तस्वीर मैंने यहाँ के लिए निकलने से एक दिन पहले उतारी थी। पेशावर आने के एक महीने बाद, मुझे काबुल के मेरे एक पड़ौसी का फ़ोन आया।

उसने मुझे यह कहानी सुनाई: मेरे जाने के फ़ौरन बाद एक अफवाह फैल गई कि एक हज़ारा परिवार वज़ीर अकबर खान के एक बड़े घर में अकेला रह रहा है, या कहें कि तालिबान ने ऐसा दावा किया। दो तालिब अफसर इसकी पड़ताल करने आए और हसन से पूछताछ की। जब हसन ने कहा कि वह वहाँ मेरे साथ रह रहा था तो उन्होंने उसे झूठा करार दिया, जबकि कई सारे पड़ौसियों ने, जिनमें वह पड़ौसी भी शामिल था जिसने फोन करके मुझे यह कहानी बताई, हसन की बात की तसदीक की थी। मगर तालिबों ने कहा कि सभी हज़ाराओं की तरह वह भी झूठा और चोर था और उसे हुक्म दिया कि वह सूरज डूबने से पहले-पहले मकान खाली कर दे। हसन ने इसका विरोध किया। मगर मेरे पड़ौसी ने बताया कि तालिबों का मकसद हर हाल में आपके बाबा का घर हड़पना था और वे घर को ऐसे देख रहे थे जैसे भेड़िए भेड़ों के झुंड को देखते हैं। उन्होंने हसन से कहा कि वे मेरे लौटने तक मकान को महफूज़ रखने के लिए उसे अपने कब्ज़े में ले रहे थे। हसन ने फिर उनका विरोध किया।

"इस पर वे उसे धकेलते हुए सड़क पर ले गए..."

"नहीं!" मुझे अपनी साँस अटकती हुई मालूम हुई।

"...और उसे घुटनों के बल सड़क पर बैठने का हुक्म दिया..." "नहीं! गॉड, नहीं!"

"...और उसके सिर के पिछले हिस्से में गोली मार दी।

"फरज़ाना चीख़ती हुए आई और उन तालिबों को थप्पड़ मारने लगी..." "नहीं!"

"...उन्होंने उसे भी गोली मार दी। बाद में उनकी तरफ़ से कहा गया कि उन्हें आत्मरक्षा में ऐसा करना पड़ा..." मैं कोई प्रतिक्रिया देने की हालत में नहीं था, होंठों ही होंठों में बस इतना ही कह सका, "नहीं! नहीं! नहीं!"

मेरे ज़ेहन में बार-बार 1974 का वह दिन घूमने लगा जब सर्जरी के बाद हसन के होंठ की पट्टी खुली थी। बाबा, रहीम खान, अली और मैं हसन के बिस्तर के इर्द-गिर्द इकट्ठा थे और उसे हाथ में पकड़े शीशे में अपने नए होंठ का मुआयना करते देख रहे थे। उस दिन उस कमरे में मौजूद सभी लोग अब मर चुके थे या मर रहे थे। मुझे छोड़कर।

फिर मैंने कुछ और देखा: एक आदमी, जिसने हेरिंगबोन जैकेट पहन रखी थी, उसने अपनी कलाश्निकोव की नाल हसन के सिर के पिछले हिस्से से सटा रखी थी। कलाश्निकोव गरजी और धमाके की गूँज से मेरे बाबा के घर वाली पूरी गली थर्रा उठी। हसन सड़क पर धराशाई हो गया, उसकी एकतरफ़ा वफ़ादारी वाली ज़िंदगी उसके बेजान शरीर से वैसे ही दूर जाने लगी जैसे वे कटी हुई पतंगें जाती थीं जिनका वह पीछा किया करता था।

"उसके बाद तालिबानियों ने मकान पर कब्ज़ा कर लिया," रहीम खान ने आगे कहा। "बहाना यह था कि उन्होंने एक घुसपैठिए को बेदखल किया था। हसन और

फरज़ाना के कत्लों को आत्मरक्षा का मामला बताकर खारिज कर दिया गया। किसी ने एक लफ़्ज़ मुँह से नहीं निकाला। इसकी सबसे बड़ी वजह तो तालिबान का डर ही रही होगी। और वैसे भी, दो हज़ारा नौकरों के लिए किसी के कुछ दाँव पर लगाने का सवाल ही नहीं उठता था।"

"सोहराब के साथ क्या किया उन्होंने?" मैंने पूछा। अचानक से मैं बहुत थका हुआ महसूस करने लगा था, मानो किसी ने मेरी सारी ताक़त निचोड़ ली हो। रहीम खान को फिर से खाँसी का दौरा पड़ गया और इस बार वह काफी देर तक खाँसते रहे। आख़िर-कार जब उन्होंने सिर उठाया तो मैंने देखा कि उनका पूरा चेहरा और आँखें एकदम लाल हो गई थीं। "मैंने सुना है कि वह कार्तेह सेह इलाके के किसी यतीमखाने में है। आमिर जान—" इतना कहकर वह फिर खाँसने लगे। जब उनकी खाँसी बंद हुई तो ऐसा लगा जैसे कुछ पल पहले के मुकाबले वह थोड़े और बूढ़े हो गए हों, जैसे खाँसी के हर दौरे के साथ उनकी उम्र थोड़ी-थोड़ी कम होती जा रही हो। "आमिर जान, मैंने आपको यहाँ बुलाया क्योंकि मैं मरने से पहले आपको देखना चाहता था, मगर बस इतने के लिए ही नहीं।"

मैं खामोश रहा। मेरे ख़याल से मुझे पहले ही पता था कि वह क्या कहने वाले थे।

"मैं चाहता हूँ कि आप काबुल जाएँ और सोहराब को यहाँ लेकर आएँ," उन्होंने कहा।

मेरे दिमाग़ ने जैसे काम करना बंद कर दिया था। समझ नहीं आ रहा था कि क्या कहूँ। मुझे इस बात को जज़्ब करने का वक़्त ही नहीं मिला था कि हसन मर चुका था।

"प्लीज़ मेरी बात सुनिए। मैं यहाँ पेशावर में एक अमरीकी मियाँ-बीवी को जानता हूँ। उनका नाम थॉमस और बेट्टी कैडवेल है। वे ईसाई हैं और एक छोटा-सा चैरिटी संगठन चलाते हैं, जिसका खर्चा लोगों के दिए दान से चलता है। ज़्यादातर वे उन अफ़ग़ान बच्चों के लिए रोटी, कपड़ा और मकान का बंदोबस्त करते हैं जिन्होंने अपने माँ-बाप को खो दिया है। मैंने वो जगह देखी है जहाँ वे इन बच्चों को रखते हैं।

"साफ़-सुथरी और महफ़ूज़ जगह है और बच्चों की देखरेख भी बहुत अच्छे से की जाती है वहाँ। मिस्टर और मिसेज़ कैडवेल रहमदिल लोग हैं। वे पहले ही मुझे यकीन दिला चुके हैं कि सोहराब का उनके घर में स्वागत होगा और—"

"रहीम खान, आप मज़ाक कर रहे हैं, है न?"

"बच्चे नाज़ुक होते हैं, आमिर जान। काबुल पहले से ही टूटे हुए बच्चों से भरा हुआ है और मैं नहीं चाहता कि सोहराब भी उनमें से एक बने।"

"रहीम खान, मैं काबुल जाना नहीं चाहता। मैं नहीं जा सकता!" मैंने कहा।

"सोहराब एक होनहार बच्चा है। हम उसे यहाँ एक नयी ज़िन्दगी, नई उम्मीद दे सकते हैं, ऐसे लोगों के साथ रख सकते हैं जो उससे प्यार करेंगे। थॉमस आगा बहुत

अच्छे आदमी हैं और बेट्टी खानुम बहुत रहमदिल हैं, आपको देखना चाहिए कि वह उन अनाथों के साथ कितना अच्छा बर्ताव करती हैं।"

"मैं ही क्यों? आप यहाँ किसी को पैसे देकर यह काम क्यों नहीं करा लेते? अगर पैसों की दिक्कत है तो मैं दे दूँगा।"

"बात पैसों की नहीं है, आमिर!" रहीम खान ने दहाड़ते हुए कहा। "मैं मरता हुआ आदमी हूँ, मेरी बेइज़्ज़ती मत करो। मैंने कभी पैसों की परवाह नहीं की, तुम जानते हो यह बात। और रही बात इसकी कि तुम ही क्यों, तो मेरे ख़याल से हम दोनों ही जानते हैं कि क्यों तुम्हें ही यह काम करना चाहिए, नहीं?"

मैं उस आख़िरी बात का मतलब नहीं समझना चाहता था, मगर समझ गया। बहुत अच्छी तरह समझ गया। "अमेरिका में मेरी बीवी है, घर है, करियर है और परिवार है। काबुल एक ख़तरनाक जगह है, आपको तो पता है, और फिर भी आप चाहते हैं कि मैं अपना सबकुछ दाँव पर लगा दूँ, और वो भी किसके लिए, एक..." कहते-कहते मैं रुक गया।

"जानते हो," रहीम खान ने कहा, "एक बार तुम्हारे बाबा और मैं तुम्हारे बारे में बात कर रहे थे। और तुमको तो पता ही होगा कि उन दिनों वह हमेशा तुम्हें लेकर फिक्रमंद रहते थे। मुझे याद है उस दिन उन्होंने मुझसे कहा था, 'रहीम, जो लड़का आज अपनी मदद ख़ुद नहीं कर सकता, कल बड़ा होकर वह किसी की भी मदद करने के लायक नहीं बन पाएगा।' मैं हैरान हूँ कि क्या तुम वही बन गए हो जिसका तुम्हारे बाबा को डर था?"

मैंने नज़रें झुका लीं।

"मैं बस इतना ही तो चाहता हूँ कि तुम एक मरते हुए बूढ़े की आख़िरी इच्छा पूरी करो," उन्होंने गंभीरता से कहा।

यह बात कहकर उन्होंने एक जुआ खेला था। उन्होंने अपना तुरुप का इक्का चल दिया था। या कम से कम उस वक़्त मुझे ऐसा लगा था। उनके ये शब्द हमारे बीच अधर में लटके रहे, मगर कम से कम उन्हें तो पता था कि क्या कहना है। मैं तो अभी भी सही शब्द तलाश रहा था, और उस पर से तुर्रा यह कि मैं लेखक था। आख़िर में, मैंने इन शब्दों का चुनाव किया: "शायद बाबा सही थे।"

"मुझे अफ़सोस है कि तुम ऐसा सोचते हो, आमिर।"

मैं उनसे नज़रें नहीं मिला पाया। "आप नहीं सोचते?"

"अगर सोचता होता, तो तुम्हें यहाँ आने के लिए नहीं कहा होता।"

मैंने अपनी उंगली में पड़ी शादी की अंगूठी को उतारा, फिर पहना।

"आपने मुझे हमेशा ज़रूरत से ज़्यादा आँका है, रहीम खान।"

"और तुम हमेशा ख़ुद के साथ ज़रूरत से ज़्यादा सख़्त रहे हो।" वह हिचकिचाए। "मगर कुछ और भी है। कुछ और, जो तुम नहीं जानते।"

"प्लीज़, रहीम खान—"

"सनौबर अली की पहली बीवी नहीं थी।"

इस बार मेरी नज़रें ख़ुद-ब-ख़ुद ऊपर उठ गईं।

"उसका पहले भी एक बार निकाह हो चुका था, जघोरी इलाके की रहने वाली एक हज़ारा औरत से। यह तुम्हारे पैदा होने से बहुत पहले की बात है। तीन बरस तक दोनों साथ रहे।"

"इस बात का उस बात से क्या वास्ता जिसकी अभी हम बात कर रहे हैं?"

"तीन बरस बाद उस औरत ने अली को छोड़कर खोस्त के रहने वाले किसी और आदमी से निकाह कर लिया। अली से उसे कोई औलाद नहीं हुई थी। मगर उस आदमी के साथ निकाह करने के बाद उसने तीन बेटियाँ जनीं। यह बताने की कोशिश कर रहा हूँ मैं तुम्हें।"

मुझे समझ आना शुरू हो गया था कि वह किस तरफ़ बढ़ रहे थे। मगर मैं बाक़ी की बात नहीं सुनना चाहता था। कैलिफोर्निया में मेरी अच्छी-खासी ज़िन्दगी थी, ऊँची-ढलवाँ छत वाला सुंदर विक्टोरियन मकान था, अच्छी बीवी थी, लेखन में अच्छा करियर था, प्यार करने वाले रिश्तेदार थे। मुझे इस बकवास की कोई ज़रूरत नहीं थी।

"अली बाप नहीं बन सकता था," रहीम खान ने कहा।

"नहीं, ऐसा नहीं है। उसने और सनौबर ने मिलकर हसन को पैदा किया था, किया था कि नहीं? उन्होंने हसन को पैदा—"

"नहीं, उन्होंने नहीं किया था," रहीम खान ने कहा।

"हाँ, उन्होंने ही किया था!"

"नहीं, उन्होंने नहीं किया था, आमिर।"

"तो फिर किसने—"

"मेरे ख़याल से तुम जानते हो किसने।"

मुझे ऐसा लगा जैसे मैं किसी खड़ी चट्टान से फिसल रहा हूँ और नीचे गिरने से बचने के लिए जहाँ-तहाँ उगीं झाड़ियों को पकड़ने की कोशिश कर रहा हूँ, मगर मेरे हाथ कुछ भी नहीं आ रहा। मुझे पूरा कमरा झूलता हुआ दिखाई पड़ रहा था – ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ। "हसन को पता था?" बमुश्किल मेरे मुँह से बोल फूटे। रहीम खान ने आँखें बंद कर लीं और इंकार में सिर हिलाया।

“हरामी कहीं के,” मैं बुदबुदाया। उठकर खड़ा हो गया। “कितने हरामी हो तुम लोग!” मैं चीखा। “एक नंबर के कमीने और झूठे, सब के सब!”

“प्लीज़ बैठ जाओ,” रहीम खान ने कहा।

“यह बात मुझसे कैसे छिपा सकते थे तुम लोग? उससे कैसे छिपा सकते थे?” मैंने बिफरते हुए कहा।

“ज़रा सोचो, आमिर जान। यह एक शर्मनाक स्थिति थी। लोग बातें बनाते। उस वक़्त आदमी की सबसे बड़ी दौलत थी समाज में उसकी इज़्ज़त, उसका नाम, और अगर यह बात उजागर हो जाती तो लोग बातें करते...इसीलिए हम किसी को इस बाबत कुछ नहीं बता पाए। ठंडे दिमाग़ से सोचोगे तो इस सच्चाई को देख पाओगे।” यह कहकर उन्होंने मेरे कंधे पर हाथ रखा, मगर मैंने उसे झटक दिया। मैं दरवाज़े की ओर बढ़ने लगा।

“प्लीज़ मत जाओ, आमिर जान!”

मैंने दरवाज़ा खोला और बाहर निकलने से पहले उनकी ओर पलटा। “क्यों? आपके पास अब क्या है मुझसे कहने के लिए? मैं अड़तीस बरस का हो गया हूँ और मुझे अभी-अभी पता चल रहा है कि मेरी पूरी ज़िन्दगी एक बड़ा झूठ है! अब आपके पास बचा क्या है मुझसे कहने के लिए? कुछ नहीं। कुछ भी नहीं!”

इतना कहकर मैं उस इमारत से बाहर निकल गया।

अठारह

सूरज लगभग डूब चुका था और आसमान में बैंगनी और लाल छटाएँ बिखर गई थीं। मैं रहीम खान की इमारत से दूर जाने वाली उस चिल्ल-पों भरी सँकरी सड़क पर आगे बढ़ता चला गया। यह सड़क शोर-शराबे से आबाद उन ढेर सारी सँकरी गलियों में से एक थी जो पैदल चलने वालों, साइकिलों और रिक्शाओं की भीड़-भाड़ से भरी हुई थीं। जगह-जगह पड़ने वाले मोड़ों पर बिलबोर्ड टंगे हुए थे, जिन पर कोका-कोला और सिगरेट के विज्ञापन या फिर हिंदी फिल्मों के वे पोस्टर चिपके हुए थे जिनमें बदन दिखाऊ कपड़ों में सजी हीरोइनों को गेंदे के खेतों में अच्छी शक्ल-ओ-सूरत वाले आदमियों के साथ नाचते हुए दिखाया गया था।

मैं एक छोटी सी चाय की दुकान में घुसा और एक कप चाय का ऑर्डर दिया। वहाँ पड़ीं फोल्डिंग कुर्सियों में से एक की पीठ से पीठ टिकाकर बैठने के बाद मैंने हाथों से अपना चेहरा पोंछा। खड़ी पहाड़ी से नीचे लुढ़कने वाला एहसास धीरे-धीरे ख़त्म हो रहा था। मगर उसकी जगह लेने के लिए अब एक नया अहसास पैदा हो रहा था। अब मुझे उस आदमी की तरह महसूस हो रहा था जो सुबह उठकर पाता है कि उसके घर का सारा नक्शा ही बदल गया है। वहाँ अब कुछ भी वैसा नहीं है जैसा रात को सोने से पहले था। सारा फर्नीचर बदल चुका है, दीवारें बदल चुकी हैं। घर का हर कोना अब अनजाना मालूम पड़ने लगा है उसे। वह चक्कर में पड़ गया है। उसे अब नए सिरे से सोचना पड़ेगा कि वह कौन है, कहाँ है।

मैं इतना अँधा कैसे हो सकता था? इस राज़ की चुगली करने वाले तमाम संकेत हमेशा से ही मेरे सामने थे, मगर मैं ही उन्हें देख नहीं सका। अब वे सब एक-एक करके मेरे ज़ेहन में आ रहे थे: बाबा का हसन के कटे होंठ को ठीक कराने के लिए डॉक्टर कुमार को बुलाना। बाबा का हसन की सालगिरह कभी न भूलना। मुझे वह दिन भी याद आया जब बाबा और मैं बगीचे में ट्यूलिप की गाँठें लगा रहे थे और मैंने बाबा से पूछा था कि क्या उन्होंने कभी दूसरे नौकर रखने के बारे में सोचा था। तब कैसे बाबा ने दहाड़ते हुए कहा था कि 'हसन कहीं नहीं जाएगा। वह यहीं रहेगा। हमारे साथ। अपने परिवार के साथ। यही उसका घर है।' और जब अली ने हसन को लेकर घर से जाने का फैसला लिया था तब बाबा कितना रोए थे।

वेटर चाय का एक कप मेरे सामने मेज़ पर रख गया। ये दो टाँगों वाली मेज़ें थीं और इनकी टाँगें एक-दूसरे को काटते हुए अंग्रेज़ी का X बनाती थीं। इस X का जो केंद्र था, मतलब जहाँ दोनों टाँगे एक-दूसरे को काटती थीं, वहाँ पर अखरोट जितनी गोलाई वालीं पीतल की छोटी-छोटी घुंडियाँ (ब्रास बॉल्स) छल्ले के रूप में कसी हुई थीं। मैंने देखा कि उनमें से एक घुंडी का नट ढीला हो गया था और वह छल्ले में से निकलकर

गिरने वाली थी। मैं नीचे झुका और उस ढीले नट को कस दिया। काश मैं ख़ुद की ज़िन्दगी को भी इतनी ही आसानी से ठीक कर पाता। मैं कप में रखी चाय को घूँट-घूँट कर पीने लगा –इतनी काली चाय मैंने बहुत सालों बाद पी थी– और साथ ही सोराया, जनरल, खाला जमीला, और उस उपन्यास के बारे में सोचने की कोशिश करने लगा जिसे पूरा करने की समय-सीमा क़रीब थी। सड़क पर भागते-दौड़ते ट्रैफिक को, मिठाई की छोटी-छोटी दुकानों में आते-जाते लोगों को देखने की कोशिश करने लगा। पास वाली टेबल पर रखे ट्रांजिस्टर रेडियो में बज रही कव्वाली को सुनने की कोशिश करने लगा। मैं किसी भी तरह अपना ध्यान बँटाना चाहता था। मगर मेरा ध्यान बारम्बार मेरे दीक्षांत-समारोह की उस रात पर पहुँच रहा था जब मैं बाबा के साथ उनकी तोहफे के रूप में दी गई फोर्ड कार में बैठा था, बाबा बीयर के नशे में आधी नींद और आधी जागी हालत में थे, और उसी हालत में उन्होंने कहा था, 'काश, आज हसन भी हमारे साथ होता।'

बरसों-बरसों वह मुझसे झूठ बोलते रहे? हसन से झूठ बोलते रहे? कैसे? मुझे अब भी याद है कि जब मैं छोटा था तो एक दिन उन्होंने मुझे अपनी गोद में बैठाकर और मेरी आँखों में आँखें डालकर कहा था, 'सिर्फ़ एक चीज़ गुनाह है। और वह है चोरी... जब आप किसी से झूठ बोलते हो तो आप उससे सच जानने का हक़ चुराते हो।' क्या उन्होंने ख़ुद मुझसे यह नहीं कहा था? और अब, उनको दफनाने के पंद्रह बरसों बाद, मुझे पता चल रहा है कि बाबा ख़ुद ज़िन्दगी भर एक चोर बने रहे। और चोर भी सबसे ख़राब किस्म के, क्योंकि उन्होंने जो चीज़ें चुराईं वे बेहद पाकीज़ा थीं: उन्होंने मुझसे यह जानने का हक़ चुराया कि मेरा एक भाई था; हसन की असल पहचान चुराई; और अली से उसका आत्म-सम्मान चुराया। उसका नांग। उसका नमूस।

तरह-तरह के सवाल दिमाग़ में आने-जाने लगे: आख़िर किस तरह बाबा अली से आँख मिलाकर बात कर पाते होंगे? और अली उस घर में कैसे रहता रहा होगा, सालों-साल, यह जानते हुए भी कि उसके मालिक ने उसकी इज़्ज़त के साथ खिलवाड़ किया था, और वो भी उस तरीक़े से जिसे किसी अफ़ग़ान आदमी को बेइज़्ज़त करने का सबसे घिनौना तरीक़ा माना जाता रहा हो? और मैं बाबा की इस नई छवि को उस छवि से कैसे जोड़ पाऊँगा जो मेरे ज़ेहन में लम्बे समय से काबिज़ थी, वह छवि जिसमें वह अपना पुराना कत्थई रंग का सूट पहनकर ताहेरीज़ के ड्राइव-वे पर लंगड़ाते हुए सोराया का हाथ माँगने के लिए जा रहे थे? एक और कहावत है जिसका मेरे रचनात्मक-लेखन के शिक्षक महोदय मज़ाक बनाते थे – 'जैसा बाप, वैसा बेटा।' मगर यह कहावत सच थी, नहीं? जैसा कि अब सामने था, बाबा और मैं उससे कहीं ज़्यादा एक जैसे थे जितना मैं सोचता था। हम दोनों ने ही उन लोगों के साथ धोखा किया था जो हमारे लिए अपनी जान भी दे सकते थे। और यह बात ज़ेहन में आते ही मुझे एक और बात समझ आ गई: रहीम खान ने मुझे यहाँ सिर्फ़ मेरे पापों के प्रायश्चित के लिए नहीं बुलाया था; बाबा के पापों का भी प्रायश्चित होना था।

रहीम खान कह रहे थे कि मैं हमेशा ख़ुद के साथ ज़रूरत से ज़्यादा सख़्ती से पेश

आता रहा हूँ। मगर मुझे ऐसा नहीं लगता। ठीक है कि मैंने अली का पैर बारूदी सुरंग पर नहीं रखवाया था, और न ही मैं तालिबान को बाबा के घर लेकर गया था हसन को मरवाने के लिए। मगर अली और हसन को घर से बाहर तो मैंने ही निकलवाया था। क्या ऐसा सोचना बहुत दूर की कौड़ी होगी कि अगर मैंने ऐसा नहीं किया होता तो आज चीज़ें बहुत अलग होतीं? हो सकता है कि बाबा उन दोनों को भी हमारे साथ अमेरिका ले आए होते। हो सकता है कि आज हसन का भी ख़ुद का एक घर होता, रोज़गार होता, परिवार होता, उस देश में एक सुकून भरी ज़िन्दगी होती जहाँ किसी को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह हज़ारा था, बल्कि जहाँ ज़्यादातर लोगों को पता ही नहीं है कि हज़ारा होता क्या है। हो सकता है ऐसा नहीं भी होता। मगर हो भी सकता था।

'मैं काबुल नहीं जा सकता,' मैंने रहीम खान से कहा था। 'अमेरिका में मेरी बीवी है, घर है, करिअर है, परिवार है।' मगर अब मैं अपना सामान पैक करके घर वापस कैसे जा सकता था, जबकि मुझे यह पता चल चुका था कि मेरी वजह से ही हसन ने ये सारी चीज़ें हासिल करने का मौका गँवा दिया था? काश, रहीम खान ने मुझे फोन न किया होता। काश, उन्होंने मुझे अँधेरे में ही जीने दिया होता। मगर उन्होंने फोन किया। और उन्होंने जो कुछ भी मुझे बताया, उससे अब सबकुछ बदल चुका था। मुझे यह समझ आ चुका था कि कैसे मेरी पूरी ज़िन्दगी –1975 की सर्दियों से भी बहुत पहले से, तब से जब से वह मीठी आवाज़ की धनी हज़ारा धाय अपना दूध मिलाकर मुझे पाल-पोस रही थी– झूठ, धोखे और घिनौने राज़ों का लगातार चला आ रहा सिलसिला था।

'फिर से अच्छा बनने का एक रास्ता है,' उन्होंने कहा था।

उस सिलसिले को ख़त्म करने का।

एक छोटे बच्चे के ज़रिए। एक अनाथ बच्चा। हसन का बेटा। काबुल में कहीं।

रिक्शा करके रहीम खान के घर वापस जाते वक़्त मुझे एक बार बाबा की कही हुई एक बात याद आ गई। उनका कहना था कि मेरी समस्या यह थी कि मेरी जगह मेरी लड़ाई हमेशा कोई और लड़ता रहा था। मैं अब अड़तीस का था। मेरे बाल कम होने लगे थे और उनमें सफेदी भी आने लगी थी, और पिछले कुछ अरसे से मुझे अपनी आँखों की कोरों पर वे झुर्रीनुमा लकीरें भी दिखाई देने लगी थीं जिन्हें अंग्रेज़ी में 'क्रो'ज़ फीट' कहते हैं। ज़ाहिर तौर पर मैं उम्रदराज़ हो चला था, मगर शायद अभी इतना बूढ़ा नहीं हुआ था कि अपनी लड़ाई ख़ुद लड़ना शुरू न कर सकूँ। निश्चित रूप से बाबा ने बहुत सारी बातों के बारे में झूठ बोला था, मगर इस मामले में उनकी कही हुई बात सच थी।

मैंने जेब से हसन की तस्वीर निकाली और उसके गोल चेहरे को देखने लगा। अपने भाई के चेहरे को। हसन मुझसे बेपनाह मुहब्बत करता था, इतनी जितनी कभी किसी ने किसी से नहीं की और न ही कभी कर पाएगा। वह तो अब इस दुनिया में नहीं था,

मगर उसका एक अंश अब भी ज़िन्दा था। काबुल में।

इंतज़ार कर रहा था।

वापस लौटने पर मैंने रहीम खान को एक कोने में बैठकर नमाज़ अदा करते पाया। उनके पीछे चमकीला लाल आसमान होने की वजह से मुझे खाली पूरब की ओर मुँह करके सजदा करती हुई एक काली आकृति भर दिखाई पड़ रही थी। मैं उनके फारिग होने का इंतज़ार करने लगा।

जब वह उठे तो मैंने उन्हें बताया कि मैं काबुल जाने के लिए तैयार था। साथ ही सुबह मिस्टर कैडवेल को फोन लगाने के लिए भी कहा।

"मैं आपके लिए दुआ करूँगा, आमिर जान," उन्होंने कहा।

उन्नीस

फिर वही कार सिकनेस। कार में सफ़र करते हुए पेट में गड़बड़ होना और मतली आना। जब तक हम गोलियों से छलनी उस साइनबोर्ड के पास से गुज़रे जिस पर लिखा था, 'खैबर दर्रा आपका स्वागत करता है,' मेरे मुँह में लार बनने लगी थी और उल्टी-सी भरने लगी थी। पेट में हलचल-सी, ऐंठन-सी शुरू हो गई थी। मेरे ड्राईवर, फ़रीद, ने रूखी नज़रों से मुझे देखा। उसकी आँखों में मुझे अपने लिए कोई हमदर्दी नज़र नहीं आई।

"क्या हम खिड़की का काँच नीचे कर सकते हैं?" मैंने पूछा।

उसने एक सिगरेट सुलगाई और उसे अपने बाएँ हाथ, जो स्टीयरिंग पर था, की दो साबुत उंगलियों के बीच में फँसा लिया (उसके उस हाथ में कुल दो ही साबुत उंगलियाँ थीं)। अपनी नज़रें सड़क पर बनाए रखते हुए वह आगे झुका, अपने पैरों के बीच पड़ा पेंचकस उठाया और मुझे थमा दिया। मैंने पेंचकस दरवाज़े के उस छोटे से छेद में फँसाकर घुमा दिया जहाँ हैंडल था। काँच नीचे हो गया।

फ़रीद ने एक बार फिर मुझे तंज करती हुई नज़र से देखा (उस नज़र में मुझे दबा हुआ गुस्सा और नापसंदगी भी साफ़-साफ़ नज़र आई थी) और वापस सिगरेट के कश लगाने लगा। जमरूद फोर्ट से निकलने के बाद से अब तक उसने बड़ी मुश्किल एक दर्जन अलफ़ाज़ मुँह से निकाले होंगे।

"तशाकोर," खिड़की से सर बाहर निकालकर मैंने कहा। दोपहर की ठंडी हवा मेरे चेहरे को सहला रही थी। खैबर दर्रे के इस आदिवासी इलाके में शैल और चूना पत्थर के पहाड़ों के बीच बने इन रास्तों पर सफ़र करने का अनुभव अब भी वैसा ही था जैसा मेरी यादों में दर्ज था; 1974 में बाबा और मैं इस इलाके से गुज़र चुके थे। इस सूखे और बंजर पहाड़ी इलाके में ऊँची-ऊँची चोटियाँ भी थीं और गहरी-गहरी खाइयाँ भी। इन ऊँची चोटियों पर कहीं-कहीं पुराने ज़माने के किलों के खंडहर भी दिखाई पड़ जाते थे। मैं अपनी आँखें उत्तर दिशा में दिखाई पड़ रहे बर्फ़ से ढँके हिंदूकुश पर टिकाए रखने की कोशिश कर रहा था, मगर हर बार जब मेरा पेट थोड़ा ठीक होने को होता तो गाड़ी एक बार फिर तेज़ी से कोई मोड़ मुड़ जाती और मतली की एक नई लहर पैदा हो जाती।

"नीम्बू खाकर देखिए।"

"क्या?"

"नीम्बू। कार सिकनेस में अच्छा काम करता है," फ़रीद ने कहा। "इस रास्ते से

गुज़रते वक़्त मैं हमेशा साथ रखता हूँ।”

“नहीं, शुक्रिया,” मैंने कहा। ऐसी हालत में नीम्बू खाकर और एसिडिटी बढ़ाने के ख़याल से ही मुझे और मतली भरने लगी। फ़रीद एक तंज़ कसती हँसी हँसा। “जानता हूँ कि यह अमरीकी दवाओं की तरह की कोई हाई-फाई दवा नहीं है, बस एक पुराने ज़माने का नुस्खा है जो मेरी वालिदा ने मुझे बताया था।”

मुझे अफ़सोस हुआ कि मैंने उसके साथ घुलने-मिलने का मौका गँवा दिया। “अगर ऐसी बात है तो फिर दो, देखते हैं आज़माकर।”

उसने पीछे की सीट से एक काग़ज़ का थैला उठाया और उसमें से आधा कटा नींबू निकालकर मुझे थमा दिया। मैंने थोड़ा सा चूसा, कुछ मिनट इंतज़ार किया और फिर झूठ-मूठ कहा, “तुम सही कह रहे थे यार। अब पहले से बेहतर लग रहा है।” ख़ुद एक अफ़ग़ान होने के नाते मुझे पता था कि अफ़ग़ानियों के सामने रूखा और बदमिज़ाज होने से ज़्यादा अच्छा होता है चुपचाप परेशानी झेल लेना। मैंने ज़बरदस्ती मुस्कराने की कोशिश की।

“पुराना देसी नुस्खा...किसी फैंसी दवा की ज़रूरत नहीं,” उसने कहा। उसकी आवाज़ में अभी भी ख़ासा रूखापन था। उसने सिगरेट की राख झटकी और पीछे देखने वाले शीशे (रियरव्यू मिरर) में ख़ुद को देखा।उसके चेहरे पर आत्म-संतुष्टि का भाव उभर आया। वह ताजिक था। एक दुबला-पतला और गहरी रंगत वाला आदमी, जिसके चेहरे पर मौसम की मार के निशान मौजूद थे। कंधे सँकरे और गर्दन लंबी थी और गर्दन में एक उभरा हुआ टेंटुआ था, जो घनी दाढ़ी की वजह से केवल तभी दिखाई पड़ता था जब वह अपना सिर घुमाता था। उसका पहनावा बिल्कुल मेरे जैसा था, हालाँकि यह कहना ज़्यादा सही होगा कि इस वक़्त मेरा पहनावा उसके जैसा था; हम दोनों ने ही ग्रे कलर का पिरहन-तुंबन और जैकेट पहना हुआ था और ऊपर से एक ऊनी कंबल लपेटा हुआ था। सिर पर उसने भूरे रंग का पकोल (एक तरह की टोपी) पहना हुआ था और उसे थोड़ा-सा एक तरफ़ को झुकाया हुआ था, ताजिक लोगों के हीरो अहमद शाह मसूद की तरह, जिसे ताजिक लोग ‘पंजशेर का शेर’ कहते थे।

रहीम खान ने ही मुझे फ़रीद से मिलवाया था। पेशावर में। उनके मुताबिक़ फ़रीद उन्तीस बरस का था, मगर चेहरे की धीर-गंभीरता और झुर्रियों से वह कम से कम बीस बरस बड़ा मालूम पड़ता था। वह मज़ार-ए-शरीफ़ में पैदा हुआ था और दस बरसों तक वहीं रहा, फिर उसके वालिद अपने परिवार के साथ जलालाबाद आ गए। जब वह चौदह बारह का था, तभी वह और उसके वालिद दोनों शोरावी के ख़िलाफ़ जिहाद में शामिल हो गए थे। वे पंजशेर घाटी में दो साल तक लड़ते रहे, फिर एक दिन एक हेलीकॉप्टर के हमले में उसके वालिद की मौत हो गई। फ़रीद की दो बीवियाँ और पाँच बच्चे थे। “पहले सात थे,” रहीम खान ने अफ़सोस भरे लहजे में कहा था। मगर कुछ बरस पहले जलालाबाद के ठीक बाहर हुए एक बारूदी सुरंद धमाके में उसकी दो छोटी बच्चियाँ अल्लाह को प्यारी हो गई थीं। इसी धमाके में उसके दोनों पैरों के पंजे

और बाएँ हाथ की तीन उंगलियाँ भी उड़ गई थीं। उसके बाद ही वह अपने परिवार को लेकर पेशावर आ गया।

"जाँच-चौकी," फ़रीद ने बड़बड़ाते हुए कहा। मैं थोड़ा-सा झुककर बैठ गया और अपनी बाँहें मोड़कर सीने पर रख लीं। एक पल के लिए मैं कार-सिकनेस और मतली को जैसे भूल ही गया। मगर फ़िक्र करने जैसी कोई बात नहीं हुई। दो पाकिस्तानी मिलिशिया हमारी खटारा मालूम होने वाली लैंड क्रूज़र के पास आए, एक सरसरी निगाह अंदर डाली और हाथ के इशारे से आगे बढ़ जाने का इशारा कर दिया।

इस मिशन के लिए रहीम खान और मैंने तैयारियों की जो लिस्ट बनायी थी, उसमें फ़रीद पहले नंबर पर था। इस लिस्ट में ये दूसरी तैयारियाँ भी शामिल थीं: डॉलर्स को कलदार और अफ़ग़ानी बिलों में बदलना, पहनने के लिए पिरहन-तुंबन, जैकेट और पकोल–मज़ेदार बात यह थी कि जब मैं सचमुच अफ़ग़ानिस्तान में रहता था तब मैंने कभी ये चीज़ें नहीं पहनी थीं–हसन और सोहराब की वह पोलेरॉइड तस्वीर, और आख़िरी मगर शायद सबसे ज़रूरी चीज़: नकली दाढ़ी, काली और छाती तक आने वाली दाढ़ी, जो कि शरिया के हिसाब से (कम से कम तालिबान का जो संस्करण था शरिया था, उसके हिसाब से) बहुत मौज़ूँ थी। रहीम ख़ान पेशावर में एक ऐसे आदमी को जानते थे जो इस तरह की नकली दाढ़ियाँ बनाने में माहिर था। अक्सर वह जंग को कवर करने आने वाले विदेशी पत्रकारों के लिए बनाता था।

रहीम खान चाहते थे कि मैं कुछ दिन और उनके पास रुकूँ, ताकि हम और अच्छे से योजना बना पाएँ। मगर मैं जानता था कि मेरा जल्द से जल्द निकलना ही ठीक था। मुझे डर था कि अगर आराम से बैठकर सोचने का मौका मिला तो मैं अपना इरादा बदल दूँगा, ख़ुद को जाने के इतने नुक़सान और न जाने के इतने फ़ायदे गिना दूँगा कि फिर जाना मुश्किल हो जाएगा। मुझे डर था कि अमेरिका में जो मेरी शानदार ज़िन्दगी थी, उसकी कशिश मुझे वापस खींच लेगी और मैं फिर से उस विशाल और शानदार नदी में उतर जाऊँगा, सबकुछ भूल जाऊँगा और पिछले कुछ दिनों में जो कुछ भी जाना था उसे गहरे तल में डूब जाने दूँगा। मुझे डर था कि नदी की धारा मुझे उस काम से दूर बहा ले जाएगी जिसे मुझे अंजाम देना था। और हसन से भी। उस अतीत से भी, जो मुझे बुला रहा था। और अपने पापों के प्रायश्चित के इस आख़िरी मौके से भी। इसीलिए मैं ऐसा कुछ भी हो पाने से पहले ही निकल पड़ा। सोराया को इस बारे में कुछ भी बताना बेवक़ूफ़ी होती, क्योंकि यह बात सुनते ही वह अगली फ्लाइट पकड़कर पाकिस्तान चली आती।

हम पाकिस्तान की सरहद पार करके अफ़ग़ानिस्तान में दाख़िल हो चुके थे और हर जगह ग़रीबी के निशान दिखाई दे रहे थे। सड़क के दोनों ओर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर छोटे-छोटे गाँव बसे हुए थे। मगर गाँव क्या थे, अभावों की जीती-जागती मिसाल थे। टूटे-फूटे मिट्टी के घरों और चार बल्लियों और फटे-पुराने कपड़ों की छत वाली झोपड़ियों के अलावा और कुछ भी नहीं था वहाँ। हाँ, कहीं-कहीं चिंदी-चीथड़ों जैसे कपड़े पहने

बच्चे झोपड़ियों के बाहर फुटबॉल खेलते दिख जाते थे। कुछ मील आगे जाने पर मैंने देखा कि एक जगह एक जले हुए रूसी टैंक के ढाँचे के ऊपर कुछ लोग लाइन से उकड़ूँ बैठे थे, बिल्कुल वैसे जैसे किसी तार पर कौए लाइन से बैठे होते हैं, और उनके ओढ़े हुए कम्बलों के कोने तेज़ हवा में फड़फड़ा रहे थे। उनके पीछे कत्थई रंग के बुर्के में ढँकी एक औरत कंधे पर मिट्टी का बड़ा-सा घड़ा रखे एक ऊबड़-खाबड़ रास्ते से होकर मिट्टी के चंद घरों वाली एक बसाहट की तरफ़ जा रही थी।

"ताज्जुब है," मैंने कहा।

"किस बात का?"

"अपने ही वतन में मुझे सैलानियों वाली फीलिंग आ रही है," मैंने सड़क किनारे अपनी आधा दर्जन मरगिल्ली बकरियों को चराने ले जाते एक चरवाहे को देखते हुए कहा। फ़रीद फिर से तंज कसती हँसी हँसा। हाथ में दबी सिगरेट खिड़की से बाहर फेंक दी। "आप अभी भी इस जगह को अपना वतन मानते हैं?"

"मुझे लगता है कि मेरा एक हिस्सा हमेशा ऐसा ही मानता रहेगा," मैंने मज़बूती से अपना बचाव करते हुए कहा। कुछ ज़्यादा ही मज़बूती से शायद।

"बीस साल अमेरिका में रहने के बाद भी?" गाड़ी को सड़क पर बने बीच-बॉल जितने बड़े गड्ढे से बचाकर निकालने के लिए मोड़ते हुए उसने कहा।

मैंने हाँ में सिर हिलाया। "मैं अफ़ग़ानिस्तान में ही पला-बड़ा हूँ।" फ़रीद फिर तंज कसती हँसी हँसा।

"तुम ऐसा क्यों करते हो?"

"छोड़िए," उसने बुदबुदाते हुए कहा।

"नहीं, मैं जानना चाहता हूँ। क्यों करते हो तुम ऐसा?"

उसके सामने लगे रियर-व्यू मिरर में, मैंने देखा कि उसकी आँखों में एक अजीब सी चमक उभर आई थी। "आप जानना चाहते हैं?" उसने ताना मारने के अंदाज़ में कहा। "मुझे ज़रा कल्पना करने दीजिए, आगा साहब। आप शायद एक बड़े से दो या तीन-मंज़िला मकान में रहते थे, जिसके पिछवाड़े में एक ख़ूबसूरत-सा बाड़ा था, जिसे आपके माली ने फूलों और फलों के पेड़ों से भर रखा था। घर के चारों ओर ऊँची चारदीवारी तो खैर रही ही होगी। आपके बाबा के पास कोई अमरीकी कार होगी। घर में नौकर-चाकर होंगे, शायद हज़ारा लोग। आपके वालदैन घर पर शानदार दावतें देते होंगे और उस दौरान घर को सजाने और मेहमानों की आवभगत के लिए बहुत से लोगों को काम पर रखते होंगे, ताकि शराबनोशी करने और अपनी अमेरिका और यूरोप की सैर की शेख़ी बघारने के लिए आने वाले उनके दोस्तों और मेहमानों के सामने उनकी नाक ऊँची रह सके। और मैं अपने बड़े बेटे की आँख को दाँव पर लगाने की कीमत पर यह दावा करने को तैयार हूँ कि आपने यह पकोल ज़िन्दगी में पहली

बार पहना है।” इतना कहकर वह मुस्कराने लगा। मैंने देखा कि उसके दाँत वक़्त से पहले ही सड़ने लगे थे। “मैंने सही कहा न?”

“तुम यह सब क्यों कह रहे हो?”

“क्योंकि आप जानना चाहते थे,” उसने मज़बूती से कहा। फिर उसने सड़क की एक ओर एक कच्ची पगडंडी पर चले जा रहे एक बूढ़े आदमी की ओर इशारा किया, जिसके बदन पर फटे-पुराने कपड़े थे और जिसने अपनी पीठ पर स्क्रब घास से भरा एक बड़ा सा बोरा लादा हुआ था। “यह है असली अफ़ग़ानिस्तान, आगा साहिब। यह वो अफ़ग़ानिस्तान है जिसे मैं जानता हूँ। आप? आप तो यहाँ हमेशा से ही सैलानी रहे हैं, बस आपको यह बात पता आज चली है।”

रहीम खान ने मुझे पहले ही चेता दिया था कि मुझे अफ़ग़ानिस्तान में उन लोगों से गर्मजोशी भरे इस्तकबाल की उम्मीद नहीं करनी चाहिए जो ज़िन्दगी की दौड़ में पीछे रह गए हैं और जिन्होंने जंग लड़ी है। “तुम्हारे वालिद के बारे में जानकर अफ़सोस हुआ,” मैंने कहा। “तुम्हारी बेटियों के साथ जो हुआ उसका भी मुझे अफ़सोस है, और तुम्हारे हाथ के लिए भी।”

“इस सबका मेरे लिए कोई मतलब नहीं है,” उसने कहा। “वैसे, अब आप किसलिए वापस आए हैं? अपने बाबा की ज़मीन-जायदाद बेचने? बेचकर पैसा जेब में रखेंगे और वापस अपनी वालिदा के पास अमेरिका लौट जाएँगे?”

“मेरी वालिदा मुझे पैदा करते वक़्त ही अल्लाह को प्यारी हो गई थीं,” मैंने कहा।

उसने एक अफ़सोसजनक साँस छोड़ी और एक और सिगरेट सुलगा ली। मगर कहा कुछ नहीं।

“साइड में लगाओ।”

“क्या?”

“मैं कहता हूँ गाड़ी साइड में लगाओ!” मैंने कहा। “मुझे उल्टी होने वाली है।” उसने गाड़ी सड़क के किनारे करते हुए धीमी की। गाड़ी के पूरी तरह रुकने से पहले ही मैं अपनी तरफ़ का दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल चुका था।

शाम होते-होते हम धूप से झुलसी चोटियों और बंजर चट्टानों वाले इलाके को पीछे छोड़कर हरे-भरे ग्रामीण आबादी वाले इलाके में दाख़िल हो चुके थे। खैबर दर्रा मुख्य रूप से लंडी कोटल से लेकर शिनवारी क्षेत्र से होते हुए लंडी खाना तक फैला था। तोरखम पार करके अफ़ग़ानिस्तान की सरहद शुरू हो जाती थी। सड़क के दोनों तरफ़ लाइन से पाइन के पेड़ खड़े थे। इनकी तादाद अब उतनी तो नहीं थी जितनी पहले हुआ करती थी, और अभी तो कई सारे पेड़ों में पत्तियाँ भी नहीं थीं, मगर फिर भी खैबर दर्रे के सूखे और बंजर इलाके के मुश्किल सफ़र के बाद फिर से पेड़ों को देखकर दिल और आँखों दोनों को बड़ा सुकून मिल रहा था। हम जलालाबाद पहुँचने

वाले थे, जहाँ हमें रात को फ़रीद के भाई के यहाँ रुकना था।

जब हम जलालाबाद में दाख़िल हुए तो सूरज अभी पूरी तरह डूबा नहीं था। जलालाबाद, जो कि नांगरहार राज्य की राजधानी है, कभी अपने फलों और गर्म आब-ओ-हवा के लिए मशहूर था। हम शहर के बीच के इलाके में बनीं इमारतों और पत्थर के मकानों को पार करते हुए आगे बढ़ रहे थे। मैंने देखा कि वहाँ अब उतनी तादाद में पाम के पेड़ नहीं थे जितने मेरे बचपन के दिनों में हुआ करते थे, और कई सारे मकान जिन्हें मैंने कभी आबाद देखा था, वे अब बिना छत की चारदीवारी और मिट्टी के ढेर में तब्दील हो चुके थे।

आख़िर में फ़रीद एक सँकरी कच्ची सड़क पर मुड़ा और लैंड क्रूजर को एक सूखे नाले के किनारे खड़ा कर दिया। मैं गाड़ी से बाहर निकला, अंगड़ाई ली और एक गहरी साँस भरी। पहले के समय में जलालाबाद के आस-पास गन्ने की खेती बहुत होती थी और हवाएँ जब उन गन्ने के खेतों से होकर आती थीं तो शहर की फिज़ां को मीठी ख़ुश्बू से भर देती थीं। अभी भी मैंने आँखें बंद करके उसी ख़ुश्बू को महसूस करने की कोशिश की। मगर अब वह नदारद थी।

“चलिए, चलते हैं,” फ़रीद ने बेसब्री से कहा। हम उसी कच्ची सड़क पर आगे बढ़ने लगे। सड़क के किनारे कहीं-कहीं चिनार के पेड़ खड़े थे, जिनमें अभी पत्तियाँ नहीं थीं। इसी तरह एक जगह सड़क किनारे लाइन से मिट्टी की कुछ खंडहर हो चुकीं दीवारें खड़ीं थीं। आख़िर में हम एक टूटे-फूटे से एक-मंज़िला मकान के सामने जाकर रुके और फ़रीद ने लकड़ी के तख़्ते वाले दरवाज़े पर दस्तक दी।

दरवाज़ा खुला और एक नयी उम्र की लड़की ने, जिसकी आँखें समंदर के पानी की तरह हरी थीं और जिसने चेहरे पर सफेद दुपट्टा लपेटा हुआ था, बाहर झाँका। उसकी नज़र पहले मुझ पर पड़ी तो वह चौंक गई, मगर फिर जब उसने फ़रीद को देखा तो उसकी आँखें चमक उठीं। “सलाम अलैकुम, फ़रीद काका!”

“सलाम, मरियम जान,” जवाब में फ़रीद ने कहा और उसे वह चीज़ दी जो उसने मुझे पूरे दिन नहीं दी थी: एक गर्मजोशी भरी मुस्कान। फिर उसने मरियम का सिर चूमा। मरियम एक तरफ़ हट गई और हमें भीतर जाने का रास्ता दिया। चूँकि मैं उसके लिए पूरी तरह अनजान था, इसलिए जब मैं फ़रीद के पीछे-पीछे भीतर जाने लगा तो उसने मुझे थोड़ी आशंकित नज़रों से देखा।

मिट्टी के उस छोटे से मकान की छत नीची थी, दीवारें बिल्कुल खाली थीं, और रोशनी का इकलौता ज़रिया कोने में जल रहीं दो लालटेनें थीं। हमने जूते उतारे और ज़मीन पर बिछी चटाई पर बैठ गए। एक दीवार से लगकर बिछे गद्दे पर (जिस पर उधड़े किनारों वाला एक कम्बल ढँका हुआ था) तीन छोटी उम्र के लड़के पालथी मारकर बैठे थे। लम्बी दाढ़ी और चौड़े कंधों वाला एक आदमी हमारे इस्तकबाल के लिए उठ खड़ा हुआ। फ़रीद उसके गले लगा और दोनों ने एक-दूसरे के गाल चूमे।

फ़रीद ने उसका मुझसे परिचय उसके बड़े भाई वाहिद के तौर पर कराया। और अंगूठे से मेरी तरफ़ इशारा करके मेरा परिचय उसे देते हुए कहा, “यह अमेरिका से हैं।” फिर वह हमें वहीं छोड़कर दीवार के पास बैठे बच्चों के पास चला गया।

वाहिद और मैं एक दूसरी दीवार से सटकर बैठ गए। मैंने देखा कि जो बच्चे अभी तक चुपचाप बैठे थे, फ़रीद काका के आते ही शैतानी पर उतर आए थे। कोई फ़रीद के कंधे पर चढ़ा हुआ था, तो कोई उसके बाल खींच रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे तीनों ने मिलकर फ़रीद पर ‘हल्ला बोल’ कर दिया हो। मेरे मना करने के बावजूद वाहिद ने उनमें से एक बच्चे को एक दूसरा कम्बल लाने भेज दिया ताकि मैं आराम से बैठ सकूँ, और मरियम से मेरे लिए चाय लाने को कहा। फिर वह पेशावर से खैबर दर्रे को पार करके जलालाबाद तक के सफ़र के बारे में पूछने लगा।

“उम्मीद है कि रास्ते में आपको डाकू नहीं मिले होंगे,” उसने कहा। खैबर दर्रा जितना अपने बंजर और पठारी भूगोल के लिए जाना जाता था, उतना ही कुख्यात उन डाकुओं के लिए भी था जो उस इलाके से गुज़रने वाले मुसाफ़िरों के साथ लूटपाट करते थे। इससे पहले कि मैं कोई जवाब दे पाता, वाहिद ने आँख मारी और ऊँची आवाज़ में कहा, “बेशक कोई भी डाकू मेरे भाई की कार जैसी कबाड़ कार पर अपना वक़्त बर्बाद नहीं करेगा।”

इधर फ़रीद ने सबसे छोटे वाले बालक को ज़मीन पर चित्त करके अपने दाएँ हाथ से उसके पेट में गुदगुदी शुरू कर दी थी। बच्चा ज़ोरों से खिलखिलाते हुए हवा में हाथ-पाँव चलाने लगा। “कम से कम मेरे पास कार तो है,” फ़रीद ने हाँफते हुए कहा। “वैसे, इन दिनों तुम्हारा गधा कैसा है?”

“मेरा गधा तुम्हारी कार से ज़्यादा अच्छी सवारी है।”

“ख़र ख़रा मिश्नास्साह,” फ़रीद ने पलटवार किया। एक गधा ही दूसरे गधे को इतनी अच्छी तरह जान सकता है। यह सुनकर सभी हँस पड़े। मैं भी। मुझे बग़ल वाले कमरे से जनाना आवाज़ें सुनाई दीं। जहाँ मैं बैठा था वहाँ से उस कमरे का आधा हिस्सा दिखाई पड़ता था। मरियम और कत्थई रंग का हिजाब पहने एक उम्रदराज़ औरत (शायद उसकी वालिदा) धीमी आवाज़ में गुफ्तगू कर रही थीं और केतली से कप में चाय डाल रही थीं।

“आप अमेरिका में क्या करते हैं, आमिर आगा?” वाहिद ने पूछा।

“मैं राइटर हूँ,” मैंने कहा। मुझे लगा कि मैंने इस बात पर फ़रीद को हँसते हुए सुना।

“राइटर?” वाहिद ने साफ़ तौर पर प्रभावित होते हुए कहा। “क्या आप अफ़ग़ानिस्तान के बारे में लिखते हैं?”

“हाँ, लिखा है। मगर फिलहाल इस पर कुछ नहीं लिख रहा हूँ,” मैंने कहा। मेरा जो

पिछला उपन्यास था, ए सीज़न फॉर एशेज़, उसका नायक एक विश्वविद्यालय का प्रोफेसर था, जो अपनी बीवी को अपने एक शागिर्द के साथ हमबिस्तर होता देखकर जिप्सियों के दल में शामिल हो जाता है। यह किताब बुरी नहीं थी। कुछ समीक्षकों ने इसे ‘अच्छी’ किताब कहा था और एक ने तो इसके लिए ‘दिलचस्प’ शब्द का भी इस्तेमाल किया था। मगर अचानक मुझे इसके विषय के बारे में सोचकर शर्मिंदगी महसूस होने लगी। मैं दुआ करने लगा कि वाहिद मुझसे यह न पूछने लगे कि यह उपन्यास किस बारे में था।

“मेरे ख़याल से आपको अफ़ग़ानिस्तान के बारे में फिर से लिखना चाहिए,” वाहिद ने कहा। “दुनिया को बताइए कि तालिबान हमारे वतन के साथ क्या कर रहा है।”

“असल में, मैं…उस तरह का लेखक नहीं हूँ।”

“ओह,” वाहिद ने सिर हिलाते हुए और थोड़ा सा शरमाते हुए कहा। “बेशक, आप बेहतर जानते हैं कि आपको क्या लिखना चाहिए और क्या नहीं। मेरा आपको सुझाव देना वाजिब नहीं है…।”

उसी वक़्त मरियम और वह उम्रदराज़ खानुम एक प्लेट में दो कप और चाय की केतली लेकर कमरे में दाख़िल हुईं। मैं अदब से उठ खड़ा हुआ, अपने हाथ सीने पर रखे और सिर नवाकर कहा, “सलाम अलैकुम।”

वह उम्रदराज़ खानुम, जिसने अब अपना नाक से नीचे का चेहरा छुपाने के लिए हिजाब लपेट लिया था, उसने भी सिर नवाया और कहा, “सलाम।” उसकी आवाज़ इतनी धीमी थी कि मैं बमुश्किल सुन पाया। हमने नज़रें मिलाकर बात नहीं की। जब तक उसने कप में चाय डाली, मैं खड़ा रहा।

फिर वह भाप छोड़ती चाय का कप मेरे सामने रखकर चली गई। जाते हुए वह इतने हल्के से क़दम ज़मीन पर रख रही थी कि क़दमों की आहट तक नहीं हुई। मैं बैठ गया और कड़क काली चाय की चुस्कियाँ लेने लगा। वाहिद ने आख़िर-कार उस असहज चुप्पी को तोड़ा जो हमारे बीच छा गई थी।

“तो, वापस अफ़ग़ानिस्तान आना कैसे हुआ?”

“इस तरह के लोगों को क्या चीज़ वापस अफ़ग़ानिस्तान खींचकर लाती है, मेरे भाई?” फ़रीद बात तो वाहिद से कर रहा था, मगर उसकी नज़र मुझ पर थी और उस नज़र में हिकारत का भाव साफ़ दिखाई पड़ रहा था।

“बस!” वाहिद ने डपटते हुए कहा।

“हमेशा एक ही चीज़ तो होती है,” फ़रीद ने मगर बोलना जारी रखा। “यह ज़मीन बेचो, वो मकान बेचो, पैसा इकठ्ठा करो और चूहों की तरह दुम दबाकर भाग जाओ। वापस अमेरिका जाओ और उसी पैसे से सपरिवार छुट्टियाँ मनाने मैक्सिको चले जाओ।”

"फ़रीद!" वाहिद दहाड़ा। उसके इस रौद्र रूप को देखकर उसके बच्चों के साथ-साथ फ़रीद भी सहम गया। "क्या तुम तमीज़ और लिहाज़ बिल्कुल भूल गए हो? यह मेरा घर है! आमिर आगा आज रात मेरे मेहमान हैं और मैं तुम्हें उनकी इस तरह बेइज़्ज़ती करके अपनी मेहमाननवाज़ी पर बट्टा नहीं लगाने दूँगा!"

फ़रीद ने कुछ कहने के लिए मुँह खोला, लफ्ज़ ज़बान तक आए, मगर फिर कुछ सोचा और इरादा बदल दिया। वह दीवार से सट गया, मुँह ही मुँह में कुछ बुदबुदाया और अपने कटे पंजे वाले पैर को अच्छे पैर के ऊपर रख लिया। अभी भी वह शिकायती नज़रों से मेरी ओर ही देख रहा था।

"हमें माफ़ कर दीजिए, आमिर आगा," वाहिद ने कहा। "बचपन से ही मेरे भाई का मुँह उसके सिर से दो क़दम आगे रहा है।"

"असल में, गलती मेरी है," मैंने मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा। फ़रीद अब भी मुझे घूरकर देख रहा था। "मुझे बुरा नहीं लगा। मुझे पहले ही इन्हें बता देना चाहिए था कि मैं अफ़ग़ानिस्तान किस काम से आया हूँ। मैं यहाँ ज़मीन-जायदाद बेचना नहीं आया हूँ। मैं एक बच्चे की तलाश में काबुल जा रहा हूँ।"

"बच्चा?" वाहिद ने दोहराया।

"हाँ।" मैंने अपनी जेब से हसन और सोहराब की तस्वीर निकाली। हसन की तस्वीर को देखकर मेरे दिल पर लगा उसकी मौत का ताज़ा जख्म फिर हरा हो गया। मुझे उससे अपनी नज़रें हटा लेनी पड़ीं। मैंने तस्वीर वाहिद के हाथ में दे दी। उसने तस्वीर को गौर से देखा। फिर मुझे देखा, फिर तस्वीर को देखा, फिर वापस मुझे देखा। "यह बच्चा?"

मैंने सिर हिलाकर हाँ कहा।

"यह हज़ारा बच्चा?"

"हाँ।"

"यह आपके लिए क्या मायने रखता है?"

"इसके बाबा मेरे लिए बहुत मायने रखते थे। वही जो इस तस्वीर में दिख रहे हैं। अब नहीं रहे।"

वाहिद ने हैरानी से पूछा, "क्या वह आपका दोस्त था?"

मेरी सहज-प्रेरणा थी 'हाँ' कहने की, मानो किसी गहरे तल पर मैं ख़ुद भी बाबा के राज़ को राज़ बनाए रखना चाहता था। मगर पहले ही इतने सारे झूठ बोले जा चुके थे और मैं इस फेहरिस्त को और लम्बा नहीं करना चाहता था। "वह मेरा सौतेला भाई था," मैंने मुश्किल से कहा, "मेरा नाजायज़ सौतेला भाई।" मैंने चाय का प्याला घुमाया और उसके हैंडल से खेलने लगा।

“मेरा आपके ज़ाती मामलात में दखल देने का कतइ इरादा नहीं था।”

“आप ऐसा कुछ नहीं कर रहे हैं,” मैंने कहा।

“आप उस बच्चे को तलाश कर उसका क्या करेंगे?”

“अपने साथ पेशावर ले जाऊँगा। वहाँ कुछ लोग हैं जो उसकी अच्छी परवरिश करेंगे।”

वाहिद ने तस्वीर मुझे लौटा दी और अपना भारी-भरकम हाथ मेरे कंधे पर रखा।

“आप एक मुअज़्ज़िज़ (आदरणीय) इन्सान हैं, आमिर आगा। एक सच्चे अफ़ग़ान।”

मैं अंदर से सिहर गया।

“मुझे फख्र है कि आप आज रात हमारे मेहमान हैं।” मैंने उसका शुक्रिया अदा किया और एक नज़र फ़रीद पर डाली। उसकी नज़रें झुकी हुई थीं और उसके दाँए हाथ की उंगलियाँ पुआल की चटाई के कोनों से बाहर निकल रहे तिनकों से उलझी हुई थीं।

थोड़ी देर बाद मरियम और उसकी वालिदा दो कटोरों में गरमागरम सब्जी-शोरबा और दो बड़े-बड़ी नान ले आईं। “मैं माफ़ी चाहता हूँ कि हम आपको गोश्त नहीं खिला पा रहे हैं, अब तो गोश्त सिर्फ़ तालिबानियों के नसीब में ही रह गया है,” वाहिद ने कहा।

“नहीं-नहीं, यह बहुत अच्छा लग रहा है,” मैंने कहा। और वाक़ई वह बहुत अच्छा था। मैंने तीनों बच्चों और वाहिद से भी साथ में खाने के लिए कहा, मगर उन्होंने बताया कि वे हमारे आने से पहले ही खा चुके थे। फ़रीद और मैंने अपने-अपने पैरहन की बाहें चढ़ाईं, अपने-अपने नान शोरबा में डुबाए, और हाथ से खाना शुरू कर दिया।

खाना खाते-खाते मेरी नज़र वाहिद के तीनों लड़कों पर गई तो मैंने गौर किया कि वे सभी दुबले-पतले थे, चेहरों पर धूल जमी हुई थी, और सभी के भूरे बाल छोटे-छोटे कटे हुए थे। और वे तीनों सबकी नज़र बचाकर लगातार मेरी कलाई घड़ी पर नज़रें जमाए हुए थे। तभी सबसे छोटे लड़के ने अपने भाई के कान में कुछ फुसफुसाया। सुनकर भाई ने हाँ में सिर हिलाया, मगर मेरी घड़ी से नज़र नहीं हटाई। उनमें से जो सबसे बड़ा लड़का था, जिसकी उम्र तक़रीबन बारह बरस रही होगी, अपनी जगह पर बैठा-बैठा आगे-पीछे डोल रहा था, उसकी भी नज़र मेरी घड़ी पर ही टिकी हुई थी। खाना खा चुकने के बाद मरियम ने मिट्टी के एक बर्तन से पानी उड़ेलकर हमारे हाथ धुलवाए। तब मैंने वाहिद से उसके तीनों बच्चों को कुछ हदिया, तोहफ़ा, देने की इजाज़त माँगी। उसने इंकार किया, मगर मेरे बहुत ज़्यादा इसरार करने पर हिचकते हुए राज़ी हुआ। मैंने अपनी कलाई पर से घड़ी उतारी और सबसे छोटे लड़के को थमा दी। उसने शरमाते हुए कहा, “तशाकोर।”

“यह आपको दुनिया के किसी भी शहर का वक़्त बताती है,” मैंने उससे कहा।

लड़कों ने अदब से सिर हिलाया, एक-एक करके घड़ी को अपने-अपने हाथों में लेकर देखा, और फिर बारी-बारी से उसे पहनकर भी देख लिया। मगर जल्दी ही उसमें उनकी दिलचस्पी ख़त्म हो गई और वे उसे वहीं चटाई पर रखा छोड़कर सोने चले गए।

"आप मुझे बता सकते थे," बाद में फ़रीद ने कहा। हम दोनों अगल-बग़ल उन चटाइयों पर लेते थे जो वाहिद की खानुम ने हमारे लिए बिछायीं थीं।

"क्या बता सकता था?"

"कि आप अफ़ग़ानिस्तान किसलिए आए हैं।" उसकी आवाज़ की वह तल्खी हो गायब हो चुकी थी जो पेशावर में हमारे मिलने से लेकर अभी तक मुझे हर दम उसकी आवाज़ में सुनाई देती आई थी।

"तुमने पूछा ही नहीं," मैंने कहा।

"आपको मुझे बता देना चाहिए था।"

"तुमने पूछा ही नहीं।"

उसने मेरी तरफ़ करवट ले ली और अपनी बाँह को सर के नीचे तकिए की तरह रख लिया। "हो सका तो मैं उस लड़के को ढूँढने में आपकी मदद करूँगा।"

"शुक्रिया, फ़रीद।"

"मुझे बगैर कुछ जाने आपके बारे में राय कायम नहीं करनी चाहिए थी।"

मैंने गहरी साँस छोड़ी। "फ़िक्र मत करो। तुम जितना जानते हो, उसके मुकाबले तुम्हारी राय कहीं ज़्यादा सही थी।"

उसके हाथ पीठ के पीछे एक मोटी रस्सी से कसकर बंधे हुए हैं। इतना कसकर कि रस्सी उसकी कलाई के माँस में धँसी हुई मालूम हो रही है। उसकी आँखों पर काली पट्टी बंधी है। वह सड़क पर एक गटर के किनारे अपने घुटनों पर बैठा है, सिर इस तरह झुका हुआ है मानो दो कन्धों के बीच लटका हुआ हो। बार-बार सजदे में झुकने के कारण सख्त सड़क पर घिसने से उसके घुटने छिल गए हैं और उनसे छलक आया ख़ून पैंट्स में से नज़र आने लगा है। दोपहर से ऊपर का वक़्त हो चुका है और इसलिए उसकी लंबी परछाईं बजरी पर आगे-पीछे डोल रही है। वह मुँह ही मुँह में कुछ बुदबुदा रहा है। सुनने की गरज से मैं उसके एक क़दम क़रीब आता हूँ। 'एक बार नहीं, हज़ारों बार,' वह बुदबुदा रहा है। 'आपकी ख़ातिर, एक बार नहीं हज़ारों बार।" वह आगे-पीछे डोलता है। फिर अपना चेहरा उठाता है। मुझे उसके ऊपरी होंठ के ऊपर एक हल्का-सा निशान दिखाई दे रहा है।

हम अकेले नहीं हैं।

सबसे पहले मुझे बन्दूक की नाल दिखाई पड़ती है। फिर उसके पीछे खड़ा आदमी।

वह लंबा है, हेरिंगबोन जैकेट और काली पगड़ी पहने हुए है। वह अपने सामने घुटनों के बल बैठे आदमी को उन नज़रों से देखता है, जिनमें सिवाए खालीपन के और कुछ नज़र नहीं आ रहा है। फिर एक क़दम पीछे हटकर बन्दूक की नाल उठाता है। उसे सामने घुटनों के बल बैठे आदमी के सिर के पीछे रखता है। एक पल के लिए शाम के सूरज की मद्धम पड़ती रोशनी नाल से टकराकर चकाचौंध पैदा करती है।

बन्दूक का घोड़ा दबता है और एक बहरा कर देने वाला धमाका गूँजता है।

मैं बन्दूक की नाल को ऊपर उठता हुआ देखता हूँ। मैं नाल से निकलते धुँए के गुबार के पीछे बन्दूक के मालिक का चेहरा देखता हूँ। हेरिंगबोन जैकेट वाला वह आदमी मैं हूँ।

मैं एक घुटी हुई चीख के साथ जागकर उठ बैठा।

मैं उठकर घर से बाहर आ गया। आधे चाँद की चाँदनी में खड़े होकर तारों भरे आसमान को देखने लगा। अंधेरे में झींगुर बोल रहे थे और हवा पेड़ों की पत्तियों में सरसराहट पैदा करती हुई बह रही थी। मेरे नंगे पैरों के नीचे ज़मीन ठंडी थी। और अचानक, अफ़ग़ानिस्तान की सरहद में दाख़िल होने के बाद से पहली बार, मुझे लगा जैसे मैं वापस आ गया था। इतने बरसों बाद मैं फिर अपने घर में था, अपने पुरखों की ज़मीन पर खड़ा था। यही वह ज़मीन थी जिस पर मेरे परदादा ने 1915 में काबुल में फ़ैली हैज़ा महामारी में मरने से ठीक एक साल पहले तीसरी शादी की थी। और उनकी उस तीसरी बेगम ने आख़िर-कार उन्हें वो चीज़ दे ही दी थी जो उनकी पहली दो बेगमें नहीं दे पाई थीं: एक बेटा। इसी ज़मीन पर मेरे दादा राजा नादिर शाह के साथ शिकार खेलने गए थे और उन्होंने एक हिरण मारा था। इसी ज़मीन पर मेरी वालिदा ने आख़िरी साँस ली थी। और इसी धरती पर मैंने अपने बाबा के प्यार के लिए लड़ाई लड़ी थी।

मैं मकान की एक दीवार से पीठ सटाकर बैठ गया। अपनी पुरानी सरज़मीं से अचानक मुझे जो गहरा वास्ता महसूस होने लगा था…उसने मुझे हैरान कर दिया था। मुझे यहाँ से गए एक लम्बा अरसा बीत चुका था और अब तक तो मुझे इस ज़मीन को और इस ज़मीन को मुझे भूल चुका होना चाहिए था। अब मेरा घर वो सरज़मीं थी जिसके बारे में जानकर आज रात के लिए मुझे पनाह देने वाले इस घर में रहने वालों के लिए यह यकीन करना मुश्किल होगा कि ऐसी कोई जगह भी इस दुनिया में हो सकती है। मुझे लगा था कि मैं इस सरज़मीं को भूल चुका हूँ। मगर नहीं भूला था। आज आधे चाँद की चाँदनी के नीचे मैं महसूस कर रहा था कि अफ़ग़ानिस्तान मेरे पैरों के नीचे गुनगुना रहा था। शायद अफ़ग़ानिस्तान भी मुझे नहीं भूला था।

मैंने पश्चिम की ओर देखा और इस बात पर हैरान हुआ कि उन पहाड़ों के पार कहीं काबुल अभी भी मौजूद था। सिर्फ़ एक पुरानी याद के रूप में नहीं, सिर्फ़ सैन फ्रांसिस्को क्रॉनिकल के पेज 15 पर छपी ख़बर के शीर्षक के रूप में नहीं, बल्कि यह सच में मौजूद था। पश्चिम में उन पहाड़ों के पार कहीं वह शहर बसा था जहाँ मैंने अपने

भाई के साथ मिलकर पतंगें लूटी थीं। वहीं कहीं मेरे सपने में नज़र आया वह आदमी बेवजह मारा गया था जिसकी आँखों पर काली पट्टी बंधी थी। इन पहाड़ों के पार एक बार मैंने एक चुनाव किया था। और अब, एक चौथाई सदी बाद, उसी चुनाव ने मुझे वापस इसी धरती पर लाकर खड़ा कर दिया था।

मैं वापस भीतर जाने को हुआ ही था कि मुझे भीतर से कुछ आवाज़ें आती हुई सुनाई दीं। उनमें से एक आवाज़ वाहिद की थी और दूसरी शायद उसकी खानुम की।

"...बच्चों के लिए कुछ भी नहीं बचा।"

"हम भूखे हैं, मगर जंगली नहीं हैं! वो हमारे मेहमान हैं! और क्या करता मैं?" वाहिद ने दिल पर पत्थर रखने वाले अंदाज़ में कहा।

"—कल कुछ बंदोबस्त करना होगा।" उसकी आवाज़ से ऐसा लगा मानो वह अभी रो देगी। "मैं क्या खिलाऊँ उन्हें—" मैं दबे पाँव वापस बाहर की ओर मुड़ गया। अब मुझे समझ आया कि क्यों उन बच्चों ने घड़ी मिलने के बाद भी उसमें ज़्यादा दिलचस्पी नहीं दिखाई थी। असल में वे मेरी घड़ी को नहीं देख रहे थे, उनकी नज़रें मेरे सामने रखे खाने पर टिकी थीं।

अगले दिन सुबह-सवेरे ही हमने वाहिद और उसके परिवार से विदा ली। लैंड क्रूज़र में चढ़ने से पहले मैंने मेहमाननवाज़ी के लिए वाहिद का शुक्रिया अदा किया। बदले में उसने अपने घर की ओर इशारा करते हुए कहा, "यह आप ही का घर है।" उसके तीनों लड़के दरवाज़े पर खड़े होकर हमें जाते देख रहे थे। सबसे छोटे वाले ने घड़ी पहनी हुई थी, जो उसकी पेड़ की टहनी जैसी पतली कलाई पर लटक रही थी।

जैसे ही फ़रीद ने गाड़ी आगे बढ़ाई, मैंने साइड-व्यू मिरर में देखा। गाड़ी के पहियों से उड़ रही धूल के गुबार के पीछे वाहिद अपने बेटों से घिरा खड़ा था। मुझे लगा कि अगर यह कोई और दुनिया होती तो वे लड़के इतने भूखे नहीं होते कि कार का पीछा न करते।

सुबह-सुबह, जब मुझे यकीन था कि कोई मुझे नहीं देख रहा था, मैंने वह काम किया जो छब्बीस बरस पहले भी एक बार कर चुका था। मैंने मुट्ठीभर पैसे एक गद्दे के नीचे छिपाकर रख दिए।

बीस

फ़रीद मुझे पहले ही चेता चुका था। उसने पहले ही बता दिया था। मगर, जैसा कि बाद में साबित हुआ, उसने बेकार ही अपनी ज़बान को तकलीफ़ दी थी।

हम जलालाबाद से काबुल जाने वाली गड्ढों से भरी सड़क पर चल रहे थे। पिछली बार जब मैंने इस सड़क से सफ़र किया था तब मैं एक तिरपाल से ढँके ट्रक के पिछले हिस्से में सवार था और दूसरी दिशा में जा रहा था। उस सफ़र के दौरान ड्रग्स के नशे में धुत्त और बेसुरी आवाज़ में एक पुराना अफ़ग़ानी गीत गुनगुना रहे एक रूसी फ़ौजी ने बाबा को तक़रीबन गोली का निशाना बना ही लिया था–उस रात बाबा ने मुझे बहुत गुस्सा दिलाया था, बहुत बुरी तरह डरा दिया था, मगर आख़िर में मुझे उन पर बहुत नाज़ भी महसूस हुआ था। काबुल से जलालाबाद जाने वाला रास्ता बेहद ऊबड़-खाबड़ और घुमावदार मोड़ों से भरा था, जिस पर चलने से सारे अस्थि-पंजर हिल जाते थे। यह रास्ता दो-दो जंग देख चुका था, दो-दो बार बरबादियों का गवाह रह चुका था। पहली जंग का कुछ हिस्सा बीस साल पहले मैंने अपनी आँखों से देखा था। उस जंग की भयावह यादें इस रास्ते के आस-पास जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी थीं: जले हुए रूसी टैंक, उलटे पड़े और जंग खा चुके फ़ौजी ट्रक, और पहाड़ से नीचे गिरकर मलबे का ढेर बन चुकी एक रूसी जीप। दूसरी जंग मैंने टीवी के परदे पर देखी थी। और अब मैं उसे फ़रीद की आँखों से देख रहा था।

सड़क में जहाँ-तहाँ बने गड्ढों को सफाई से बचाकर गाड़ी चला रहा फ़रीद अपने काम का लुत्फ़ उठाने वाले लोगों में से था। रात को वाहिद के घर रुकने के बाद से उसमें ख़ासा बदलाव आ गया था और अब वह काफी बातें कर रहा था। उसने मुझे आगे अपने बग़ल की सीट पर बैठा लिया था और बोलते समय मेरी तरफ़ देख भी रहा था। बल्कि दो-एक बार मैंने उसे मुस्कराते हुए भी देखा। उसका बाँया हाथ स्टीयरिंग पर था, जबकि दाँया हाथ रास्ते में पड़ने वाले मिट्टी की झोपड़ियों वाले उन गाँवों की ओर इशारा करने में इस्तेमाल हो रहा था जहाँ कई बरस पहले उसकी जान-पहचान के लोग रहते थे। उसने बताया कि उनमें से ज़्यादातर लोग या तो मर चुके थे या फिर पाकिस्तान में शरणार्थी शिविरों में दिन काट रहे थे। उसका मानना था कि जो लोग मर गए थे, वे ज़्यादा किस्मतवाले थे।

उसने एक छोटे से गाँव के टूटे-फूटे, जले हुए खंडहरों की ओर इशारा किया। गाँव के नाम पर अब वहाँ काली पड़ चुकीं बिना छत की टूटी-फूटी दीवारों के सिवाए और कुछ नहीं बचा था। मैंने देखा कि इन्हीं में से एक दीवार के सहारे एक कुत्ता सोया पड़ा था। “यहाँ मेरा एक दोस्त रहता था,” फ़रीद ने बताया। “बहुत अच्छा साइकिल मैकेनिक था। तबला भी बहुत अच्छा बजाता था। तालिबान ने उसे और उसके परिवार

को मार डाला और गाँव को जला दिया।"

हम जले हुए गाँव को पीछे छोड़कर आगे बढ़ चुके थे, मगर कुत्ता अपनी जगह पर जस का तस लेटा था।

पुराने वक़्त में जलालाबाद से काबुल आने या जाने में दो घंटों का वक़्त लगता था, या शायद उससे थोड़ा-सा ज़्यादा। मगर अभी फ़रीद और मुझे काबुल पहुँचने में चार घंटे लगे। और जब हम पहुँचे...फ़रीद ने मुझे महीपर बाँध पार करने के तुरंत बाद ही चेता दिया था।

"यह काबुल वह काबुल नहीं है जो आपकी यादों में बसा है," उसने कहा था।

"मैंने भी कुछ ऐसा ही सुना है।"

फ़रीद ने मुझे ऐसे देखा जैसे कहना चाह रहा हो कि सुनने और देखने में फर्क होता है। और वह सही था। क्योंकि जब काबुल आख़िर-कार हमारे सामने आया, तो मुझे इस बात में कोई शक नहीं था कि हम कोई गलत मोड़ मुड़ गए थे, काबुल की जगह कहीं और आ गए थे। सच कहूँ तो मैं स्तब्ध था, अवाक था। फ़रीद इस तरह की प्रतिक्रिया से अच्छी तरह वाक़िफ़ रहा होगा; लोगों को काबुल लाते-ले जाते वह उन लोगों के चेहरों पर स्तब्धता के इस भाव को देखने का आदी हो गया होगा जो लम्बे अरसे बाद काबुल आते होंगे।

उसने मेरे कंधे को थपथपाया और उदास होकर कहा, "ख़ुशामदीद।" वेलकम बैक।

मलबा और भिखारी। मैंने जिस ओर भी नज़र घुमाई, मुझे ये दो चीज़ें ही दिखाई दीं। मुझे याद है कि मेरे बचपन के दिनों में भी यहाँ भिखारी होते थे। बाबा हमेशा अपनी जेब में उनके लिए छुट्टे पैसे डालकर रखते थे; मैंने उन्हें कभी किसी माँगने वाले को मना करते नहीं देखा था। मगर अब तो वे हरेक गली के हरेक नुक्कड़ पर मौजूद थे, फटे-पुराने टाट के कपड़े पहने हुए और एक-एक पैसे के लिए अपने धूल-मिट्टी से सने हाथों को फैलाए हुए। और इन भिखारियों में सबसे ज़्यादा तादाद बच्चों की थी– दुबले-पतले-मरियल बच्चे, भूख और मौसम की मार से कुम्हलाए चेहरों वाले बच्चे। वे भीड़भाड़ वाली सड़कों के नुक्कड़ों पर नालियों के किनारे अपनी बुर्काधारी वालिदाओं की गोद में बैठे होते थे और आते-जाते लोगों को देखकर "बख्शेश, बख्शेश*!*" की गुहार लगाने लगते थे। और एक बात और थी जो तत्काल मेरे ख़याल में नहीं आई थी: उनमें से शायद ही कोई बच्चा था जिसके साथ कोई बड़ा आदमी मौजूद हो– जंगों ने अफ़ग़ानिस्तान में वालिदों (पिताओं) को मुश्किल से हासिल चीज़ बना दिया था।

हम पश्चिम दिशा में कार्तेह-सेह इलाके की तरफ़ जा रहे थे, और इसके लिए अभी जिस रास्ते से होकर गुज़र रहे थे उसे मैं सत्तर के दशक के एक बेहद अहम रास्ते के तौर पर याद करता हूँ: जादेह मेवांड। हमारे ठीक उत्तर में सूख चुकी काबुल नदी थी। दक्षिण की तरफ़ पहाड़ियों पर पुराने शहर की टूटी हुई दीवार खड़ी थी। इसके ठीक

पूरब में बाला हिसार किला था, वह प्राचीन किला जिस पर 1992 में सरदार दोस्तम ने कब्ज़ा किया था। यह किला शिरदरवाज़ा पहाड़ों पर बना था, वे ही पहाड़ जहाँ से मुजाहिदीन बलों ने 1992 और 1996 के बीच काबुल पर रॉकेटों की बौछार की थी। काबुल में, मैं अभी जो भीषण बर्बादी देख रहा था, उसमें से ज़्यादातर उन्हीं रॉकेट हमलों की देन थी। शिरदरवाज़ा पहाड़ पश्चिम तक फैले हुए थे। मुझे याद है कि इन्हीं पहाड़ों पर से 'तोपेह चश्त' (दोपहर की तोप) को दागा जाता था। इसे हर दिन दोपहर के वक़्त के अलार्म के तौर पर दागा जाता था। साथ ही रमज़ान के महीने में रोज़ा खुलने का वक़्त होने के संकेत के तौर पर भी चलाया जाता था। उन दिनों इस तोप की गूँज पूरे शहर में सुनाई देती थी।

"मैं बचपन में यहाँ, जादेह मेवांड, आया करता था," मैं बुदबुदाया। "यहाँ बहुत सारी दुकानें और होटल वगैरह हुआ करते थे। निओन लाइट्स और रेस्तरां। यहीं पर मैं सैफो नाम के एक बूढ़े आदमी से पतंगें ख़रीदता था। वह पुराने पुलिस हेडक्वार्टर के पास एक छोटी-सी पतंग की दुकान चलाता था।"

"पुलिस हेडक्वार्टर अभी भी अपनी जगह पर है," फ़रीद ने कहा। "इस शहर में पुलिस की कोई कमी नहीं है, मगर अब आपको जादेह मेवांड में या काबुल में कहीं भी पतंग या पतंग की दुकानें नहीं मिलेंगी। वे दिन अब नहीं रहे।"

जादेह मेवांड अब एक बहुत बड़े रेत के किले में बदल गया था। जो इमारतें पूरी तरह से ढही नहीं थीं, वे बमुश्किल खड़ी थीं। उनकी छतें टूट चुकी थीं और दीवारें गोलियों और रॉकेटों के छल्लों से छलनी थीं। ब्लॉक के ब्लॉक मलबे में तब्दील हो गए थे। मैंने एक मलबे के ढेर में आधा दबा हुआ एक साइनबोर्ड देखा, जो गोलियों से छलनी था और जिस पर लिखा था, 'पिएँ कोका को—'। मैंने कुछ बच्चों को एक बिना खिड़कियों वाली इमारत के खंडहर में ईंटों और पत्थरों के मलबे के बीच खेलते देखा। साइकिल सवार और खच्चर-गाड़ी वाले बच्चों, आवारा कुत्तों और मलबे के ढेरों से बच-बचाकर चल रहे थे। शहर के आसमान में धूल की धुँध सी छाई हुई थी और नदी के उस पार धुँए का एक गुबार आसमान तक उठ रहा था।

"यहाँ के सब पेड़ कहाँ गए?" मैंने पूछा।

"सर्दियों में लोग जलाने के लिए काट लेते हैं," फ़रीद ने कहा। "और बहुत सारे तो शोरावी ने कटवा डाले।"

"क्यों?"

"स्नाइपर्स (बंदूकधारी लड़ाके) उनके पीछे छिपते थे।"

मुझ पर एक उदासी छा गई। काबुल वापस लौटना ऐसा था जैसे किसी पुराने और लम्बे अरसे से संपर्क में न रहे दोस्त से मिलना और यह देखना कि ज़िन्दगी उसके प्रति बड़ी निर्मम रही है, वह बेघर और बेसहारा हो गया है।

“मेरे बाबा ने शर-ए-कोहना में, पुराना शहर, यहाँ से दक्षिण की तरफ़, एक यतीमखाना बनवाया था,” मैंने कहा।

“मुझे याद है,” फ़रीद ने कहा। “उसे कुछ बरसों पहले तबाह कर दिया गया।”

“क्या तुम गाड़ी साइड में लगाओगे?” मैंने कहा। “मैं यहाँ थोड़ा-सा घूमना चाहता हूँ।”

फ़रीद ने एक गली में ले जाकर एक बिना खिड़कियों वाली, जर्जर, उजाड़ इमारत के सामने गाड़ी खड़ी की। “कभी यह दवाइयों की दुकान हुआ करती थी,” गाड़ी से उत\रते हुए फ़रीद बुदबुदाया। हम पैदल-पैदल जादेह मेवांड़ की ओर चल पड़े। “यह कैसी गंध है?” मैंने कहा। हवा में कुछ ऐसा था जिससे मेरी आँखों में पानी आ रहा था।

“डीज़ल,” फ़रीद ने कहा। “शहर के जनरेटर ज़्यादातर बंद ही रहते हैं, इसलिए बिजली का कोई भरोसा नहीं है और लोग डीजल ईंधन का उपयोग करते हैं।”

“डीज़ल। पता है पहले के वक़्त में यह जगह किस चीज़ की ख़ुश्बू से आबाद रहती थी?”

“कबाब,” फ़रीद ने मुस्कराते हुए कहा।

“लैम्ब कबाब,” मैंने कहा। मेमने के माँस के कबाब।

“मेमना,” फ़रीद ने ऐसे कहा जैसे मन ही मन में उसका स्वाद ले रहा हो। “अब काबुल में सिर्फ़ और सिर्फ़ तालिबान वालों को ही मेमने के कबाब मयस्सर हैं। और उनकी बात…” अचानक फ़रीद ने मेरी आस्तीन खींची।

एक गाड़ी हमारी तरफ़ आ रही थी। “दाढ़ी वाला गश्ती-दल,” फ़रीद होंठों में बुदबुदाया।

ज़िन्दगी में पहली मर्तबा मैंने तालिबान को देखा। इससे पहले मैंने उन्हें टीवी पर देखा था, इन्टरनेट पर देखा था, पत्रिकाओं के कवर पर देखा था, और अखबारों में देखा था। मगर आज वे मुझसे महज़ पचास फीट की दूरी पर थे, जीते-जागते। अगर मैं कहूँ कि मुझे उन्हें इस तरह अपने सामने देखकर डर नहीं लगा तो इससे बड़ा झूठ और कुछ नहीं होगा; मेरा माँस अचानक हड्डियों से चिपक गया था और मेरा दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा था। अब वे हमारे बिल्कुल सामने थे। अपने पूरे जलाल के साथ।

उनकी लाल टोयोटा पिकअप गाड़ी हमारे पास से गुज़री। कुछ सख़्त चेहरे वाले नौजवान कैब में उकडूँ बैठे थे और उन सबके कंधों पर कलाश्निकोव बंदूकें लटकी हुई थीं। सभी ने लम्बी दाढ़ी रखी हुई थी और सभी के सिर पर काली पगड़ी थी। उनमें से एक साँवली रंगत वाले तालिब ने, जिसकी उम्र बीस के आसपास रही होगी और जिसकी घनी-घनी घुंघराली भौंहें थीं, अपने हाथ में एक चाबुक ले रखा था और उसे लयबद्ध तरीक़े से गाड़ी की बाहरी सतह पर फटकार रहा था। उसकी बाज़ की तरह

अपने शिकार की तलाश में चारों ओर भटकती नज़रें मुझ पर पड़ीं। पल भर को हमारी नज़रें मिलीं। मेरी साँस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे रह गई। अपनी पूरी ज़िन्दगी में, मैंने ख़ुद को कभी इतना नंगा महसूस नहीं किया था। फिर उस तालिब ने मुँह में भरी तम्बाकू थूकी और दूसरी तरफ़ देखने लगा। मेरी साँस में साँस आई। लाल टोयोटा जादेह मेवांड की ओर बढ़ गई और अपने पीछे धूल का गुबार छोड़ गई।

"आपको हुआ क्या है?" फ़रीद फुसफुसाया।

"क्या?"

"उनसे नज़रें मिलाने की गलती कभी मत करना! समझ में आई मेरी बात? कभी नहीं!"

"मैंने इरादतन नहीं किया था," मैंने कहा।

"आपके दोस्त एकदम ठीक कह रहे हैं, आगा। आप एक बार को किसी पागल कुत्ते को छेड़ने का जोखिम ले सकते हैं, मगर इन तालिबानियों को छेड़ना मौत को दावत देने जैसी बात है," किसी ने कहा। यह नई आवाज़ एक बूढ़े भिखारी की थी जो गोलियों से छलनी दीवारों वाली एक इमारत की सीढ़ियों पर नंगे पैर बैठा था। उसके बदन पर फट कर तार-तार हो चुका एक मैला-कुचैला सा चपन और सिर पर वैसी ही मैली-कुचैली सी पगड़ी थी। उसकी बाईं आँख सिर्फ़ एक खाली कोटर थी, उसमें से पुतली गायब थी। उसका एक हाथ गठियाग्रस्त था, उसी हाथ से वह लाल टोयोटा की तरफ़ इशारा करके बात कर रहा था। "वे तो इसी ताक में घूमते हैं कि कब हो तो कोई उन्हें उकसाने वाला मिल जाए। और देर-सवेर कोई न कोई मिल भी जाता है। फिर सारे कुत्ते मिलकर उसके शिकार का लुत्फ़ लेते हैं। दिन भर की ऊब आख़िर-कार मिट जाती है और सभी मिलकर कहते हैं 'अल्लाह-हु-अकबर!' और जिस दिन कोई नहीं मिलता, उस दिन बिना बात के ख़ून-ख़राबा होता है।"

"जब तालिब आसपास हों तो नज़रें हमेशा अपने पैरों पर रखें," फ़रीद ने कहा।

"आपके दोस्त बहुत नेक सलाह दे रहे हैं," बूढ़ा भिखारी फिर बोल उठा। तभी उसे ज़ोरों की खाँसी आई और उसने एक गंदा रुमाल लेकर उसमें बलगम थूका। फिर जब उसकी साँसें संयत हुईं तो वह बोला, "माफ़ कीजिएगा, क्या आप कुछ अफ़ग़ानी दे पाएँगे?"

"बस। चलो, चलें," फ़रीद ने मुझे बाँह से पकड़कर खींचते हुए कहा।

मैंने जेब से निकालकर एक लाख अफ़ग़ानी, यानी लगभग तीन डॉलर उस भिखारी को थमा दिए। जब वह पैसे लेने के लिए मेरे क़रीब आया तो उसके बदन से आती बदबू (खट्टे दूध और उन मोजों के जैसी जो महीनों से न धोए गए हों) मेरे नथुनों में घुस गई और मुझे मतली जैसा महसूस होने लगा। उसने जल्दी से पैसे अपनी कमर में खोंस लिए। उसकी इकलौती आँख दाएँ-बाएँ घूमकर सुनिश्चित कर रही थी कि कोई

देख तो नहीं रहा था। फिर उसने कहा, “आपकी इस रहमदिली के लिए बहुत-बहुत शुक्रिया, आगा साहब।”

“आपको पता है कि कार्तेह-सेह में यतीमखाना कहाँ है?” मैंने उससे पूछा।

“उसे ढूँढना मुश्किल नहीं है, वह दारुलामन बुलेवार्ड के ज़रा सा पश्चिम में है,” उसने कहा। “पुराने यतीमखाने पर रॉकेट गिरने के बाद बच्चों को यहाँ से कार्तेह-सेह भेज दिया गया। मगर यह किसी को शेर के पिंजरे से बचाकर बाघ के पिंजरे में डालने जैसा है।”

“शुक्रिया, आगा,” मैंने कहा और जाने के लिए मुड़ा।

“यह आपका पहला मौका था, है न?”

“जी?”

“तालिबानियों से रूबरू होने का।”

मैं खामोश रहा। बूढ़ा मेरी खामोशी का मतलब समझ गया और मुस्करा दिया। इससे उसके बचे-खुचे दाँत दिखाई दिए, सभी टेढ़े-मेढ़े और पीले। फिर उस ने जैसे अतीत में खोते हुए कहा, “मुझे याद है जब मैंने उन्हें पहली बार काबुल में दाख़िल होते देखा था। कितना ख़ुशगवार दिन था वह! सबको यही लग रहा था कि अब जंग से निजात मिल जाएगी, आए दिन के क़त्ल-ए-आम बंद हो जाएँगे! वाह वाह! मगर जैसा कि शायर ने कहा है: ‘मुहब्बत कितनी आसान नज़र आती थी पहले-पहल, फिर मुश्किलात आ गईं!’”

यह सुनकर मेरे चेहरे पर मुस्कान आ गई। “मैंने यह ग़ज़ल पढ़ी है। हफीज़ की है।”

“बेशक उन्हीं की है,” बूढ़े भिखारी ने जवाब दिया। “और यह बात मुझसे बेहतर किसे पता होगी। मैं यूनिवर्सिटी में यही पढ़ाता था।”

“आप यूनिवर्सिटी में पढ़ाते थे?”

बूढ़ा फिर खाँसा। “1958 से 1964 तक। मैंने हाफ़िज़, खय्याम, रूमी, बेयडेल, जामी, सादी को पढ़ाया। एक बार तो मैं तेहरान में अतिथि व्याख्याता (गेस्ट लेक्चरर) बनकर भी गया था। 1971 की बात होगी। मैंने सूफी संत अब्दुल कादिर बेदिल पर लेक्चर दिया था। मुझे आज भी याद है कि कैसे लेक्चर ख़त्म होने के बाद सभी श्रोताओं ने खड़े होकर तालियाँ बजाई थीं। हा!” उसने अपना सिर झटका। “मगर तुमने अभी-अभी उस लाल टोयोटा में बैठे जिन तालिबानियों को देखा, तुम्हें लगता है कि उनके लिए सूफी परंपरा के कोई मायने हैं?”

“मेरी वालिदा भी यूनिवर्सिटी में पढ़ाती थीं,” मैंने कहा।

“क्या नाम था उनका?”

“सोफ़िया अकरमी।”

मोतियाबिंद की सफेदी के पीछे से भी उसकी आँख में पैदा हुई चमक मैंने साफ़ देखी। “‘रेगिस्तानी घास तो ज़िंदा रहती है, मगर बसंत का फूल खिलता है और मुरझा जाता है।’ कैसी दिलकश और अज़ीम-ओ-शान शख्सियत थीं वो, मगर कैसी ट्रेजेडी (त्रासदी) हुई उनके साथ।”

“आप मेरी वालिदा को जानते थे?” उसके सामने घुटनों के बल बैठते हुए मैंने पूछा।

“बहुत अच्छी तरह से,” उस बूढ़े भिखारी ने जवाब दिया। “अपनी-अपनी कक्षाएँ लेने के बाद हम लोग बैठकर बातें करते थे। इस तरह की आख़िरी मुलाक़ात जो मुझे याद है वो सालाना इम्तिहानों के कुछ ही दिन पहले हुई थी। उस दिन बारिश हो रही थी। हम लोग साथ बैठकर लज़ीज़ बादाम केक का लुत्फ़ उठा रहे थे। बादाम केक, शहद और गरमागरम चाय। उन दिनों वह पेट से थीं यह बात साफ़ नज़र आने लगी थी, और इस वजह से उनकी ख़ूबसूरती में और भी चार चाँद लग गए थे। उस दिन उन्होंने मुझसे जो कहा वो मैं कभी नहीं भूलूँगा।”

“क्या? प्लीज़ बताइए मुझे।” बाबा ने हमेशा मेरे सामने मेरी वालिदा का एक मोटा-मोटा खाका ही खींचा था, कभी तफ्सील से कुछ नहीं बताया। उनसे पूछो कि वह कैसी थीं, तो कह देते, ‘वह बहुत ही अच्छी औरत थीं।’ जबकि मैं उनके मिज़ाज, उनकी आदतों, उनकी दिनचर्या, उनकी पसंद-नापसंद के बारे में जानने के लिए तरसता था। मैं जानना चाहता था कि उनके बाल सूरज की रोशनी में कैसे चमकते थे, उसका पसंदीदा आइसक्रीम फ्लेवर कौन सा था, वह कौन से गाने गुनगुनाना पसंद करती थीं, क्या वह भी टेंशन में होने पर दाँतों से अपने नाख़ून चबाती थीं? ऐसा लगता था कि बाबा उनसे जुड़ी यादों को उनके साथ ही क़ब्र में दफ्न कर आए थे। हो सकता है कि उनका नाम लेते ही बाबा का मन उस गुनाह के अहसास से भर जाता हो जिसे उन्होंने उनके इंतकाल के फ़ौरन बाद ही अंजाम दे डाला था। या शायद बाबा को उन्हें खोने का गम इतना ज़्यादा हो, उनका ज़ख्म इतना गहरा हो कि उसे बार-बार कुरेदने की उनकी हिम्मत न पड़ती हो। या शायद दोनों बातें हों।

“उन्होंने कहा था, ‘मैं बेहद डरी हुई हूँ।’ जब मैंने पूछा कि ‘क्यों?’ तो बोलीं, ‘क्योंकि मैं हद से ज़्यादा ख़ुश हूँ, डॉ. रसूल। इस तरह की बेपनाह ख़ुशी डराने वाली होती है।’ मैंने फिर से पूछा कि वह ऐसा क्यों सोचती हैं, तो बोलीं, ‘वे आपको इतना ख़ुश तभी रहने देते हैं जब आपसे कुछ छीनने की तैयारी कर रहे हों।’ इस पर मैंने उन्हें झिड़कते हुए कहा था, ‘अब बस भी कीजिए। बहुत हो गई ये नादानी।’”

फ़रीद ने फिर मेरी बाँह थाम ली और नर्म लहज़े में बोला, “हमें अब चलना चाहिए, आमिर आगा।” मगर मैंने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया और उससे अपनी बाँह छुड़ा ली। फिर उस बूढ़े प्रोफ़ेसर से बोला, “और क्या? और क्या कहा उन्होंने?”

प्रोफ़ेसर के चेहरे पर असहायता का भाव आया। “काश मुझे कुछ और याद होता तो मैं तुम्हें ज़रूर बताता। लेकिन मुझे और कुछ भी याद नहीं। तुम्हारी वालिदा का इंतकाल हुए बहुत लम्बा अरसा बीत चुका है और मेरी याद्दाश्त भी अब इन इमारतों की तरह ही खंडहर हो चुकी है। मुझे अफ़सोस है।”

“कोई छोटी-मोटी बात…कोई भी।”

बूढ़ा प्रोफ़ेसर मुस्कराने लगा। “मैं याद करने की पूरी कोशिश करूँगा, यह मेरा वादा है। फिर कभी इधर से गुज़रें तो मुझसे मिलते जाइएगा।”

“शुक्रिया,” मैंने कहा। “बहुत-बहुत शुक्रिया।” यह बात मैंने दिल से कही थी। उस बूढ़े भिखारी (या कहूँ कि प्रोफ़ेसर) की बदौलत अब मैं जानता था कि मेरी वालिदा को शहद और चाय के साथ बादाम केक खाना पसंद था, कि उन्होंने एक बार ‘बेपनाह’ लफ्ज़ ज़बान से निकाला था, कि वह अपनी ख़ुशी को लेकर फिक्रमंद थीं। अपनी वालिदा को लेकर मैंने अपने बाबा से ज़िन्दगी भर में जितना नहीं जाना था, उतना आज इस बूढ़े भिखारी से जानने को मिल गया था।

गाड़ी की ओर वापस लौटते हुए हम दोनों में से किसी ने भी उस बारे में कोई टिप्पणी नहीं की जो अभी-अभी घटा था और जिसे ज़्यादातर गैर-अफ़ग़ान लोग एक ‘नामुमकिन इत्तेफाक’ मानेंगे कि सड़क पर बैठा एक भिखारी मेरी वालिदा को जानता था। मगर हम दोनों जानते थे कि अफ़ग़ानिस्तान, और खास तौर पर काबुल में ऐसी विचित्र और असंभव मालूम होने वाली बातें अब आम थीं। बाबा कहा करते थे, “दो ऐसे अफ़ग़ानों को ले लो जो कभी एक-दूसरे से न मिले हों, उन्हें दस मिनट के लिए एक कमरे में साथ बिठा दो, और वे जान लेंगे कि किसी न किसी तरह वे एक-दूसरे से जुड़े हैं।”

हम उस बूढ़े को वहीं उन्हीं सीढ़ियों पर बैठा छोड़कर वापस लौट आए। मेरा पक्का इरादा था कि मैं उसके वादे पर यकीन करके वापस आऊँ और देखूँ कि क्या उसे मेरी माँ के बारे में कोई और बात याद आई थी। मगर मैं उससे दुबारा नहीं मिल पाया।

नया यतीमखाना कार्तेह-सेह के उत्तरी भाग में, सूखी हुई काबुल नदी के किनारे मिला। यह एक सपाट, बैरकनुमा इमारत थी जिसकी दीवारों का प्लास्टर जगह-जगह से उखड़ा हुआ था और हिफ़ाज़त के लिहाज़ से खिड़कियों पर लकड़ी के तख्ते लगे हुए थे। वहाँ आते वक़्त रास्ते में फ़रीद ने मुझे बताया था कि कार्तेह-सेह काबुल के उन इलाकों में से एक था जहाँ जंग से सबसे ज़्यादा बर्बादी हुई थी, और जैसे ही वहाँ पहुँचकर हमने गाड़ी से बाहर क़दम रखा, उस बात के चारों तरफ़ बिखरे सबूत देखकर मैं हैरान हो गया। बुरी तरह टूटी-फूटी सड़कों के दोनों ओर बमों और रॉकेटों के हमलों से ध्वस्त हुए मकानों और दुकानों के मलबे और खंडहरों के सिवाए और कुछ नहीं था। एक जगह एक उल्टी पड़ी कार का जलने के बाद बचा फ्रेम पड़ा था,

एक जगह बिना स्क्रीन वाला टीवी सेट मलबे में आधा दबा हुआ पड़ा था, और एक ध्वस्त दीवार पर काली स्याही से ये शब्द लिखे दिखाई पड़े – जेंदा बाद ताल ईरान! (तालिबान जिंदाबाद!)

जब हमने यतीमखाने का दरवाज़ा खटखटाया तो एक छोटे कद के दुबले-पतले से आदमी ने, जिसका सर गंजा था और झबरीली सफ़ेद दाढ़ी थी, दरवाज़ा खोला। उसने एक फटी हुई ट्वीड जैकेट, सर पर एक टोपी और आँखों पर चश्मा पहना हुआ था। चश्मे के पीछे से उसकी काली मटर जैसी छोटी-छोटी आँखें कभी मुझे तो कभी फ़रीद को देखने लगीं। फिर उसने कहा, "सलाम अलैकुम।"

"अलेकुम सलाम," मैंने जवाब में कहा। फिर मैंने उसे हसन और सोहराब की तस्वीर दिखाई और कहा, "हम इस लड़के को तलाश रहे हैं।"

उसने तस्वीर पर एक सरसरी निगाह डाली और बोला, "माफ़ी चाहता हूँ, मैंने इसे कभी नहीं देखा।"

"तुमने तस्वीर को नज़र भर के भी नहीं देखा है, मेरे दोस्त," फ़रीद ने उससे कहा। "ज़रा ध्यान से देखो।"

"लोफ्तान," मैंने फ़रीद की बात में जोड़ा। प्लीज़।

उस आदमी ने तस्वीर हाथ में ली, उसे ध्यान से देखा, फिर वापस लौटाते हुए बोला, "नहीं, माफ़ी चाहूँगा। मैं इस यतीमखाने के हर बच्चे को बख़ूबी पहचानता हूँ और यह तस्वीर वाला बच्चा इनमें से नहीं है। अब, अगर आप इज़ाज़त दें, तो मुझे कुछ काम करना है।" इतना कहकर उसने दरवाज़ा बंद कर लिया और ताले में चाबी घुमा दी।

मैं दरवाज़ा खटखटाने लगा। "आगा! आगा, प्लीज़ दरवाज़ा खोलिए। हमारा उसे कोई नुक़सान पहुँचाने का इरादा नहीं है।"

"मैंने आपको कहा तो। वो यहाँ नहीं है," दरवाज़े के उस ओर से उसकी आवाज़ आई। "अब मेहरबानी करके यहाँ से जाइए।"

फ़रीद दरवाज़े के एकदम क़रीब गया और अपना माथा उससे सटाते हुए धीमी आवाज़ में संभलकर बोला, "दोस्त, हम तालिबान के साथ नहीं हैं। ये जो हज़रत मेरे साथ हैं, ये उस बच्चे को महफूज़ जगह ले जाना चाहते हैं।"

अब मैंने मोर्चा सँभाला और कहा, "मैं पेशावर से आया हूँ। मेरा एक दोस्त वहाँ एक अमरीकी जोड़े को जानता है जो बच्चों के लिए एक चैरिटी होम चलाते हैं।" मैं महसूस कर पा रहा था कि वह आदमी दरवाज़े के उस ओर मौजूद था। मैं महसूस कर पा रहा था कि वहाँ खड़े होकर वह हमारी बातों को सुन रहा था, मगर हम पर भरोसा करने से झिझक रहा था, आशंका और उम्मीद के बीच झूल रहा था। उसे उलझन से बाहर निकालने के लिए मैंने कहा, "सुनो, मैं सोहराब के वालिद को जानता था। उनका नाम हसन था। सोहराब की वालिदा का नाम फरज़ाना था। वह अपनी दादी को सासा कहता

था। वह पढ़ना-लिखना जानता है। और वह गुलेल चलाने में भी अच्छा है। इस बच्चे के एक अच्छी ज़िन्दगी जी पाने की उम्मीद है, आगा, इसके यहाँ से बाहर निकलने की एक सूरत है। प्लीज़, दरवाज़ा खोलिए।"

दूसरी तरफ़ फिर भी खामोशी छाई रही।

"मैं उसका सौतेला चाचा हूँ," मैंने कहा।

एक पल गुज़रा। फिर मुझे ताले में चाबी घूमने की आवाज़ सुनाई दी। दरवाज़ा ज़रा सा खुला और फिर से उसी आदमी का चेहरा बाहर झाँकता नज़र आया। उसने मुझे देखा, फिर फ़रीद को देखा, फिर से मुझे देखा। "आपकी एक बात गलत थी।"

"क्या?"

"वह गुलेल चलाने में अच्छा नहीं है, बहुत ही ज़्यादा अच्छा है।"

मैं मुस्करा दिया।

"वह पल भर को भी अपनी गुलेल से दूर नहीं रहता। जहाँ भी जाता है, उसे अपनी कमर में खोंसे रखता है।"

उस आदमी ने अपना परिचय ज़मान के रूप में दिया। वह उस यतीमखाने का डायरेक्टर था। उसने कहा, "मैं आपको अपने दफ्तर में ले चलता हूँ।"

हम उसके पीछे-पीछे मद्धम रोशनी वाले कदरन गंदे गलियारों से होते हुए आगे बढ़ने लगे। वहाँ फटे-पुराने स्वेटर पहने बच्चे नंगे पाँव इधर-उधर टहल रहे थे। गलियारों के दोनों ओर जो कमरे थे उनमें फर्श कवरिंग नहीं थी, बल्कि कालीन बिछे थे और खिड़कियाँ प्लास्टिक की चादरों से बंद थीं। लोहे के पाइप वाले पलंग थे, मगर ज़्यादातर पर गद्दे नहीं थे।

"यहाँ कितने यतीम बच्चे रहते हैं," फ़रीद ने पूछा।

"हमारे पास जितनों को रखने के लिए कमरे हैं, उससे कहीं ज़्यादा। तक़रीबन ढाई-सौ," ज़मान ने सर पीछे घुमाकर कहा। "मगर सभी बच्चे यतीम नहीं हैं। इनमें से ज़्यादातर वे हैं जिन्होंने जंग में अपने वालिदों को खो दिया है, और इनकी वालिदाओं के लिए इनका पेट भरना मुमकिन नहीं है क्योंकि तालिबान उन्हें काम करने की इजाज़त नहीं देता। इसलिए मजबूरीवश वे अपने बच्चों को यहाँ ले आती हैं।" फिर उसने थोड़ा रुककर ग़मगीन लहजे में कहा, "यह जगह सड़क से तो बेहतर है, मगर उतनी अच्छी नहीं है। यह इमारत रहने के लिए बनी ही नहीं है, यह कालीन बनाने वाली एक कम्पनी का गोदाम हुआ करती थी। इसीलिए यहाँ पानी गर्म करने के हीटर नहीं हैं और देखरेख के अभाव में कुँआ भी सूख गया है।" फिर उसने आवाज़ कदरन धीमी करते हुए कहा, "एक नया कुँआ ख़ुदवाने के लिए मैं न जाने कितनी बार तालिबान से पैसे माँग चुका हूँ, मगर वे बस अपनी माला घुमाते हैं और कह देते हैं कि पैसे नहीं हैं। पैसे

नहीं हैं!” वह हँसा।

उसने दीवार के किनारे लाइन से बिछे पलंगों की ओर इशारा करते हुए कहा, “हमारे पास पर्याप्त पलंग नहीं हैं और जितने हैं भी तो उन पर बिछाने के लिए पर्याप्त गद्दे नहीं हैं। और उससे भी बुरी बात यह कि हमारे पास पर्याप्त कम्बल भी नहीं हैं।” फिर उसने वहीं पास में दो अन्य बच्चों के साथ रस्सी कूद रही एक बच्ची की ओर इशारा करते हुए कहा, “उस बच्ची को देख रहे हैं आप? पिछली सर्दियों में हमें एक कम्बल में कई-कई बच्चों को सुलाना पड़ा था। उस चक्कर में इस बच्ची का भाई ठण्ड से मर गया था।” वह आगे चल दिया। “पिछली बार जब मैंने चेक किया था तो गोदाम में बस महीने भर के लायक ही चावल बचा था, और तब तक यद कहीं से व्यवस्था नहीं हुई तो इन बच्चों को नाश्ते और रात के खाने में सिर्फ़ चाय-ब्रेड से ही काम चलाना पड़ेगा।” मैंने गौर किया कि उसने दोपहर के खाने का ज़िक्र नहीं किया था।

वह ठहर गया और मुड़कर मुझसे कहने लगा, “यह बस नाम का यतीमखाना है। यहाँ इन बच्चों के लिए न तो भरपेट खाना है, न कपड़े हैं, और न ही पीने के लिए साफ़ पानी है। यहाँ अगर कोई चीज़ इफरात में है तो वो हैं बच्चे, अपना बचपन खो चुके बच्चे। मगर जो हालात चल रहे हैं उन्हें देखते हुए तो इन्हें ‘ख़ुशकिस्मत’ बच्चों में ही शुमार किया जाएगा। यहाँ क्षमता से कहीं ज़्यादा बच्चे हैं और हर दिन मैं कितनी ही औरतों को लौटाता हूँ जो अपने बच्चों को यहाँ लेकर आती हैं।” फिर वह मेरी तरफ़ एक क़दम आगे आया। “अपने कहा कि सोहराब के एक अच्छी ज़िन्दगी जी पाने की उम्मीद है? मैं दुआ करता हूँ कि आप झूठ न कह रहे हों, आगा। मगर...हो सकता है कि आपने आने में बहुत देर कर दी हो।”

“क्या मतलब है आपका?”

“मेरे पीछे आइए।” कहकर वह वापस मुड़ा और चलने लगा।

उसने जिस जगह का परिचय उसके दफ्तर के तौर पर कराया, वहाँ महज़ चार खाली और चटकी दीवारें, फ़र्श पर बिछी एक चटाई, एक मेज़, और दो फ़ोल्डिंग कुर्सियाँ थीं। जैसे ही ज़मान और मैं अपनी-अपनी कुर्सियों पर बैठे, मैंने देखा कि एक भूरे रंग का चूहा दीवार में बने बिल से बाहर निकला और कमरे में इधर-उधर फुदकने लगा। मैं तब घबरा गया जब उसने मेरे पास आकर मेरे जूतों को सूँघा, फिर ज़मान के जूतों को सूँघा और फिर खुले दरवाज़े से बाहर भाग गया।

“आपने ऐसा क्यों कहा कि शायद हमने बहुत देर कर दी?”

“आप चाय पीएँगे? मैं बना सकता हूँ।”

“जी नहीं, शुक्रिया। हम बात करेंगे।”

ज़मान ने कुर्सी की पीठ से पीठ टिका ली और हाथ बाँधकर सीने पर रख लिए। “मैं आपसे जो कहने जा रहा हूँ उसे सुनकर आपको अच्छा नहीं लगेगा। बताने की ज़रूरत

नहीं होनी चाहिए कि यह बहुत ख़तरनाक भी हो सकता है।”

“किसके लिए?”

“आपके लिए। मेरे लिए। और, ज़ाहिर तौर पर, सोहराब के लिए, बशर्ते पहले ही बहुत देर न हो चुकी हो।”

“फिर भी मुझे जानना है,” मैंने कहा।

उसने सहमति में गर्दन हिलाई। “जैसा आप चाहें। मगर पहले मैं आपसे एक सवाल करना चाहूँगा: आपके मन में अपने भतीजे से मिलने की तड़प कितनी है? उसे तलाशकर अपने साथ ले जाने का आपका इरादा कितना पक्का है?”

मैं बचपन में दूसरे बच्चों के साथ होने वाली लड़ाइयों के बारे में सोचने लगा। लड़ाई मेरी होती थी, मगर मेरी तरफ़ से लड़ता हमेशा हसन था। मुझे बचाने के लिए वह अकेला दो-दो और कभी-कभी तो तीन-तीन लड़कों से भी भिड़ जाता था। मैं डर के मारे खड़ा-खड़ा देखता रहता था। मेरा मन तो होता था हसन के साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़ने का, मगर कभी ऐसा कर नहीं पाता था, पता नहीं कौन सी चीज़ मुझे हमेशा रोक लेती थी।

मैंने गलियारे की ओर नज़र घुमाई, देखा तो वहाँ कुछ बच्चे एक घेरा बनाकर नाच रहे थे। एक छोटी बच्ची, जिसका बाँया पैर घुटने के नीचे से कटा हुआ था, एक फटे गद्दे पर बैठी थी और नाचते हुए बच्चों को देखकर मुस्करा रही थी, ताली बजा रही थी। मैंने देखा कि फ़रीद भी बच्चों को ही देख रहा था, उसका अपना कटी हुई उँगलियों वाला हाथ उसके बग़ल में लटका हुआ था। मुझे वाहिद के लड़के याद आ गए और...मेरे भीतर एक अहसास जागा: मैं सोहराब को खोजे बिना अफ़ग़ानिस्तान नहीं छोड़ूँगा। “मुझे बताइए वह कहाँ है,” मैंने कहा।

ज़मान कुछ देर मुझे देखता रहा। फिर गर्दन हिलाई, एक पेंसिल उठाई, और उसे अपनी उँगलियों के बीच घुमाया। “मेरा नाम इसमें शामिल मत कीजिएगा।”

“मैं वादा करता हूँ।”

वह पेंसिल से मेज़ को ठकठकाने लगा। “आपके वादे के बावजूद, मुझे लगता है कि मुझे शायद इस बात के लिए पछताना पड़े। मगर ठीक है, क्या फ़र्क पड़ता है। वैसे भी मैं कौन सी अच्छी ज़िन्दगी जी रहा हूँ। पर अगर सोहराब के लिए कुछ किया जा सके तो...मैं आपको बताऊँगा, क्योंकि मुझे आप पर भरोसा है। आपको देखकर लगता है कि आपमें उसके लिए कुछ करने की तड़प है।” फिर काफी देर तक खामोश रहने के बाद उसने कहना शुरू किया, “एक तालिबानी अफसर है। वह महीने-दो महीने में एक बार यहाँ आता है। पैसे देकर जाता है, बहुत ज़्यादा नहीं, मगर कुछ भी न होने से बेहतर है।” उसकी परली तरफ़ देख रही आँखें घूमकर मुझ पर आईं, फिर उसी तरफ़ घूम गईं। “अमूमन वह किसी बच्ची को ले जाता है। मगर हर बार ऐसा हो

ज़रूरी नहीं।”

“और तुम ले जाने देते हो?” मेरे पीछे खड़े फ़रीद ने कहा। वह मेज़ का चक्कर काटकर ज़मान की तरफ़ बढ़ रहा था।

“मेरे पास और चारा क्या है?” ज़मान ने पलटकर जवाब दिया। मगर फ़रीद के इरादे भाँपकर वह मेज़ से दूर खिसक गया।

“तुम यहाँ के डायरेक्टर हो,” फ़रीद ने कहा। “तुम्हारा काम है इन बच्चों की हिफ़ाज़त करना।”

“मगर मैं इस सबको रोकने के लिए कुछ भी नहीं कर सकता हूँ।”

“तुम बच्चे बेच रहे हो!” फ़रीद गुर्राया।

“फ़रीद, बैठ जाओ! इस बात को यहीं ख़त्म करो!” मैंने कहा। मगर तब तक बहुत देर हो चुकी थी, क्योंकि अचानक फ़रीद ने मेज़ के पार ज़मान के ऊपर छलांग लगा दी थी। ज़मान की कुर्सी दूर जा गिरी थी और वह फर्श पर पड़ा था, फ़रीद उसके ऊपर था। फ़रीद के शरीर के नीचे दबे ज़मान के गले से घुटी हुई चीखें निकल रही थीं। बदहवासी में वह हाथ-पैर इधर-उधर फेंक रहा था। उसके पैर की ठोकर से मेज़ की एक दराज़ खुल गई और काग़ज़ों का एक ढेर फर्श पर बिखर गया।

मैं अपनी कुर्सी से उठा और जल्दी से मेज़ के परली तरफ़ पहुँचा, तब मुझे समझ आया कि ज़मान के गले से घुटी-घुटी सी चीखें क्यों निकल रही थीं। फ़रीद दोनों हाथों से उसका गला घोंट रहा था। मैंने दोनों हाथों से फ़रीद को कंधों से पकड़कर ज़ोर से पीछे खींचा। मगर उसने मेरे हाथों को झटक दिया। “बस, बहुत हो गया!” मैं चीखा। मगर फ़रीद का चेहरा लाल हो उठा था, होंठ भिंच गए थे। “मैं इसे मार डालूँगा! आप मुझे रोक नहीं सकते! मैं इसकी जान ले लूँगा!” वह वहशियों की तरह चिल्ला रहा था।

“छोड़ दो उसे!”

“मैं इसे मारकर रहूँगा!” उसकी आवाज़ में कुछ ऐसा था जिससे मुझे समझ आ गया कि अगर मैंने जल्दी कुछ नहीं किया तो ज़िन्दगी में पहली बार मैं एक क़त्ल का चश्मदीद गवाह बन जाऊँगा।

“बच्चे देख रहे हैं, फ़रीद। वे देख रहे हैं,” मैंने कहा। मैंने महसूस किया कि उसके कंधे की माँसपेशियाँ और भी कस गईं थीं; पल भर को मुझे लगा कि मेरा यह दाँव भी खाली चला गया था और वह ज़मान की गर्दन नहीं छोड़ेगा। मगर फिर वह मुड़ा और उसकी नज़र दरवाज़े पर खड़े बच्चों पर गई। डर के मारे बच्चों की बोलती बंद थी, वे एक-दूसरे का हाथ पकड़े, एक-दूसरे में सिमटे-सहमे खड़े थे। कुछ बच्चे जो बहुत छोटे थे, उन्होंने रोना शुरू कर दिया था। मुझे फ़रीद की माँसपेशियाँ शिथिल पड़ती महसूस हुईं। उसने ज़मान की गर्दन पर से हाथ हटा लिए और उठकर खड़ा हो गया। फिर उसने फर्श पर पड़े ज़मान को देखा और उसके मुँह पर थूक दिया। इसके बाद वह

दरवाज़े तक गया और उसे बंद कर दिया।

ज़मान बड़ी मुश्किल से लड़खड़ाता हुआ अपने पैरों पर खड़ा हुआ। उसका होंठ कट गया था, ख़ून बह रहा था। उसने अपनी आस्तीन से पहले अपने होंठ से बहने वाले ख़ून को और फिर अपने गाल से थूक को साफ़ किया। हाँफते, काँपते और खाँसते हुए उसने अपनी टोपी सिर पर रखी और फिर अपना चश्मा आँखों पर चढ़ाया, मगर जब देखा कि उसके दोनों काँच टूट चुके थे तो उतारकर मेज़ पर रख दिया। फिर अपना चेहरा अपनी हथेलियों में छिपा लिया। बड़ी देर तक हम में से कोई कुछ नहीं बोला।

"एक महीने पहले वह सोहराब को ले गया था," आख़िर-कार ज़मान ने चुप्पी तोड़ते हुए फँसी हुई आवाज़ में कहा। अपना चेहरा उसने अभी भी हथेलियों में छिपा रखा था।

"और तुम ख़ुद को डायरेक्टर कहते हो?" फ़रीद बोला।

ज़मान ने अपना चेहरा हथेलियों से बाहर निकाला। "छह महीने से भी ज़्यादा वक़्त से मुझे तनख्वाह नहीं मिली है। मैं दिवालिया हो चुका हूँ क्योंकि मैंने अपनी ज़िंदगी की सारी बचत इस यतीमखाने पर खर्च कर दी है। जो कुछ भी मेरे पास था या मुझे विरासत में मिला था, मैं उसे इस भगवान भरोसे छोड़ दी गई जगह को चलाने के लिए बेच चुका हूँ। तुम्हें क्या लगता है कि पाकिस्तान और ईरान में मेरे परिवार के लोग नहीं हैं? औरों की तरह मैं भी भाग सकता था। मगर नहीं भागा। मैं रुका रहा। मैं इनके लिए रुका रहा।" उसने दरवाज़े की तरफ़ इशारा किया। "अगर मैं उसे एक बच्चा देने से मना करूँगा तो वह दस ले जाएगा। इसीलिए मैं उसे एक ही ले जाने देता हूँ और यह अल्लाह पर छोड़ देता हूँ कि वो इसके लिए मुझे गुनहगार ठहराए या माफ़ कर दे। मैं अपने स्वाभिमान को ताक पर रखकर उसका नापाक...नाजायज़ पैसा लेता हूँ। फिर उस पैसे से मैं बाक़ी बच्चों के लिए राशन लेकर आता हूँ।"

फ़रीद ने अपनी नज़रें झुका लीं।

"जिन बच्चों को वह ले जाता है, उनका क्या होता है?" मैंने पूछा।

ज़मान ने अपनी तर्जनी और अंगूठे से अपनी आँखें रगड़ीं। "कभी-कभी वे वापस आ जाते हैं।"

"कौन है वह? हम उसे कैसे ढूँढें?" मैंने पूछा।

"कल गाज़ी स्टेडियम चले जाइएगा। हाफटाइम में वह आपको दिख जाएगा। वह काला चश्मा पहने होगा।" फिर उसने अपना टूटा हुआ चश्मा उठाया और उसका मुआयना करते हुए बोला, "अब आप लोग जाइए। बच्चे डरे हुए हैं।"

वह हमें छोड़ने बाहर तक आया।

जैसे ही गाड़ी आगे बढ़ी, मैंने साइड-व्यू मिरर में देखा कि ज़मान दरवाज़े पर खड़ा

था। उसके चारों तरफ़ बच्चों का झुण्ड था, जिनमें से कुछ उसकी ढीली शर्ट का किनारा पकड़े हुए थे। मैंने देखा कि उसने अपना टूटा चश्मा आँखों पर चढ़ा रखा था।

इक्कीस

हमने नदी पार की और भीड़भाड़ वाले पश्तूनिस्तान चौक से होते हुए उत्तर की ओर बढ़े। बाबा मुझे कबाब खिलाने के लिए यहाँ खैबर रेस्तरां में ले जाते थे। रेस्तरां की इमारत अभी भी खड़ी थी, मगर उसके दरवाज़ों पर ताला लगा हुआ था, खिड़कियाँ टूटी हुई थीं और उसके नाम से K और R अक्षर गायब थे।

रेस्तरां के क़रीब मुझे एक लाश दिखी। कोई फंदे पर लटका हुआ था। कोई नौजवान था। एक बीम से बंधी रस्सी का दूसरा सिरा उसके गले में फंदे के रूप में पड़ा था। उसका चेहरा सूजा हुआ और नीला था। ज़िन्दगी के आख़िरी दिन उसने जो कपड़े पहने थे, वे अब फटे हुए और ख़ून से सने थे। शायद ही कोई उस पर ध्यान दे रहा हो।

हम चुपचाप चौक से होते हुए वज़ीर अकबर खान इलाके की ओर बढ़ गए। मैंने देखा कि शहर में हर तरफ़ धूल भरी धुँध छाई हुई थी। धूल और धुँध ने हर चीज़ को ढँक रखा था। पश्तूनिस्तान चौक के उत्तर में कुछ ब्लॉक दूर जाकर फ़रीद ने एक व्यस्त सड़क के मोड़ पर खड़े दो आदमियों की तरफ़ इशारा किया, जो आपस में कुछ बातचीत कर रहे थे। उनमें से एक आदमी एक पैर पर लंगड़ा रहा था, क्योंकि उसका दूसरा पैर घुटने के नीचे से कटा हुआ था। उसके हाथ में एक नकली पैर था। "आपको पता है वे क्या कर रहे हैं? पैर के लिए मोलभाव कर रहे हैं।"

"वह अपनी टांग बेच रहा है?"

फ़रीद ने हाँ में गर्दन हिलाई। "ब्लैक मार्किट में इसके लिए अच्छा पैसा मिल जाता है। आप कुछेक हफ़्तों तक अपने बच्चों का पेट भर सकते हैं।"

मुझे ताज्जुब हुआ कि वज़ीर अकबर खान इलाके के ज़्यादातर घरों की छतें और दीवारें अभी भी सही-सलामत थीं। बल्कि कहना चाहिए कि वे बहुत अच्छी हालत में थीं। अभी भी चारदीवारियों के ऊपर से पेड़ झाँक रहे थे और सड़कें कार्तेह-सेह की सड़कों जितनी मलबे से भरी नहीं थीं। सड़कों पर लगे संकेतक (रोड साइन्स) फीके पड़ गए थे, कुछ टेढ़े-मेढ़े और गोलियों से छलनी भी हो गए थे, फिर भी ठीक-ठीक रास्ता दिखाने का काम कर रहे थे।

"यहाँ हालात उतने बुरे नहीं हैं," मैंने टिप्पणी की।

"ताज्जुब की कोई बात नहीं। ज़्यादातर रसूखदार लोग अब यहीं रहते हैं।"

"तालिबान?"

"वे भी," फ़रीद ने कहा।

“तो और कौन?”

उसने गाड़ी एक चौड़ी सड़क पर डाल दी, जिसकी दोनों तरफ़ साफ़-सुथरे फुटपाथ और ऊँची-ऊँची चारदीवारियों से घिरे मकान बने हुए थे। “तालिबान के पीछे के लोग। इस सरकार के ‘असली दिमाग़’: अरब, चेचेन, पाकिस्तानी।” उसने उत्तर-पश्चिम की ओर इशारा किया। “स्ट्रीट 15, उस तरफ़, सड़क-ए-मेहमाना कहलाती है।” मेहमानों की सड़क। “यहाँ उन्हें यही कहा जाता है - मेहमान। मुझे लगता है कि किसी दिन ये मेहमान तमाम मुल्क के मालिक बन बैठेंगे।”

“मेरे ख़याल से वही है!” मैंने कहा। “वहाँ!” मैंने उस चीज़ की तरफ़ इशारा किया जो बचपन में मेरे लिए अपनी गली की पहचान का काम करती थी। बाबा कहते थे कि अगर तुम कभी खो जाओ तो याद रखना कि सिर्फ़ हमारी ही गली है जिसके आख़िर में एक गुलाबी रंग का मकान है। उन दिनों पूरे इलाके में A के आकार की ढलवाँ छत वाला गुलाबी मकान एक ही था। और अब भी ऐसा ही था।

फ़रीद ने गाड़ी उसी गली में मोड़ दी। मुझे तुरंत ही बाबा का मकान नज़र आ गया।

हमें यार्ड में स्वीटब्रिअर के गुच्छों के पीछे एक छोटा-सा कछुआ मिल गया/ हमें नहीं पता था कि वह वहाँ कैसे आया था और हम इस ‘खोज’ से इतने ज़्यादा रोमांचित थे कि हमें इस बात की परवाह भी नहीं थी/ हमने उसकी पीठ को लाल रंग से रंग दिया, यह हसन का आईडिया था, जो कि अच्छा था क्योंकि इससे उसके झाड़ियों में गुम हो जाने का ख़तरा कम हो गया था/ हम ऐसे दिखा रहे थे मानो हम कोई बड़े भारी दुस्साहसी खोजकर्ता हों जिन्होंने किसी सुदूर जंगल में किसी विशाल प्रागैतिहासिक राक्षस को खोज निकाला हो और उसे दुनियावालों को दिखाने के लिए पकड़कर साथ ले आए हों/ हमने कछुए को उस लकड़ी की गाड़ी में बिठा दिया जिसे अली ने पिछली सर्दियों में हसन के जन्मदिन के तोहफे के रूप में बनाया था, और मान लिया कि यह एक विशाल स्टील का पिंजरा था/ ‘आओ-आओ, आग उगलने वाले राक्षस को देखो!’ हम गाड़ी को खींचते हुए सेब और चेरी के पेड़ों के इर्द-गिर्द घास पर ऐसे चल रहे थे मानो सेब और चेरी के पेड़ बादलों को छूती गगनचुंबी इमारतें हों, जिनकी हज़ारों खिड़कियों से सिर बाहर निकालकर लाखों लोग नीचे से गुज़रते हमारे इस मार्च को देख रहे हों/ इसी क्रम में हम बाबा द्वारा अंजीर के पेड़ों के पास बनाए गए छोटे-से अर्धचंद्राकार पुल पर चलते हैं; हमारी कल्पना में यह शहरों को जोड़ने वाला एक बड़ा सस्पेंशन पुल बन जाता है और इसके नीचे का छोटा-सा तालाब बड़ा झागदार समंदर बन जाता है/ पुल के विशाल खंभों के ऊपर पटाखे फूटते हैं और दोनों तरफ़ मौजूद हथियारबंद फ़ौजी हमें सलामी देते हैं/ फिर हम उस छोटे-से कछुए को गाड़ी में बिठाए-बिठाए गाड़ी को लाल ईंटों वाले गोलाकार ड्राइव-वे पर घसीटते हुए लोहे के फाटक से बाहर ले जाते हैं/ ऐसा करते हुए हम कल्पना करते हैं कि दुनिया भर के तमाम नेता हमारे सम्मान में खड़े होकर तालियाँ बजा रहे हैं और सलामी दे रहे हैं, और हम भी उनकी सलामी स्वीकारते हुए बदले में उन्हें सलाम कर रहे हैं/ हम कल्पना

करते हैं कि हम हसन और आमिर हैं, दुस्साहसी यात्राओं के लिए दुनिया भर में मशहूर अब तक के सबसे महान खोजकर्ता, और हमें हमारे इस दुस्साहसी कारनामे के लिए सम्मान-पदक मिलने वाला है…

धीरे-धीरे चलते हुए मैं ड्राइव-वे तक गया, जिसकी धूप से फीकी पड़ चुकीं लाल ईंटों के बीच-बीच बड़ी तादाद में घास-फूस उग आया था। मैं अपने बाबा के मकान के फाटक के बाहर खड़ा था, मगर ऐसा महसूस हो रहा था मानो कोई अजनबी था। मैंने अपने हाथ फाटक की जंग लगी सलाखों पर रखे और याद किया कि कैसे बचपन में, मैं हज़ारों बार इस फाटक से अन्दर-बाहर भागा था– उन चीज़ों के लिए जो अब बिल्कुल भी मायने नहीं रखतीं मगर उस वक़्त बहुत मानीखेज़ मालूम होती थीं। मैंने भीतर झाँका। ड्राइव-वे एक्सटेंशन, जो फाटक से यार्ड तक जाता था और जहाँ हसन और मैंने बारी-बारी से गर्मियों में साइकिल चलाना सीखा था, वह अब उतना चौड़ा या लंबा नहीं लग रहा था जितना मेरी यादों में था। जैसे आसमान में बिजली कड़कती है, उसी ढंग से इसका डामर चटका था और उन दरारों में भी खरपतवार उग आई थी। जिन चिनार के पेड़ों पर चढ़कर हसन और मैं पड़ौसियों के घरों में शीशे चमकाते थे, उनमें से ज़्यादातर काटे जा चुके थे। जो बचे थे, उनमें पत्ती नाम की चीज़ नहीं थी। ‘बीमार मकई की दीवार’ अभी भी खड़ी थी, हालाँकि अब मुझे उसके किनारे मकई के न बीमार, न तंदरुस्त, कैसे भी पौधे दिखाई नहीं दिए। दीवारों पर से पेंट उखड़ना शुरू हो गया था और कहीं-कहीं तो पूरी तरह से उतर ही गया था। लॉन शहर के ऊपर मंडराती धूल की धुंध जैसा कत्थई हो गया था। बीच-बीच में मिट्टी के कुछ बंजर हिस्से दिखाई पड़ रहे थे, जहाँ कुछ भी नहीं उगा हुआ था।

ड्राइव-वे में एक जीप खड़ी थी और…यह तो ग़लत था…यहाँ तो बाबा की काली मस्टैंग खड़ी होनी चाहिए थी! बरसों बरस उस मस्टैंग के आठ सिलेंडर ही हर सुबह दहाड़ते हुए मुझे नींद से जगाते आए थे। मैंने देखा कि जीप के नीचे ड्राइव-वे पर तेल फैला हुआ था, जो एक बड़े स्याही के धब्बे जैसा मालूम हो रहा था। जीप के आगे एक खाली ठेला लुढ़का पड़ा था। मुझे गुलाब के वे पौधे कहीं नज़र नहीं आए जो बाबा और अली ने ड्राइव-वे की बाईं ओर लगाए थे, अब वहाँ सिर्फ़ गंदगी और खरपतवार ही थी।

तभी पीछे से फ़रीद ने दो बार हॉर्न बजाया। “हमें चलना चाहिए, आगा। हम लोगों की नज़रों में आ जाएँगे।” उसने पुकारा।

“मुझे बस एक मिनट और दो,” मैंने कहा।

मेरे ज़ेहन में अपने बचपन के घर की जो तस्वीर थी, एक बड़ी-सी सफ़ेद कोठी की, उससे मेरे सामने मौजूद इस मकान का कोई मेल नहीं था। यह उसकी तुलना में बहुत छोटा मालूम पड़ रहा था। छत बीच से झुक गई थी और प्लास्टर चटक गया था। बैठक, बरामदे और ऊपर मेहमानों के कमरे की खिड़कियाँ टूटी हुई थीं और उन पर बड़े ही बेतरतीब ढंग से पारदर्शी प्लास्टिक शीट्स या लकड़ी के फट्टे लगा दिए गए थे। दीवारों का दूधिया सफ़ेद पेंट अब धुएँ के जैसा मटमैला हो गया था और कुछ हिस्सों में तो पूरी

तरह झड़ चुका था, जिससे ईंटें दिखने लगी थीं। सामने की सीढ़ियाँ भी टूट चुकी थीं। काबुल की ज़्यादातर चीज़ों की तरह ही मेरे बाबा का घर भी लुट चुकी शान-ओ-शौकत की धुंधली सी तस्वीर बनकर रह गया था।

तभी मुझे दूसरी मंज़िल पर अपने कमरे की खिड़की, घर की मुख्य सीढ़ियों के दक्षिण में तीसरी खिड़की, दिखाई दे गई। मैं पंजों के बल खड़े होकर भीतर देखने की कोशिश करने लगा, मगर मुझे परछाइयों के सिवाए कुछ भी दिखाई नहीं दिया। पच्चीस साल पहले मैं उसी खिड़की के पीछे खड़ा था, बारिश के पानी की धार खिड़की के शीशे को भिगो रही थी और मेरी साँसों से निकलने वाली गर्मी शीशे पर भाप जमा रही थी। मैं वहाँ खड़ा-खड़ा हसन और अली को अपना सामान बाबा की कार की डिक्की में रखते हुए देख रहा था।

"आमिर आगा!" फ़रीद ने फिर से पुकारा।

"आ रहा हूँ," मैंने जवाब दिया।

मुझ पर पागलपन-सा सवार हो रहा था, मेरा मन घर के अन्दर जाने को मचल रहा था। मैं सामने की सीढ़ियाँ चढ़कर दरवाज़े के सामने पहुँचना चाहता था, जहाँ अली हसन और मुझसे बर्फ़ के जूते उतारने को कहता था। मैं अन्दर बरामदे में क़दम रखना चाहता था, संतरे के उन सूखे छिलकों की सुगंध महसूस करना चाहता था जिन्हें अली हमेशा चूल्हे में डालकर जलाता था। रसोई में नाश्ते की मेज़ पर बैठकर चाय के साथ नान खाते हुए हसन को पुराने हज़ारा गीत गाते सुनना चाहता था।

हॉर्न फिर से बज उठा। मैं फुटपाथ के किनारे खड़ी लैंड क्रूज़र के पास लौट आया। फ़रीद ड्राइविंग सीट पर बैठा सिगरेट के कश लगा रहा था।

"मुझे एक और चीज़ देखनी है," मैंने उससे कहा।

"मगर जल्दी कीजिएगा।"

"मुझे बस दस मिनट दो।"

"जाइए फिर।" फिर, जैसे ही मैं मुड़ने को हुआ, उसने कहा, "सब भूल जाइए। आसान हो जाएगा।"

"क्या?"

"आगे बढ़ना," फ़रीद ने कहा। उसने अपनी सिगरेट खिड़की से बाहर उछाल दी। "आपको और क्या-क्या देखना है? चलिए मैं आपको परेशानी से बचा लेता हूँ: आपको जो कुछ भी याद है, उसमें से कुछ भी नहीं बचा है। उस सबको भूल जाना ही बेहतर है।"

"मैं अब और नहीं भूलना चाहता," मैंने कहा। "मुझे बस दस मिनट दो।"

हसन और मैं जब बाबा के घर के ठीक उत्तर में खड़ी इस पहाड़ी पर चढ़ते थे तो हमें ज़रा भी पसीना नहीं आता था और न ही हमारी साँस फूलती थी। पहाड़ी पर पहुँचकर हम लोग कभी पकड़म-पकड़ाई खेलते और कभी उस ढलवाँ चट्टान पर जाकर बैठ जाते जहाँ से दूर हवाईअड्डे का नज़ारा होता था। वहाँ बैठकर हम हवाईजहाज़ों को उतरते और उड़ान भरते देखते। थोड़ी देर बाद फिर पकड़म-पकड़ाई शुरू हो जाती।

अभी जब मैं उस ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी की चोटी पर पहुँचा तो बुरी तरह हाँफ रहा था, ऐसा लग रहा था जैसे हर साँस के साथ आग भीतर जा रही हो। पूरा शरीर पसीने में नहा गया था। काफी देर तक मैं अपनी उखड़ी हुई साँसों को सामान्य करने की कोशिश करता रहा और फिर उस क़ब्रिस्तान को तलाशने लगा जिसकी चारदीवारी के पास हमारा वाला अनार का पेड़ था और जहाँ हसन ने अपनी माँ को दफनाया था। उसे तलाशने में मुझे ज़्यादा वक़्त नहीं लगा। वह अब भी वहीं मौजूद था। और अनार का वह पेड़ भी। क़ब्रिस्तान के लोहे के फाटक, जो कि कब्ज़ों से उखड़ने के कारण लटके रहते थे, अब वहाँ नहीं थे और क़ब्रिस्तान के भीतर घास-फूस और झाड़-झंखाड़ इतना ऊँचा-ऊँचा हो गया था कि क़ब्र के पत्थर बमुश्किल दिखाई पड़ रहे थे। दो कौए क़ब्रिस्तान की चारदीवारी पर बैठे थे।

हसन ने अपने ख़त में लिखा था कि अनार के पेड़ में बरसों से फल नहीं लगे थे। मुरझाए हुए और अपने सारे पत्ते खो चुके उस पेड़ को देखकर मुझे लगा कि अब शायद उसमें कभी फल लगेंगे भी नहीं। जब मैं उसके नीचे जाकर खड़ा हुआ तो बचपन के वे सभी पल याद आने लगे जब हसन और मैं उस पर चढ़ते थे, उसकी डालियों पर पैर लटकाकर बैठते थे, और पत्तियों के बीच से टिमटिमाती सूरज की रोशनी हमारे चेहरों पर धूप और छाँव की दिलचस्प कलाकृतियाँ बनाती थी। मुझे अपने मुँह में अनार का खट्टा-मीठा स्वाद महसूस होने लगा।

मैं घुटनों के बल बैठ गया और अपनी हथेलियाँ पेड़ के तने पर फिराने लगा। जल्दी ही मुझे वह मिल गया जिसकी तलाश थी। चाकू से उकेरी गई इबारत अब धुंधली पड़ गई थी, तक़रीबन मिट गई थी, मगर फिर भी इतनी थी कि मैं देख सकता था: 'आमिर और हसन: काबुल के सुल्तान।'मैंने हरेक अक्षर के घुमावों को उँगलियों से महसूस किया। उन घुमावों की छोटी-छोटी दरारों से छाल के छोटे-छोटे टुकड़े हटाए।

मैं पेड़ के नीचे पालथी मारकर बैठ गया और दक्षिण दिशा में बसे अपने बचपन के शहर की ओर देखने लगा। उन दिनों हर घर की चारदीवारी के पीछे से पेड़ों की टहनियाँ झाँकती थीं। दूर-दूर तक नीला आसमान फैला रहता था और घरों में कपड़े सुखाने वाली रस्सी पर डले कपड़े धूप में चमक रहे होते थे। और अगर गौर से सुनो तो कभी-कभी वज़ीर अकबर खान में गधे पर लादकर फल बेच रहे आदमी की आवाज़ भी सुनाई दे जाती थी: चेरी ले लो! खुबानी ले लो! अंगूर ले लो! अगर शाम का वक़्त होता तो आपको शर-ए-नऊ मस्जिद से होने वाली अज़ान भी सुनाई पड़ती।

तभी मुझे हॉर्न की आवाज़ सुनाई दी और जब मैंने उस दिशा में देखा तो गाड़ी के

पास फ़रीद हाथ हिलाता खड़ा दिखाई दिया। जाने का वक़्त हो गया था।

हमने गाड़ी दक्षिण में मोड़ी और वापस पश्तूनिस्तान चौक की ओर चल दिए। रास्ते में हमें और भी कई सारी लाल टोयोटा मिलीं, हथियारबंद दाढ़ी वाले लड़कों से खचाखच भरीं। जब भी वे दिखाई पड़ते, फ़रीद मुँह ही मुँह में उन्हें गाली देने से ख़ुद को रोक नहीं पाता।

हमने पश्तूनिस्तान चौक के पास एक छोटे से होटल में एक कमरा किराए पर लिया। होटल के काउण्टर पर जो दुबला-पतला, आँखों पर चश्मा चढ़ाए आदमी मौजूद था, उसके साथ उसकी तीन छोटी उम्र की बच्चियाँ भी उससे चिपककर खड़ीं थीं। पहनावे के कारण तीनों बिल्कुल एक जैसी मालूम पड़ रही थीं; तीनों के बदन पर काले रंग के कपड़े और सिर पर सफ़ेद स्कार्फ़ था। उसने मुझसे एक कमरे के 75 डॉलर लिए, जो उस जगह की खस्ता हालत को देखते हुए बहुत ज़्यादा कीमत थी, मगर मुझे कोई एतराज़ नहीं हुआ। हवाई में समंदर किनारे एक आलीशान घर ख़रीदने के लिए किसी को लूटना अलग थी और अपने बच्चों का पेट भरने के लिए ऐसा करना अलग।

कमरे के बाथरूम में गर्म पानी का कोई इंतज़ाम नहीं था और चटके हुए टॉयलेट का फ़्लश भी काम नहीं कर रहा था। कमरे में बस लोहे के फ्रेम वाला एक पलंग था, उस पर एक पुराना-सा गद्दा बिछा था, ओढ़ने के लिए एक फटा कम्बल था, और कोने में लकड़ी की एक कुर्सी पड़ी थी। चौक की तरफ़ खुलने वाली खिड़की पता नहीं कब से टूटी पड़ी थी, उसे बदला ही नहीं गया था। जब मैं अपना सूटकेस पलंग के नीचे सरकाने के लिए झुका तो मैंने पलंग के पीछे की दीवार पर ख़ून का एक सूखा धब्बा देखा।

मैंने फ़रीद को कुछ पैसे दिए ताकि वह जाकर हमारे लिए खाना ले आए। वह चार चटपटे कबाब, ताज़ा नान और एक कटोरी सफ़ेद चावल लेकर लौटा। हम बिस्तर पर बैठ गए और खाने पर टूट पड़े, ज़रा देर में ही सारा खाना ख़त्म कर दिया। काबुल में एक चीज़ ऐसी थी जो अभी भी नहीं बदली थी: यहाँ के कबाब अभी भी उतने ही लज़ीज़ थे जितने पहले हुआ करते थे।

खाने के बाद मैं पलंग पर लेट गया और फ़रीद ज़मीन पर। उसके ओढ़ने के लिए मैंने एक एक्स्ट्रा कम्बल बुलवाया, जिसके लिए होटल मालिक ने मुझसे अलग से पैसे लिए। कमरे में बिजली नहीं थी और रोशनी का इकलौता ज़रिया टूटी खिड़की से भीतर आ रही चाँद की रोशनी थी। फ़रीद ने बताया कि होटल मालिक ने उसे बताया था कि काबुल में दो दिन से बिजली नहीं आई थी और उसके पास जो जेनरेटर था वह ख़राब था। थोड़ी देर हम दोनों बातें करते रहे। उसने मुझे जलालाबाद के मज़ार-ए-शरीफ़ में बीते उसके बचपन के बारे में बताया। उसने मुझे उसके और उसके वालिद के जिहाद में शामिल होने और पंजशेर घाटी में शोरावी से लड़ने के दिनों के बारे में बताया। बताया कि कैसे एक बार उन्हें दुश्मनों से बचने के लिए लम्बे अरसे तक बगैर खाने के छिपे रहना पड़ा था और उन्होंने ज़िन्दा रहने के लिए टिड्डे तक खाए थे। उसने मुझे उस

दिन के बारे में बताया जिस दिन एक हैलीकॉप्टर हमले में उसके वालिद मारे गए थे, और उस दिन के बारे में भी जब एक बारूदी सुरंद फटने से उसकी दो बच्चियों की मौत हो गई थी। फिर उसने मुझसे अमेरिका के बारे में पूछा। मैंने उसे बताया कि अमेरिका में आप किसी किराने की दुकान में जाकर नाश्ते के लिए पंद्रह या बीस तरह का दलिया ख़रीद सकते थे। मैंने उसे बताया कि अमेरिका में मेमने का माँस हमेशा ताज़ा और दूध हमेशा ठंडा मिलता था, फल भरपूर मात्रा में होते थे और साफ़ पानी हमेशा हर किसी को उपलब्ध रहता था। हर घर में टीवी था, हर टीवी के साथ रिमोट था, और अगर आप चाहें तो सैटेलाईट डिश भी लगवा सकते थे जिससे पाँच-सौ से ज़्यादा चैनल देखे जा सकते थे।

"पाँच-सौ?" फ़रीद ने हैरान होते हुए कहा।

"पाँच-सौ।"

थोड़ी देर के लिए हमारे बीच खामोशी छाई रही। मुझे लगा कि शायद फ़रीद सो गया है, मगर तभी मुझे फ़रीद की आवाज़ सुनाई दी। "आगा, आपको पता है एक बार जब मुल्ला नसरुद्दीन की बेटी रोती-रोती उसके घर आई और उसने शिकायत की कि उसके शौहर ने उसे पीटा था, तब मुल्ला ने क्या किया?" अँधेरे में भी मैं महसूस कर सकता था कि वह मुस्करा रहा था, और इधर मेरे चेहरे पर भी मुस्कान खेलने लगी थी। दुनिया में ऐसा कोई अफ़ग़ान नहीं था जो उस अहमक मुल्ला नसरुद्दीन के ऊपर बनाए गए कुछेक चुटकुले न जानता हो।

"क्या?" मैंने पूछा।

"उसने भी उसे पीट दिया और यह कहकर वापस उसके शौहर के पास भेज दिया कि उसे बता देना कि मुल्ला अहमक नहीं है; अगर वह कमबख्त उसकी बेटी को पीटेगा तो बदले में मुल्ला भी उसकी बीवी की मरम्मत करने से चूकेगा नहीं।"

मेरी हँसी छूट गई। कुछ तो चुटकुला सुनकर और कुछ यह सोचकर कि इतना कुछ बदल गया था मगर अफ़ग़ानियों के लिए हँसी-मज़ाक का मतलब अब भी वही था। दो-दो जंग लड़ी जा चुकी थीं, इंटरनेट का आविष्कार हो चुका था, और मंगल ग्रह की सतह पर रोबोट भी उतर चुका था, मगर अफ़ग़ानिस्तान में हम अभी भी मुल्ला नसरुद्दीन के चुटकुले सुन और सुना रहे थे। "तुमने वो किस्सा सुना है जब एक बार मुल्ला अपने गधे पर बैठकर कहीं जा रहा था और उसने अपने कंधे पर एक बड़ा भारी थैला रख रखा था?" मैंने पूछा।

"नहीं।"

"रास्ते में किसी ने मुल्ला से पूछा कि यह थैला कंधे पर क्यों रख रखा है, इसे गधे की पीठ पर क्यों नहीं रख लेते? इस पर मुल्ला ने जवाब दिया, 'नहीं-नहीं, यह तो इस बेज़बान के ऊपर बेजा जुल्म करने वाली बात हो जाएगी, यह बेचारा पहले ही मेरे बोझ से दबा जा रहा है, उस पर से अगर मैं यह थैला भी इस पर लाद दूँ तो बेचारे का क्या

हाल होगा!”

इसी तरह हम बड़ी देर तक मुल्ला नसरुद्दीन के किस्से सुनते-सुनाते रहे। फिर जब दोनों के पास स्टॉक ख़त्म हो गया तो एक बार फिर थोड़ी देर के लिए हमारे बीच खामोशी छा गई।

मेरी नींद लगने ही वाली थी कि अचानक फ़रीद ने कहा, “आमिर आगा?” मैं चौंककर सजग हो गया।

“हाँ?”

“आप यहाँ क्यों आए हैं? मेरा मतलब है कि आपके आने का असल मकसद क्या है?”

“मैं बता तो चुका हूँ।”

“उस लड़के के लिए?”

“उस लड़के के लिए।”

फ़रीद ने करवट बदली। “यकीन नहीं होता।”

“कभी-कभी तो ख़ुद मुझे भी यकीन नहीं होता कि मैं यहाँ आया हूँ।”

“नहीं…मेरे पूछने का मतलब था कि उस लड़के के लिए क्यों? आप इतनी दूर अमेरिका से यहाँ आए हैं एक…शिया के लिए?”

इस बात ने मेरे भीतर की सारी हँसी चुरा ली। और नींद भी। “मैं थक गया हूँ,” मैंने कहा। “चलो थोड़ी नींद ले लेते हैं।”

जल्दी ही उस खाली कमरे में फ़रीद के खर्राटे गूँजने लगे। मगर मैं जागता रहा, हाथ मोड़कर छाती पर बाँधे हुए, टूटी खिड़की में से नज़र आते तारों भरे आसमान को ताक़ते हुए, और यह सोचते हुए कि शायद लोग अफ़ग़ानिस्तान के बारे में ठीक ही कहते हैं। अफ़ग़ानिस्तान वाक़ई बेउम्मीद जगह है।

अगले दिन जब हम गाज़ी स्टेडियम पहुँचे तो देखा कि वहाँ भारी भीड़ उमड़ रही थी। हज़ारों लोग कंक्रीट की छतों पर इकट्ठा थे। बच्चे गलियारों में खेल रहे थे, सीढ़ियों पर एक-दूसरे के पीछे भाग रहे थे। हवा में मसालेदार चटनी में पकी गारबेंजो बीन्स की ख़ुश्बू उड़ रही थी, मगर उसमें गोबर और पसीने की बदबू भी मिली हुई थी। फ़रीद और मैं सड़क पर सिगरेट, पाइन नट्स और बिस्किट बेचने वाले फेरीवालों के बीच से होकर गुज़र रहे थे।

तभी ट्वीड जैकेट पहने एक दुबले-पतले लड़के ने मेरी कोहनी पकड़ी और मेरे कान में फुसफुसाया। मुझसे पूछा कि क्या मैं कुछ ‘सेक्सी तस्वीरें’ ख़रीदना चाहूँगा।

“बहुत सेक्सी हैं, आगा,” उसने कहा। उसकी ख़बरदार निगाहें इधर-उधर घूम रही

थीं। उसे देखकर मुझे उस लड़की की याद हो आई जिसने कुछ साल पहले सैन फ्रांसिस्को के टेंडरलॉइन इलाके में मुझे 'सेक्स टॉय' बेचने की कोशिश की थी।

उस लड़के ने अपनी जैकेट का एक हिस्सा उघाड़ा और मुझे उन सेक्सी तस्वीरों की एक झलक दिखाई—हिंदी फिल्मों के पोस्टकार्ड, जिनमें हिरनी जैसी आँखों वाली सजी-धजी कामुक नायिकाएँ नायक की बाहों में दिखाई दे रही थीं। "बहुत ही सेक्सी," उसने दोहराया।

"नहीं, शुक्रिया," मैंने उसे परे धकेलते हुए कहा।

"अगर वह पकड़ा गया न, तो वे उसे इतने कोड़े मारेंगे कि क़ब्र में सोया उसका बाप तड़पकर क़ब्र से बाहर निकल आएगा," फ़रीद बुदबुदाया।

स्टेडियम में बैठने की कोई पहले से आरक्षित व्यवस्था नहीं थी। कोई ऐसा आदमी नहीं था जो अदब से हमें हमारा सेक्शन, गलियारा, कतार और सीट दिखाता। हालाँकि ऐसी कोई व्यवस्था पहले के ज़माने में भी नहीं थी। आख़िर-कार हमें बैठने के लिए एक अच्छी जगह मिल ही गई, जो मिडफील्ड के थोड़ी बाईं ओर थी, हालाँकि उस पर कब्ज़ा जमाने के लिए फ़रीद को थोड़ी धक्का-मुक्की करनी पड़ी।

मुझे याद आया कि 70 के दशक में, जब बाबा मुझे फुटबॉल मैच दिखाने यहाँ लाते थे, तब यहाँ का मैदान कितना हरा-भरा हुआ करता था। अब तो उसकी दुर्गति हो चुकी थी। जगह-जगह गड्ढे हो गए थे, ख़ास तौर पर दक्षिणी छोर के गोल-पोस्ट के पीछे दो बड़े-बड़े गड्ढे थे। और घास तो बची ही नहीं थी, हर तरफ़ बस धूल-मिट्टी ही थी। आख़िर-कार दोनों टीमों ने मैदान में क़दम रखा। गर्मी के बावजूद सभी खिलाड़ियों ने लम्बी-लम्बी पतलूनें पहन रखी थीं। जब खेल शुरू हुआ तो गेंद को देखना मुश्किल हो गया क्योंकि खिलाड़ियों के दौड़ने और किक लगाने से भयंकर धूल उड़ रही थी। लम्बी दाढ़ी वाले चाबुकधारी तालिबानी लड़के गलियारों में घूम रहे थे, जो ऊँची आवाज़ में ख़ुशी ज़ाहिर करने वालों पर चाबुक बरसाने से हिचकिचाते नहीं थे।

जैसे ही हाफटाइम की सीटी बजी, खिलाड़ियों को मैदान से बाहर भेज दिया गया। धूल उड़ातीं दो लाल टोयोटा गाड़ियाँ (वैसी ही जैसी मैं काबुल में आने के बाद से कई बार देख चुका था) गेट से अन्दर दाख़िल हुईं। सभी लोग खड़े होकर उन्हें देखने लगे। एक गाड़ी के पीछे वाले केबिन में हरे रंग का बुर्का ओढ़े एक औरत बैठी थी, जबकि दूसरी गाड़ी की केबिन में एक आदमी था, जिसकी आँखों पर पट्टी बंधी हुई थी। दोनों गाड़ियाँ बहुत धीमी रफ़्तार से मैदान के किनारे-किनारे चक्कर लगाने लगीं, मानो वहाँ मौजूद लोगों को अच्छी तरह यह देख लेने का मौका दे रही हों कि उन गाड़ियों में किन्हें लाया गया था। जैसा वे चाहते थे, वैसा ही हुआ। लोग पंजों के बल उचक-उचक कर, गर्दनें लम्बी-लम्बी करके उन गाड़ियों की तरफ़ देखने लगे। मेरी बग़ल में बैठे फ़रीद का टेंटुआ ऊपर-नीचे हिल रहा था, वह मुँह ही मुँह में कोई दुआ पढ़ रहा था शायद।

अब दोनों गाड़ियाँ किनारा छोड़कर धूल के दो गुबार उठाती हुईं मैदान के दक्षिणी छोर की ओर बढ़ने लगीं। वहाँ एक तीसरी गाड़ी भी उनसे आ मिली। इसकी पीछे की केबिन में कुछ लदा हुआ था, जिसे देखकर अचानक ही मुझे गोलपोस्ट के पीछे बने दो बड़े-बड़े गड्ढों का मकसद समझ आ गया। उन्होंने केबिन में लदी चीज़ को मैदान पर खाली कर दिया। कुछ होने वाला था इसकी आशंका से भीड़ में सुगबुगाहट होने लगी।

"क्या आप यहाँ रुकना चाहते हैं?" फ़रीद ने पूछा, उसके चेहरे से तनाव साफ़ झलक रहा था।

"नहीं," मैंने कहा। मैंने ज़िन्दगी में कभी किसी जगह से इतनी बुरी तरह दूर नहीं जाना चाहा था जितना अभी इस जगह से चाहता था। "मगर हमें रुकना पड़ेगा।"

कंधों पर कलाश्निकोव लटकाए हुए दो तालिबों ने पहली गाड़ी के पिछवाड़े से आँखों पर पट्टी बंधे आदमी को जबकि दो और ने दूसरी गाड़ी से बुर्काधारी औरत को नीचे उतारा। उतरते ही औरत के घुटने मुड़ गए और वह ज़मीन पर गिर गई। तालिबों ने उसे ऊपर खींचा, मगर वह फिर से गिर पड़ी। जब उन्होंने उसे फिर से उठाने की कोशिश की, तो उसने ज़ोरों से चीत्कार की और लातें चलाने लगी। जब तक मेरी साँसें रहेंगी, मैं उस चीत्कार को भूल नहीं पाऊँगा। यह उस जंगली जानवर की चीत्कार थी जो बेअर ट्रैप में फँसे अपने घायल पैर को छुड़ाने की जीतोड़ कोशिश कर रहा हो। दो और तालिब अपने साथियों की मदद के लिए आ गए और चारों ने मिलकर उस औरत को उन छाती तक की गहराई वाले गड्ढों में से एक में धकेल दिया। दूसरी तरफ़, जिस आदमी की आँख पर पट्टी बंधी थी उसने कोई प्रतिरोध नहीं किया और चुपचाप ख़ुद को दूसरे गड्ढे में धकेला जाने दिया। अब उन दोनों के सिर्फ़ धड़ ही ज़मीन से ऊपर दिखाई पड़ रहे थे।

गोल पोस्ट के पास एक सफ़ेद दाढ़ी वाला मोटा-थुलथुला मौलवी खड़ा था, जिसने ग्रे रंग के कपड़े पहने हुए थे और हाथ में एक माइक्रोफोन लिए हुए था। जब उस आदमी और औरत को गड्ढों में धकेल दिया गया, तब उसने खँखारकर गला साफ़ किया। उसके पीछे गड्ढे में पड़ी औरत अब भी चीत्कार कर रही थी। स्टेडियम में अचानक सन्नाटा पसर गया था। मौलवी ने माइक्रोफोन मुँह से लगाया और कुरआन की एक लम्बी-चौड़ी आयत पढ़ने लगा। माइक्रोफोन पर गूँजती उसकी आवाज़ स्टेडियम में सुनाई दे रही इकलौती आवाज़ थी। मुझे बहुत पहले बाबा की कही एक बात याद आ गई: मेरा बस चले तो मैं ख़ुद को मज़हब-परस्त कहने वाले इन बंदरों की दाढ़ी में आग लगा दूँ। ये कमज़र्फ दिन-रात बस माला फेरते हैं और उस किताब को रटते रहते हैं जो ऐसी भाषा में लिखी गई है जिसे वे समझते ही नहीं। अगर कभी अफ़ग़ानिस्तान इनके हाथों में पड़ गया, तब तो फिर हम सबका बेड़ा गर्क ही समझो।

आयत ख़त्म करके मौलवी ने एक बार फिर गला साफ़ किया और फ़ारसी में बोला, "भाइयो और बहनो!" एक बार फिर उसकी आवाज़ पूरे स्टेडियम में गूँज उठी। "हम आज यहाँ शरिया लागू करने के लिए आए हैं। हम आज यहाँ इन्साफ़ को अंजाम

देने के लिए आए हैं। हम आज यहाँ इसलिए आए हैं क्योंकि अफ़ग़ानिस्तान में, हमारे प्यारे मादर-ए-वतन में, अब भी अल्लाह की मर्ज़ी और पैगंबर मुहम्मद, अल्लाह उनको अपनी पनाह में रखे, के अलफ़ाज़ का जलाल कायम है। हम अल्लाह की बात सुनते हैं और उसके हुक्म की तामील करते हैं, क्योंकि उसकी अज़मत के सामने हमारी कोई हस्ती नहीं है, उसकी ताक़त के आगे हम कीड़े-मकोड़े भी नहीं हैं। और अल्लाह क्या कहता है? मैं आपसे पूछता हूँ! अल्लाह क्या कहता है? अल्लाह कहता है कि हर गुनहगार को उसके गुनाह के हिसाब से सज़ा दी जानी चाहिए। यह मैं नहीं कह रहा हूँ, न मेरे भाई लोग कह रहे हैं। ये अल्लाह के अलफ़ाज़ हैं!" उसने आसमान की तरफ़ हाथ उठाते हुए कहा। मेरे सर में हथौड़े से बज रहे थे और अचानक मुझे सूरज की तपिश नाकाबिल-ए-बर्दाश्त मालूम होने लगी थी।

"हर गुनहगार को उसके गुनाह के हिसाब से सज़ा दी जानी चाहिए!" मौलवी ने फिर एक बार माइक में दोहराया, मगर इस बार अपनी आवाज़ को नीचा रखते हुए, हर शब्द को धीरे-धीरे, नाटकीय ढंग से बोलते हुए। "और भाईयो और बहनो, ज़िना-कार (व्यभिचारी) को किस तरह की सज़ा दी जानी चाहिए? हम निकाह की पाकीज़गी को दागदार करने वाले लोगों को क्या सज़ा देंगे? हम अल्लाह के मुँह पर थूकने वालों से कैसे निपटेंगे? हम अल्लाह के घर की खिड़कियों पर पत्थर फेंकने वालों को कैसे जवाब देंगे? हम वे ही पत्थर वापस उन्हीं पर खींच मारेंगे!"

इतना कहकर उसने माइक्रोफोन बंद कर दिया। भीड़ में धीमी आवाज़ में सुगबुगाहट सुनाई देने लगी।

मेरे बग़ल में बैठा फ़रीद हैरत और हिकारत से सिर झटक रहा था। "और ये ख़ुद को मुसलमान कहते हैं," उसने फुसफुसाते हुए कहा।

तभी एक लंबे कद और चौड़े कंधों वाला आदमी एक लाल गाड़ी से बाहर निकला। उसे देखते ही कुछ दर्शकों ने ज़ोर-ज़ोर से ख़ुशी जताना शुरू कर दिया। इस बार मगर उनमें से किसी को भी इतनी ऊँची आवाज़ में से ख़ुशी ज़ाहिर करने के लिए कोड़े नहीं मारे गए। उस लम्बे आदमी की दूध जैसी सफ़ेद पोशाक दोपहर की धूप में चमक रही थी। उसकी ढीली कमीज़ का निचला हिस्सा हवा में लहरा रहा था, और उसकी बाँहें क्रूस पर टँगे यीशु की बाँहों की तरह फैली हुई थीं। उसी तरह बाँहें फैलाए-फैलाए उसने धीरे-धीरे अपनी जगह पर चारों ओर घूमकर दर्शकों का अभिवादन किया। जब उसका रुख़ हमारे सेक्शन की तरफ़ हुआ तो मैंने देखा कि उसने जॉन लेनन जैसा गोल और गहरे रंग का चश्मा पहना हुआ था।

"यही वो आदमी होना चाहिए," फ़रीद ने कहा।

वह लंबा तालिब, जिसने काला चश्मा पहना हुआ था, पत्थरों के उस ढेर की ओर गया जिसे उन्होंने तीसरी गाड़ी से उतारा था। उसने एक पत्थर उठाया और उसे भीड़ को दिखाया। शोर कम हो गया और उसकी जगह एक भिनभिनाहट ने ले ली, जो पूरे

स्टेडियम में गूँजने लगी। मैंने अपने चारों ओर देखा तो पाया कि जो होने वाला था उसको लेकर हर चेहरे पर हिकारत का भाव था। और तभी काले चश्मे वाले तालिब ने हाथ में पकड़ा हुआ पत्थर पूरी ताक़त से, जैसे बेसबॉल में पिचर बॉल फेंकता है बिल्कुल वैसे, आँखों पर पट्टी वाले आदमी पर खींच मारा। पत्थर जाकर सीधा उसकी कनपटी पर लगा। औरत फिर से चीत्कार कर उठी। भीड़ ने चौंककर "ओह!" की आवाज़ निकाली। मैंने आँखें बंद कर लीं और अपना चेहरा हथेलियों में छिपा लिया। हर नया पत्थर फेंककर मारे जाने के साथ दर्शकों की "ओह!" की आवाज़ गूँजती रही, और यह कुछ देर तक चलता रहा। जब वे आवाज़ें रुक गईं तो मैंने फ़रीद से पूछा कि क्या वह सब ख़त्म हो गया था। उसने कहा, नहीं। मुझे लगा कि शायद लोगों के गले थक गए थे। मुझे नहीं पता कि मैं कितनी देर अपना चेहरा हथेलियों में छिपाए बैठा रहा था। मुझे यह याद है कि मैंने अपना चेहरा तब ऊपर उठाया था जब आसपास के लोगों को कहते सुना, "मोर्द? मोर्द? मर गया?"

गड्ढे में पड़े आदमी की जगह अब सिर्फ़ ख़ून और फटे-पुराने कपड़े ही नज़र आ रहे थे। उसका सिर आगे की ओर झुका हुआ था, ठोड़ी छाती पर थी। जॉन लेनन जैसा चश्मा लगाए तालिब अपने हाथ में एक पत्थर को ऊपर-नीचे उछालता उस आदमी की तरफ़ देख रहा था जो गड्ढे के बग़ल में उकड़ू बैठा था। उस आदमी ने कानों में स्टेथोस्कोप लगा रखा था और उसका दूसरा सिरा गड्ढे में पड़े आदमी की छाती पर लगाकर उसकी धड़कन सुन रहा था। उसने चश्मे वाले तालिब की तरफ़ देखा और इंकार में गर्दन हिला दी। भीड़ कराह उठी।

चश्मे वाला तालिब फिर से पत्थरों के ढेर की तरफ़ बढ़ गया।

जब सबकुछ ख़त्म हो गया, जब ख़ून से लथपथ लाशों को लाल पिकअप गाड़ियों के पिछले केबिनों में कचरे के ढेर की तरह फेंक दिया गया– अलग-अलग –तब कुछ लोगों ने फावड़ों से जल्दी-जल्दी गड्ढों को भर दिया। उनमें से एक ने ख़ून के बड़े धब्बों पर मिट्टी डालकर उन्हें ढँकने की कोशिश की। कुछ मिनटों बाद टीमें फिर से मैदान में आ गईं और दूसरे हाफ का खेल शुरू हो गया।

हमारी मुलाक़ात उसी दोपहर तीन बजे तय की गई थी। जिस तेज़ी से मुलाक़ात तय हुई, उसने मुझे हैरान कर दिया। मुझे लगा था कि खासी देर-दार होगी, और कुछ नहीं तो पूछताछ का एक दौर चलेगा, शायद हमारे काग़ज़ात भी जाँचे जाएँ। इससे मुझे याद हो आया कि अफ़ग़ानिस्तान में अभी भी सबकुछ कितना अनौपचारिक था, यहाँ तक कि औपचारिक मामलों में भी। फ़रीद को बस इतना करना पड़ा था कि कोड़ा हाथ में लिए घूम रहे तालिबों में से एक को इस बात से वाक़िफ़ कराना पड़ा था कि हमें सफ़ेद कपड़ों वाले तालिब से कुछ निजी काम के सिलसिले में बात करनी थी। फ़रीद और उसमें कुछ बातचीत हुई। सुनकर उसने रज़ामंदी में सिर हिलाया और मैदान पर मौजूद एक लड़के से पश्तो में चिल्लाकर कुछ कहा, जिसे सुनकर वह लड़का दौड़कर दक्षिणी सिरे के गोल पोस्ट की तरफ़ गया, जहाँ वह चश्माधारी तालिब मोटे थुलथुले

मौलवी से बातचीत कर रहा था। तीनों की आपस में कुछ बातचीत हुई। चश्मे वाले ने गर्दन घुमाकर हमारी तरफ़ देखा और फिर उस तक संदेसा लाने वाले लड़के के कान में कुछ कहा। लड़के ने आकर वह बात चाबुक वाले को बता दी, और चाबुक वाले ने हमें।

मुलाक़ात तय हो गई थी। तीन बजे की।

बाईस

फ़रीद ने लैंड क्रूज़र को वज़ीर अकबर खान की स्ट्रीट-15, सड़क-ए-मेहमाना पर बने उस बड़े मकान के ड्राइव-वे के आख़िरी छोर पर ले जाकर रोका और परिसर की दीवारों के किनारे-किनारे लगे सैलोज़ (विलो) पेड़ों की छाया में पार्क करके इंजन बंद कर दिया। हम तक़रीबन एक मिनट तक चुपचाप बैठे रहे। इंजन के ठंडा होने की टिन-टिन की आवाज़ सुनते रहे। हममें से कोई भी कुछ नहीं बोल रहा था। फिर फ़रीद ने अपनी सीट पर पहलू बदला और इग्निशन में लटकी हुई चाबियों से खेलने लगा। मैं समझ गया कि वह ख़ुद को मुझसे कुछ कहने के लिए तैयार कर रहा था।

“मुझे लगता है कि मेरा यहीं कार में बैठकर आपका इंतज़ार करना बेहतर होगा,” आख़िर में उसने कहा। उसका लहज़ा थोड़ा माफ़ी माँगने वाला था। यह बात उसने मेरी तरफ़ देखे बिना कही थी। “अब यह आपका काम है। मैं—”

मैंने उसकी बाँह थपथपाई। “मैंने तुम्हें जितने काम के लिए पैसे दिए थे, तुमने उससे कहीं ज़्यादा काम किया है मेरे लिए। मैं हरगिज़ यह उम्मीद नहीं करता हूँ कि तुम मेरे साथ अन्दर आओगे।” हालाँकि मन में तो मैं नहीं चाह रहा था कि मुझे अकेले अन्दर जाना पड़े। बाबा के बारे में जो घिनौना राज़ मैंने अभी-अभी जाना था, उसके बावजूद मेरा दिल चाह रहा था कि काश इस वक़्त वह मेरे साथ होते। अगर बाबा होते तो सामने का दरवाज़ा तोड़कर भीतर घुस जाते और पूरे हक़ के साथ कहते कि उन्हें उस घर के मालिक से मिलवाया जाए, और जो कोई उनके आड़े आता उसकी खटिया खड़ी कर देते। मगर बाबा को गुज़रे और हेवार्ड के एक छोटे से क़ब्रिस्तान के अफ़ग़ानी सेक्शन में दफ्न हुए लम्बा अरसा बीत चुका था। अभी पिछले महीने ही सोराया और मैंने उनकी क़ब्र के पत्थर के पास डेज़ी और फ़्रीशिया का एक गुलदस्ता रखा था। अब तो जो कुछ भी करना था, मुझ अकेले को ही करना था।

मैं गाड़ी से उतरा और उस मकान के लकड़ी के ऊँचे फाटक की ओर चल दिया। वहाँ पहुँचकर मैंने घंटी बजाई, मगर मुझे घंटी बजने की आवाज़ सुनाई नहीं दी। काबुल में अब भी बिजली नहीं थी। मजबूरन मुझे दरवाज़ा खटखटाना पड़ा। एक पल बाद, मैंने दरवाज़े की दूसरी तरफ़ से तीखी आवाज़ें सुनीं और फिर कंधे पर कलाश्निकोव टाँगे दो आदमियों ने दरवाज़ा खोला। मैंने गाड़ी में बैठे फ़रीद की ओर देखा और सिर्फ़ होंठ हिलाकर कहा (बिना आवाज़ निकाले) कि मैं वापस आऊँगा, जबकि मुझे बिल्कुल भी यकीन नहीं था कि मैं वापस लौटूँगा।

दोनों हथियारबंद लोगों ने मेरी सिर से पैर तक तलाशी ली, मेरे पैरों को थपथपाया, मेरे प्राइवेट पार्ट को छुआ। उनमें से एक ने पश्तो में कुछ कहा और दोनों हँस पड़े। फिर हम फाटक से अंदर गए। मैं उन दोनों हथियारबंद गार्ड्स के साथ चलते हुए,

दीवार के साथ-साथ लगे जेरेनियम के पौधों और छोटी-छोटी झाड़ियों की एक कतार के पास से होते हुए, एक ख़ूबसूरत लॉन के पार पहुँचा। यार्ड के दूर वाले छोर पर एक पुराना हैंडपंप वाला पानी का कुआँ था। मुझे याद आया कि जलालाबाद में काका हुमायूँ के घर में भी एक ऐसा ही कुआँ था। उनकी जुड़वाँ बेटियाँ, फ़ज़ीला और करीमा, और मैं उसमें कंकड़ डाला करते थे और फिर 'डुब्ब' की आवाज़ सुनते थे।

फिर हम कुछ सीढ़ियाँ चढ़े और एक बड़े मगर बहुत कम सजावट वाले घर में दाख़िल हुए। हमने बरामदा पार किया, जिसकी एक दीवार पर एक बड़ा अफ़ग़ान झंडा लटका हुआ था। और फिर वे लोग मुझे ऊपर एक कमरे में ले गए, जिसमें दो हरे रंग के सोफ़े और दूर कोने में एक बड़ी स्क्रीन वाला टीवी रखा था। एक दीवार पर एक जाइ-नमाज़ (नमाज़ पढ़ने के लिए उपयोग होने वाला गलीचा) टंगा था, जिस पर आयताकार मक्का को दर्शाया गया था। उन दोनों गार्ड्स में से जो उम्र में बड़ा था उसने अपनी कलाशनिकोव की नाल से सोफे की तरफ़ इशारा किया। मैं बैठ गया। वे कमरे से बाहर चले गए।

मैं पैर पर पैर चढ़ाकर बैठा। फिर उतार लिया। अपने पसीने से भीगे हाथ घुटनों पर रखकर बैठा। क्या इस तरह से मैं नर्वस लगूँगा? दोनों हाथों की हथेलियों को आपस में जकड़कर बैठा, मगर फिर तय किया कि यह तो और भी ख़राब लगेगा और इसलिए हाथों को मोड़कर छाती पर रख लिया। मेरी कनपटियों की नसें फड़कने लगी थीं। मुझे निपट अकेलापन महसूस हुआ। मेरे ज़ेहन में तमाम तरह के ख़यालों का अंधड़-सा चल रहा था, मगर मैं बिल्कुल भी सोचना नहीं चाहता था क्योंकि मेरे वजूद का एक हिस्सा, जो अब भी अपने होश-ओ-हवास कायम रखे हुए था, जानता था कि मैंने ख़ुद को जिस ख़तरनाक स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया था, वह पागलपन था। मैं अपनी खानुम से हज़ारों मील दूर, एक ऐसे कमरे में बैठा था जो किसी हवालात जैसा लग रहा था, और एक ऐसे आदमी का इंतज़ार कर रहा था जिसे मैंने आज ही दो लोगों का क़त्ल करते देखा था। यह पागलपन था। और उससे भी बुरी बात यह कि यह गैर-ज़िम्मेदाराना था। इस बात की संभावना बहुत प्रबल थी कि मैं सोराया को छत्तीस बरस की उम्र में ही बेवा बना दूँ। 'यह तुम नहीं हो, आमिर,' मेरे वजूद के एक हिस्से ने कहा। 'तुम इतनी हिम्मत कर ही नहीं सकते। ऊपरवाले ने तुम्हें बनाया ही ऐसा है। और यह कोई इतनी बुरी बात भी नहीं है। और फिर यह एक बात तो तुम्हारे पक्ष में जाती ही है कि तुमने इस बारे में ख़ुद से कभी झूठ नहीं बोला। कभी इस बात को झुठलाने की कोशिश नहीं की। बेवकूफ़ी भरी बहादुरी दिखाने से अच्छा है समझदारी का दामन थामे रखकर कायर कहलाना।' मगर जब कोई कायर यह याद रखना भूल जाता है कि वह कौन है...तब तो फिर ऊपरवाला ही उसका मालिक होता है।

सोफे के पास एक कॉफी टेबल रखी थी। टेबल के पाए अंग्रेज़ी के X अक्षर जैसे थे। बीच में जिस जगह दोनों पाए एक दूसरे को छूते थे, वहाँ अखरोट के आकार की पीतल की गेंदें एक छल्ले के रूप में कसी हुई थीं। इस तरह की टेबल मैं पहले भी देख चुका था। कहाँ? याद आया। पेशावर की भीड़भाड़ वाली चाय की दुकान में। उस दिन जब मैं

रहीम खान को गालियाँ देकर उनके मकान से निकल आया था और टहलता हुआ उस चाय की दुकान में पहुँचा था। बहरहाल, टेबल पर कटोरे में लाल अंगूरों का एक गुच्छा रखा था। मैंने उसमें से एक अंगूर तोड़ा और मुँह में डाल लिया। अपने दिमाग़ में उठ रहीं आवाज़ों को खामोश रखने के लिए मुझे ख़ुद को किसी और चीज़ में, किसी भी चीज़ में, मसरूफ रखना ज़रूरी लगा। अंगूर मीठा था। मैंने एक और तोड़ा और मुँह में डाल लिया। मगर उस वक़्त मैं इस बात से अनजान था कि इसके बाद मैं बहुत लम्बे अरसे तक कोई ठोस चीज़ चबाकर खाने लायक नहीं रहूँगा।

तभी दरवाज़ा खुला और वे ही दो हथियारबंद गार्ड्स वापस लौटे, मगर इस बार उनके बीच वह लंबा तालिब भी था। उसने अभी भी वे ही सफ़ेद कपड़े पहने हुए थे, सिर पर वही काली पगड़ी थी, और आँखों पर वही जॉन लेननुमा काला चश्मा चढ़ा रखा था। अपने हुलिए और डील-डौल से वह कोई चौड़े कंधों वाला, नए ज़माने का आध्यात्मिक गुरु दिखाई पड़ रहा था।

वह आकर मेरे सामने रखे सोफे पर बैठ गया और हाथ उसके हत्थों पर रख लिए। बड़ी देर तक उसने कुछ भी नहीं कहा। बस बैठा रहा, मुझे देखता रहा, एक हाथ से सोफे के हत्थे को ठकठकाता रहा और दूसरे हाथ से फिरोज़ी रंग के मनकों वाली माला फिराता रहा। सुबह से अभी के उसके पहनावे में यह फर्क आया था कि अब उसने सफ़ेद शर्ट के ऊपर काली जैकेट और हाथ में सुनहरी रंग की घड़ी भी पहनी हुई थी। मुझे उसकी बाईं आस्तीन पर ख़ून का एक सूखा हुआ धब्बा दिखाए पड़ा। मुझे यह बात बेहद हैरानी और घिन पैदा करने वाली लगी कि उसने सुबह दो लोगों को क़त्ल करने के बाद भी कपड़े नहीं बदले थे।

बीच-बीच में उसका खाली हाथ ऊपर उठता और उसकी मोटी उंगलियाँ हवा में किसी चीज़ के साथ खेलतीं-सी मालूम होतीं। वे धीरे-धीरे ऊपर-नीचे, बाएँ से दाएँ, दाएँ से बाएँ ऐसे फिरतीं मानो किसी अदृश्य जानवर को सहला रही हों। उसकी एक आस्तीन मुड़ी हुई थी और मैंने उसकी बाँह पर कुछ निशान देखे। वैसे ही निशान मैंने सैन फ्रांसिस्को की गंदी गलियों में भटकने वाले बेघर लोगों की बाँहों पर भी देखे थे।

उसकी रंगत उन दो हथियारबंद गार्ड्स के मुकाबले थोड़ी पीली सी थी, जैसी बीमार लोगों की होती है। और उसके माथे पर पसीने की छोटी-छोटी बूँदें चमकती नज़र आ रही थीं। उसकी छाती तक आती दाढ़ी का रंग भी औरों की तुलना में ज़रा हल्का था।

"सलाम अलेकुम*!*" आख़िर-कार उसके मुँह से बोल फूटे।

"सलाम*!*"

"वैसे, अब तुम इससे निजात पा सकते हो," उसने कहा।

"माफ़ कीजिएगा?"

उसने अपनी हथेली हथियारबंद लोगों में से एक की तरफ़ घुमाई और कुछ इशारा किया। चर्रर्र। अचानक मेरे गाल जलने लगे और वह गार्ड मेरी दाढ़ी को अपने हाथ में ऊपर-नीचे लहराते हुए खिलखिलाने लगा। सफ़ेद कपड़ों वाला तालिब मुस्कराया।

"पिछले कुछ अरसे में, मैंने ऐसी जितनी भी चीज़ें देखीं हैं, बेशक उनमें यह सबसे अच्छी है। मगर मेरे ख़याल से यह ऐसी ही ज़्यादा अच्छी लगती है, नहीं?" उसने अपनी उंगलियाँ घुमाईं, चटकायीं, फिर मुट्ठी बाँधी, खोली, फिर बाँधी। "तो, इंशाअल्लाह, आपको आज का शो अच्छा लगा?"

"उसे आप शो कहते हैं?" मैंने अपने गालों को रगड़ते हुए कहा। मैं उम्मीद कर रहा था कि मेरी आवाज़ मेरे भीतर हुए आतंक के विस्फोट को ज़ाहिर न होने दे।

"इन्साफ़-ए-आम सबसे ज़बरदस्त किस्म का शो है, मेरे भाई। ड्रामा। सस्पेंस। और सबसे बढ़कर, सबक-ए-आम।" उसने अपनी उंगलियाँ चटकाईं। उम्र में क़दरन छोटे मालूम पड़ने वाले गार्ड ने उसके लिए सिगरेट जलाई। तालिब हँस पड़ा। मुँह ही मुँह में कुछ बुदबुदाया। उसके हाथ काँप रहे थे, सिगरेट उसके हाथ से छूटते-छूटते बची। "पर अगर तुम्हें असली शो देखना था, तो तुम्हें मेरे साथ मज़ार में होना चाहिए था। अगस्त 1998 में।"

"माफ़ कीजिएगा?"

"पता है, हमने उन्हें कुत्तों के लिए छोड़ दिया था।"

तब मेरी समझ में आया कि वह किस बारे में बात कर रहा था।

वह खड़ा हो गया। सोफे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चहलक़दमी करने लगा। एक बार। दो बार। फिर वापस बैठ गया। और जल्दी-जल्दी बोलना शुरू किया। "हम घर-घर गए, मर्दों और लड़कों को बाहर बुलाया। उन्हें वहीं, उनके घर वालों के सामने ही गोली मार दी। उनकी आँखों के सामने। ताकि उन्हें याद रहे कि वे कौन थे, कहाँ के थे।" अब वह तक़रीबन हाँफ रहा था। "कभी-कभी, जब वे दरवाज़ा नहीं खोलते, तो हम दरवाज़ा तोड़कर अन्दर घुस जाते। और...मैं...मैं अपनी मशीनगन की बैरल को कमरे में एक सिरे से दूसरे सिरे तक घुमाता जाता और अंधाधुंध फायर करता जाता, करता जाता, और तब तक नहीं रुकता जब तक कि कमरा धुएँ से इतना भर नहीं जाता कि कुछ भी दिखाई नहीं देता।" फिर वह मेरी तरफ़ ऐसे झुका जैसे कोई राज़ की बात बताने जा रहा हो। "वारस्तगी (मुक्ति) लफ्ज़ के असल मायने तुम्हें तब तक समझ नहीं आ सकते जब तक कि तुम ऐसा कर न लो–शिकारों से भरे कमरे में खड़े होकर अंधाधुंध गोलियाँ चलाना, बगैर किसी पछतावे और अहसास-ए-गुनाह के, इस बात को ज़ेहन में रखते हुए कि तुम अल्लाह के नेक बन्दे हो, सच्चे और अच्छे हो, मोहज़्ज़ब (सभ्य) हो; इस बात को ज़ेहन में रखते हुए कि तुम अल्लाह का काम कर रहे हो। लाजवाब होता है यह तजुर्बा।" उसने अपनी जपने वाली माला को चूमा और उन गार्ड्स की तरफ़ गर्दन घुमाई। "तुम्हें याद है वो मंज़र, जावेद?"

“हाँ, आगा साहब,” युवा गार्ड ने जवाब दिया। “कैसे भूल सकता हूँ भला?”

मज़ार-ए-शरीफ़ में हज़ाराओं के क़त्ल-ए-आम के बारे में, मैंने अखबारों में पढ़ा था। यह दिल दहलाने वाली घटना मज़ार पर तालिबानों के कब्ज़े के तुरंत बाद हुई थी। तब तक तक़रीबन पूरे अफ़ग़ानिस्तान पर तालिबान का कब्ज़ा हो चुका था। मुझे याद है कि मैं उस वक़्त नाश्ता कर रहा था जब सोराया ने मेरे हाथ में वह अखबार थमाया था। उसके चेहरे का रंग उड़ा हुआ था।

“दरवाज़े-दरवाज़े। हम सिर्फ़ खाने और नमाज़ के लिए रुके,” तालिब ने कहा। उसने यह बात इस अंदाज़ में कही, जैसे कोई आदमी उस शानदार पार्टी के बारे में बता रहा हो जिसमें वह शामिल हुआ था। “हमने लाशों को सड़कों पर ही छोड़ दिया और अगर उनके घरवाले उनकी लाश उठाने चुपके से बाहर निकलने की कोशिश करते थे तो हम उन्हें भी गोली मार देते थे। हमने उन लाशों को कई दिनों तक सड़कों पर ही पड़ा रहने दिया। हमने उन्हें कुत्तों के लिए छोड़ दिया। कुत्तों का गोश्त कुत्तों के लिए।” उसने हाथ में थमी सिगरेट को मसल दिया और काँपते हाथों से अपनी आँखें रगड़ीं। “तुम अमेरिका से आए हो?”

“हाँ।”

“आजकल वो रण्डी कैसी है?”

मुझे अचानक ज़ोरों से पेशाब लग आई। मैंने उसे दबाने की कोशिश करते हुए कहा, “मैं एक लड़के की तलाश में हूँ।”

“वो तो हर कोई है, नहीं?” उसने कहा। हथियारबंद गार्ड्स हँसने लगे। मैंने देखा कि उनके दाँत नसवार के कारण हरे हो गए थे।

“मैं समझता हूँ कि वह यहाँ आपके साथ है,” मैंने कहा। “उसका नाम सोहराब है।”

“मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ। तुम उस रण्डी के साथ क्या कर रहे हो? यहाँ क्यों नहीं हो, अपने मुस्लिम भाइयों के साथ, अपने वतन की खिदमत करने के वास्ते?”

“मैं बहुत अरसे से यहाँ से दूर हूँ,” मैंने कहा। मुझे बस यही जवाब सूझा। मेरे दिमाग़ में ख़ून का दौरा ख़तरनाक स्तर तक बढ़ गया था। मैंने दोनों घुटने जोड़ लिए ताकि पेशाब रोके रख सकूँ।

तालिब दरवाज़े के पास खड़े उन दो गार्ड्स की तरफ़ घूमा। “ये कोई जवाब हुआ?” उसने उनसे पूछा।

“नहीं, आगा साहिब,” दोनों ने मुस्कराते हुए एक स्वर में कहा।

फिर उसकी नज़रें वापस मुझ पर जम गईं और उसने कंधे उचकाते हुए कहा, “ये कह रहे हैं कि यह तो कोई जवाब नहीं हुआ।” उसने सिगरेट का एक कश लगाया। “हमारे गुट में ऐसे लोग भी हैं जो मानते हैं कि उस वक़्त वतन को छोड़ देना जब उसे

आपको सबसे ज़्यादा ज़रूरत हो, वतन से गद्दारी के बराबर है। मैं चाहूँ तो इसके लिए तुम्हें गिरफ्तार करवा सकता हूँ, गोली भी मरवा सकता हूँ। क्या यह सोचकर तुम्हें डर लगता है?"

"मैं यहाँ सिर्फ़ उस लड़के के लिए आया हूँ।"

"क्या यह सोचकर तुम्हें डर लगता है?"

"हाँ।"

"लगना भी चाहिए," उसने कहा। वह सोफे की पीठ से पीठ टिकाकर बैठ गया। एक बार फिर उसने अपनी सिगरेट मसल दी।

मैं सोराया के बारे में सोचने लगा। इससे मेरे दिमाग़ में हथौड़े बजना थोड़ा कम हुआ। मैं मन ही मन उसके निचले जबड़े के पास बने दरांती के आकार के बर्थ-मार्क (जन्म-चिह्न) के बारे में सोचने लगा, उसकी सुराहीदार गर्दन और चमकदार आँखों के बारे में सोचने लगा। मैं अपने निकाह की रात के बारे में सोचने लगा, जब हमने हरे घूँघट के नीचे शीशे में एक-दूसरे को देखा था। मुझे याद आने लगा कि उस वक़्त जब मैंने फुसफुसाते हुए पहली बार उससे कहा था कि मैं उससे प्यार करता हूँ, तो कैसे उसके गाल लाल हो गए थे। मुझे याद आने लगा कि कैसे हम दोनों एक पुराने अफ़ग़ान गाने पर गोल-गोल घूमते हुए नाच रहे थे और हर कोई देख रहा था और ताली बजा रहा था, कैसे हमारी दुनिया फूलों, कपड़ों, टक्सीडोज़ और मुस्कराते चेहरों से भरी हुई थी।

इधर मैं अपने ख़यालों में खोया हुआ था, उधर तालिब कुछ कह रहा था।

"माफ़ कीजिएगा?"

"मैंने कहा, उससे मिलना चाहोगे? मेरे लड़के से मिलना चाहोगे?" 'मेरे लड़के' शब्द कहते हुए उसकी आवाज़ में तंज साफ़ महसूस किया मैंने।

"जी हाँ।"

एक गार्ड कमरे से बाहर चला गया। मैंने दरवाज़ा खुलने की चरमराहट सुनी। गार्ड को पश्तो में, कठोर लहज़े में कुछ कहते सुना। फिर, क़दमों की आहट और हर क़दम पर घुंघरुओं की झंकार। इस आवाज़ ने मुझे उस मदारी की याद दिला दी, हसन और मैं शर-ए-नौ में जिसके पीछे-पीछे घूमते थे। हम उसे अपने जेबखर्च में मिला एक रुपया देते थे ताकि वह हमें बन्दर का नाच दिखाए। उसके बन्दर के गले में बंधी घंटी भी बिल्कुल ऐसी ही आवाज़ करती थी।

तभी दरवाज़ा खुला और गार्ड अन्दर आया। उसके कंधे पर एक स्टीरियो –बूम बॉक्स– रखा हुआ था। उसके पीछे-पीछे नीले रंग का ढीला-ढाला पिरहान-तुंबन पहने एक लड़का चला आ रहा था।

कमाल की समानता थी! एक पल को मुझे लगा कि हसन ही सामने खड़ा है। रहीम

खान ने जो पोलेरॉइड तस्वीर निकाली थी, उसमें यह समानता इतनी अच्छी तरह नज़र नहीं आ रही थी।

सोहराब ने बिल्कुल हसन की तरह गोल चाँद जैसा चेहरा पाया था, वैसी ही नुकीली ठुड्डी थी, वैसे ही मुड़े हुए सीप जैसे कान, और वैसा ही दुबला-पतला शरीर। यह मेरे बचपन का वही चीनी गुड़िया वाला चेहरा था जो मुझे सर्दियों में हीटर वाली कुर्सी के नीचे बैठकर ताश खेलते हुए नज़र आता था, जो गर्मियों में घर की छत पर सोते समय मच्छरदानी में नज़र आता था। सोहराब का सिर घुटा हुआ था, आँखों में काजल लगा था और गाल रूज़ की लाली से चमक रहे थे। जब वह कमरे के बीचों-बीच आकर रुका तो उसके पैरों में बंधे घुँघरुओं की आवाज़ भी बंद हो गई। उसकी नज़र मुझ पर पड़ी। रुकी। फिर हट गई। वह सिर झुकाकर अपने नंगे पैरों की तरफ़ देखने लगा।

गार्ड ने स्टीरियो का बटन दबाया और कमरे में पश्तो संगीत गूँज उठा। तबला, हारमोनियम और दिल-रोबा की आवाज़ें। इस्लाम के नाम पर गाने-बजाने को हराम करार देने वाले तालिबानी शायद ख़ुद को इस्लाम की अपनी व्याख्या से ऊपर मानते थे, या शायद गीत-संगीत तब तक हराम नहीं था जब तक उसे सुनने वाले कान तालिबानी थे। तीनों तालिबानियों ने ताली बजाना शुरू कर दिया।

"वाह वाह*!* माशाअल्लाह*!*"

सोहराब ने अपनी बाँहें उठाईं और पंजों के बल खड़े होकर अपनी जगह पर धीरे-धीरे घूमना शुरू किया। वह सधे हुए अंदाज़ से घूमा, घुटनों के बल झुका, सीधा हुआ और फिर से घूमा। उसके छोटे-छोटे हाथ कलाईयों के जोड़ पर से गोल-गोल घूम रहे थे, उसकी उंगलियाँ चटक रही थीं और उसका सिर पेंडुलम की तरह इधर-उधर झूल रहा था। उसके पैर फर्श पर थिरक रहे थे, उनमें बंधे घुँघरूओं की आवाज़ तबले की थाप के साथ संगत कर रही थी। उसकी आँखें बंद थीं।

"माशाअल्लाह!" तालिबों ने ख़ुश होते हुए कहा। "शाबाश! शाबाश!" दोनों गार्डों ने सीटी बजाई और हँसने लगे। सफेद लिबास वाला तालिब संगीत के साथ अपना सिर आगे-पीछे कर रहा था और उसकी हवस टपकाती नज़र सोहराब पर टिकी थी।

सोहराब आँखें बंद करके एक घेरे में नाचता रहा, नाचता रहा, तब तक जब तक संगीत बंद नहीं हो गया। घुँघरू एक आख़िरी बार झनके जब उसने गाने के आख़िरी स्वर के साथ अपना पैर फर्श पर पटका। जैसे ही गाना बंद हुआ, वह जहाँ का तहाँ थम गया, उसी पोज़ में।

"बढ़िया, बढ़िया, मेरे बच्चे," तालिब ने सोहराब को अपने पास बुलाते हुए कहा। सोहराब उसके पास गया, सिर झुकाकर उसकी जाँघों के बीच खड़ा हो गया। तालिब ने उसे अपनी बाँहों में भर लिया। "कितना हुनरमंद है यह मेरा हज़ारा बच्चा!" उसने कहा। उसके हाथ बच्चे की पीठ पर नीचे सरके, फिर ऊपर उठे, उसकी बग़लों के नीचे घुसे। एक गार्ड ने दूसरे को कोहनी मारी और हँसने लगा। तालिब ने उन्हें बाहर

जाने को कहा।

"जी, आगा साहिब," कहते हुए वे बाहर चले गए।

तालिब ने सोहराब को पकड़कर घुमा दिया ताकि उसका चेहरा मेरी तरफ़ हो जाए। उसने अपनी बाँहें सोहराब के पेट के गिर्द लपेट लीं और अपनी ठोड़ी उसके कंधे पर टिका दी। सोहराब की नज़रें अपने पैरों की तरफ़ थीं, मगर बीच-बीच में वह चोर नज़र से लजाते-सकुचाते मेरी ओर देख लेता था। तालिब के हाथ लड़के के पेट पर ऊपर-नीचे सरक रहे थे। ऊपर-नीचे, नीचे-ऊपर, धीरे-धीरे, सहलाते हुए।

"मैं सोच रहा था," तालिब ने कहा, चश्मे के पीछे से उसकी आँखें सोहराब के कंधे के ऊपर से मेरी ओर देख रही थीं, "आख़िर उस बूढ़े बबालू का क्या हुआ होगा?"

मुझे ऐसा लगा जैसे मेरा पाँव बिजली के नंगे तार से छू गया हो। मेरा चेहरा एकदम से फक्क हो गया। पैर एकदम ठंडे पड़ गए। दिमाग़ सुन्न हो गया।

तालिब ने कहकहा लगाया। "तुम्हें क्या लगा कि तुम नकली दाढ़ी लगा लोगे तो मैं तुम्हें पहचान नहीं पाऊँगा? मेरे बारे में एक बात है जो शर्तिया तौर पर तुम्हें नहीं पता – मैं कभी कोई चेहरा नहीं भूलता। कभी नहीं।" उसने अपने होंठ सोहराब के कान से रगड़े, और नज़र मुझ पर बनाए रखी। "मैंने सुना कि तुम्हारे बाबा मर गए। बुरा हुआ। मैं हमेशा उनसे दो-दो हाथ करना चाहता था। मगर अब लगता है कि मुझे उनकी कमज़ोर औलाद से लड़कर ही तसल्ली करनी पड़ेगी।" उसने अपना काला चश्मा उतार दिया और अपनी सुर्ख हो उठीं नीली आँखें मेरी आँखों पर टिका दीं।

मैंने साँस लेने की कोशिश की, मगर नहीं ले पाया। मैंने पलक झपकने की कोशिश की, मगर नहीं झपक पाया। मुझे ऐसा लगा जैसे यह सब हक़ीक़त नहीं बल्कि कोई सपना था, बहुत ही बेतुका सपना, जिसने मेरी साँस हलक में अटका दी थी और मेरे आसपास की दुनिया मानो थम गई थी। सबकुछ जहाँ का तहाँ रुक गया था। मेरा चेहरा जल रहा था। मेरा अतीत उस खोटे सिक्के की तरह था जिससे छुटकारा पाने की मैं चाहे जितनी भी कोशिश करूँ, वह लौटकर मेरे सामने आ ही जाता था। अतीत की गहराइयों से निकलकर उसका नाम सतह पर आ गया था और मैं उसे ज़बान पर लाने से भी डर रहा था, मानो ऐसा करने से मुर्दे में फिर से जान पड़ जाएगी। मगर वो तो पहले से ही यहाँ मौजूद था, इतने बरसों बाद, जीता-जागता, मुझसे दस फीट से भी कम की दूरी पर बैठा हुआ। आख़िर-कार उसका नाम मेरे मुँह से निकल ही गया: "अस्सेफ़!"

"आमिर जान।"

"तुम यहाँ क्या कर रहे हो?" मैंने कहा, यह जानते हुए भी कि यह निहायत ही बेवक़ूफ़ाना सवाल था, मगर इसके सिवाए मुझे कुछ और सूझा ही नहीं कहने को।

"मैं?" अस्सेफ़ ने त्यौरियाँ चढ़ाईं। "मैं तो वहीं हूँ जहाँ मुझे होना चाहिए था। सवाल

यह है कि तुम यहाँ क्या कर रहे हो?"

"मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ," मैंने कहा। मेरी आवाज़ काँप रही थी। मैं चाहता था कि ऐसा न हो। मैं चाहता था कि मेरा माँस सिकुड़कर मेरी हड्डियों से न चिपके।

"यह लड़का?"

"हाँ।"

"क्यों?"

"मैं तुम्हें इसके लिए पैसे दूँगा," मैंने कहा। "तुम्हारे बैंक खाते में डलवा दूँगा।"

"पैसा?" अस्सेफ़ ने कहा। वह हँसा। "तुमने कभी रॉकिंगहैम के बारे में सुना है? पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया, धरती पर उतरी जन्नत। तुम्हें वह जगह देखना चाहिए। मीलों-मील तक फैला समुद्र तट। हरा पानी, नीला आसमान। मेरे वालदैन (माँ-बाप) वहाँ समन्दर के किनारे एक विला में रहते हैं। विला के पीछे एक गोल्फ कोर्स और एक छोटी सी झील है। बाबा हर दिन गोल्फ खेलते हैं। और अम्मी जान, उन्हें टेनिस पसंद है। बाबा कहते हैं कि उनका बैकहैंड बहुत अच्छा है। उनके पास एक अफ़ग़ान रेस्तरां और दो ज्वेलरी स्टोर हैं; दोनों ही बिज़नेस शानदार चल रहे हैं।" उसने लाल अंगूरों के गुच्छे में से एक अंगूर तोड़ा और प्यार से सोहराब के मुँह में डाल दिया। "तो अगर मुझे पैसे की ज़रूरत होगी, तो वे मेरे खाते में डलवा देंगे।" उसने सोहराब की गर्दन को चूमा। लड़का थोड़ा सा झेंप गया और उसने फिर से अपनी आँखें बंद कर लीं। "इसके अलावा, मैंने शोरावी के ख़िलाफ़ जंग पैसों के लिए नहीं की थी। तालिबान में भर्ती भी पैसों के लिए नहीं हुआ था। जानना चाहते हो क्यों हुआ था?"

मेरे होंठ सूख गए थे। मैंने उन पर जीभ फेरी, मगर पाया कि मेरी जीभ भी सूख गई थी।

"प्यास लगी है?" अस्सेफ़ ने चेहरे पर एक भद्दी सी मुस्कान लाते हुए पूछा। "मेरे ख़याल से तुम्हें प्यास लगी है।"

"मैं ठीक हूँ," मैंने कहा। जबकि हक़ीक़त तो यह थी कि मुझे कमरा अचानक बहुत गर्म लगने लगा था, मेरे सभी रोम-छिद्रों से पसीना फूटने लगा था और सारे शरीर में काँटे से चुभने लगे थे। क्या यह सब सच में हो रहा था? क्या मैं सच में अस्सेफ़ के सामने बैठा था? "जैसी तुम्हारी मर्ज़ी," उसने कहा। "बहरहाल, कहाँ था मैं? हाँ, मैं बता रहा था कि मैं तालिबान में कैसे भर्ती हुआ। वैसे तुम्हें यह तो याद होगा कि मैं कभी भी बहुत मज़हब-परस्त इंसान नहीं था। मगर एक दिन मुझे इस बात का एहसास हुआ कि अल्लाह मेरे साथ था। यह अहसास मुझे जेल में रहते हुए हुआ। सुनना चाहोगे?"

मुझे उसकी आदत पता थी, इसलिए मैंने कुछ नहीं कहा।

"बढ़िया। मैं सुनाता हूँ," उसने कहा। "1980 में बबरक करमाल के सत्ता संभालने

के ठीक बाद मैंने कुछ वक़्त जेल में बिताया, पोलेह-चरखी में। मेरा जेल जाना तब हुआ जब एक रात परचमी फौजियों का एक झुण्ड हमारे घर में घुस आया और मेरे बाबा और मेरी कनपटी पर बंदूक रखकर उनके पीछे-पीछे आने का हुक्म दिया। उन हरामियों ने इसकी कोई वजह नहीं बताई और अम्मी जान के सवालों का जवाब भी नहीं दिया। यह कोई राज़ की बात नहीं थी; सभी जानते थे कि कम्युनिस्टों की कोई 'क्लास' नहीं थी, वे ऊँची नस्ल के लोग नहीं थे। वे ग़रीब घरों से उठकर आए हुए लोग थे, जिनके परिवार का, खानदान का कोई नाम नहीं था, कोई फख्र करने लायक अतीत नहीं था। वही कुत्ते जो शोरावी के आने से पहले मेरे जूते चाटने के भी लायक नहीं थे, अब बंदूक की नोक पर मुझे हुक्म दे रहे थे, अपने कोट पर परचमी झंडा लगाए पूंजीवाद के खात्मे की बात कर रहे थे और ऐसे बर्ताव कर रहे थे जैसे कि वे बड़े 'क्लास' वाले लोग थे। सब जगह यही हो रहा था: अमीरों को पकड़ो, उन्हें जेल में डालो, कामरेड्स के लिए एक मिसाल कायम करो।

"बहरहाल, हमें छह-छह के झुण्ड में उन काल-कोठरियों में ठूँस दिया गया जिनका आकार बमुश्किल रेफ्रिजरेटर जितना था। जेल का कमाण्डेंट, जो कि आधा हज़ारा और आधा उज़बेक था और जिसके बदन से किसी खच्चर की सड़ी हुई लाश जैसी बदबू आती थी, हर रात किसी काल-कोठरी से किसी भी एक आदमी को बाहर निकालता और उसे तब तक जानवरों की तरह पीटता जब तक कि उसके मोटे चेहरे से पसीना नहीं बहने लगता। फिर वह एक सिगरेट जलाता, अपनी उंगलियाँ चटकाता, और चला जाता। अगली रात वह किसी और कैदी को चुन लेता। एक रात उसने मुझे चुन लिया। मेरे लिए यह इससे ज़्यादा बुरे वक़्त पर नहीं हो सकता था। पिछले तीन दिनों से मुझे पेशाब में ख़ून जा रहा था। किडनी में पथरी की वजह से। जिस किसी ने भी इसका दर्द सहा है वो मेरी इस बात से पूरा-पूरा इत्तेफाक रखेगा कि इससे ज़्यादा ख़राब दर्द दुनिया में कोई दूसरा नहीं होता। यही दर्द पहले अम्मी जान को भी होता था, और मुझे याद है कि एक बार उन्होंने मुझसे कहा था कि वह किडनी से पथरी निकलने का दर्द सहने की बनिस्बत बच्चे को पैदा करने में होने वाला दर्द सहन करना ज़्यादा पसंद करेंगी। मगर मैं कुछ कर नहीं सकता था, मजबूर था। गार्ड्स ने मुझे काल-कोठरी से खींचकर बाहर निकाला और कमाण्डेंट ने अंधाधुंध लातें बरसानी शुरू कर दीं। हर रात कैदियों को पीटने के वक़्त वह घुटनों तक आने वाले ऐसे जूते पहनता था जिनका पंजे वाला हिस्सा स्टील का बना हुआ था। उन्हीं जूतों की ताबड़तोड़ ठोकरें मेरे बदन पर पड़ने लगीं। हर ठोकर के साथ मेरे गले से हौलनाक चीखें निकल रही थीं। मेरी चीखों पे चीखें निकलती रहीं और वह ठोकरों पे ठोकरें लगाता रहा। तभी अचानक उसके पैर की एक ज़ोरदार ठोकर मेरी बाईं किडनी पर पड़ी और...पथरी निकल गई! ख़ुद-ब-ख़ुद! मुझे इतनी राहत महसूस हुई कि पूछो मत!" अस्सेफ़ हँसा। "और मैं ज़ोर से चिल्ला पड़ा, 'अल्लाह-हू-अकबर'। यह सुनकर उसने मुझे और भी ज़्यादा जोर से ठोकर लगाई, मगर इस बार चीखने की बजाए मैं हँसने लगा। हँसता ही रहा। यह देखकर वह गुस्से से पागल हो गया और अपनी पूरी ताक़त लगाकर मारने लगा। मगर जैसे-जैसे उसकी ठोकरें ताक़तवर होती गईं, वैसे-वैसे मेरी हँसी भी तेज़ होती गई। मैं

पागलों की तरह ज़ोर-ज़ोर से और लगातार हँसे जा रहा था। आख़िरकार हारकर उसने मुझे वापस काल-कोठरी में डलवा दिया, मगर मैं उस वक़्त भी हँसे जा रहा था। मैं हँसता रहा, हँसता रहा, क्योंकि अचानक ही मुझे यह समझ आ गया था कि यह जो कुछ भी हुआ था, यह अल्लाह का मेरे नाम पैगाम था। वह मुझे बताना चाह रहा था कि वह मेरी तरफ़ था, कि वह एक ख़ास मकसद के लिए मुझे ज़िन्दा रखना चाहता था।

"तुम्हें पता है, कुछ बरसों बाद जंग के मैदान में मेरा उसी कमाण्डेंट से आमना-सामना हुआ। अल्लाह के खेल भी निराले हैं! मैंने उसे मेयमानाह के बाहर एक खाई में पड़े पाया। उसकी छाती में बम के छर्रे घुस गए थे और बहुत ख़ून बह रहा था। उस वक़्त भी वह वे ही स्टील वाले जूते पहने था। मैंने उससे पूछा, 'पहचाना मुझे?' उसने कहा, नहीं। तो मैंने उससे भी वही बात कही जो अभी-अभी तुमसे कही थी कि मैं एक बार जो चेहरा देख लूँ उसे कभी नहीं भूलता। फिर मैंने उसको उसकी दोनों टाँगों के बीच गोली मार दी। और तब से मैं एक मिशन पर हूँ।"

"यह किस तरह का मिशन है?" मैंने ख़ुद को कहते हुए सुना। "गैर-मर्दों या औरतों से ताल्लुक रखने वालों को पत्थर मार-मारकर मौत के घाट उतारना? बच्चों का बलात्कार करना? ऊँची एड़ी के जूते पहनने पर औरतों को कोड़े लगाना? हज़ाराओं का क़त्ल-ए-आम करना? और वो भी इस्लाम के नाम पर?" पता नहीं कब और कैसे यह सब मेरे मुँह से निकल गया। मुझे अपनी ज़बान को काबू करने का मौका ही नहीं मिला। मैं सोचने लगा कि काश मैं इन शब्दों को वापस ले पाता, निगल पाता। मगर मुँह से निकले हुए शब्द कहीं वापस लिए जा सकते हैं। तीर कमान से निकल चुका था। मैंने हद पार कर दी थी। अभी तक जो थोड़ी-बहुत उम्मीद बाक़ी थी यहाँ से ज़िंदा बाहर निकल पाने की, वह भी इन शब्दों के साथ ख़त्म हो गई।

अस्सेफ़ के चेहरे पर हैरानी का भाव उभरा, ज़रा देर के लिए, और फिर गायब हो गया। "अब लगता है कि कुछ मज़ा आएगा," उसने हँसते हुए कहा। "मगर कुछ बातें ऐसी हैं जो तुम गद्दारों को कभी समझ नहीं आएँगी।"

"जैसे कि?"

अस्सेफ़ की त्यौरी पर बल पड़ गए। "जैसे कि अपने लोगों, अपनी परंपराओं, अपनी ज़बान पर नाज़ होना। अफ़ग़ानिस्तान उस ख़ूबसूरत हवेली की तरह है जो कचरे से अटी पड़ी है, और किसी को तो उस कचरे को बाहर निकालना ही होगा।"

"मज़ार में घर-घर, दरवाज़े-दरवाज़े जाकर तुम यही कर रहे थे? कचरा बाहर निकाल रहे थे?"

"एकदम सही कहा।"

"पश्चिम में वे इसे कुछ और कहते हैं," मैंने कहा। "उनकी ज़बान में इसे 'एथनिक क्लींज़िंग' (नस्ल का खात्मा) कहा जाता है।"

“ऐसा क्या?” अस्सेफ़ का चेहरा चमक उठा। “एथनिक क्लींज़िंग। अच्छा लगा मुझे। इसका तलफ्फुज़ (उच्चारण)…अच्छा लगा मुझे।”

“मुझे बस यह लड़का चाहिए।”

“एथनिक क्लींज़िंग।” अस्सेफ़ इन शब्दों को ऐसे बुदबुदा रहा था जैसे मुँह ही मुँह में उनका स्वाद ले रहा हो।

“मुझे यह लड़का चाहिए,” मैंने फिर कहा। सोहराब की आँखें मेरी तरफ़ उठीं। ये साल-दर-साल हलाल की जाने वालीं भेड़ों की आँखें थीं। यहाँ तक कि इनमें वैसा ही काजल भी लगा हुआ था। मुझे याद आया कि कैसे ईद-उल-अजहा के दिन हमारे घर के बाड़े में मुल्ला जिबह करने से पहले भेड़ की आँखों में काजल लगाता था और उसे चीनी की एक डली खिलाता था। मुझे सोहराब की आँखों में वैसी ही फ़रियाद दिखाई दी।

“पहले मुझे बताओ कि क्यों?” अस्सेफ़ ने कहा। उसने सोहराब के कान को अपने दांतों के बीच दबाया। छोड़ दिया। उसके माथे पर पसीने की बूँदे चमक उठी थीं।

“यह मेरा ज़ाती मसला है।”

“क्या करना चाहते हो इसका?” उसने कहा। एक अश्लील मुस्कान। “या, इसके साथ।”

“मैं ऐसा घिनौना काम करने का सोच भी नहीं सकता,” मैंने कहा।

“तुम्हें कैसे पता कि यह काम घिनौना है? तुमने पहले कभी किया है क्या?”

“मैं इसे किसी बेहतर जगह ले जाना चाहता हूँ।”

“मुझे बताओ न कि क्यों।”

“यह मेरा ज़ाती मसला है,” मैंने कहा। मुझे नहीं पता था कि मुझमें उससे इतने रूखे ढंग से बात करने की हिम्मत कहाँ से आ गई थी। शायद यह सोचकर कि मरना तो हर हाल में था ही।

“मैं हैरान हूँ,” अस्सेफ़ ने कहा। “मैं हैरान हूँ कि तुम इतनी दूर क्यों आए हो, आमिर, इतनी दूर, वो भी एक हज़ारा के लिए? क्यों हो तुम यहाँ? किसलिए?”

“मेरी अपनी वजह है,” मैंने कहा।

“ठीक है,” अस्सेफ़ ने चिढ़ते हुए कहा। उसने सोहराब को पीछे से धक्का दे दिया, उसे सामने रखी टेबल पर धकेल दिया। सोहराब के कूल्हे टेबल से टकराए। टेबल उलट गई और अंगूर नीचे गिर गए। सोहराब भी मुँह के बल उन पर गिर पड़ा। उसकी शर्ट अंगूर के रस से बैंगनी हो गई। टेबल के X आकार के पाए, जो बीच में पीतल की गेंदों से बने छल्ले से आपस में कसे हुए थे, अब छत की ओर मुँह करके पड़े थे।

“तो फिर ले जाओ इसे,” अस्सेफ़ ने कहा।

मैंने सहारे से सोहराब को खड़े होने में मदद की और उसकी पैंट पर चिपक गए अंगूर के गूदे को हटाया।

“जाओ, ले जाओ इसे,” अस्सेफ़ ने दरवाज़े की तरफ़ इशारा करते हुए कहा।

मैंने सोहराब का हाथ थाम लिया। उसका हाथ आकार में छोटा और छूने में रूखा और खुरदरा था। मैंने मन ही मन उस पोलेरॉइड तस्वीर में सोहराब को फिर से देखा, किस तरह से उसका हाथ हसन के पैर के इर्द-गिर्द लिपटा हुआ था और कैसे उसने अपना सिर अपने बाबा के कूल्हे पर टिका रखा था। और दोनों मुस्करा रहे थे। जब हम दरवाज़े की ओर बढ़ने लगे तो सोहराब के पैरों में बंधे घुंघरू बज उठे।

मगर हम दरवाज़े तक ही जा पाए।

“बेशक,” अस्सेफ़ ने पीछे से कहा, “मैंने यह नहीं कहा कि तुम उसे मुफ्त में ले जा सकते हो।”

मैं मुड़ा। “क्या चाहिए तुम्हें?”

“तुम्हें उसे हासिल करना होगा।”

“क्या चाहते हो?”

“हमारे बीच कुछ हिसाब-किताब बाक़ी है, तुम्हारे और मेरे बीच,” अस्सेफ़ ने कहा। “याद है कि भूल गए?”

उसको चिंता करने की ज़रूरत नहीं थी। दाऊद खान के सुलतान का तख्ता-पलट करने के ठीक बाद का वह दिन मैं कभी नहीं भूल सकता। उस दिन के बाद से मैं जब भी दाऊद खान का नाम सुनता, तो मेरी आँखों के सामने यही मंज़र घूमने लगता कि हसन ने अपनी गुलेल अस्सेफ़ के चेहरे पर तान रखी थी और उससे कह रहा था कि अगर वह अभी के अभी चला नहीं गया तो उसके दोस्तों को उसे ‘अस्सेफ़ गोशखोर’ के बजाए ‘अस्सेफ़ काना’ कहना शुरू करना पड़ेगा। मुझे याद है कि उस दिन हसन की बहादुरी से मुझे कितना रश्क हुआ था। अस्सेफ़ पीछे हट गया था, मगर जाते-जाते कह गया था कि वह हम दोनों को देख लेगा। हसन के मामले में वह अपनी बात पर खरा उतर चुका था। अब मेरी बारी थी।

“ठीक है,” मैंने कहा। इसके अलावा मुझे समझ नहीं आया कि क्या कहूँ। मैं उसके आगे गिड़गिड़ाने वाला नहीं था; इससे तो उसका मज़ा और भी बढ़ जाता।

अस्सेफ़ ने गार्ड्स को वापस कमरे में बुलाया। “मेरी बात कान खोलकर सुन लो,” उसने उन दोनों से कहा। “अभी मैं यह दरवाज़ा बंद करने जा रहा हूँ। इन साहब को और मुझे हमारे बीच बहुत अरसे से बाक़ी एक हिसाब चुकता करना है। तुम लोग किसी भी कीमत पर अन्दर नहीं आओगे, सुना तुमने? तुम्हें चाहे जैसी भी आवाज़ें

सुनाई दें, तुम्हें अन्दर नहीं आना है! समझ गए?”

गार्ड्स ने सहमति में सर हिलाया, अस्सेफ़ से नज़र हटाकर मेरी ओर देखा, फिर बोले, “जी, आगा साहब।”

“जब हिसाब-किताब चुकता हो जाएगा, तब हम में से केवल एक ही इस कमरे से ज़िन्दा बाहर क़दम रखेगा,” अस्सेफ़ ने उनसे कहा। “अगर वह शख़्स ये साहब हों तो समझना कि इन्होंने अपनी आज़ादी हासिल कर ली है और इन्हें जाने देना। समझ गए?”

उम्र में बड़े गार्ड ने थोड़ा हकबकाते हुए कहना चाहा, “मगर आगा साहिब—”

“अगर वो शख़्स ये हुए, तो तुम इन्हें जाने दोगे!” अस्सेफ़ ज़ोर से चिल्लाया. दोनों गार्ड सहम गए, मगर फिर हाँ में सिर हिला दिया। जैसे ही वे जाने को हुए, उनमें से एक ने सोहराब की तरफ़ हाथ बढ़ाया।

“उसे रहने दो,” अस्सेफ़ ने कहा। वह मुस्कराया। “उसे देखने दो। लड़कों के लिए इस तरह के सबक अच्छे होते हैं।”

गार्ड्स चले गए। अस्सेफ़ ने अपनी जपने वाली माला नीचे रख दी। काली जैकेट की सीने के पास वाली भीतर की जेब में हाथ डाला। उस जेब से उसने जो कुछ निकाला, उससे मुझे ज़रा भी ताज्जुब नहीं हुआ। स्टेनलेस स्टील + पीतल के बने नक्कल्स।

उसके बालों में जेल लगा है और उसके मोटे होंठों के ऊपर क्लार्क गेबल टाइप मूँछे हैं। हरे रंग के काग़ज़ वाली सर्जिकल कैप (ऑपरेशन करते वक़्त डॉक्टर्स द्वारा पहनी जाने वाली टोपी) ने जेल को सोख लिया है और उसमें अफ़्रीक़ा के आकार का एक गहरा दाग बन गया है। मुझे उसके बारे में यह बात याद है। यह, और उसकी स्याह गर्दन में पड़ी अल्लाह के नाम वाली सोने की चेन। मेरी तरफ़ देखते हुए वह जल्दी-जल्दी कुछ बोल रहा है, किसी ऐसी भाषा में जो मैं नहीं समझता हूँ, शायद उर्दू। मेरी नज़रें बारम्बार ऊपर-नीचे, ऊपर-नीचे हो रहे उसके टेंटुए पर जा रही हैं, और मैं उससे पूछना चाहता हूँ कि वह कितने बरस का है –देखने में वह बहुत छोटा लग रहा है, किसी विदेशी टीवी सीरियल के एक्टर जैसा– मगर मैं बस इतना ही कह पा रहा हूँ कि ‘मुझे लगता है मैंने उसे अच्छी टक्कर दी। मुझे लगता है मैंने उसे अच्छी टक्कर दी।’

मुझे नहीं पता कि मैंने अस्सेफ़ को अच्छी टक्कर दी या नहीं। मुझे नहीं लगता कि दी। कैसे दे सकता था भला? वह पहली बार था जब मैंने किसी से लड़ाई की थी। अब तक की ज़िन्दगी में, मैंने कभी किसी को एक मुक्का भी नहीं मारा था।

अस्सेफ़ के साथ हुई लड़ाई की कुछ-कुछ बातें मुझे बख़ूबी याद है: मुझे याद है कि अस्सेफ़ ने अपने स्टील और पीतल के नक्कल्स पहनने से पहले स्टीरियो पर म्यूज़िक

बजा दिया था। दीवार पर टंगा हुआ आयताकार मक्का वाला जाइ-नमाज़ लड़ाई के दौरान किसी वक़्त दीवार से फिसलकर मेरे सिर पर आ गिरा था और उसमें भरी हुई धूल की वजह से मुझे छींकें आने लगी थीं। मुझे याद है कि अस्सेफ़ ने मेरे चेहरे पर अंगूर मसल दिए थे, और जब वह किसी खूँख़ार जंगली जानवर की तरह गुर्राया था तो उसके मुँह में शिकार को चीरने-फाड़ने को आतुर दाँत लार से चमक रहे थे, और उसकी आँखों में ख़ून उतरा हुआ था। पता नहीं कब उसकी पगड़ी गिर गई थी और उसके कंधे तक लंबे सुनहरे बाल खुल गए थे।

और फिर, खेल ख़त्म। यह सब मुझे आज भी अच्छी तरह याद है। और हमेशा रहेगा।

जो ख़ास-ख़ास बातें मुझे याद हैं, वे आप भी जान लीजिए: उसके स्टील+पीतल के नक्कल्स का दोपहर की रोशनी में चमकना; पहले कुछेक वारों में जब वे मेरे बदन से टकराए तो कितने ठंडे मालूम हुए, मगर कितनी जल्दी मेरे ख़ून से वे कितने गर्म हो गए। दीवार पर फेंका जाना; दीवार में एक कील थी जहाँ कभी कोई तस्वीर टंगी होगी, उसका मेरी पीठ में घुस जाना। सोहराब का चीखना। तबला, हारमोनियम, दिल-रूबा का बजना। दीवार पर पटक दिया जाना। नक्कल्स के वार से मेरा जबड़ा टूट जाना। मेरे अपने ही दाँतों के गले में अटक जाने से दम घुटने लगना, उन्हें निगलना, और उन अनगिनत घंटों के बारे में सोचना जो मैंने अपने दाँतों को फ्लॉस और ब्रश करते हुए बिताए थे। फिर से दीवार पर फेंका जाना। फ़र्श पर पड़ा होना, ऊपरी होंठ का फट जाना और उससे बह रहे ख़ून का कालीन पर फैलना, पेट में दर्द की लहर उठना, और मेरा यह सोचना कि मैं कब फिर से साँस ले पाऊँगा। चटाक की आवाज़ के साथ मेरी पसलियों का टूटना–ठीक वैसी ही आवाज़ जैसी तब होती थी जब हसन और मैं पुरानी फ़िल्में देख-देखकर सिंदबाद की तरह तलवारबाज़ी करने के लिए पेड़ की शाखाओं को तोड़ते थे। फिर से सोहराब का चीखना। मेरे चेहरे के बग़ल वाले हिस्से का टेलीविज़न स्टैंड के कोने से टकराना। फिर से चटाक की आवाज़ होना, इस बार बाईं आँख के ठीक नीचे। म्यूज़िक। सोहराब की चीख। अस्सेफ़ की उँगलियों का मेरे बालों को पकड़ना, मेरे सर को पीछे खींचना, और फिर एक बार पीतल के नक्कल्स का रोशनी में चमकना। उनका फिर से मेरे चेहरे की तरफ़ आना। फिर से चटाक की आवाज़। इस बार मेरी नाक। दर्द से जबड़े भिंच जाना, और यह पता चलना कि मेरे दाँतों की बनावट अब वैसी नहीं रही जैसी पहले थी। ताबड़तोड़ लातों का पड़ना। सोहराब का चीखना।

मुझे नहीं पता कि कब मैं हँसने लगा, मगर मैं हँसने लगा। हँसने से दर्द होता था; मेरे जबड़े, मेरी पसलियाँ, मेरा गला दुखता था। मगर मैं हँसे जा रहा था, बेतहाशा, बिना रुके। और मैं जितनी ज़ोर से हँसता, वह उतनी ही ज़ोर से मुझे मारता, पटकता, भंभोड़ता।

"किस बात की इतनी हँसी आ रही है तुझे?" हर वार के साथ अस्सेफ़ दहाड़ता

रहा। उसकी हालत उस जंगली जानवर की तरह हो रखी थी जो अपने शिकार को फाड़ डालने के क़रीब था, मगर उसे उसकी आँखों में वह खौफ नज़र नहीं आ रहा था जो वह देखना चाहता था। गुस्से और पागलपन की ज़्यादती की वजह से उसके मुँह से थूक और लार बहकर बाहर आने लगी थी, जो मेरी आँख में आ गिरी। सोहराब फिर चीखा।

"इतनी हँसी किस बात की आ रही है तुझे?" अस्सेफ़ चिल्लाया। एक और पसली चटकी, इस बार बाईं तरफ़ की सबसे नीचे वाली। मुझे इतनी हँसी इसलिए आ रही थी क्योंकि 1975 की सर्दियों के बाद पहली बार मुझे अपने भीतर राहत महसूस हो रही थी। मुझे इतनी हँसी इसलिए आ रही थी क्योंकि मैं देख पा रहा था कि अपने मन के किसी कोने में, मैं भी इस चीज़ के होने का इंतज़ार कर रहा था। मुझे वह दिन याद आया जब मैंने पहाड़ी पर हसन पर दनादन अनार फेंके थे और उसे उकसाने की कोशिश की थी। मगर वह चुपचाप खड़ा रहा था, कुछ नहीं किया था। उसकी पूरी शर्ट अनार के रस से लाल हो गई थी, जैसे उसका पूरा बदन ख़ून में नहा उठा हो। फिर उसने मेरे हाथ से अनार लिया और उसे अपने ही माथे पर फोड़ दिया। 'अब आप ख़ुश हैं?' वह फुंकारा था। 'अब अच्छा महसूस हो रहा है?' मगर मैं न तो ख़ुश था और न अच्छा महसूस कर रहा था। तब से लेकर अब तक मैं इसी कोशिश में रहा था कि कैसे हो तो मैं ख़ुश होऊँ, कैसे हो तो अच्छा महसूस करूँ। आज जाकर वो हुआ था। मेरा बदन ज़ख़्मी हो गया था–कितनी बुरी तरह से, इसका पता तो बाद में ही चलने वाला था–मगर मेरी रूह के ज़ख्म भर गए थे। आख़िर-कार, मैं अच्छा महसूस कर रहा था। आख़िर-कार, मैं ख़ुश था। इसीलिए मैं हँस रहा था।

फिर आया इस ड्रामे का आख़िरी सीन, जिसकी याद मैं क़ब्र में साथ लेकर जाऊँगा। मैं ज़मीन पर पड़ा था। हँसे जा रहा था। अस्सेफ़ मेरी छाती पर सवार था। उसके चेहरे पर वे सारे लक्षण मौजूद थे जो उन्माद के शिकार मनोरोगी के चेहरे पर होते हैं। उसके लम्बे-लम्बे बाल उसे और भी ज़्यादा वीभत्स बना रहे थे। एक हाथ से उसने मेरी गर्दन जकड़ रखी थी जबकि दूसरा हाथ, जिसमें उसने नक्कल्स पहन रखे थे, कंधे से ऊपर उठा हुआ था। उसने उस हाथ की मुट्ठी भींची और एक और वार के लिए उसे और ऊपर ताना।

तभी: "बस।" एक पतली आवाज़।

हम दोनों ने उस आवाज़ की दिशा में देखा।

"लोफ्तान, अब और नहीं।" प्लीज़।

मुझे अचानक एक बात याद हो आई, जो यतीमखाने के उस डायरेक्टर ने फ़रीद और मेरे लिए दरवाज़ा खोलते समय कही थी। क्या नाम था उस डायरेक्टर का? ज़मान? उसने कहा था कि वह उस चीज़ को कभी भी ख़ुद से अलग नहीं करता। वह जहाँ भी जाता है, उसे अपनी कमर में अपनी पैंट से बाँधे रखता है।

"और नहीं।"

आँसुओं की दो धाराएँ काले काजल के साथ मिलकर उसके गालों पर लुढ़क आईं थीं और गालों पर लगे रूज़ को भी फैला दिया था। उसका निचला होंठ हिला। नाक से पानी बह निकला। "बस," उसने भर्राई हुई आवाज़ में कहा। उसके बाएँ हाथ में गुलेल थी, जिसकी रबड़ को उसने दाएँ हाथ से पूरी तरह पीछे खींचकर पकड़ा था–वार करने की आदर्श स्थिति में। रबड़ के आख़िरी सिरे पर बंधे चमड़े के कप में (जिसमें वह चीज़ रखी जाती है जिससे वार करना होता है) कुछ था, कुछ चमकीला सा, पीला-पीला सा। मैंने अपनी ख़ून से लथपथ आँखों को मिचमिचाया और देखा कि यह उन अखरोट के आकार वाली पीतल की गेंदों में से एक गेंद थी जो टेबल की X आकार की टाँगों को आपस में जोड़े रखने के लिए इस्तेमाल हुए छल्ले का हिस्सा थीं। सोहराब ने उससे अस्सेफ़ के चेहरे का निशाना लिया हुआ था।

"और नहीं, आगा। लोफ्तान," उसने कहा। उसकी आवाज़ भर्राई हुई थी और काँप रही थी। "उन्हें मारना बंद कीजिए।"

अस्सेफ़ का मुँह खुला, मगर कोई आवाज़ नहीं निकली। उसने कुछ कहना चाहा, मगर रुक गया। "तुझे पता भी है तू क्या कर रहा है?" आख़िर-कार उसने कहा।

"मेहरबानी करके बंद कीजिए," सोहराब ने कहा। उसकी हरी आँखों में फिर से काजल मिले आँसू डबडबा आए।

"इसे नीचे रख दे, हज़ारा," अस्सेफ़ फुँकारा। "इसे नीचे रख दे, नहीं तो मैं तेरे साथ जो करूँगा वो उसके मुकाबले में सिर्फ़ ज़रा सा कान मरोड़ने जैसा होगा जो मैंने अभी इसके साथ किया है।"

आँसू गालों पर बहने लगे। सोहराब ने इंकार में सिर हिलाया। "लोफ्तान, आगा," उसने कहा। "रुक जाइए।"

"नीचे रख।"

"उन्हें और मत मारिए।"

"नीचे रख।"

"लोफ्तान।"

"नीचे रख!"

"नीचे रख!" अस्सेफ़ ने मेरी गर्दन छोड़ दी। सोहराब पर झपटा।

और, सांय की आवाज़ के साथ गुलेल चल गई। इसके बाद अस्सेफ़ के चीख़ने की आवाज़ आई। उसने अपना हाथ वहाँ रखा हुआ था जहाँ अभी कुछ पल पहले तक उसकी बाईं आँख थी। उसकी उंगलियों के बीच से ख़ून बहकर बाहर आ रहा था। ख़ून

और साथ में कुछ और भी। कुछ सफ़ेद से रंग का और जेल जैसा। इसे 'विट्रीयस फ्लुइड' कहा जाता है, मैंने साफ़-साफ़ सोचा। मैंने कहीं पढ़ा था। विट्रीयस फ्लुइड। आँख में भरा रहने वाला तरल।

अस्सेफ़ कालीन पर इधर-उधर लोट रहा था, दर्द से बिलबिलाते हुए चीखें मार रहा था। उसका हाथ अभी भी ख़ून से सनी आँख पर था।

"चलिए चलते हैं!" सोहराब ने कहा। उसने मेरा हाथ पकड़ा। मुझे खड़े होने में मदद की। मेरे टूटे-फूटे शरीर का हर इंच दर्द से कराह रहा था। हमारे पीछे, अस्सेफ़ का चीखना-चिल्लाना जारी था।

"बाहर! बाहर निकालो इसे!" वह चिल्लाया।

डगमगाते हुए मैंने दरवाज़ा खोला। जब गार्ड्स ने मुझे देखा तो उनकी आँखें हैरत से चौड़ी हो गईं और मैं सोचने लगा कि पता नहीं मेरा ऐसा कैसा हाल बना दिया है कमबख़्त ने। हर बार साँस के अन्दर आने और बाहर जाने पर मेरा पेट दर्द से बिलबिला उठता था। एक गार्ड ने दूसरे से पश्तो में कुछ कहा और फिर वे अन्दर की तरफ़ भागे जहाँ अस्सेफ़ अभी भी चिल्ला रहा था। "बाहर!"

"बिया," सोहराब ने मेरा हाथ खींचते हुए कहा। "चलिए चलें!"

मैंने सोहराब का छोटा-सा हाथ थामकर गिरते-पड़ते गलियारा पार किया। फिर एक आख़िरी बार सिर घुमाकर पीछे देखा। गार्ड अस्सेफ़ के ऊपर झुके हुए थे और उसके चेहरे पर कुछ कर रहे थे। तब मैं समझा: पीतल की गेंद अब भी उसकी आँख के खाली कोटर में धँसी हुई थी।

मेरी आँखों के सामने पूरी दुनिया ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ डोल रही थी। मैं बड़ी मुश्किलों से सोहराब का सहारा लेते हुए सीढ़ियों से नीचे उतरा। अस्सेफ़ की चीखें, एक घायल जानवर की चीखें, नीचे तक सुनाई दे रही थीं।

हम बाहर निकले, दिन के उजाले में। मैंने अपना हाथ सोहराब के कंधे पर रखा हुआ था। तभी मैंने देखा कि फ़रीद दौड़कर हमारी ओर ही आ रहा था।

"बिस्मिल्लाह*!* बिस्मिल्लाह*!*" उसने कहा। मुझे देखकर उसकी आँखें फटी की फटी रह गईं।

उसने मेरा हाथ अपने कंधे पर रखा और मुझे उठा लिया। और गाड़ी की तरफ़ दौड़ लगा दी। मैं देख रहा था कि किस तरह भागते वक़्त उसके सैंडल फुटपाथ से टकराने पर ठक-ठक की और काली-खुरदरी एड़ियों के साथ टकराने पर फट-फट की आवाज़ कर रहे थे। मुझे लगा कि मैं दर्द से चीख़ रहा था। साँस लेने पर भी दर्द की लहर दौड़ जाती थी पूरे बदन में। इसके बाद मुझे लैंड क्रूज़र की छत दिखाई दी, पीछे की सीट दिखी, जगह-जगह से फटे हुए बेज रंग के सीट कवर दिखे, दरवाज़ा खुले होने के सिग्नल के तौर पर बजने वाली डिंग-डिंग-डिंग की आवाज़ सुनाई दी। गाड़ी के इर्द-

गिर्द दौड़ते-भागते क़दमों की आहटें सुनाई दीं। फ़रीद और सोहराब को जल्दी-जल्दी कुछ बातें करते सुना। फिर गाड़ी के दरवाज़े के ज़ोर से बंद होने और इंजन चालू होने की आवाज़ सुनी। एक झटके से गाड़ी आगे बढ़ी और मुझे अपने माथे पर किसी का नन्हा हाथ महसूस हुआ। सड़क पर ट्रैफिक की और लोगों के ज़ोर-ज़ोर से बोलने की आवाज़ें सुनाई दीं। खिड़की में से पीछे को भागते पेड़ों के धुंधले अक्स नज़र आए। सोहराब सुबक रहा था। फ़रीद अभी भी “बिस्मिल्लाह! बिस्मिल्लाह!” किए जा रहा था।

इसके बाद क्या हुआ, मुझे नहीं पता।

तेईस

धीरे-धीरे धुंधलका कम होता है, कुछ चेहरे दिखाई पड़ते हैं, कुछ पल रुकते हैं, फिर धुँधलके में खो जाते हैं। वे मेरी ओर झुकते हैं, मुझसे कुछ सवाल पूछते हैं। सभी चेहरे पूछते हैं। क्या मुझे पता है कि मैं कौन हूँ? क्या मुझे कहीं दर्द हो रहा है? बेशक मुझे पता है कि मैं कौन हूँ और मुझे हर जगह दर्द महसूस हो रहा है। मैं उन लोगों को यह जवाब देना चाहता हूँ, मगर बोलने से दर्द होता है।

मुझे यह इसलिए पता है क्योंकि कुछ वक़्त पहले, शायद एक बरस पहले, शायद दो, शायद दस बरस पहले, मैंने एक बच्चे से बात करने की कोशिश की थी जिसके गालों पर रूज़ लगा हुआ था और आँखें काजल से काली थीं। बच्चा। हाँ, मैं उसे अब देख पा रहा हूँ। हम किसी कार में हैं, बच्चा और मैं, और मुझे नहीं लगता कि गाड़ी सोराया चला रही है, क्योंकि सोराया कभी इतनी तेज़ गाड़ी नहीं चलाती। मैं इस बच्चे से कुछ कहना चाहता हूँ, ऐसा करना मेरे लिए बहुत ज़रूरी मालूम होता है। मगर मुझे याद नहीं आ रहा है कि मैं क्या कहना चाहता हूँ या क्यों यह इतना ज़रूरी है। शायद मैं उससे कहना चाहता हूँ कि वो न रोए, क्योंकि अब सब ठीक हो जाएगा। शायद नहीं।

मुझे समझ नहीं आ रहा कि किस वजह से, मगर मैं उस बच्चे का शुक्रिया अदा करना चाहता हूँ।

चेहरे। वे सभी हरे रंग की टोपी पहने हुए हैं। वे कभी दिखाई पड़ते हैं और कभी नज़रों से ओझल हो जाते हैं। वे जल्दी-जल्दी बात करते हैं, ऐसे शब्द इस्तेमाल करते हैं जिनका मतलब मुझे नहीं पता। मुझे और दूसरी आवाज़ें भी सुनाई देती हैं–बीप की, अलार्म की। लगातार नए-नए चेहरे सामने आते हैं। नीचे झुकते हैं, कुछ पूछते हैं। मुझे उनमें से किसी का भी चेहरा याद नहीं है, सिवाय उसके जिसके बालों में जेल लगा हुआ होता है और जिसने क्लार्क गेबल टाइप मूँछें रखी हुई हैं और जिसकी टोपी पर अफ़्रीक़ा के आकार का जेल का दाग है। किसी विदेशी टीवी सीरियल का स्टार एक्टर। यह मज़ेदार है। मैं हँसना चाहता हूँ। मगर हँसने से भी दुखता है।

मैं बेहोश हो जाता हूँ।

वह कहती हैं कि उनका नाम आयशा है, “पैगंबर की खानुम का नाम।” अपने सफ़ेद हो चले बालों को उन्होंने बीच से माँग निकालकर काढ़ा हुआ है और पीछे पोनीटेल की शक्ल में बाँधा हुआ है। नाक में उन्होंने सूरज जैसा दिखने वाला कोई नग पहना हुआ है। वह आँखों पर बाइफोकल चश्मा पहनती हैं, जिससे उनकी आँखें बाहर को उभरी दिखाई पड़ती हैं। वह भी हरी टोपी पहनती हैं और उनके हाथ मुलायम हैं। जब वह मुझे अपनी ओर देखता पाती हैं तो मुस्करा देती हैं। अंग्रेज़ी में कुछ कहती हैं।

मेरी छाती के बग़ल में कुछ चुभ रहा है।

मैं बेहोश हो जाता हूँ।

मेरे सिरहाने कोई खड़ा है। मैं उसे जानता हूँ। वह गहरी रंगत वाला और दुबला-पतला है, उसकी दाढ़ी भी लंबी है। वह एक टोपी पहनता है–क्या कहते हैं इन टोपियों को? पकोल? वह इसे थोड़ी तिरछी करके पहनता है...किसी मशहूर आदमी की तरह...उसका नाम मुझे याद नहीं आ रहा। मैं इस आदमी को जानता हूँ। मेरे मुँह के साथ कुछ गड़बड़ है। मुझे हवा के बुलबुलों जैसी बुदबुदाहट सुनाई दे रही है।

मैं बेहोश हो जाता हूँ।

मेरी दाहिनी बाज़ू में जलन हो रही है। बाइफ़ोकल चश्मा और सूरज जैसे नग वाली मोहतरमा मेरी बाँह पर झुकी हुई हैं और उसमें एक पारदर्शी प्लास्टिक ट्यूब लगा रही हैं। उन्होंने बताया कि यह 'पोटेशियम' है। "यह मधुमक्खी के डंक जैसा चुभता है, नहीं?" वह कहती हैं। वाक़ई, वैसा ही चुभता है। इनका नाम क्या है? किसी पैगम्बर से जुड़ा है। इन्हें भी मैं कुछेक बरसों से जानता हूँ। पहले यह अपने बालों को पोनीटेल में बाँधती थीं, मगर अब इन्होंने उनका जूड़ा बनाया हुआ है। सोराया ने उस दिन ऐसा ही जूड़ा बनाया हुआ था जिस दिन पहली बार हमारी बात हुई थी। कब की बात थी यह? पिछले हफ्ते की? आयशा! हाँ।

मेरे मुँह के साथ कुछ गड़बड़ है। और यह पता नहीं क्या है जो मेरी छाती में चुभ रहा है!

मैं बेहोश हो जाता हूँ।

हम बलूचिस्तान के सुलेमान पहाड़ों में हैं और बाबा काले भालू से कुश्ती लड़ रहे हैं। यह मेरे बचपन के बाबा हैं, तूफ़ान आगा, पश्तून ताक़त का बेमिसाल नमूना, न कि कंबल के नीचे दबा सूखकर काँटा हो चुका आदमी। वे हरी घास पर गुत्थमगुत्था हैं, बाबा और भालू, और बाबा के घुंघराले भूरे बाल हवा में उड़ रहे हैं। भालू दहाड़ता है, या शायद यह बाबा की दहाड़ है। थूक और ख़ून उड़ता है; पंजों और हाथों से एक-दूसरे पर वार होते हैं। धड़ाम की आवाज़ के साथ वे ज़ोर से ज़मीन पर गिरते हैं और मैं देखता हूँ कि बाबा भालू की छाती पर बैठे हैं और उनकी उंगलियाँ उसकी थूथन में घुसी हुई हैं। वह गर्दन उठाकर मेरी ओर देखते हैं, और मैं क्या देखता हूँ! वह बाबा नहीं, मैं हूँ। मैं लड़ रहा हूँ भालू से।

मैं जाग जाता हूँ। वह साँवला और दुबला-पतला आदमी फिर मेरे सिरहाने खड़ा है। उसका नाम फ़रीद है, अब मुझे याद आया। और उसके साथ वो कार वाला बच्चा भी है। उसका चेहरा मुझे घुंघरुओं की आवाज़ की याद दिलाता है। मुझे प्यास लगी है।

मैं बेहोश हो जाता हूँ।

मेरा होश में आना और फिर बेहोश हो जाना चलता रहता है।

क्लार्क गेबल टाइप मूँछों वाले आदमी का नाम डॉ. फारुकी निकला। वह किसी टीवी सीरियल का एक्टर नहीं था, बल्कि सिर-और-गर्दन का सर्जन (शल्य-चिकित्सक) था, मगर पता नहीं क्यों मुझे उसमें किसी उष्णकटिबंधीय द्वीप पर आधारित एक टीवी ड्रामा के आर्मंड नाम के किरदार की ही छवि दिखाई देती रही।

'मैं कहाँ हूँ?' मैं पूछना चाहता था। मगर मेरा मुँह नहीं खुला। मेरी त्योरियों पर बल पड़ गए। गले से घरघराहट जैसी आवाज़ निकली।

आर्मंड मुस्कराया; उसके दाँत मोतियों की तरह सफ़ेद और चमकदार थे।

"अभी नहीं, आमिर," उसने कहा, "मगर जल्द ही। जब तार बाहर आ जाएँगे तब।" कहा तो उसने अंग्रेज़ी में था, मगर उसका लहज़ा उर्दू का था।

तार? आर्मंड ने अपनी बाँहें मोड़कर छाती पर रखीं; उसके हाथ बालों से भरे थे और उसकी उंगली में शादी की अंगूठी थी। "आपको ज़रूर हैरानी हो रही होगी कि आप कहाँ हैं, आपको क्या हुआ है। यह एकदम नॉर्मल बात है, सर्जरी के बाद ज़्यादातर लोगों के साथ ऐसा ही होता है, वे एकदम से थोड़े हैरान-परेशान हो जाते हैं। चलिए, जितना मुझे पता है उतना मैं बता देता हूँ।"

मैं उससे तारों के बारे में पूछना चाहता था। सर्जरी के बाद? आयशा कहाँ थीं? मैं चाहता था कि वह मुझे देखकर मुस्कराएँ, मैं चाहता था कि उनके कोमल हाथ मेरे हाथों में हों।

आर्मंड ने भौंहें सिकोड़ीं, एक भौंह को थोड़ा ऊपर उठाया। "आप पेशावर के एक अस्पताल में हैं। दो दिन हो गए हैं आपको यहाँ आए। आपको शायद पता न हो, मगर आपको बड़ी जानलेवा चोटें लगी हैं, आमिर। मैं तो कहूँगा, मेरे दोस्त, कि आप बहुत किस्मतवाले हैं जो बच गए।" उसने यह बात अपनी तर्जनी उंगली को पेंडुलम की तरह आगे-पीछे हिलाते हुए कही। "आपकी तिल्ली (स्प्लीन) फट गई थी, मगर शायद काफी बाद में फटी थी, जो कि आपके लिहाज़ से बहुत अच्छा हुआ था, क्योंकि आपकी एबडॉमिनल कैविटी में ब्लीडिंग तो काफी पहले ही शुरू हो चुकी थी। जनरल सर्जरी यूनिट के मेरे साथी सर्जन्स को आपकी आपातकालीन स्प्लेनेक्टोमी करनी पड़ी। अगर यही तिल्ली थोड़ा जल्दी फट गई होती तो यहाँ आने से पहले ही इतना ख़ून बह चुका होता कि आप रास्ते में ही मर जाते।" उसने मेरा हाथ थपथपाया, जिसमें IV लगी थी वो वाला हाथ, और मुस्कराया। "आपकी सात पसलियाँ भी टूटी हैं। उन्हीं में से एक की वजह से न्यूमोथोरैक्स की स्थिति बन गई।"

मैंने भौंहें सिकोड़ीं। अपना मुँह खोलने की कोशिश की। मगर तभी मुझे तारों की याद आ गई।

"न्यूमोथोरैक्स का मतलब है फेफड़े में छेद हो जाना," आर्मंड ने समझाया। उसने मेरी छाती पर बायीं ओर लगी एक पारदर्शी प्लास्टिक ट्यूब को खींचा। मुझे फिर से अपनी छाती में चुभन महसूस हुई। "हमने इस चेस्ट ट्यूब की मदद से रिसाव को बंद

कर दिया है।” मैंने देखा कि उस ट्यूब का एक सिरा मेरी छाती पर पट्टियों के बीच से अन्दर घुसा था, जबकि दूसरा सिरा पानी से आधे भरे एक कंटेनर से जुड़ा था। पानी के बुलबुलों की आवाज़ वहीं से आ रही थी। “आपको कई जगह ‘लेसेरेशंस’ भी थे। मतलब ‘कट’।” मैं उसे बताना चाहता था कि मुझे उस शब्द का मतलब पता था; मैं लेखक जो था। मैंने बोलने के लिए मुँह खोलने की कोशिश की। एक बार फिर तारों की बात भूल गया।

“सबसे घातक लेसेरेशन आपके ऊपरी होंठ पर था,” आर्मंड ने कहा। “इसकी वजह से आपका ऊपरी होंठ दो टुकड़ों में बँट गया था और बीच का हिस्सा साफ़ ही हो गया था। मगर फ़िक्र की बात नहीं है, प्लास्टिक सर्जरी वाले सर्जन्स ने सिलकर दोनों हिस्सों को जोड़ दिया है और उनको यकीन है कि आपको बहुत अच्छे नतीजे देखने को मिलेंगे। हालाँकि कटने और जोड़े जाने का निशान तो रहेगा। उसका तो कुछ नहीं किया जा सकता।

“चेहरे के बाईं तरफ़ एक ऑर्बिटल फ्रैक्चर भी था। आँख जिस सॉकेट में रहती है, उसकी हड्डी में। हमें उसे भी ठीक करना पड़ा। आपके जबड़ों में लगे तार तक़रीबन छह हफ़्तों में निकलेंगे। तब तक आपको तरल खाने से ही काम चलाना पड़ेगा; ठोस खाना उसके बाद ही खा पाएँगे। आपका वज़न कुछ कम हो जाएगा और अभी कुछ अरसे तक आप पहली ‘गॉडफादर’ फिल्म के अल पचीनो की तरह बात करेंगे।” वह हँसा। “मगर आज आपको एक काम करना है। पता है क्या?”

मैंने इंकार में सिर हिलाया।

“आज आपका काम गैस पास करना है। अगर आपने यह किया, तो हम आपको तरल खाना देना शुरू कर सकते हैं। अगर नहीं किया, तो नहीं मिलेगा। पादना नहीं तो खाना नहीं।” वह फिर से हँसा।

बाद में, जब आयशा ने IV ट्यूब बदल दी और मेरी दरख्वास्त पर बिस्तर का सिर वाला हिस्सा ऊपर उठा दिया, तब मैंने सोचना शुरू किया कि मेरे साथ क्या-क्या हुआ था। स्प्लीन फट गई थी। दाँत टूट गए थे। फेफड़े में छेद हो गया था। आँख के सॉकेट की हड्डी टूट गई थी। मगर इन सब चीज़ों से इतर मेरा ध्यान आर्मंड/डॉ. फारुकी की कही किसी और बात पर था। खिड़की पर एक कबूतर ब्रेड का एक टुकड़ा चोंच में लिए बैठा था और थोड़ा-थोड़ा करके खा रहा था। मैं उसे देखता रहा और आर्मंड/डॉ. फारुकी की कही उस बात के बारे में ही सोचता रहा। उन्होंने कहा था कि लेसेरेशन की वजह से मेरा ऊपरी होंठ दो हिस्सों में बँट गया था, बीच से पूरी तरह कट गया था। बीच का हिस्सा पूरी तरह गायब हो गया था। जैसा लबकटों का होता है।

अगले दिन फ़रीद और सोहराब मिलने आए। “आज आप पहचान पा रहे हैं कि हम कौन हैं? याद आया कि नहीं?” फ़रीद ने आधा मज़ाक की तरह और आधा संजीदा होकर पूछा। मैंने हाँ में सर हिला दिया।

"अल हम्दुलेल्लाह!" उसने ख़ुश होते हुए कहा। "अब और बकवास नहीं करूँगा।"

"शुक्रिया, फ़रीद," मैंने तारों से कसे जबड़े को थोड़ी तकलीफ़ देकर कहा। आर्मंड सही था, मैं गॉडफादर के अल पचीनो की तरह ही बोल रहा था। और हर बार जब मेरी जीभ उन ख़ाली जगहों में दाख़िल होती थी जो दाँतों के उखड़ने से बन गई थीं, तो पल भर को मैं चौंक जाता था। "नहीं सच में, बहुत-बहुत शुक्रिया। हर चीज़ के लिए।"

उसने 'चलो छोड़ो' के अंदाज़ में हाथ हवा में लहराया। थोड़ा झेंप भी गया। "शुक्रिया के लायक तो कोई काम नहीं किया है मैंने," उसने कहा। मैं सोहराब की तरफ़ मुड़ा। उसने एक नया लिबास पहना हुआ था–हल्के कत्थई रंग का पिरहन-तुंबन, जो उसके हिसाब से थोड़ा बड़ा लग रहा था, और सिर पर एक काली टोपी। वह अपने पैरों की तरफ़ देख रहा था, जबकि उसका एक हाथ बिस्तर पर कुण्डली की शक्ल में पड़ी आईवी लाइन से खेल रहा था।

"हमारा कभी भी ठीक से तार्रुफ़ (परिचय) ही नहीं हुआ," मैंने कहा। फिर मैंने हाथ आगे बढ़ाते हुए कहा, "मैं आमिर हूँ।"

उसने पहले मेरे हाथ की तरफ़ और फिर मेरी तरफ़ देखा। "आप वही आमिर आगा हैं जिनके बारे में बाबा बताते थे?" उसने कहा।

"हाँ।" मुझे हसन के ख़त में लिखे अलफ़ाज़ याद हो आए। *'मैंने आपके बारे में फरज़ाना जान और सोहराब को ढेर सारी बातें बताई हैं, हमारे साथ-साथ बड़े होने, साथ-साथ खेलने, साथ-साथ गलियों में पतंगों के पीछे भागने की बातें। जब मैं उन्हें उन शैतानियों की बाबत बताता हूँ जो हम दोनों ने मिलकर की थीं, तो वे दोनों ख़ूब हँसते हैं!'* "मुझे तुम्हारा भी शुक्रिया अदा करना है, सोहराब," मैंने उससे कहा। "तुमने मेरी जान बचा ली।"

उसने कुछ नहीं कहा। जब उसने हाथ नहीं मिलाया तो मैंने हाथ पीछे कर लिया। "तुम्हारे नए कपड़े अच्छे लग रहे हैं," मैंने अल पचीनो की तरह बोलते हुए कहा।

"मेरे बेटे के हैं," फ़रीद ने कहा। "उसे छोटे हो गए हैं, मगर सोहराब को एकदम सही आए हैं।" फ़रीद ने बताया कि जब तक सोहराब के रहने का कोई बंदोबस्त नहीं होता, तब तक वह उसके घर रह सकता था। "हमारे पास ज़्यादा जगह नहीं है, मगर मैं क्या कर सकता हूँ? मैं इसे सड़क पर तो नहीं छोड़ सकता। इसके अलावा, मेरे बच्चों को भी यह पसंद आ गया है। है न, सोहराब?" मगर सोहराब ने नज़र अपने पैरों से ऊपर नहीं उठाई, उसकी उंगलियाँ पहले की ही तरह आईवी लाइन से खेलती रहीं।

"मैं आपसे एक बात पूछना चाह रहा था," फ़रीद ने थोड़ा हिचकिचाते हुए कहा। "उस घर में क्या हुआ था? आपके और तालिब के बीच?"

"बस यही समझ लो कि हम दोनों के साथ वह हुआ जिसके हम हकदार थे," मैंने

कहा।

फ़रीद ने सहमति में सिर हिलाया, और ज़्यादा जानने की ज़िद नहीं की। मुझे लगा कि हमारे पेशावर से अफ़ग़ानिस्तान के लिए निकलने से लेकर अब तक के अंतराल में हमारा रिश्ता बदल चुका था, अब हम दोस्त बन गए थे। “मैं भी तुमसे कुछ पूछना चाह रहा था।”

“क्या?”

मैं नहीं पूछना चाहता था। मुझे जवाब से डर लग रहा था। “रहीम खान,” आख़िरकार मैंने कहा।

“वो चले गए।”

मेरा दिल धक्क से रह गया। “क्या वह—”

“नहीं, वह बस...मकान छोड़कर चले गए।” उसने एक तह किया हुआ काग़ज़ और एक छोटी-सी चाबी मुझे थमा दी। “जब मैं उनसे मिलने गया तो मकान मालिक ने मुझे ये दोनों चीज़ें थमा दीं। उसने बताया कि रहीम खान ने हमारे पेशावर से निकलने के अगले ही दिन मकान खाली कर दिया था।

“कहाँ गए?”

फ़रीद ने कंधे उचकाए। “इस बारे में मकान मालिक को कुछ नहीं पता। उसका कहना है कि उन्होंने यह ख़त और यह चाबी आपको देने के लिए बोला और कमरा छोड़कर चले गए।” फिर उसने अपने घड़ी पर नज़र दौड़ाई और बोला, “मुझे अब निकलना पड़ेगा। चलो, सोहराब।”

“क्या तुम इसे कुछ वक़्त के लिए यहाँ छोड़ सकते हो?” मैंने कहा। “बाद में ले जाना।” फिर मैं सोहराब से मुखातिब हुआ। “तुम थोड़ी देर यहाँ मेरे साथ रहना चाहोगे?”

उसने कंधे उचका दिए, मगर कुछ नहीं कहा।

“बेशक,” फ़रीद ने कहा। “मैं इसे शाम की नमाज़ से पहले ले जाऊँगा।”

मेरे कमरे में मेरे अलावा तीन और मरीज़ भर्ती थे। दो बूढ़े आदमी और एक पंद्रह-सोलह बरस का लड़का। एक बूढ़े के पैर में प्लास्टर बँधा हुआ था, जबकि दूसरे को दमा की शिकायत थी। जो नयी उम्र का लड़का था, उसका अपेंडिक्स का ऑपरेशन हुआ था। पैर में प्लास्टर बाँधकर लेटा बूढ़ा आदमी अपलक हमें ही देख रहा था; उसकी नज़रें कभी मुझे देखतीं तो कभी मेरे सिरहाने स्टूल पर बैठे एक हज़ारा लड़के को। उन तीनों मरीज़ों के घरवाले और दूसरे मिलने-जुलने वाले–चमकीली सलवार-कमीज़ पहनी हुई बूढ़ी औरतें, बच्चे, सर पर टोपियाँ पहले मर्द–कमरे में आ-जा रहे थे, आपस में बोल-बतिया रहे थे। खासी चहल-पहल थी उनके कारण। वे अपने साथ

पकौड़े, नान, समोसे, बिरयानी लाए थे। कभी-कभी कुछ लोग बेमकसद ही कमरे में आ जाते थे, जैसे कि वह लंबा, दाढ़ी वाला आदमी, जो फ़रीद और सोहराब के आने से ठीक पहले आया था। उसने अपने चारों ओर एक भूरे रंग का कम्बल लपेटा हुआ था। आयशा ने उससे उर्दू में कुछ पूछा। मगर उसने उसकी बात पर कान नहीं दिया और कमरे में चारों तरफ़ नज़र घुमाकर कमरे का मुआयना करता रहा। मुझे लगा कि वह मुझे, पता नहीं क्यों, मगर ज़रूरत से ज़्यादा देर तक देखता रहा। जब नर्स ने उससे फिर से बात की, तो वह मुड़ा और चला गया।

"कैसे हो?" मैंने सोहराब से पूछा। उसने कंधे उचकाए, अपने हाथों की तरफ़ देखता रहा।

"तुम्हें भूख लगी है? वो मोहतरमा मुझे एक प्लेट बिरयानी दे गई थीं, मगर मैं खा नहीं सकता हूँ न," मैंने कहा। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि उससे और क्या बात करूँ। "तो तुम खाओगे?"

उसने सिर हिलाकर मना कर दिया।

"तुम बात नहीं करना चाहते?

उसने फिर सिर हिलाकर मना किया।

हम कुछ देर तक ऐसे ही चुपचाप बैठे रहे। मैं पीठ के पीछे दो तकिए लगाकर बिस्तर से टिका रहा और सोहराब मेरे सिरहाने तीन पैरों वाले स्टूल पर बैठा रहा। कुछ देर बाद मेरी नींद लग गई, और, जब मैं जागा तो दोपहर ढल रही थी, परछाईयाँ लम्बी हो चली थीं, और सोहराब अब भी उसी स्टूल पर बैठा था। उसकी नज़रें अभी भी अपने हाथों पर थीं।

उस रात, फ़रीद और सोहराब के जाने के बाद, मैंने रहीम खान का ख़त खोला और पढ़ने लगा। मैंने जान-बूझकर इतनी देर लगाई थी इसे पढ़ने में। उसमें लिखा था:

आमिर जान,

अल्लाह का लाख-लाख शुक्र है कि आप इस ख़त तक खैरियत से पहुँच गए हैं। मैं दुआ करता हूँ कि मैंने आपको किसी मुसीबत में न डाला हो और अफ़ग़ानिस्तान का आपके साथ बर्ताव ज़्यादा बेमुरव्वत न रहा हो। जिस दिन से आप गए हैं, मैं लगातार आपके लिए दुआ करता रहा हूँ। इतने बरसों से आपका जो शक था कि मुझे वो बात पता थी, वो सही था। मुझे पता था। उस घटना के कुछ ही दिनों बाद हसन ने मुझे सबकुछ बता दिया था। आपने जो किया वो गलत था, आमिर जान, मगर मत भूलिए कि उस वक़्त आप एक छोटे-से बच्चे थे। एक छोटे-से परेशान-हाल बच्चे। आप ख़ुद के साथ ज़रूरत से ज़्यादा सख़्त थे, और अब भी हैं–मैंने यह पेशावर में आपकी आँखों में देखा था। मगर मैं उम्मीद करता हूँ कि आप इस बात पर ध्यान देंगे कि जिस आदमी में

ज़मीर न हो, अच्छाइ न हो, उसकी गलतियाँ, उसके गुनाह उसे परेशान नहीं करते। मैं उम्मीद करता हूँ कि अफ़ग़ानिस्तान का यह सफ़र आपकी परेशानियों को ख़त्म कर देगा।

आमिर जान, मैं उन सभी झूठों के लिए शर्मसार हूँ जो हम बरसों-बरस आपसे बोलते रहे। पेशावर में आपका नाराज़ होना जायज़ था। आपको जानने का हक़ था। हसन को जानने का हक़ था। मैं जानता हूँ कि इस से हमारा दोष कम नहीं होगा, मगर फिर भी मैं कहना चाहता हूँ कि जिस काबुल में हम उन दिनों रहते थे वह एक अलग ही दुनिया थी, जहाँ कुछ चीज़ें सच्चाई से ज़्यादा मायने रखती थीं।

आमिर जान, मुझे इल्म है कि आपके बचपन में आपके बाबा का आपके प्रति बर्ताव ज़रूरत से ज़्यादा सख्त था। मैंने देखा है कि कैसे उनके बर्ताव के चलते आप भीतर ही भीतर घुटते रहे, उनके प्यार के लिए तरसते रहे, और यह सब देखकर मेरा दिल रो पड़ता था। मगर आपके बाबा दो पाटों के बीच फँसे हुए इंसान थे, आमिर जान- आप और हसन। वह आप दोनों को बराबर चाहते थे, मगर उनकी मजबूरी यह थी कि हसन के लिए अपनी चाहत को वह उस तरह ज़ाहिर नहीं कर सकते थे जिस तरह करना चाहते थे-खुलकर, एक बाप के तौर पर। और इसी बात का गुस्सा आप पर निकलता था, आमिर पर, जो कि उनका सामाजिक रूप से मान्य हिस्सा था, वह हिस्सा जो उनकी दौलत, उनके रुतबे, और उसके साथ मिलने वाली 'गुनाह करके भी सज़ा से बचे रहने की सहूलियत' का नुमाइंदा (प्रतिनिधि) था। आपमें वह ख़ुद को देखते थे। आपमें उन्हें अपना अपराध-बोध नज़र आता था। आपकी नाराज़गी अभी भी कायम है और इसीलिए मुझे लगता है कि आपसे इस बात को स्वीकार करने की उम्मीद करना अभी बहुत जल्दबाज़ी होगी, मगर किसी दिन शायद आप देख पाओ कि जब आपके बाबा आपके साथ सख्ती बरत रहे होते थे, तब वह ख़ुद को भी उतना ही सता रहे होते थे। आपकी ही तरह आपके बाबा भी एक 'सताई हुई आत्मा' थे, आमिर जान।

मैं बयान नहीं कर सकता कि जब मुझे उनके गुज़रने की ख़बर लगी थी तो मैंने किस हद तक ख़ुद को टूटा हुआ महसूस किया था। मैं उन्हें सिर्फ़ इसलिए नहीं चाहता था क्योंकि वह मेरे दोस्त थे, बल्कि इसलिए भी क्योंकि वह अच्छे इंसान थे, बल्कि शायद कहना चाहिए कि महान इंसान थे। और मैं आपको यही समझाना चाहता हूँ कि उनकी जो अच्छाई थी, महानता थी, वह उनके भीतर अपनी गलतियों के लिए उपजे गहरे पछतावे की देन थी। कभी-कभी मुझे लगता है कि उन्होंने जो भी नेकियाँ कीं– सड़कों पर ग़रीबों को खाना खिलाना, यतीमखाना बनवाना, ज़रूरतमंद दोस्तों को पैसे देना–वो सब उनका ख़ुद को उस पछतावे से निजात

दिलाने का, अपने पापों का प्रायश्चित करने का, अपनी गलतियों की भरपाई करने का ही एक ज़रिया था। और मेरा मानना है कि सच्चा पछतावा, सच्चा प्रायश्चित, सच्ची भरपाई, सच्ची निजात तभी होती है, आमिर जान, जब आपका अपराध-बोध आपको अच्छाई की तरफ़ लेकर जाता है।

मैं जानता हूँ कि आख़िर में अल्लाह माफ कर देंगे। वह आपके बाबा को, मुझे, और आपको भी माफ़ कर देंगे। मैं उम्मीद करता हूँ कि आप भी ऐसा कर पाएँगे। अगर हो सके तो अपने बाबा को माफ़ कर दीजिएगा। अगर चाहें तो मुझे भी कर दीजिएगा। मगर सबसे ज़रूरी है कि आप ख़ुद को माफ़ कर दें।

मैंने आपके लिए कुछ रकम रख छोड़ी है, मेरे पास जो कुछ भी बचा है उसका ज़्यादातर हिस्सा। मेरे ख़याल से जब आप यहाँ लौटकर आएँगे तो शायद आपके सामने कुछ खर्चे आन खड़े हों, यह रकम उन खर्चों के लिए काफी होगी। पेशावर में एक बैंक है; फ़रीद को उसका पता है। रकम उसी बैंक के एक सेफ डिपॉज़िट बॉक्स में है। उसी की चाबी मैंने आपको दी है।

जहाँ तक मेरी बात है, तो अब जाने का वक़्त आ गया है। बहुत थोड़ा सा वक़्त बचा है मेरे पास, और मैं उसे अकेले में बिताना चाहता हूँ। मुझे तलाशिएगा मत। यही मेरी आपसे आख़िरी इल्तिज़ा है।

मैं आपको अल्लाह के हाथों में सौंपता हूँ।

हमेशा से आपका दोस्त

रहीम

मैंने अस्पताल के गाऊन की आस्तीनों से अपनी नम आँखें पोंछीं। ख़त को वापस तह करके बिस्तर के नीचे रख लिया।

आमिर, सामाजिक रूप से मान्य हिस्सा, वह हिस्सा जो उनकी दौलत, उनके रुतबे, और उसके साथ मिलने वाली 'गुनाह करके भी सज़ा से बचे रहने की सहूलियत' का नुमाइंदा था। 'शायद यही वजह थी कि अमेरिका आने के बाद बाबा और मेरे संबंध इतने अच्छे हो गए थे,' मैंने सोचा। छोटी-मोटी कमाई के लिए कबाड़ बेचना, हमारी मामूली-सी नौकरियाँ, हमारा गंदा-सा मकान (जिसे झोपड़ी का अमरीकी संस्करण ही कहा जाएगा); शायद अमेरिका में जब बाबा मेरी तरफ़ देखते थे तो उन्हें मुझमें कुछ-कुछ हसन की झलक दिखाई पड़ती थी।

आपकी ही तरह आपके बाबा भी 'सताई हुई आत्मा' थे, रहीम ख़ान ने लिखा था। शायद ऐसा ही था। हम दोनों ने ही गुनाह किया था और हम दोनों ने ही धोखा दिया था।

मगर बाबा ने अपने पछतावे से अच्छाई पैदा करने का एक तरीक़ा खोज लिया था। और मैंने क्या किया था? अपने अपराध-बोध का ठीकरा उन्हीं लोगों के सर फोड़ दिया था जिनके साथ मैंने धोखा किया था, और फिर सब कुछ भूल जाने की कोशिश की थी। मैंने अनिद्रा का रोगी बनने के अलावा और क्या किया था?

मैंने अपनी गलतियों को सुधारने के लिए क्या किया था? 'जब नर्स–आयशा नहीं बल्कि लाल बालों वाली एक दूसरी मोहतरमा, जिनका नाम मुझे याद नहीं–हाथ में सिरिंज लेकर आई और मुझसे पूछा कि क्या मुझे मॉर्फिन इंजेक्शन की ज़रूरत होगी, तो मैंने हाँ में जवाब दिया।

अगली सुबह उन्होंने मेरी छाती में लगी चेस्ट ट्यूब हटा ली, और अर्मांड ने स्टाफ को मुझे सेब का जूस पिलाने की इजाज़त दे दी। जब आयशा ने मेरे बिस्तर के बग़ल में ड्रेसर पर जूस का कप लाकर रखा तो मैंने उनसे एक आईना माँगा। उन्होंने लाकर दिया। फिर वह खिड़की का पर्दा सरकाने लगीं ताकि सुबह की रोशनी कमरे में आ सके। पर्दा सरकाने के बाद उन्होंने पीछे मुड़कर मुझे आईना उठाते पाया तो अपना बाइफोकल चश्मा माथे पर चढ़ाते हुए बोलीं, "चिंता मत करो, कुछ दिनों में यह बेहतर लगने लगेगा। मेरे दामाद का पिछली साल मोपेड से एक्सीडेंट हुआ था। उसका ख़ूबसूरत चेहरा सड़क पर बुरी तरह घिसटने से बैंगन की तरह बैंगनी हो गया था। मगर अब वह फिर से उतना ही ख़ूबसूरत दिखने लगा है, बिल्कुल हॉलीवुड फिल्मों के हीरो की तरह।"

उनके तमाम आश्वासनों के बावजूद, मैंने जब आईने में अपना चेहरा देखा तो एक पल को तो मेरा दिल धक्क से रह गया। ऐसा लग रहा था जैसे किसी ने मेरी चमड़ी के नीचे एयर पंप की नोज़ल घुसेड़कर हवा भर दी हो। मेरी आँखें सूजी हुई और नीली थीं। सबसे बुरी हालत तो मेरे मुँह की थी, जो बैंगनी और लाल रंग का एक अजीब-ओ-ग़रीब और भद्दा-सा दिखने वाला धब्बा मालूम हो रहा था, जिस पर हर जगह चोटें और टाँके ही दिखाई दे रहे थे। मैंने मुस्कराने की कोशिश की, मगर दर्द की एक तेज़ लहर मेरे होठों में दौड़ गई। मैंने सोच लिया कि अभी कुछ वक़्त तक मैं मुस्कराने की कोशिश नहीं करूँगा। मेरे पूरे बाएँ गाल पर टाँके थे, माथे पर भी बालों के ठीक नीचे टाँके लगे थे।

जिस बूढ़े मरीज़ के पैर में प्लास्टर बँधा था, उसने मुझे देखकर उर्दू में कुछ कहा। मैंने कंधे उचकाए और इंकार में सिर हिलाकर इशारा किया कि मुझे उर्दू समझ नहीं आती थी। उसने अपने चेहरे की ओर इशारा किया, उसे थपथपाया, और अपने पोपले मुँह से एक बड़ी मुस्कान बिखेरी। "वैरी गुड," उसने अंग्रेज़ी में कहा। "इंशाल्लाह!"

"थैंक यू," मैं बुदबुदाया।

मैंने अभी आईना नीचे रखा ही था कि तभी फ़रीद और सोहराब आ गए। सोहराब ने अपने स्टूल पर बैठक जमा ली और अपना सिर मेरे पलंग की साइड रेलिंग पर टिका

दिया।

"मेरे ख़याल में जितनी जल्दी हम आपको यहाँ से निकाल लेंगे, उतना ही बेहतर होगा," फ़रीद ने कहा।

"डॉक्टर फारुखी का कहना है—"

"मेरा मतलब अस्पताल से नहीं था। मेरा मतलब था पेशावर से।"

"क्यों?"

"मुझे नहीं लगता कि आप यहाँ ज़्यादा दिनों तक महफ़ूज़ रह पाएँगे," फ़रीद ने कहा। पल भर रुककर उसने बहुत धीरे से कहा, "यहाँ तालिबान के दोस्तों की कमी नहीं है। जल्दी ही वे आपको ढूँढना शुरू कर देंगे।"

"मुझे लगता है कि वे पहले ही ऐसा कर चुके होंगे," मैंने धीरे से कहा। अचानक मुझे उस दाढ़ी वाले आदमी का ख़याल आया जो कल कमरे में घुस आया था और खड़ा-खड़ा मुझे घूर रहा था।

फ़रीद ने मेरी तरफ़ थोड़ा झुककर कहा, "जैसे ही आप चलने लायक हो जाएँगे, मैं आपको इस्लामाबाद ले चलूँगा। पूरी तरह महफ़ूज़ तो वह जगह भी नहीं है, वो तो खैर पाकिस्तान में कोई भी जगह नहीं है, मगर यहाँ से बेहतर रहेगी। कम से कम आपको थोड़ा ज़्यादा वक़्त मिल जाएगा।"

"फ़रीद जान, यह सब तुम्हारे लिए भी ख़तरनाक साबित हो सकता है। मेरे ख़याल से तुम्हें मेरे साथ नहीं दिखना चाहिए। तुम्हारे कन्धों पर तुम्हारे परिवार की ज़िम्मेदारी है।"

फ़रीद ने 'परवाह नहीं' के अंदाज़ में हवा में हाथ लहराया और बोला, "मेरे लड़के छोटे ज़रूर हैं, मगर बहुत होशियार हैं। उन्हें अपनी अम्मी जान और बहनों का ख़याल रखना बख़ूबी आता है।" फिर वह मुस्कराया। "इसके अलावा, मैंने कब कहा कि मैं ये सब मुफ्त में करूँगा।"

"अगर तुम करना भी चाहो तो मैं तुम्हें करने नहीं दूँगा," मैंने कहा। मैं भूल गया कि मैं मुस्करा नहीं सकता था और कोशिश कर बैठा। नतीजतन ख़ून की एक पतली सी धार मेरी ठुड्डी से नीचे बहने लगी। "क्या मैं तुमसे एक और मदद चाह सकता हूँ?"

"आपके लिए एक बार नहीं हज़ार बार," फ़रीद ने कहा।

यह सुनते ही मैं एकदम से रो पड़ा। मेरी हिचकियाँ बँध गईं, आँसू आँखों से बह-बहकर गालों पर लुढ़कने लगे, मेरे होंठों के कोमल माँस पर से बहते हुए उसमें जलन पैदा करने लगे।

"ऐसी क्या बात हो गई?" फ़रीद ने घबराते हुए पूछा।

मैंने एक हाथ की हथेली में अपना चेहरा छिपा लिया और दूसरे हाथ से उसे रुकने का इशारा किया। मैं जान रहा था कि कमरे में मौजूद सभी लोगों की तवज्जो मेरी तरफ़ ही थी। मगर मैं मजबूर था। जब रोते-रोते मैं थक गया और मन का गुबार थोड़ा हल्का हो गया, तब मैंने कहा, “आय एम सॉरी।” सोहराब हैरानी और फ़िक्र के मिले-जुले भावों के साथ मेरी तरफ़ देख रहा था।

जब मैं फिर से बात करने लायक हुआ तो मैंने फ़रीद को बताया कि मुझे उससे क्या मदद चाहिए थी। “रहीम खान ने कहा था कि वे यहाँ पेशावर में ही रहते हैं।”

“बेहतर होगा कि आप मुझे उनके नाम लिखकर दे दें,” फ़रीद ने सतर्क नज़रों से मुझे देखते हुए कहा, मानो इस बात से डर रहा हो कि पता नहीं अब उसके मुँह से निकलने वाली कौन सी बात मुझे फिर से इतना परेशान कर दे। मैंने रद्दी काग़ज़ के एक टुकड़े पर उनके नाम लिख दिए। “जॉन और बेट्टी कैडवेल।”

फ़रीद ने उस काग़ज़ को तह करके जेब में रख लिया, फिर बोला, “मैं जल्द-अ-जल्द इनसे मिलता हूँ।” फिर वह सोहराब की तरफ़ घूमा और बोला, “मैं शाम को आऊँगा तुम्हें लेने। आमिर आगा को ज़्यादा थकाना मत, समझे?” मगर तब तक सोहराब स्टूल से उठकर खिड़की पर पहुँच गया था, जहाँ आधा दर्जन कबूतर चौखट पर आगे-पीछे घूम रहे थे और लकड़ी और सूखी हुई ब्रेड के टुकड़ों पर चोंच मार रहे थे।

मेरे बिस्तर के बग़ल में रखे ड्रेसर की बीच वाले दराज़ में मुझे एक पुरानी नेशनल ज्योग्राफिक पत्रिका, एक चबाई हुई पेंसिल, एक कंघी (जिसके कुछ दाँते गायब थे), और एक…एक ताश की गड्डी मिली, जिसे दराज़ में से निकालना मेरे लिए इतना भारी काम था कि मेरे चेहरे पर पसीना चमकने लगा था। मैंने पत्तों को गिना तो पाया कि वे पूरे बावन थे। मैंने सोहराब से पूछा कि क्या वो ताश खेलना चाहेगा। मुझे उम्मीद नहीं थी कि वो जवाब भी देगा, खेलने की बात तो बहुत दूर थी। जब से हम काबुल से भागे थे, वह खामोश ही था।

मगर मेरी बात सुनकर वह खिड़की पर से मुड़ा और बोला, “मुझे सिर्फ़ पंजपार खेलना आता है।”

“मुझे तुम्हारे लिए अभी से अफ़सोस हो रहा है, क्योंकि मैं पंजपार में ग्रैंड मास्टर हूँ। इस खेल में सारी दुनिया मेरा लोहा मानती है।”

वह आकर मेरे बग़ल में रखे स्टूल पर बैठ गया। मैंने पत्ते बाँटे और उसे उसके पाँच पत्ते दिए। “जब तुम्हारे बाबा और मैं तुम्हारी उम्र के थे, तब हम यह खेल ख़ूब खेला करते थे। खासकर सर्दियों में, जब बर्फ़ पड़ रही होती थी और हम बाहर खेलने नहीं जा पाते थे। हम लोग सुबह से शाम तक खेलते ही रहते थे।”

उसने एक पत्ता चला और उसकी जगह एक दूसरा पत्ता गड्डी से उठा लिया। जब वह अपने पत्तों पर गौर करने में व्यस्त होता था तो मैं चोरी से उसे देखने लगता था।

कितने ही मायनों में वह बिल्कुल अपने बाबा जैसा था– जिस तरह से वह अपने पत्तों को दोनों हाथों में फैलाता था, जिस तरह से वह उन्हें देखते समय आँखें सिकोड़ता था, जिस तरह से वह शायद ही कभी किसी की आँखों में आँखें डालकर देखता था।

हम खामोशी से खेलते रहे। पहला गेम मैं जीत गया, दूसरा मैंने उसे जीत जाने दिया, और अगले पाँच गेम उसने मुझे अपनी काबिलियत से हरा दिए। “तुम अपने बाबा जितने ही अच्छे खिलाड़ी हो, बल्कि शायद उनसे भी अच्छे,” मैंने आख़िरी गेम हारने के बाद उससे कहा। “मैं कभी-कभी उन्हें हरा देता था, मगर मुझे लगता है कि वह जान-बूझकर हारते थे ताकि मैं जीत जाऊँ।” थोड़ा रुकने के बाद मैंने बात जारी रखते हुए कहा, “तुम्हारे बाबा और मुझे एक ही धाय ने दूध पिलाया था।”

“जानता हूँ।”

“क्या…क्या बताया उन्होंने तुम्हें हमारे बारे में?”

“यही कि आप उनके सबसे अच्छे दोस्त थे,” उसने कहा।

मैंने ईंट के गुलाम को अपनी उंगलियों में तेज़ी से आगे-पीछे फ्लिप किया। “मुझे नहीं लगता कि मैं इतना अच्छा दोस्त था,” मैंने कहा। “मगर मैं तुम्हारा दोस्त बनना चाहता हूँ। मुझे लगता है कि मैं तुम्हारा अच्छा दोस्त बन सकता हूँ। क्या यह ठीक रहेगा? तुम्हें अच्छा लगेगा?” मैंने अपना हाथ उसकी बाँह पर धीरे से रखा, मगर वह झेंप गया। उसने पत्ते नीचे रख दिए और स्टूल समेत पीछे खिसक गया। फिर उठकर वापस खिड़की पर चला गया। पेशावर में सूरज डूब रहा था, आसमान लाल और बैंगनी रंग से भर गया था। नीचे सड़क पर से किसी गाड़ी के लगातार हॉर्न बजाए जाने की, किसी गधे के रेंकने की, और ट्रैफिक हवलदार के सीटी बजाने की आवाज़ें सुनाई दे रही थीं। सोहराब उस लाल रोशनी में खड़ा था – माथा शीशे से सटाए, मुट्ठियाँ बग़लों में दबाए।

उस रात आयशा अपने साथ एक सहायक लड़के को लेकर आई, जिसने मुझे वहाँ आने के बाद से पहली बार अपने पैरों पर चलने में मदद की। मैंने एक हाथ में चक्कों वाला आईवी स्टैंड पकड़ा और दूसरे हाथ से उस सहायक लड़के की बाँह थामकर कमरे का एक चक्कर लगाया। मुझे बिस्तर पर वापस आने में दस मिनट लगे और इतने में ही मेरे पेट पर लगा चीरा दर्द करने लगा था और मैं पसीने से तरबतर हो गया था। जब मैं बिस्तर पर लेटा तो हाँफ रहा था, मेरा दिल ज़ोरों से धड़क रहा था, और मुझे अपनी खानुम की बहुत याद आ रही थी।

अगले दिन भी जब तक सोहराब मेरे पास रहा, हम पंजपर खेलते रहे। चुपचाप। और उसके अगले दिन भी। हम मुश्किल से ही बात करते थे, बस पंजपर खेलते रहते थे, मैं बिस्तर पर लेटे-लेटे और वह तीन पैरों वाले स्टूल पर बैठे-बैठे। हमारी यह दिनचर्या सिर्फ़ तभी टूटती थी जब मैं कमरे में टहलने के लिए उठता था या फिर कमरे के परले सिरे पर बने बाथरूम जाने के लिए। उस रात मैंने एक सपना देखा। मैंने देखा

कि अस्सेफ़ अस्पताल के मेरे कमरे के दरवाज़े पर खड़ा था। वह पीतल की गेंद अब भी उसकी आँख की कोटर में अटकी हुई थी। "हम एक जैसे हैं, तुम और मैं," वह कह रहा था। "भले तुमने और उसने एक ही स्तन से दूध पिया, मगर तुम मेरे जुड़वाँ हो।"

मैंने अगले दिन सुबह ही आर्मंड को बता दिया कि मैं जा रहा था।

"अभी आपकी छुट्टी का समय नहीं हुआ है," आर्मंड ने विरोध किया। उसने उस दिन डॉक्टरों वाले कपड़े नहीं पहने थे, उस दिन वह बटन-डाउन नेवी ब्लू सूट और पीली टाई पहने हुए था। बालों में जेल भी लगा हुआ था। "आप अभी भी इंट्रावीनस (अंतःशिरा) एंटीबायोटिक्स पर हैं और—"

"मुझे जाना होगा," मैंने कहा। "आपने, आप सब ने मेरे लिए जो कुछ भी किया है, उसके लिए मैं तहेदिल से आप सबका शुक्रगुज़ार हूँ। सच में। मगर मुझे जाना ही पड़ेगा।"

"कहाँ जाएँगे?" आर्मंड ने पूछा।

"अभी कुछ कह नहीं सकता हूँ।"

"आप अभी ठीक से चल भी नहीं सकते हैं।"

"मैं हॉल के आख़िर तक जाकर वापस आ सकता हूँ," मैंने कहा। "मैं ठीक हूँ।"

मेरी योजना कुछ ऐसी थी: अस्पताल से निकलूँगा। बैंक जाकर सेफ-डिपॉजिट बॉक्स से पैसा निकालूँगा और अस्पताल का बिल चुकता करूँगा। सोहराब को जॉन और बेट्टी कैडवेल के पास छोड़ूँगा। फिर इस्लामाबाद चला जाऊँगा। वहाँ कुछ दिन रुककर आराम करूँगा, सेहत सुधारूँगा। और फिर घर के लिए रवाना हो जाऊँगा।

यह तब तक मेरी योजना थी जब तक कि अगले दिन फ़रीद और सोहराब अस्पताल नहीं आए। "आपके दोस्त, जॉन और बेट्टी कैडवेल, वे पेशावर में नहीं हैं," फ़रीद ने कहा।

मुझे अपना पिरहन-तुम्बन पहनने में ही दस मिनट लग गए थे। जब मैं अपना हाथ उठाता था तो छाती में उस जगह दर्द होने लगता था जहाँ से उन्होंने ट्यूब अन्दर डाली थी। जब भी नीचे झुकता था तो पेट में जहाँ चीरा लगा था, वह जगह फड़कने लगती थी। अपना कुछ सामान थैले में भरने की कोशिश भर से ही मेरी साँसें उखड़ने लगी थीं। मगर फिर भी जैसे-तैसे करके मैं तैयार हो गया था और फ़रीद और सोहराब के इंतज़ार में बिस्तर पर बैठा था। दोनों आए। सोहराब आकर स्टूल पर बैठ गया और फ़रीद मुझे वह ख़बर सुनाने लगा।

"कहाँ गए हैं?" मैंने पूछा।

फ़रीद ने सिर हिलाया। "आप समझ नहीं रहे हैं..."

"क्योंकि रहीम खान ने तो कहा था..."

"मैं अमरीकी वाणिज्य दूतावास गया था," फ़रीद ने मेरा बैग उठाते हुए कहा। "वहाँ से पता चला कि पेशावर में कभी कोई जॉन और बेट्टी कैडवेल थे ही नहीं। दूतावास वालों के मुताबिक़, इस नाम के लोग हैं ही नहीं, न कभी थे। कम से कम यहाँ पेशावर में तो नहीं।"

मेरे बग़ल में बैठा सोहराब पुरानी नेशनल जियोग्राफिक पत्रिका के पन्ने उलटने-पलटने में मग्न था।

हमने बैंक जाकर पैसा लिया। वहाँ का मैनेजर –एक मोटा-सा आदमी, जिसकी बग़लों में पसीने के धब्बे थे– लगातार मुस्कराता रहा और कहता रहा कि बैंक में किसी ने भी पैसों को हाथ तक नहीं लगाया था।

"किसी ने भी नहीं," उसने गंभीरता से और अपनी तर्जनी उंगली को उसी तरह हिलाते हुए कहा जैसे आर्मंड ने हिलाई थी।

इतने सारे पैसे एक काग़ज़ के थैले में लेकर पेशावर के रास्तों से गुज़रना थोड़ा डरावना अनुभव था। इसके अलावा, मैं हर उस दाढ़ी वाले आदमी को शक की नज़रों से देखने लगा था जो किसी भी वजह से मुझे एकटक देख रहा होता था। मुझे लगता था कि हो न हो वह कोई तालिबानी कातिल है, जिसे अस्सेफ़ ने भेजा है। दो वजहों से मेरा यह डर दुगना हो गया था: एक तो यह कि पेशावर में दाढ़ी वाले लोगों की तादाद बहुत ज़्यादा थी, और दूसरी यह कि यहाँ हर कोई घूरकर देखता था।

"हम अब सोहराब का क्या करें?" मुझे अस्पताल के एकाउंटिंग ऑफिस से धीरे-धीरे चलाकर वापस कार तक लाते समय फ़रीद ने पूछा। सोहराब पहले से ही लैंड क्रूज़र की पिछली सीट पर बैठा हुआ था और खिड़की से बाहर ट्रैफिक को देख रहा था, उसकी ठोड़ी उसकी हथेलियों पर टिकी हुई थी।

"वह पेशावर में नहीं रह सकता," मैंने हाँफते हुए कहा।

"नहीं, आमिर आगा, नहीं रह सकता," फ़रीद ने कहा। उसने मेरे शब्दों में छिपा सवाल पढ़ लिया था। "मुझे माफ़ करें। काश मैं—"

"नहीं, कोई बात नहीं, फ़रीद," मैंने बड़ी मेहनत से मुस्कराते हुए कहा। "मैं समझता हूँ। तुम्हारा अपना परिवार ही इतना बड़ा है, एक और सदस्य को रखना मुमकिन नहीं है।" सोहराब की खिड़की की तरफ़ एक कुत्ता अपने पिछले पैरों को ज़मीन पर और अगले पैरों को कार के दरवाज़े पर टिकाकर खड़ा था और उसकी पूँछ दाएँ-बाएँ हिल रही थी। सोहराब उसे सहला रहा था। "मेरा ख़याल है कि फिलहाल वह मेरे साथ इस्लामाबाद जाएगा," मैंने कहा।

मैं पेशावर से इस्लामाबाद तक के चार घंटे के सफ़र में तक़रीबन पूरा समय सोया ही रहा। इस दौरान मैंने बहुत सारे सपने देखे, मगर जागने के बाद मैं उनके थोड़े-थोड़े

अंश ही याद कर पाया। एक झलक इस सपने की, एक झलक उस सपने की। जैसे कि मैंने देखा कि मेरी तेरहवीं सालगिरह पर बाबा मेमने के गोश्त पर तेल-मसाला लगा रहे थे। इसके अलावा मुझे सोराया और मेरी पहली रात दिखी, पहला-पहला मिलन; अगली सुबह साथ जागना; कानों में तब भी शादी का संगीत गूँजना; उसके मेंहदी लगे हाथों का मेरे हाथों में होना। वो वक़्त नज़र आया जब बाबा हसन और मुझे जलालाबाद में एक स्ट्रॉबेरी के खेत में ले गए थे और खेत के मालिक ने हमसे कहा था कि अगर हम कम से कम चार किलो स्ट्रॉबरी ख़रीदते तो फिर हम खेत में जाकर जितनी चाहें उतनी खा सकते थे, और अगले दिन हम दोनों को पेट दर्द की शिकायत हो गई थी। फिर हसन के पैरों के बीच से टपकते ख़ून का नीचे बर्फ़ पर गिरना और वहाँ एक गहरा लाल, लगभग काला, धब्बा बन जाना दिखाई पड़ा। ख़ून बड़ी ताक़तवर चीज़ होती है, बेटा। खाला जमीला का सोराया के घुटनों को सहलाते हुए कहना कि अल्लाह जो करता है अच्छे के लिए करता है, शायद वह नहीं चाहता कि ऐसा हो। बाबा के घर की छत पर सोना। बाबा का यह कहना कि सिर्फ़ एक ही चीज़ पाप है – चोरी; जब तुम किसी से झूठ बोलते हो तो तुम उससे सच जानने का हक़ चुराते हो। रहीम खान का फोन पर मुझसे कहना कि फिर से अच्छा बनने का एक रास्ता है। एक रास्ता, फिर से अच्छा बनने का...

चौबीस

अगर पेशावर वह शहर था जो मुझे काबुल की याद दिलाता था, तो इस्लामाबाद वह शहर था जो काबुल किसी दिन बन सकता था। यहाँ की सड़कें पेशावर की सड़कों से ज़्यादा चौड़ी और साफ़-सुथरी थीं और उनके किनारे-किनारे दोनों ओर लाइन से गुड़हल और गुलमोहर के पेड़ लगे हुए थे। बाज़ार ज़्यादा करीने से बसे थे और वहाँ रिक्शा और पैदल चलने वालों की उतनी भीड़ नहीं थी। इमारतों की बनावट भी ज़्यादा आकर्षक थी, ज़्यादा आधुनिक थी। और मैंने ऐसे पार्क भी देखे जहाँ बड़े पेड़ों की छाया में गुलाब और चमेली के फूलों की झाड़ियाँ
मौजूद थीं।

फ़रीद ने मरगल्ला पहाड़ियों के साथ-साथ चलने वाली एक सड़क पर एक छोटे-से होटल का पता लगाया, जो हमारे रुकने के लिए अच्छी जगह हो सकती थी। वहाँ जाते समय हम मशहूर शाह फ़ैज़ल मस्जिद के सामने से गुज़रे, जो दुनिया की सबसे बड़ी मस्जिद मानी जाती है, जिसमें कंक्रीट के विशाल गर्डर्स और ऊँची-ऊँची मीनारें हैं। सोहराब उस मस्जिद को देखकर चौंक गया, खिड़की से बाहर झुक गया और तब तक उसे देखता रहा जब तक कि एक मोड़ मुड़ने पर वह आँखों से ओझल नहीं हो गई।

होटल का यह कमरा काबुल के होटल के उस कमरे से बहुत बेहतर था जहाँ फ़रीद और मैं रुके थे। चादरें साफ़ थीं, कालीन वैक्यूम किया हुआ था और बाथरूम बेदाग था। बाथरूम में शैम्पू, साबुन, दाढ़ी बनाने के लिए उस्तरा, बाथटब और नींबू जैसी ख़ुश्बू से महकने वाले तौलिए मौजूद थे। और दीवारों पर ख़ून के धब्बे भी नहीं थे। एक और चीज़ थी वहाँ: एक टेलीविज़न सेट, जो दो पलंगों के सामने ड्रेसर पर रखा हुआ था।

"देखो!" मैंने सोहराब से कहा। मैंने टीवी मैन्युअली चालू किया—रिमोट के बिना—और डायल घुमाया। एक चैनल पर बच्चों का एक शो आ रहा था, जिसमें दो भेड़नुमा कठपुतलियाँ उर्दू में कुछ गा रही थीं।

हसन एक पलंग पर बैठ गया, घुटनों को छाती से चिपका लिया, और हिंडोले की तरह आगे-पीछे डोलते हुए टीवी देखने लगा। टीवी के परदे पर चल रहीं छवियों का अक्स उसकी हरी आँखों में पड़ रहा था, मगर उसके चेहरे पर कोई भाव प्रकट नहीं हो रहे थे; पत्थर की तरह सपाट बना रहा उसका चेहरा। मुझे वो वक़्त याद आया जब मैंने हसन से वादा किया था कि जब हम दोनों बड़े हो जाएँगे, तब मैं उसके परिवार के लिए भी एक रंगीन टीवी ख़रीदूँगा।

"मैं अब चलूँगा, आमिर आगा," फ़रीद ने कहा।

"रात यहीं रुको," मैंने कहा। "सफ़र लम्बा है। कल निकल जाना।"

"तशकोर," उसने कहा। "मगर मैं आज ही वापस लौट जाना चाहता हूँ। मुझे अपने बच्चों की याद आ रही है।" कमरे से बाहर जाते समय वह दरवाज़े पर ठिठका और मुड़कर सोहराब से बोला, "ख़ुदा हाफ़िज़, सोहराब जान।" फिर कुछ पल सोहराब के जवाब के इंतज़ार में खड़ा रहा, मगर सोहराब ने उसकी तरफ़ ध्यान ही नहीं दिया। वह उसी तरह हिंडोले की माफिक आगे-पीछे झूलते हुए टीवी के परदे पर नज़रें गढ़ाए रहा।

होटल से बाहर आकर मैंने एक लिफाफा उसे थमाया। जब उसने उसे खोलकर देखा तो हैरत से उसका मुँह खुला का खुला रह गया।

"मुझे समझ नहीं आया कि और किस तरह तुम्हारा शुक्रिया अदा करूँ," मैंने कहा। "तुमने मेरे लिए इतना कुछ किया है।"

"कितने हैं ये?" फ़रीद ने पूछा, वह अभी भी भौचक्का दिखाई पड़ रहा था।

"दो हज़ार डॉलर्स से थोड़ा ज़्यादा।"

"दो हज़—" उसने बोलना शुरू किया, मगर उसकी ज़बान ने उसका साथ नहीं दिया। उसका निचला होंठ थोड़ा काँप रहा था। थोड़ी देर बाद, मेरी आँखों से ओझल होने से पहले उसने दो बार हॉर्न बजाया और हाथ हिलाया। बदले में, मैंने भी हाथ हिलाकर उसे विदा कर दिया। फिर कभी हमारी मुलाक़ात नहीं हुई।

मैं होटल के कमरे में वापस आया और देखा कि सोहराब बिस्तर पर लेटा हुआ था, घुटनों को मोड़कर, कुछ इस तरह कि उसके शरीर ने अंग्रेज़ी के C अक्षर का आकार ले लिया था। उसकी आँखें बंद थीं, मगर यह कहना मुश्किल था कि वह सो रहा था कि नहीं। टीवी उसने बंद कर दिया था। मैं अपने पलंग पर बैठ गया और माथे से ठंडा पसीना पोंछने लगा। दर्द मेरे चेहरे पर साफ़-साफ़ उभर आया था। मैं सोचने लगा कि पता नहीं और कब तक मुझे उठते, बैठते, बिस्तर पर लेटते समय दर्द झेलना पड़ेगा। मैं सोचने लगा कि पता नहीं कब मैं दोबारा ठोस खाना खा पाऊँगा। मैं सोचने लगा कि अपने बग़ल वाले बिस्तर पर लेटे, गहरा मानसिक आघात झेल रहे इस छोटे-से बच्चे का क्या करूँ। हालाँकि मेरा एक अंश पहले से ही जानता था कि क्या करना है।

ड्रेसर पर पानी से भरा जग रखा था। मैंने एक गिलास भरा और आर्मंड की दी हुईं दर्द निवारक गोलियों (पेन किलर) में से दो गटक लीं। पानी गर्म और कड़वा था। फिर मैंने खिड़की के पर्दे खींचे, वापस बिस्तर पर आया और लेट गया। मुझे लगा कि जैसे मेरी छाती फट जाएगी। जब दर्द थोड़ा कम हुआ और मैं फिर से साँस लेने की हालत में आया, तब मैंने कंबल को अपनी छाती पर खींच लिया और आर्मंड की गोलियों के असर करने का इंतज़ार करने लगा।

जब मैं सोकर उठा, तो कमरे में कदरन अँधेरा था। खिड़की के पर्दों के बीच से झाँकते

आसमान का रंग बैंगनी था, जो बता रहा था कि शाम अब रात में बदलने वाली थी। मेरे बिस्तर की चादर पसीने से भीग गई थी और मेरा सर भी दर्द कर रहा था। इसका मतलब था कि मैं फिर से सपने देख रहा था, मगर वो कैसे सपने थे यह मुझे याद नहीं आया।

मेरा दिल धक्क से रह गया जब मैंने सोहराब के बिस्तर की तरफ़ देखा और पाया कि वह खाली था। मैंने उसका नाम पुकारा। मगर मेरी आवाज़ ने मुझे ही चौंका दिया। मेरे दिमाग़ ने काम करना बंद कर दिया था। मैं अपने घर से हज़ारों मील दूर एक होटल के अंधेरे कमरे में बैठा था, मेरा शरीर मेरा साथ नहीं दे रहा था, और मैं धड़कते दिल के साथ उस लड़के का नाम पुकार रहा था जिससे मैं अभी कुछ दिन पहले ही मिला था। मैंने फिर उसका नाम पुकारा, मगर इस बार भी कोई जवाब नहीं मिला। मैं लड़खड़ाते हुए पलंग से उतरा, बाथरूम में देखा, कमरे के बाहर जो संकरा सा गलियारा था उसमें भी देख लिया। सोहराब गायब था।

मैंने दरवाज़े को बाहर से ताला लगाया, एक हाथ से सहारे के लिए वॉकवे के किनारे लगी रेलिंग को पकड़ा, और लंगड़ाते हुए लॉबी में मैनेजर के दफ़्तर की ओर बढ़ा। लॉबी के कोने में एक धूल से अटा पड़ा नकली ताड़ का पेड़ खड़ा था और दीवार पर उड़ते हुए गुलाबी फ्लेमिंगो वाला वॉलपेपर था। मैंने देखा कि होटल मैनेजर फॉर्मिका-टॉप वाले चेक-इन काउंटर के पीछे बैठा अखबार पढ़ रहा था। मैंने सोहराब का हुलिया बयान करके उससे पूछा कि क्या उसने उसे कहीं देखा था? उसने अखबार नीचे रख दिया और आँखों पर चढ़ा रखा चश्मा भी उतार दिया। ज़्यादा तेल डले चिपचिपे बालों वाले उस आदमी के चेहरे पर एक चौकौर मूँछ थी, जिसके बालों में कहीं-कहीं सफेदी झलक रही थी। उसके बदन से एक उष्णकटिबंधीय फल के जैसी गंध आ रही थी–कौन सा फल था वह, यह मगर मुझे समझ नहीं आ रहा था।

“उफ़ ये लड़के! इन्हें पूरा समय इधर से उधर भागते रहना पसंद है,” उसने आह भरते हुए कहा। “मेरे तीन-तीन हैं। सारा दिन इधर-उधर भागते रहते हैं, अपनी अम्मी को परेशान करते रहते हैं।” वह मेरे जबड़े को गौर से देखते हुए अखबार का पंखा बनाकर अपने चेहरे पर हवा करने लगा।

“उसे ऐसे ही इधर-उधर भागते रहने की आदत नहीं है,” मैंने कहा। “और हम तो यहाँ के हैं भी नहीं। मुझे डर है वह कहीं भटक न जाए।”

उसने ‘हाँ, क्यों नहीं’ के अंदाज़ में सिर हिलाया और बोला, “अगर ऐसा है तो फिर आपको उस पर नज़र रखनी चाहिए थी न जनाब।”

“आप ठीक कह रहे हैं,” मैंने कहा, “मगर मेरी आँख लग गई थी, और जब मैं जागा तो वह कमरे में नहीं था।”

“लड़कों का बहुत ध्यान रखना पड़ता है।”

“हाँ,” मैंने कहा। मेरी नब्ज़ तेज़ हो रही थी। ‘आख़िर यह आदमी मेरी फ़िक्र और

आशंका को ऐसे कैसे नज़रअंदाज़ कर सकता है?' मैंने मन ही मन सोचा। उसने अखबार को दूसरे हाथ में थामा और फिर से पंखा झलने लगा।

"उन्हें अब साइकिल चाहिए।"

"किन्हें?"

"मेरे लड़कों को," उसने कहा। "वे कह रहे हैं, 'डैडी, डैडी, प्लीज़ हमें साइकिलें दिलवा दो, फिर हम आपको परेशान नहीं करेंगे। प्लीज़, डैडी!'" वह थोड़ा सा हँसा। "साइकिलें! कसम से कह रहा हूँ, उनकी अम्मी मुझे मार डालेगी।"

मुझे बुरे-बुरे ख़याल आने शुरू हो गए थे। अपनी कल्पनाओं में मुझे दिखने लगा कि सोहराब किसी खाई में पड़ा है, या किसी कार की डिक्की में बंद है और उसके हाथ-पैर रस्सी से बँधे हैं जबकि मुँह में कपड़ा ठुंसा है। मैं नहीं चाहता था कि मेरे हाथ उसके ख़ून से रंगे जाएँ। उसके भी ख़ून से। "प्लीज़..." मैंने कहा। मैंने आँखें सिकोड़कर उसकी आधी बाँह वाली नीली सूती शर्ट के लैपल पर लगे टैग पर उसका नाम पढ़ा। "मिस्टर फ़य्याज़, क्या आपने उसे देखा है?"

"लड़के को?"

मैंने बड़ी मुश्किल से अपने गुस्से को काबू किया। "हाँ, लड़के को! उस लड़के को जो मेरे साथ आया था। ख़ुदा के वास्ते बताइए, आपने उसे कहीं देखा है या नहीं?"

उसका पंखा झलना रुक गया। आखें सिकुड़ गईं। "मुझ पर भड़कने की ज़रूरत नहीं है, दोस्त। मैंने नहीं गुमाया है उसे।"

उसकी बात सही थी, मगर तब भी मैं अपने चेहरे को तमतमाने से नहीं रोक पाया। "ओके। आप सही हैं। मैं गलत हूँ। मेरी गलती है। अब तो बता दीजिए, आपने देखा है उसे कहीं?"

"माफ़ कीजिए, मैंने ऐसे किसी लड़के को नहीं देखा।" उसने रुखाई से कहा और वापस आँखों पर चश्मा चढ़ाकर अखबार खोल लिया।

मैं तक़रीबन एक मिनट तक वहीं काउण्टर पर खड़ा रहा। मेरा मन कर रहा था कि ज़ोर से चिल्लाऊँ, मगर मैं ज़ब्त किए रहा। फिर जैसे ही मैं लॉबी से बाहर जाने को हुआ, उसने कहा, "आपको कोई आईडिया है कि वह कहाँ जा सकता है?"

"नहीं," मैंने कहा। मैं थका हुआ महसूस कर रहा था। थका हुआ और डरा हुआ।

"उसको किसी चीज़ का शौक है?" उसने पूछा। उसने अब अखबार तह करके एक तरफ़ रख दिया था। "मिसाल के तौर पर मेरे ही लड़कों को लें, वे अमरीकी एक्शन फिल्मों के लिए कुछ भी करेंगे, खासकर उन फिल्मों के लिए जिनमें हीरो वो है...क्या नाम है उसका...अर्नोल्ड?? व्हाट्सएसेनगर—"

"मस्जिद!" मैंने कहा। "बड़ी मस्जिद।" मुझे याद आया कि जब हम मस्जिद के पास से गुज़रे थे तो कैसे अचानक सोहराब अपनी उदासीनता से बाहर आ गया था, कैसे वह खिड़की से बाहर झुककर लगातार उसे देखे जा रहा था।

"शाह फैज़ल?"

"हाँ। क्या आप मुझे वहाँ ले जा सकते हैं?"

"क्या आपको पता है कि वह दुनिया की सबसे बड़ी मस्जिद है?" उसने पूछा।

"नहीं, मगर--"

"उसका अकेला सेहन (कोर्टयार्ड) ही इतना बड़ा है कि जिस में चालीस हज़ार लोग बैठ सकते हैं।"

"क्या आप मुझे वहाँ ले जा सकते हैं?"

"यहाँ से बमुश्किल एक किलोमीटर ही तो है," उसने कहा। मगर कहने के साथ ही वह काउण्टर से पीछे हटने लगा था।

"मैं आपको इसके पैसे दूँगा," मैंने कहा।

उसने एक गहरी साँस छोड़ी और सिर झटका। "रुकिए, आता हूँ।" वह काउण्टर के पीछे बने कमरे में चला गया और जब वापस आया तो उसकी आँखों पर कोई दूसरा चश्मा था, हाथों में गाड़ी की चाबियाँ थीं, और उसके पीछे-पीछे एक छोटी और मोटी औरत नारंगी रंग की साड़ी पहने चली आ रही थी। उसने आकर काउण्टर पर उसकी सीट संभाल ली। "मैं आपसे कोई पैसे नहीं लूँगा," मैनेजर ने मेरे बग़ल से गुज़रकर बाहर की तरफ़ क़दम बढ़ाते हुए कहा। "मैं आपको ले चलूँगा क्योंकि मैं भी आपकी ही तरह एक बाप हूँ।"

मुझे लगा था कि हम देर रात तक शहर की सड़कों की ख़ाक छानते रहेंगे। मन ही मन मैं ख़ुद को फ़य्याज़ की खा जाने वाली नज़रों के सामने पुलिस को फोन लगाते और उन्हें सोहराब का हुलिया बताते देख रहा था, पुलिस अफसर को थकी हुई आवाज़ और उदासीन अंदाज़ में औपचारिक सवाल करते सुन रहा था, और उन औपचारिक सवालों की सतह के नीचे दबे इस अनौपचारिक भाव को भी महसूस कर पा रहा था कि 'किसे परवाह है एक और अफ़ग़ान बच्चे के मर जाने की।' मगर ख़ुशकिस्मती से ऐसी नौबत नहीं आई। हमें वह मस्जिद से तक़रीबन सौ गज दूर, आधी भरी पार्किंग में, घास के एक टीले पर बैठा मिल गया। फ़य्याज़ ने टीले के बग़ल में गाड़ी रोकी, मुझे उतरने का इशारा किया और बोला, "मुझे वापस जाना है।"

"कोई दिक्कत नहीं। हम लोग पैदल-पैदल आ जाएँगे," मैंने कहा। "शुक्रिया, फ़य्याज़ साहब। सच में।"

जब मैंने गाड़ी से उतरकर दरवाज़ा बंद किया तो उसने पैसेंजर सीट पर झुकते हुए

खिड़की से सिर बाहर निकाला और बोला, "क्या मैं आपसे कुछ कह सकता हूँ?"

"जी, ज़रूर।"

गहराती शाम के अंधेरे में चेहरे के नाम पर मुझे बस उसका चश्मा नज़र आ रहा था, जो फीकी पड़ती रोशनी को रिफ्लेक्ट कर रहा था। "आप अफ़ग़ानियों के बारे में, मैंने एक बात नोट की है कि...कि आप लोग थोड़े लापरवाह किस्म के हैं।"

मैं थका हुआ भी था और दर्द से बेहाल भी। मेरा जबड़ा तड़क रहा था। और मेरे सीने और पेट के घाव तो ऐसा अहसास करा रहे थे मानो किसी ने मेरी चमड़ी के नीचे काँटेदार तार घुसा दिया हो। मगर फिर भी मेरी हँसी छूट गई।

"क्या...ऐसा मैंने क्या..." फ़य्याज़ कह रहा था, मगर तब तक तो मैं खिलखिलाकर हँसने लगा था, मेरे तारों से कसे मुँह से बेसाख्ता ज़ोरदार कहकहे छूट रहे थे।

"निरे पागल लोग हैं," कहकर उसने गाड़ी आगे बढ़ा दी। मैं शाम की मद्धम रोशनी में लाल चमकतीं गाड़ी की टेल-लाइटों को देखता रहा और हँसता रहा।

"तुमने तो डर के मारे मेरी जान ही निकाल दी थी," मैंने सोहराब के बग़ल में बैठते हुए कहा। झुकने के कारण मेरे मुँह से हल्की सी कराह निकल गई।

वह मस्जिद की तरफ़ देख रहा था। शाह फैज़ल मस्जिद का आकार एक विशाल तंबू जैसा था। गाड़ियाँ आतीं थीं, चली जातीं थीं; सफेद पोशाकें पहने लोग इबादत के लिए अन्दर जाते थे, बाहर आते थे। हम खामोश बैठे रहे–मैं एक पेड़ से टिककर बैठा था, जबकि मेरे बग़ल में सोहराब घुटनों को छाती से चिपकाकर। हमने अज़ान सुनी, और रात का अँधेरा घिरते ही मस्जिद की सैकड़ों लाइटें जलती देखीं। मस्जिद अंधेरे में हीरे की तरह चमक रही थी। उसकी रोशनियों से आसमान भी जगमगा उठा था और सोहराब का चेहरा भी।

"आप कभी मज़ार-ए-शरीफ़ गए हैं?" सोहराब ने पूछा। उसने अपनी ठोड़ी घुटनों पर टिका रखी थी।

"बहुत अरसे पहले। ज़्यादा कुछ याद नहीं है अब।"

"मैं जब छोटा था तब बाबा मुझे वहाँ ले गए थे। अम्मी जान और सासा भी गए थे। बाबा ने मुझे बाज़ार से एक बन्दर ख़रीदकर दिया था। असली वाला नहीं, वो वाला जिसमें हवा भरके फुलाते हैं। कत्थई रंग का था और उसने एक बो टाई लगाई हुई थी।"

"मैं जब छोटा था तब मेरे पास भी ऐसा ही एक खिलौना था।"

"बाबा मुझे ब्लू मस्जिद (सुल्तान अहमद मस्जिद) भी लेकर गए थे," सोहराब ने कहा। "मुझे याद है, वहाँ मस्जिद के बाहर ढेर सारे कबूतर थे और वे इंसानों से डरते भी नहीं थे। हमारे पास आ जाते थे। सासा ने मुझे नान के छोटे-छोटे टुकड़े करके दिए, जिन्हें मैं कबूतरों को खिलाने लगा। देखते ही देखते और भी बहुत सारे कबूतर मेरे

आसपास इकट्ठे होकर गुटरगूं करने लगे। बहुत मज़ा आया था मुझे।"

"तुम्हें अपने वालदैन (माँ-बाप) की बहुत याद आती होगी," मैंने कहा। पता नहीं उसने अपने वालदैन को तालिबानियों द्वारा घसीटकर सड़क पर ले जाते देखा था या नहीं। मैं दुआ कर रहा था कि न देखा हो।

"क्या आपको अपने वालदैन की याद आती है?" उसने घुटनों पर गाल रखकर मेरी तरफ़ देखते हुए पूछा।

"क्या मुझे अपने वालदैन की याद आती है? वो क्या है कि अपनी वालिदा को तो मैंने कभी देखा ही नहीं। मेरे बाबा कुछ बरस पहले ही गुज़रे हैं, और, हाँ, मैं उन्हें याद करता हूँ। कभी-कभी तो बहुत ज़्यादा।"

"क्या आपको याद है कि वह कैसे दिखते थे?"

मुझे बाबा की मोटी गर्दन, उनकी काली आँखें, उनके बिखरे रहने वाले भूरे बाल याद आए। उनकी गोद में बैठकर मुझे ऐसा लगता था जैसे मैं किसी पेड़ के तने पर बैठा हूँ। "मुझे याद है कि वह कैसे दिखते थे," मैंने कहा। "और यह भी कि उनके बदन से कैसी ख़ुश्बू आती थी।"

"मैं उनके चेहरे भूलने लगा हूँ," सोहराब ने कहा। "क्या यह बुरी बात है?"

"नहीं," मैंने कहा। "समय के साथ ऐसा होता है।" मुझे कुछ सूझा। मैंने अपने कोट की सामने वाली जेब में देखा। मुझे उसमें हसन और सोहराब की वही पोलेरॉइड तस्वीर मिली। मैंने उसे उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "ये लो।"

वह तस्वीर को अपने चेहरे के एकदम क़रीब ले गया और उसे थोड़ा टेढ़ा किया ताकि मस्जिद की रोशनी उस पर पड़े। फिर देर तक उसे देखता रहा। मुझे लगा कि वह रो पड़ेगा, मगर नहीं रोया। उसने उसे दोनों हाथों में थामा और अपने अंगूठों को उसकी सतह पर फिराने लगा, मानो अपने बाबा को छूकर देखने की कोशिश कर रहा हो। मुझे एक बात याद आ गई जो मैंने कहीं पढ़ी थी, या शायद किसी को कहते सुना था: 'अफ़ग़ानिस्तान में बच्चे तो बहुत सारे हैं, मगर बचपन बहुत कम है।' आख़िर में उसने तस्वीर मेरी तरफ़ बढ़ा दी।

"तुम रखो," मैंने कहा। "यह तुम्हारी है।"

"तशाकोर," उसने कहा। उसने तस्वीर को एक बार फिर जी भर के देखा और अपनी जैकेट की जेब में रख लिया। तभी एक घोड़ागाड़ी 'टाप-टाप डिंग-डिंग' करती हमारे पास से गुज़री। घोड़े की गर्दन से छोटी-छोटी घंटियाँ लटक रही थीं, जो उसके हर क़दम के साथ बज उठती थीं।

"कुछ अरसे से मैं मस्जिदों के बारे में बहुत सोचने लगा हूँ," सोहराब ने कहा।

"मस्जिदों के बारे में क्या?"

उसने कंधे उचकाए। “बस ऐसे ही उनके बारे में सोचता रहता हूँ।” उसने अपना चेहरा घुटनों से ऊपर उठाया और सीधे मेरी आँखों में देखने लगा। अब वह रो रहा था, धीरे-धीरे, खामोशी से। “क्या मैं आपसे कुछ पूछ सकता हूँ, आमिर आगा?”

“ज़रूर।”

“क्या अल्लाह...” उसने कहना शुरू किया, पर उसका गला थोड़ा भर आया। “मैंने उस आदमी के साथ जो किया, उसके लिए क्या अल्लाह मुझे दोज़ख में डालेंगे?”

दिलासा देने के लिए मैंने उसके क़रीब जाने की कोशिश की, मगर वह चिंहुककर पीछे हट गया। मैंने भी ख़ुद को पीछे खींच लिया। “नहीं। हरगिज़ नहीं,” मैंने कहा। मैं उसे खींचकर अपने सीने से लगाना चाहता था, उसे बताना चाहता था कि दुनिया ने उसके साथ ज़्यादती है, उसने दुनिया के साथ नहीं।

उसकी रुलाई फूट पड़ना चाहती थी, मगर वह पूरी ताक़त लगाकर उसे रोके रखने की कोशिश कर रहा था।

“बाबा कहते थे कि बुरे लोगों को भी चोट पहुँचाना गलत है। क्योंकि वे लोग अभी अच्छाई से वाक़िफ़ नहीं हैं, और बुरे लोग भी कभी-कभी अच्छे बन जाते हैं।”

“ऐसा हमेशा नहीं होता, सोहराब।”

वह सवालिया नज़रों से मेरी तरफ़ देखने लगा।

“तुमने जिस आदमी को चोट पहुँचाई, उसे मैं बरसों से जानता हूँ,” मैंने कहा। “उस दिन उसके और मेरे बीच जो बातें हुईं उससे तुम्हें भी यह बात समझ आ गई होगी शायद। उसने एक बार पहले भी मुझे चोट पहुँचाने की कोशिश की थी, तब जब मैं तुम्हारी उम्र का था, मगर तुम्हारे बाबा ने मुझे बचा लिया था। तुम्हारे बाबा बहुत बहादुर थे और हमेशा मुझे मुसीबतों से बचाया करते थे, मेरे लिए सबसे लड़ते थे, मेरी ढाल बनकर खड़े रहते थे। इसीलिए एक दिन उस बुरे आदमी ने मेरी बजाए तुम्हारे बाबा को चोट पहुँचाई। बहुत बुरे तरीक़े से चोट पहुँचाई, और मैं...मैं उस दिन तुम्हारे बाबा को नहीं बचा सका।”

“लोग क्यों मेरे बाबा को चोट पहुँचाना चाहते थे?” सोहराब ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा। “वह तो कभी किसी के साथ बुरा बर्ताव नहीं करते थे।”

“तुम सही हो। तुम्हारे बाबा बहुत अच्छे आदमी थे। मगर मैं तुम्हें यही तो समझाने की कोशिश कर रहा हूँ, सोहराब जान, कि दुनिया में बुरे लोग भी हैं और कभी-कभी बुरे लोग हमेशा बुरे ही रहते हैं। कभी-कभी हमें उनके ख़िलाफ़ खड़ा होना ही पड़ता है। उस दिन उस आदमी के साथ तुमने जो किया, वह बरसों पहले मुझे उसके साथ करना चाहिए था। तुमने उसे वही दिया जिसका वो हकदार था, बल्कि वह तो और भी तगड़ी चोट का हकदार था।”

“क्या आपको लगता है कि बाबा मुझसे नाउम्मीद हैं?”

“लगता नहीं है बल्कि मैं जानता हूँ कि वह हरगिज़ भी तुमसे नाउम्मीद नहीं हैं,” मैंने कहा। “काबुल में तुमने जो भी किया, मेरी जान बचाने के लिए किया। और मैं जानता हूँ कि उसके लिए तुम्हारे बाबा को तुम पर नाज़ है।”

उसने अपनी शर्ट की आस्तीन से अपना चेहरा पोंछा। उसके होठों पर बना थूक का बुलबुला फूट गया। चेहरे को हथेलियों में छिपाए वह बड़ी देर तक रोता रहा। फिर जब उसके आँसू थमे तो रूँधे गले से बोला, “मुझे बाबा बहुत याद आते हैं, और अम्मी भी। और मुझे सासा और रहीम ख़ान साहब की भी बहुत याद आती है। मगर कभी-कभी मुझे लगता है कि अच्छा ही है कि वे अब...वे अब यहाँ नहीं हैं।”

“क्यों?” मैंने हौले से उसकी बाँह को छुआ। वह पीछे हट गया।

“क्योंकि--” उसने सिसकते और हिचकियाँ लेते हुए कहा, “क्योंकि मैं नहीं चाहता कि वे मुझे देखें...मैं बहुत गंदा हूँ।” उसने पल भर को रुककर साँस ली और फिर ज़ार-ज़ार रोने लगा। “मैं बहुत गंदा हूँ, पाप से भरा हूँ।”

“तुम गंदे नहीं हो, सोहराब,” मैंने कहा।

“उन आदमियों ने--”

“तुम बिल्कुल भी गंदे नहीं हो।”

“--उन्होंने गंदे काम...उस बुरे आदमी और दो और लोगों ने...गंदे काम किए... उन्होंने मेरे साथ गंदे काम किए।”

“तुम गंदे नहीं हो, और न ही पाप से भरे हो।” मैंने फिर से उसका हाथ छुआ, मगर वह फिर दूर छिटक गया। मैंने फिर से हाथ बढ़ाया, धीरे से, और उसे अपनी ओर खींचा। “मैं तुम्हें चोट नहीं पहुँचाऊँगा,” मैंने हौले से कहा। “वादा करता हूँ।” उसने थोड़ा विरोध किया। मगर फिर ढीला पड़ गया। उसने मुझे उसे अपनी ओर खींचने दिया और अपना सिर मेरी छाती पर टिका दिया। उसका छोटा सा शरीर हर सिसकी के साथ मेरी बाहों में सिमट रहा था।

एक ही स्तन से दूध पीने वाले लोगों के बीच एक रिश्ता होता है। अब, जब उस लड़के का दर्द आँसुओं की शक्ल में मेरी शर्ट में समा रहा था, तो मैंने देखा कि हमारे बीच भी एक रिश्ता पनप चुका चुका था। उस दिन उस कमरे में अस्सेफ़ के साथ जो कुछ हुआ था, उसने हमें हमेशा के लिए एक डोर से बाँध दिया था।

मैं बहुत दिनों से सही समय, सही पल की तलाश में था, ताकि उससे वह सवाल पूछ सकूँ जो लगातार मेरे दिमाग़ में घूम रहा था और रात-रात भर मुझे जगाए रखता था। मैंने तय किया कि यही वह सही पल था, अभी, यहीं, जब अल्लाह के दर की चमकीली रोशनी हमें रोशन कर रही थी।

"क्या तुम अमेरिका चलकर मेरे और मेरी खानुम के साथ रहना पसंद करोगे?"

उसने कोई जवाब नहीं दिया। वह मेरी शर्ट को आँसुओं से भिगोता रहा और मैंने उसे ऐसा करने दिया।

अगले एक हफ़्ते तक हम दोनों में से किसी ने भी उस बात का ज़िक्र नहीं किया जो मैंने उस दिन मस्जिद के सामने उससे पूछी थी, मानो वह सवाल कभी पूछा ही नहीं गया था। फिर एक दिन सोहराब और मैं एक टैक्सी लेकर 'दमन-ए-कोह' गए, जिसे कि 'पहाड़ की तलहटी' भी कहा जाता है। यह पर्यटक-स्थल मारगल्ला पहाड़ियों के बीच में बसा है और यहाँ से इस्लामाबाद का, इसकी साफ़-सुथरी और दोनों ओर पेड़ों से सजी सड़कों और सफ़ेद इमारतों का बड़ा अच्छा नज़ारा होता है। जब हम टैक्सी में बैठे थे तो हमारे ड्राइवर ने बताया था कि हम वहाँ से राष्ट्रपति भवन भी देख सकते थे। "अगर बारिश हुई हो और हवा साफ़ हो, तो आप रावलपिंडी से भी और आगे तक देख सकते हैं," उसने कहा था। मैं रियर-व्यू मिरर में देख रहा था कि बातें करने के साथ-साथ उसकी नज़रें लगातार मुझसे सोहराब की तरफ़ और सोहराब से मेरी तरफ़ घूम रही थीं। मैंने रियर-व्यू मिरर में अपना चेहरा भी देखा। यह अब पहले की तरह सूजा हुआ नहीं था, मगर घावों के चलते इस पर पीलापन आ गया था।

टैक्सी से उतरकर हम पिकनिक एरिया में पहुँचे और एक पेड़ की छाया में लगी बेंच पर जाकर बैठ गए। मौसम अच्छा था, न ज़्यादा गर्म और न ज़्यादा ठंडा। नीले आसमान में सूरज काफी ऊपर चढ़ आया था। आसपास की बेंचों पर लोग अपने दोस्तों और परिवार वालों के साथ बैठकर समोसे और पकौड़े खा रहे थे। कहीं रेडियो पर एक हिंदी गाना बज रहा था...किसी पुरानी फिल्म का...याद आ गया...शायद पाकीज़ा का। ढेर सारे बच्चे भी वहाँ मौजूद थे, जिनमें कई सोहराब की ही उम्र के थे, जो तरह-तरह के खेल खेलने में मस्त थे। उनकी खिलखिलाहट और किलकारियाँ माहौल को बड़ा ख़ुशगवार बना रही थीं। मुझे कर्तेह-सेह का वह यतीमखाना याद हो आया, ज़मान के दफ़्तर में मेरे पैरों के बीच से भागकर गया चूहा याद हो आया। अचानक ही मेरे सीने में गुस्से की एक तेज़ लहर उठने लगी, जिसने मुझे भी चौंका दिया। यह गुस्सा इस बात पर था कि मेरे मादर-ए-वतन के लोग किस तरह अपनी ही सरज़मीं को बर्बाद करने पर तुले थे।

मेरे मन में उठे इस गुस्से का असर मेरे चेहरे पर भी दिख रहा होगा शायद, तभी सोहराब ने मुझसे पूछा, "क्या हुआ?" मैंने जबरन मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा कि ऐसी कोई ख़ास बात नहीं थी।

हमने साथ लाए होटल के बाथरूम के तौलिए को पिकनिक टेबल पर फैलाया और उस पर ताश की गड्डी रखकर पंजपर खेलने लगे। उस पल में वहाँ होना मुझे अच्छा लग रहा था; अपने सौतेले भाई के बेटे के साथ बैठना, ताश खेलना, अपनी गर्दन पर सूरज की हल्की-हल्की गर्माहट को महसूस करना, और वातावरण में फैलीं ख़ुशियों की तरंगों को महसूस करना अपने आप में अलग ही सुख दे रहा था। वह गाना ख़त्म हो

गया था और उसकी जगह पर कोई दूसरा बजने लगा था, मगर यह मैंने पहले नहीं सुना हुआ था।

"देखो," सोहराब ने कहा। वह अपने हाथ के पत्तों से आसमान की तरफ़ इशारा कर रहा था। मैंने सर ऊपर उठाया तो एक बाज़ आकाश में गोल-गोल चक्कर लगाता नज़र आया। "मुझे नहीं पता था कि इस्लामाबाद में बाज़ भी हैं," मैंने कहा।

"मुझे भी नहीं," सोहराब ने कहा, उसकी आँखें बाज़ की उड़ान पर जमी हुई थीं। "आप जहाँ रहते हैं, वहाँ भी ये पाए जाते हैं?"

"सैन फ्रांसिस्को में? शायद हाँ। मगर शायद उतनी ज़्यादा तादाद में नहीं।"

"ओह," उसने कहा। मैं उम्मीद कर रहा था कि वह और भी कुछ पूछेगा, मगर उसने पत्ते रखते हुए कहा, "खाना खाएँ क्या?" मैंने काग़ज़ का थैला खोला और उसमें से उसका मीटबॉल सैंडविच निकालकर उसे दिया। मेरा खाना तो अभी भी वैसा ही चल रहा था – श्रीमती फ़य्याज़ से उधार लिए ब्लेंडर में डालकर बनाई गई केले और संतरे की स्मूदी। मैं स्ट्रॉ लेकर अपने खाने को पीने लगा। मगर थोड़ी-सी स्मूदी मेरे होंठों की किनारों से बाहर बह आई थी, जिसे देखकर सोहराब ने एक नैपकिन मेरी तरफ़ बढ़ाया और मुझे उससे अपने होंठ पोंछते देखने लगा। मैं उसे देखते देखकर मुस्करा दिया, बदले में वह भी मुस्कराने लगा।

"तुम्हारे बाबा और मैं भाई थे," मैंने कहा। अचानक ही यह बात मेरे मुँह से निकल गई। मैं यह बात उसे उसी रात बता देना चाहता था जिस रात हम मस्जिद के बाहर बैठे थे, मगर नहीं बता पाया था। मगर उसे जानने का हक़ था; मैं अब कुछ भी छिपाना नहीं चाहता था। "सौतेले भाई। सच में। हम एक ही बाबा के बेटे थे।"

सोहराब का सैंडविच चबाना रुक गया। उसने सैंडविच नीचे रख दिया। "बाबा ने कभी नहीं बताया कि उनका कोई भाई है।"

"क्योंकि उन्हें ख़ुद नहीं पता था।"

"क्यों नहीं पता था?"

"किसी ने उन्हें बताया ही नहीं," मैंने कहा। "मुझे भी किसी ने नहीं बताया था। मुझे भी अभी-अभी ही पता चली यह बात।"

सोहराब ने यूँ पलकें झपकाईं मानो पहली बार मुझे देख रहा था, या कहूँ कि पहली बार ठीक से से देख रहा था। "मगर लोगों ने बाबा और आपसे यह बात क्यों छिपाकर रखी?"

"जब मुझे यह बात पता चली थी, तब मेरे दिमाग़ में भी यही सवाल आया था। और बाद में मुझे उसका जवाब भी मिला, मगर उसे अच्छा जवाब नहीं कहा जा सकता। मैं बस यही कह सकता हूँ कि उन्होंने हमें नहीं बताया क्योंकि तुम्हारे बाबा और मेरा...

हमारा भाई-भाई होना किसी को मंज़ूर नहीं होता।”

“क्योंकि वह हज़ारा थे?”

“हाँ।” यह कहते हुए मेरे लिए उससे नज़रें मिलाकर रखना बहुत मुश्किल हो गया था।

“क्या आपके बाबा...” उसने अपने सैंडविच की तरफ़ देखते हुए कहा, “क्या आपके बाबा आपको और मेरे बाबा को बराबर प्यार करते थे?”

मुझे बहुत पहले का वह दिन याद आया जब घरघा झील के पानी पर पत्थर को ज़्यादा से ज़्यादा बार टप्पे खिलाने के खेल में हसन के मुझसे जीत जाने पर बाबा ने उसकी पीठ थपथपाई थी। मुझे वह दिन भी याद आया जब सर्जरी के बाद हसन के होंठ से पट्टी खुली थी और उसे देखकर बाबा का चेहरा ख़ुशी से खिल उठा था। “मुझे लगता है कि वह हमसे बराबर मगर अलग-अलग ढंग से प्यार करते थे।”

“क्या मेरे बाबा उनके लिए शर्मिंदगी की वजह थे?”

“नहीं,” मैंने कहा। “मेरे ख़याल से वह ख़ुद से ही शर्मिंदा थे।”

उसने सैंडविच उठा लिया और चुपचाप खाने लगा।

हम लोग शाम तक वहाँ रुके। गर्मी की वजह से हम थोड़ी थकान महसूस कर रहे थे, मगर वह थकान हमें अच्छी लग रही थी। रास्ते भर मैं महसूस करता रहा कि सोहराब मुझे ही देख रहा था। मैंने एक जगह कॉलिंग कार्ड बेचने वाली एक दुकान के सामने टैक्सी रुकवाई और ड्राईवर को पैसे और टिप देकर एक कॉलिंग कार्ड (फोन लगाने के लिए) ख़रीद लाने को कहा।

उस रात हम दोनों अपने-अपने बिस्तरों पर लेटे टीवी पर एक टॉक शो देख रहे थे। काली-लंबी दाढ़ी और सफेद पगड़ी वाले दो मौलवी बैठकर दुनिया भर से आ रहे मज़हबपरस्तों के फोन कॉल्स सुन रहे थे और उनके सवालों के जवाब दे रहे थे। फिनलैंड से अयूब नाम के एक आदमी ने बताया कि उसका नयी उम्र का बेटा अपनी बैगी पैंट इतनी नीचे खिसकाकर पहनता था कि अंडरवियर की सीम दिखाई देती थी। वह जानना चाहता था कि क्या इसके चलते उसे दोजख में जाना पड़ सकता था?

“मैंने एक बार सैन फ्रांसिस्को की एक तस्वीर देखी थी,” सोहराब ने कहा।

“अच्छा!”

“उसमें एक लाल पुल और एक नुकीली चोटी वाली इमारत थी।”

“तुम्हें वहाँ की सड़कें भी देखनी चाहिए,” मैंने कहा।

“ऐसी क्या खासियत है उनमें?” वह अब मेरी तरफ़ देख रहा था। टीवी के परदे पर दिख रहा था कि वे दोनों मौलवी आपस में चर्चा कर रहे थे।

"वे इतनी खड़ी चढ़ाई वाली हैं कि जब आप चलते हैं तो आपको बस अपनी कार का हुड और आसमान ही दिखाई देता है," मैंने कहा।

"फिर तो उन पर चलने में बड़ा डर लगता होगा," उसने कहा। उसने मेरी तरफ़ करवट ले ली। अब उसका चेहरा मेरी तरफ़ था और पीठ टीवी की तरफ़।

"शुरू-शुरू में ही लगता है," मैंने कहा। "फिर तो आदत हो जाती है।"

"वहाँ बर्फ़ गिरती है?"

"नहीं, मगर कोहरा बहुत होता है। तुम्हें वो लाल पुल याद है जो तुमने तस्वीर में देखा था?"

"हाँ।"

"कभी-कभी सुबह में कोहरा इतना घना होता है कि आपको बस दो टॉवरों की नोक ही दिखाई देती हैं।"

"ओह!" उसने मुस्कराते हुए कहा। उसकी मुस्कान में बालसुलभ हैरानी थी।

"सोहराब?"

"हाँ।"

"मैंने उस रात तुमसे एक बात पूछी थी, उस बारे में तुमने कुछ सोचा?"

उसकी मुस्कान गायब हो गई। वह वापस पीठ के बल लेट गया। हाथों को मोड़कर तकिए की तरह सिर के नीचे रख लिया। टीवी पर मौलवियों ने फैसला सुना दिया था कि अयूब के लड़के को इतने वाहियात तरीक़े से पैंट पहनने के लिए दोज़ख में जाना ही पड़ेगा। उनके मुताबिक़ ऐसा हदीस में लिखा था। "मैंने उस बारे में सोचा था," सोहराब ने कहा।

"और?"

"यह ख़याल मुझे डराता है।"

"मुझे पता है कि यह थोड़ा डरावना है," मैंने उम्मीद के उस ढीले धागे को पकड़ते हुए कहा। "मगर तुम बहुत जल्दी अंग्रेज़ी सीख लोगे और जल्दी ही तुमको आदत—"

"नहीं, मेरा वो मतलब नहीं था। उस बात से भी डर लगता है, मगर..."

"मगर क्या?"

उसने फिर से मेरी तरफ़ करवट ले ली। अपने घुटने मोड़ लिए। "अगर आप कभी मुझसे तंग आ गए तो? अगर आपकी खानुम को मैं अच्छा नहीं लगा तो?"

मैं थोड़ी मशक्कत करके अपने बिस्तर से उठा और उसके बिस्तर के पास जाकर

उसके सिरहाने बैठ गया। "मैं तुमसे कभी तंग नहीं आऊँगा, सोहराब," मैंने कहा। "कभी नहीं। यह मेरा वादा है। तुम मेरे भतीजे हो, याद है न? और सोराया जान, वह तो बहुत ही दुलार करने वाली औरत हैं। मेरा यकीन करो, वह तुम्हें बहुत पसंद करेंगी। यह भी मेरा वादा है तुमसे।" मैंने आधी उम्मीद से एक काम किया। मैंने हाथ बढ़ाकर उसका हाथ थाम लिया। वह हल्का सा सख्त हुआ, मगर हाथ छुड़ाया नहीं।

"मैं फिर से किसी यतीमखाने में नहीं जाना चाहता," उसने कहा।

"मैं ऐसा कभी नहीं होने दूँगा। मेरा वादा है तुमसे।" मैंने उसके हाथ को अपने दोनों हाथों में भर लिया। "मेरे साथ घर चलो।"

उसकी आँखों से आँसू बह-बहकर तकिए को भिगो रहे थे। बड़ी देर तक उसने कुछ नहीं कहा। फिर उसने भी नरमी से मेरा हाथ दबा दिया। और हाँ में सर हिला दिया। उसने हाँ कर दी।

चौथी कोशिश में जाकर लाइन मिली। तीन बार घंटी बजी और फिर उसने फोन उठा लिया। "हैलो?" इस्लामाबाद में इस वक़्त शाम के 7:30 का वक़्त हो रहा था, और तक़रीबन यही वक़्त कैलीफोर्निया में सुबह का हो रहा होगा। इसका मतलब था कि सोराया को जागे हुए एक घंटा हो चुका होगा और वह स्कूल जाने के लिए तैयार हो रही होगी।

"मैं हूँ," मैंने कहा। मैं अपने बिस्तर पर बैठा था और सोहराब को सोते हुए देख रहा था।

"आमिर!" वह लगभग चीखते हुए बोली। "तुम ठीक तो हो न? कहाँ हो तुम?"

"मैं पाकिस्तान में हूँ।"

"इतने दिनों से फोन क्यों नहीं किया? पता है फ़िक्र के मारे मेरा क्या हाल हो गया है! तुम्हारी खाला जमीला तुम्हारे लिए हर दिन दुआ कर रही हैं, नज़्र कर रही हैं।"

"माफ़ी चाहता हूँ पहले कॉल नहीं कर पाया। मगर अब मैं ठीक हूँ।" मैं उससे कहकर आया था कि हफ्ते भर में लौट आऊँगा, ज़्यादा से ज़्यादा दो हफ़्तों में। मगर अभी महीने भर से ऊपर हो चला था। मैं मुस्करा दिया। "और खाला जमीला से कहना कि भेड़ों को मारना बंद कर दें।"

"'अब ठीक हूँ' से तुम्हारा क्या मतलब है? और तुम्हारी आवाज़ को क्या हुआ है?"

"अब इस बारे में फ़िक्र मत करो। मैं ठीक हूँ। सच्ची। सोराया, मेरे पास तुम्हें सुनाने के लिए एक सच्ची कहानी है, वह कहानी जो मुझे बहुत पहले ही सुना देनी चाहिए थी। मगर उससे पहले मैं तुम्हें एक और बात कहना चाहता हूँ।"

"क्या?" उसने कहा, उसकी आवाज़ अब धीमी और सतर्क हो गई थी।

"मैं अकेले घर नहीं आ रहा हूँ। अपने साथ एक छोटे-से लड़के को भी ला रहा हूँ।" इतना कहकर मैं कुछ पल ठहरा। "मैं चाहता हूँ कि हम उसे गोद ले लें।"

"क्या?"

मैंने अपनी घड़ी पर नज़र डाली। "इस अहमकाना कॉलिंग कार्ड में सिर्फ़ सत्तावन मिनटों का बैलेंस बचा है और मुझे तुम्हें बहुत कुछ बताना है। कहीं बैठ जाओ।" मैंने एक कुर्सी के पायों को लकड़ी के फर्श पर तेजी से घसीटे जाते सुना।

"अब बोलो," उसने कहा।

फिर मैंने वो किया जो अपनी शादीशुदा ज़िन्दगी के पंद्रह सालों में कभी नहीं किया था। मैंने अपनी बीवी को सबकुछ बता दिया। सबकुछ। पिछले पंद्रह बरसों में, मैंने इस पल की कल्पना कई बार की थी, मगर इसका सामना करने से डरता रहा, लेकिन अब जब मैं बोल रहा था, मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे सीने से कोई बोझ उतर रहा हो। मैंने कल्पना की कि सोराया ने भी हमारी खस्तेगरी की रात को तब कुछ ऐसा ही अनुभव किया होगा जब उसने मुझे अपने अतीत के बारे में बताया था।

जब मेरी कहानी ख़त्म हुई तो मैंने पाया कि वह रो रही थी।

"तुम क्या सोचती हो?" मैंने पूछा।

"मुझे समझ ही नहीं आ रहा कि क्या सोचूँ, आमिर। तुमने एकदम से इतना कुछ बता दिया है।"

"मैं समझ सकता हूँ।"

मैंने उसे नाक सुड़कते हुए सुना। "मगर मुझे इतना समझ आ रहा है कि तुम्हें उसे घर लाना होगा। मैं चाहती हूँ कि तुम ऐसा ही करो।"

"पक्का?" मैंने अपनी आँखें बंद कर लीं और मुस्कराते हुए कहा।

"पक्का?" उसने कहा। "आमिर, वह तुम्हारा कौम है, तुम्हारा परिवार है, इस नाते वह मेरा भी कौम है। यकीनन पक्का। तुम उसे सड़क पर नहीं छोड़ सकते।" कुछ पल वह ख़ामोश रही। "कैसा है वह?"

मैंने सोते हुए सोहराब को देखा। "प्यारा है, और बहुत पाक-साफ़ भी।"

"कौन उसे दोष दे सकता है?" उसने कहा। "मैं उसे देखना चाहती हूँ, आमिर। मैं सच में ऐसा चाहती हूँ।"

"सोराया?"

"हाँ।"

"दोस्तत दारुम।" आई लव यू।

"मैं भी तुमसे उतना ही प्यार करती हूँ, आमिर" उसने कहा। उसके शब्दों में छिपी मुस्कान मैं सुन सकता था। "और संभलकर रहना।"

"रहूँगा। अच्छा, एक बात और। जनरल साहब और खाला जमीला को मत बताना कि वह कौन है। अगर बताना होगा तो मैं ही बताऊँगा।"

"ठीक है।"

हमने रिसीवर रख दिए।

इस्लामाबाद में अमरीकी दूतावास के बाहर लॉन की घास बड़े क़रीने से कटी हुई थी, बीच-बीच में, गोलाकार टुकड़ों में फूलों के गुच्छे खिले हुए थे, और किनारे-किनारे खड़ी झाड़ियाँ थीं। इसकी इमारत भी इस्लामाबाद की ज़्यादातर इमारतों की तरह ही थी: सपाट और सफ़ेद। वहाँ तक पहुँचने के लिए हम कई सारे रोड ब्लॉक्स (सड़क पर खड़े किए गए अवरोध) से गुज़रे। मेटल डिटेक्टर से गुज़रते वक़्त मेरे जबड़े में लगे तारों की वजह से बीप बज उठने के चलते तीन अलग-अलग जगहों पर सुरक्षा अधिकारियों ने मेरे शरीर की तलाशी ली। आख़िर-कार जब हम बाहर की गर्मी को पीछे छोड़कर दूतावास भवन के भीतर पहुँचे तो एयर-कंडीशनिंग की ठंडी हवा मेरे चेहरे को बर्फ़ीले पानी की फुहार की तरह मालूम हुई। लॉबी में पहुँचकर जब मैंने रिसेप्शन डेस्क के पीछे मौजूद सेक्रेटरी को–जो कि पचास के आसपास की, दुबले-पतले चेहरे और सुनहरी बालों वाली एक मोहतरमा थीं–अपना नाम बताया तो वह मुस्करा दीं। उन्होंने बेज रंग का ब्लाउज और काली पैंट पहनी हुई थी। पिछले कई हफ़्तों में वह पहली मोहतरमा थीं जिन्हें मैं बुर्के या सलवार-कमीज़ से इतर कपड़ों में देख रहा था। वह अपनी पेंसिल के इरेज़र वाले सिरे को डेस्क पर ठकठकाते हुए अपॉइंटमेंट लिस्ट में मेरा नाम देखने लगीं। नाम मिलते ही उन्होंने मुझे बैठने के लिए कहा।

"क्या आप नींबू पानी लेंगे?" उन्होंने पूछा।

"नहीं, मैं कुछ नहीं लूँगा, थैंक यू," मैंने कहा।

"और आपके साहबज़ादे?"

"माफ़ कीजिएगा?"

"ये हसीन और ज़हीन नौजवान," उन्होंने सोहराब की तरफ़ देखकर मुस्कराते हुए कहा।

"ओह। जी ज़रूर, थैंक यू।"

सोहराब और मैं जाकर रिसेप्शन डेस्क के सामने पड़े काले चमड़े के सोफे पर बैठ गए। हमारी बग़ल में एक ऊँचा अमरीकी झंडा लहरा रहा था। सोहराब ने सोफे के सामने रखी कॉफ़ी-टेबल के काँच के टॉप पर रखीं पत्रिकाओं में से एक उठा ली और उसके पन्ने उलटने-पलटने लगा। वह सिर्फ़ उलट-पुलट रहा था, देख कुछ भी नहीं रहा

था।

"क्या?" सोहराब ने पूछा।

"सॉरी?"

"आप मुस्करा क्यों रहे थे?"

"मैं तुम्हारे बारे में सोच रहा था," मैंने कहा।

वह थोड़े नर्वस ढंग से मुस्कराया। फिर एक दूसरी पत्रिका उठा ली और तीस सेकण्ड्स के अन्दर उसके भी सारे पन्ने पलट डाले। "डरो मत," मैंने उसकी बाँह को छूते हुए कहा। "ये दोस्तों की तरह पेश आने वाले लोग हैं। इत्मीनान रखो।" अच्छा होता अगर अपनी इस सलाह पर मैं ख़ुद भी अमल कर पाता। मैं ख़ुद बार-बार पहलू बदल रहा था, जूते के फीतों को बार-बार खोल रहा था, बंद कर रहा था। तभी सेक्रेटरी मोहतरमा ने बर्फ़ डले नींबू पानी का एक बड़ा गिलास लाकर कॉफी टेबल पर रखा। "यह लीजिए।"

सोहराब शर्मीले ढंग से मुस्कराया और फिर अंग्रेज़ी में बोला, "थैंक यू वैरी मच।" उसके मुँह से यह कुछ इस इस तरह सुनाई दिया: "टैंक यू वेरी मैच।" उसने मुझे बताया था कि उसे बस इतनी ही अंग्रेज़ी आती थी। और एक वाक्य और: "हैव ए नाइस डे।"

सेक्रेटरी मोहतरमा हँस पड़ीं। "यू आर मोस्ट वेलकम," उन्होंने भी अंग्रेज़ी में जवाब दिया। और फिर वह ऊँची एड़ी की सैंडल से फर्श को ठकठकाती हुईं वापस डेस्क पर चली गईं।

"हैव ए नाइस डे।" सोहराब ने धीरे से कहा।

रेमंड एंड्रयूज़ एक छोटे कद का आदमी था, जिसके हाथ भी उसी अनुपात में छोटे थे। मैंने देखा कि उसके हाथों के नाख़ून सलीके से कटे हुए थे और अनामिका उंगली (तीसरे नंबर की उंगली) में शादी की अंगूठी थी। उसके हाथ मिलाने का अंदाज़ दोस्ताना तो छोड़िए, तमीज़दार भी नहीं मालूम हुआ मुझे। 'हमारी किस्मत इन्हीं हाथों में है,' मैंने सोहराब के साथ रेमंड की मेज़ के सामने रखी कुर्सियों पर बैठते हुए मन ही मन सोचा। रेमंड के पीछे दीवार पर 'लेस मिज़रेबल्स' फिल्म का पोस्टर और उसके बग़ल में अमेरिका का एक स्थलाकृतिक (टोपोग्राफिक) नक्शा टंगा हुआ था। मेज़ की बग़ल में जो खिड़की थी, उसकी चौखट पर एक छोटा-सा गमला रखा था, जिसमें टमाटर के पौधे लगे थे। खिड़की से भीतर आती धूप उन पौधों को नहला रही थी।

"सिगरेट लेंगे?" उसने पूछा। उसकी आवाज़ गहरी और कदरन भारी थी, जो उसके छोटे कद के साथ मेल नहीं खाती थी।

"जी नहीं, शुक्रिया," मैंने कहा। मैंने गौर किया कि इतनी देर में उसने एक बार भी

सोहराब की तरफ़ नहीं देखा था, जैसे कि वह उसके सामने हो ही न। और मुझसे भी जब उसने सिगरेट का पूछा, तो मेरी तरफ़ देखकर नहीं कहा, मानो हम उसके लिए बिल्कुल भी मायने न रखते हों। मगर चूँकि गरज हमारी थी, इसलिए मैंने उसकी इस बदसलूकी की परवाह न करना ही बेहतर समझा।

बहरहाल, उसने मेज़ की एक दराज़ से सिगरेट की एक आधी भरी डिब्बी निकाली और एक सिगरेट जला ली। उसी दराज़ से उसने लोशन की एक बोतल भी निकाली। सिगरेट को होंठों के बीच फँसाकर वह हाथों पर लोशन मलने लगा, जबकि उसकी नज़र खिड़की पर रखे टमाटर के पौधों पर थी। फिर उसने दराज बंद की, अपनी कोहनियाँ मेज़ पर टिकाईं और एक गहरी साँस छोड़ी। "हाँ तो," उसने धुएँ के छल्ले छोड़ते हुए कहा, "सुनाइए अपनी कहानी।"

मुझे ऐसा लगा जैसे जीन वलजेन इंस्पेक्टर जावर्ट के सामने बैठा हो। मगर फिर मैंने ख़ुद को याद दिलाया कि मैं अब अमरीकी धरती पर था, यह आदमी मेरी तरफ़ था, और उसे मेरे जैसे लोगों की मदद करने के लिए ही पैसे मिलते थे। "मैं इस लड़के को गोद लेना चाहता हूँ, इसे अपने साथ अमेरिका ले जाना चाहता हूँ," मैंने कहा।

"अपनी कहानी सुनाइए," उसने सिगरेट की राख को मेज़ पर रखे एशट्रे में झड़ाते हुए दोहराया।

मैंने उसे कहानी का वह संस्करण सुना दिया जो सोराया से बात होने के बाद अपने दिमाग़ में तैयार किया था। मैं अपने सौतेले भाई के बेटे को वापस लाने के लिए अफ़ग़ानिस्तान गया था। वहाँ मैंने उसे एक यतीमखाने में में बुरी हालत में पाया था। यतीमखाने के डायरेक्टर को उसकी माँगी हुई रकम देकर लड़के को वहाँ से निकाल लिया था। फिर उसे लेकर पाकिस्तान आ गया था।

"आप इस लड़के के सौतेले चाचा हैं?"

"जी हाँ।"

उसने अपनी घड़ी देखी। फिर झुककर खिड़की पर रखे गमले को थोड़ा घुमा दिया ताकि उसे पर्याप्त धूप मिलती रहे। "क्या कोई ऐसा है जो आपकी इस बात की तसदीक कर सके?"

"हाँ, मगर मुझे नहीं पता कि वह अभी कहाँ है।"

वह मेरी तरफ़ मुड़ा और सहमति में सिर हिलाया। मैंने उसके चेहरे को पढ़ने की कोशिश की, मगर नाकाम रहा। मैं सोचने लगा कि क्या उसने कभी अपने उन छोटे हाथों को पोकर में आज़माया होगा।

"मैं यह मानकर चल रहा हूँ कि अपने जबड़े में वायरिंग करवाना कोई लेटेस्ट फैशन स्टेटमेंट नहीं है," उसने कहा। मुझे समझ आ गया कि हम, सोहराब और मैं, मुसीबत में थे। मैंने उसे बताया कि पेशावर में मुझ पर हमला हुआ था।

"बेशक," उसने कहा। फिर अपना गला साफ़ किया। "क्या आप मुस्लिम हैं?"

"जी।"

"सारे धार्मिक रीति-रिवाज़ों का पालन करने वाले?"

"जी।" जबकि हक़ीक़त यह थी कि मुझे ख़ुद याद नहीं था कि आख़िरी बार मैंने कब ज़मीन पर सर नवाकर सजदा किया होगा। फिर मुझे याद आया: जिस दिन डॉक्टर अमानी ने बाबा को लाइलाज कैंसर होने की बात बताई थी, उस दिन मैंने घुटनों के बल बैठकर स्कूल में याद की गईं कुरआन की आयतों का जितना भी अंश याद था, वो दोहराया था और बाबा के लिए दुआ की थी।

"इससे आपके मामले में थोड़ी मदद मिल सकती है, मगर बहुत ज़्यादा नहीं," उसने सर खुजलाते हुए कहा।

"क्या मतलब है आपका?" मैंने सोहराब का हाथ अपने हाथ में ले लिया, अपनी उंगलियाँ उसकी उंगलियाँ में फँसा लीं। सोहराब ने असमंजस से पहले मुझे और फिर रेमंड को देखा।

"इसका एक लंबा जवाब है और एक छोटा। अगर आप चाहेंगे तो मैं आपको लम्बा जवाब भी दे दूँगा, मगर क्या आप पहले छोटा जवाब सुनना चाहेंगे?"

"मेरे ख़याल से, हाँ।"

रेमंड ने ऐशट्रे में सिगरेट मसली, अपने होंठ सिकोड़े और बोला, "भूल जाइए।"

"माफ़ कीजिएगा?"

"इस बच्चे को गोद लेने की आपकी याचिका। भूल जाइए उसे। यही आपको मेरा मशविरा है।"

"जी, आपका मशविरा मैंने अच्छी तरह संभालकर रख लिया है," मैंने तल्ख़ अंदाज़ में कहा। "अब, शायद आप यह बताने की ज़हमत उठाएँगे कि क्यों।"

"इसका मतलब है कि आप लंबा जवाब चाहते हैं," उसने कहा। उसकी आवाज़ भावहीन थी, उस पर मेरी तल्ख बात का कोई असर नहीं पड़ा था। उसने अपनी दोनों हथेलियाँ यूँ आपस में जोड़ीं मानो वर्जिन मैरी के सामने घुटने टेक रहा हो। "चलिए मान लेते हैं कि आपने जो कहानी मुझे सुनाई है वह सच है, हालाँकि मैं अपनी पेंशन की कीमत पर शर्त लगा सकता हूँ कि यह या तो मनगढ़ंत है या फिर बहुत काँट-छाँट कर बताई गई है। इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता, मैं बता दूँ आपको। आप यहाँ हैं, यह बच्चा यहाँ है, बस यही मायने रखता है। मगर फिर भी, आपकी याचिका के मंज़ूर होने के रास्ते में बहुत सारी अड़चनें हैं, जिनमें से सबसे बड़ी अड़चन यह है कि यह बच्चा यतीम नहीं है।"

“बेशक है।”

“कानूनी तौर पर नहीं है।”

“इसके वालदैन (माँ-बाप) को सड़क पर सबके सामने मार डाला गया। सारे मोहल्ले वालों ने देखा है,” मैंने कहा। मुझे ख़ुशी थी कि हम अंग्रेज़ी में बात कर रहे थे।

“आपके पास उनके डेथ सर्टिफिकेट हैं?”

“डेथ सर्टिफिकेट्स? हम अफ़ग़ानिस्तान की बात कर रहे हैं जनाब। वहाँ ज़्यादातर लोगों के पास अपने बर्थ सर्टिफिकेट भी नहीं हैं।”

उसकी आँखें झपकने तक को तैयार नहीं थीं। “मैं कानून नहीं बनाता हूँ, सर। आप चाहे जितना भी नाराज़ हो लें, मगर आपको यह तो साबित करना ही पड़ेगा कि इसके माँ-बाप मर चुके हैं। लड़के का कानूनी तौर पर यतीम घोषित किया जाना ज़रूरी है।”

“मगर...”

“आप लम्बा जवाब चाहते थे और मैं वही दे रहा हूँ। आपकी अगली समस्या यह है कि आपको बच्चे की पैदाइश जहाँ की है उस देश के सहयोग की ज़रूरत पड़ेगी। यह कितना मुश्किल है यह किसी से छिपा नहीं है, और अगर आपकी बात दोहराऊँ तो हम अफ़ग़ानिस्तान की बात कर रहे हैं। काबुल में अमरीकी दूतावास नहीं है। इससे चीज़ें और भी मुश्किल हो जाती हैं। तक़रीबन नामुमकिन।”

“आप कहना क्या चाहते हैं कि मैं इसे वापस सड़क पर फेंक दूँ?” मैंने आपे से बाहर होते हुए कहा।

“मैंने ऐसा नहीं कहा।”

“इसके साथ यौन दुर्व्यवहार किया गया था,” मैंने कहा। कहते हुए मुझे सोहराब के पैरों में बँधे घुँघरू, उसकी आँखों में लगा काजल और गालों पर पोता गया रूज़ याद आने लगा।

“मुझे यह सुनकर दुख हुआ,” रेमंड की सिर्फ़ ज़बान ने कहा। उसकी आँखों में न कोई फ़िक्र थी, न दुःख, न ही कोई हमदर्दी। उसका रवैया ऐसा था मानो हम बैठकर मौसम की चर्चा कर रहे हों। “मगर इसे आधार मानकर आईएनएस इस बच्चे को वीज़ा जारी नहीं करेगा।”

“यह क्या कह रहे हैं आप?”

“मैं यह कह रहा हूँ कि अगर आप मदद करना ही चाहते हैं तो राहत कार्यों में लगी किसी जानी-मानी संस्था को पैसे भेजिए। किसी शरणार्थी शिविर में बतौर स्वयंसेवक काम कीजिए। मगर हम बिल्कुल भी नहीं चाहते हैं कि इस वक़्त कोई भी अमरीकी नागरिक किसी अफ़ग़ान बच्चे को गोद लेने का सोचे। ऐसी किसी भी कोशिश को हम

पूरी तरह हतोत्साहित करते हैं।”

मैं उठ खड़ा हुआ। “चलो, सोहराब,” मैंने फारसी में कहा। सोहराब मेरे बग़ल में सरक आया और अपना सिर मेरे कूल्हे पर टिका दिया। मुझे रहीम खान की खींची वो तस्वीर याद आ गई, उसमें हसन और सोहराब भी बिल्कुल इसी पोज़ में खड़े थे। “क्या मैं आपसे कुछ पूछ सकता हूँ, मिस्टर एंड्रयूज़?”

“हाँ।”

“आपके बच्चे हैं?”

पहली बार उसकी पलक झपकी।

“एक सीधा-सादा सा सवाल पूछा है मैंने। आपके बच्चे हैं या नहीं?”

वह ख़ामोश रहा।

“मुझे लगा ही था,” मैंने सोहराब का हाथ थामते हुए कहा। “उन्हें आपकी कुर्सी पर किसी ऐसे आदमी को बिठाना चाहिए जो जानता हो कि बच्चे की चाहत क्या होती है।” मैं जाने के लिए मुड़ गया, सोहराब भी मेरे पीछे-पीछे चल पड़ा।

“क्या मैं आपसे एक सवाल कर सकता हूँ?” पीछे से एंड्रयूज़ की आवाज़ सुनाई दी।

“पूछिए।”

“क्या आप इस बच्चे से वादा कर चुके हैं कि आप इसे अपने साथ ले जाएँगे?”

“अगर कर चुका होऊँ, तो?”

उसना अपना सिर झटका। “यह ख़तरनाक काम है...बच्चों से कोई वादा करना।” उसने एक गहरी साँस छोड़ी और फिर से अपनी मेज़ की दराज़ खोली। “आप पक्का आगे बढ़ना चाहते हैं?” उसने दराज़ में काग़ज़ों के बीच कुछ खोजते हुए पूछा।

“मैं पक्का आगे बढ़ना चाहता हूँ।”

उसने दराज़ में से ढूँढकर एक बिज़नेस कार्ड निकाला और मुझे देते हुए बोला, “तो फिर मैं आपको मशविरा दूँगा कि आप एक अच्छे आव्रजन वकील (इमिग्रेशन लॉयर) से मिल लें। उमर फैज़ल यहाँ इस्लामाबाद में ही प्रैक्टिस करते हैं। आप उन्हें बता सकते हो कि मैंने भेजा है।”

मैंने कार्ड ले लिया और बदले में उसे “शुक्रिया” कहा।

“गुड लक,” उसने जवाब में कहा। कमरे से बाहर निकलते हुए जब मैंने पीछे मुड़कर देखा तो पाया कि एंड्रयूज़ खिड़की पर खड़ा था, दूर कहीं शून्य में ताक रहा था, उसके हाथ गमले में लगे टमाटर के पौधों को सूरज की तरफ़ घुमा रहे थे, उन्हें प्यार से सहला रहे थे।

जब हम सेक्रेटरी मोहतरमा की डेस्क के पास से होकर गुज़रे तो उन्होंने कहा, “अपना ध्यान रखिएगा।”

“आपके बॉस को थोड़ा सलीका सीखने की ज़रूरत है,” मैंने कहा। मुझे उम्मीद थी कि वह शायद इस तरह सिर हिलाएँगी जैसे कहना चाहती हों कि “मुझे पता है, हर कोई यही कहता है।” इसकी बजाए, उन्होंने कदरन धीमी आवाज़ में कहा, “बेचारा रे। अपनी बेटी की मौत के बाद से वह पहले जैसा नहीं रहा।”

मैंने चौंकते हुए उनकी तरफ़ देखा।

“आत्महत्या,” उन्होंने फुसफुसाते हुए कहा।

“मुझे पता है कि यह पागलपंती की बात है, मगर आजकल मैं यही सोचती रहती हूँ कि उसका पसंदीदा कुरमा क्या होगा, स्कूल में उसका पसंदीदा विषय क्या होगा। और कभी मैं ख़ुद को उसको होमवर्क में मदद करते हुए देखने लगती हूँ…” कहते-कहते सोराया हँस पड़ी।

बाथरूम में नल से पानी बहने की आवाज़ आनी बंद हो गई थी। उसकी जगह अब सोहराब के टब में इधर-उधर हिलने और अपने ऊपर पानी डालने की आवाज़ें आ रही थीं।“तुम बहुत ही अच्छी वालिदा बनोगी,” मैंने कहा।

“अरे, मैं तो बताना ही भूल गई! मैंने काका शरीफ़ को फोन किया था।”

काका शरीफ़ वही थे, जिन्होंने हमारे निकाह में होटल के स्टेशनरी काग़ज़ के टुकड़े पर लिखकर लाई हुई नज़्म पढ़ी थी। और सोराया और मैं जब फ़्लैश चमकाते कैमरों को देखकर मुस्कराते हुए मंच की ओर बढ़ रहे थे, तब हमारे सर के ऊपर कुरआन काका शरीफ़ के साहबज़ादे ने ही रखी थी। “क्या कहा उन्होंने?”

“वह हमारी मुश्किल आसान कर सकते हैं। उन्होंने कहा है कि वह INS के अपने कुछ साथियों को फोन लगाएँगे,” सोराया ने बताया।

“यह तो बहुत ही अच्छी ख़बर है,” मैंने कहा। “मैं तुम्हें सोहराब से मिलते देखने के लिए बेकरार हूँ।”

“मैं तुम्हें देखने के लिए बेकरार हूँ,” उसने कहा।

मैंने मुस्कराते हुए फोन रख दिया।

दूतावास से होटल वापस लौटते समय टैक्सी में सोहराब ने पूरा समय अपना सिर खिड़की पर टिकाए रखा और पीछे की ओर भागतीं इमारतों और पेड़ों की कतारों को देखता रहा। उसकी साँसों के साथ निकलने वाली नमी से काँच पर कोहरा-सा जम जाता, मिट जाता, फिर जम जाता। मैं इस इंतज़ार में रहा कि वह मुझसे दूतावास में एंड्र्यूज़ के साथ हुई मुलाक़ात के बारे में पूछेगा, मगर उसने कुछ नहीं पूछा।

बाथरूम का दरवाज़ा बंद था और अन्दर से पानी के गिरने की आवाज़ आ रही थी। जब से हम होटल आए थे, तब से हर रात सोने से पहले सोहराब कम से कम एक घंटा नहाता था। काबुल में नहाने के लिए गर्म पानी उतनी ही दुर्लभ चीज़ थी जितना कि बच्चों के सर पर बाप का साया। इसीलिए अब सोहराब अगली-पिछली सब कसर निकाल रहा था। वह कम से कम एक घंटा बाथरूम में रहता था, साबुन के झाग वाले पानी से भरे बाथटब में लेटा हुआ, मल-मलकर, रगड़-रगड़कर शरीर को साफ़ करता हुआ। बहरहाल, मैंने सोराया को फोन मिलाया। बाथरूम के दरवाज़े के नीचे से रोशनी की हल्की सी लकीर दिखाई पड़ रही थी। "क्या अब तुम्हें साफ़-सुथरा महसूस हो रहा है, सोहराब?" मैंने सोराया को वह सब बताया जो रेमंड एंड्रयूज़ ने मुझसे कहा था। "तुम्हें क्या लगता है?" आख़िर में, मैंने उससे पूछा।

"हमें यही सोचकर चलना पड़ेगा कि वह गलत है।" उसने बताया कि उसने कुछेक ऐसी एडॉप्शन एजेंसीज़ (बच्चे गोद दिलाने में मदद करने वाली संस्थाएँ) को फोन लगाया था जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर काम करती हैं। अभी तक कोई भी ऐसी एजेंसी नहीं मिली थी जो अफ़ग़ान बच्चों को गोद दिलाने पर विचार करने को तैयार हो, मगर वह तलाश जारी रखे हुए थी।

"तुम्हारे वालदैन इस ख़बर को कैसे ले रहे हैं?"

"अम्मी जान हमारी ख़ुशी में ख़ुश हैं। तुम तो जानते ही हो, आमिर, कि वह तुम्हें लेकर कैसा महसूस करती हैं। अगर अल्लाह भी आकर उनसे कहे तो भी वह कभी यह मानने को राज़ी नहीं होंगी कि तुम कुछ गलत कर सकते हो। जहाँ तक बाबा की बात है, तुम तो जानते ही हो कि उनके मन की बात पढ़ पाना थोड़ा मुश्किल होता है। वह ज़्यादा कुछ नहीं कह रहे हैं।"

"और तुम? तुम ख़ुश हो?"

मैंने उसे रिसीवर एक हाथ से दूसरे हाथ में लेते सुना। "मुझे लगता है कि हम तुम्हारे भतीजे के लिए अच्छे रहेंगे, मगर शायद वह छोटा बच्चा भी हमारे लिए अच्छा रहेगा।"

"मैं भी यही सोच रहा था।"

कुछ मिनटों बाद सोहराब बाथरूम से निकल आया। रेमंड एंड्रयूज़ से हमारी मुलाकात के बाद से उसने बमुश्किल दर्जन भर शब्द मुँह से निकाले होंगे। बातचीत की मेरी कोशिशों का जवाब उसने केवल सिर हिलाकर या एक शब्द वाले वाक्यों से ही दिया था। बाथरूम से बाहर आकर वह सीधा बिस्तर पर चढ़ गया और कंबल को अपनी ठोड़ी तक खींच लिया। कुछ ही मिनटों में उसके खर्राटे गूँजने लगे।

बाथरूम के शीशे पर भाप का कोहरा-सा जम गया था। मैंने हाथ से उसे उतना साफ़ किया जितने में मेरा चेहरा दिखाई पड़ने लगे और फिर वहाँ रखे पुराने ज़माने के रेज़र से (जिसे उस्तरा कहा जाता है) दाढ़ी बनाई। फिर मैंने भी नहाया। मैं तब तक

बाथटब में लेटा रहा जब तक कि भाप निकलता गर्म पानी ठंडा नहीं हो गया। लेटे-लेटे मैं दुनिया-जहान की बातें सोचता रहा, कल्पनाओं में विचरता रहा।

जब वह मुझसे मिलने होटल आया तो मैंने देखा कि उमर फैज़ल एक गोल-मटोल शरीर और साँवली रंगत वाला आदमी थी। हँसते समय उसके गालों में डिम्पल पड़ते थे। चेहरे पर छोटी-छोटी सी गोल और काली आँखें थीं। मुस्कान उसकी दोस्ताना थी और मुस्कराते समय उसके आगे के दाँतों के बीच गैप दिखाई पड़ता था। कम होते और सफेदी झलकाते बालों को उसने पीछे खींचकर पोनीटेल के रूप में बाँधा हुआ था। उसने कोहनियों पर चमड़े के पैच वाला कत्थई रंग का कॉरडरॉय सूट पहना हुआ था और उसके पास एक पुराना-सा दिखने वाला, ज़रूरत से ज़्यादा भरा हुआ ब्रीफकेस था। उस ब्रीफकेस का हैंडल गायब था, इसलिए उसने उसे छाती से चिपकाया हुआ था। उसकी एक बड़ी दिलचस्प खासियत थी कि वह बहुत सारे वाक्यों की शुरुआत हँसकर और बेवजह माफ़ी माँगकर करता था, मसलन: (हँसी)…माफ़ कीजिएगा, मैं पाँच बजे पहुँच जाऊँगा। मैंने जब उसे कॉल किया तो उसी ने इसरार किया कि वही होटल आकर मुझसे मिलेगा। “माफ़ कीजिएगा, मगर इस शहर के टैक्सी वाले शार्क हैं,” उसने परफेक्ट अंग्रेजी में कहा। “विदेशियों को वे सूँघकर पहचान लेते हैं और फिर किराया तीन गुना बढ़ा देते हैं।”

वह हमारे कमरे का दरवाज़ा ठेलकर अंदर आया – मुस्कराते हुए और माफ़ी माँगते हुए, हाँफते हुए और पसीना बहाते हुए। आते ही उसने रूमाल से माथे का पसीना पोंछा और अपना ब्रीफकेस खोलकर उसमें अपना नोटपैड ढूँढने लगा। ब्रीफकेस ज़रूरत से ज़्यादा भरा होने की वजह से कुछेक काग़ज़ बिस्तर पर फ़ैल गए, तो उसने फ़ौरन उसके लिए माफ़ी माँगी। अपने बिस्तर पर पालथी मारकर बैठे सोहराब की एक आँख बेआवाज़ चल रही टीवी पर और दूसरी आँख नोटपेड ढूँढने के लिए परेशान हो रहे वकील पर थी। मैंने उसे सुबह ही बता दिया था कि फैज़ल आने वाला है। उसने पहले तो ‘ओके’ के अंदाज़ में सिर हिला दिया था, फिर मानो कुछ पूछने को हुआ था, मगर इरादा बदलकर फिर से टीवी देखने में लगा गया था।

“मिल ही गया आख़िर,” फैज़ल ने एक पीले रंग का लीगल नोटपैड निकालते हुए कहा। “मैं उम्मीद करता हूँ कि व्यवस्थित रहने के मामले में मेरे बच्चे अपनी माँ पर जाएँगे। माफ़ कीजिएगा, शायद आप अपने होने वाले वकील के मुँह से ऐसी बात नहीं सुनना चाहेंगे, है न?” उसने हँसते हुए कहा।

“वैसे, रेमंड एंड्रयूज़ आपके बारे में बहुत अच्छी राय रखते हैं।”

“वाक़ई?”

“हाँ-हाँ…तो आप मेरी कहानी से वाक़िफ़ हैं न?”

फैज़ल ने अपने होठों के ऊपर उभर आईं पसीने की बूंदों को पोंछा। “मैं आपकी कहानी के उस संस्करण से वाक़िफ़ हूँ जो आपने मिस्टर एंड्रयूज़ को बताया था,”

उसने कहा। फिर वह सोहराब की तरफ़ मुड़ा और फ़ारसी में बोला, "तो यही है वो नौजवान जिसकी वजह से यह सारा फसाद खड़ा हुआ है।"

"यह सोहराब है," मैंने उसका परिचय कराया। "और सोहराब, ये मिस्टर फैज़ल हैं, वकील, जिनके बारे में, मैंने तुम्हें सुबह बताया था।"

सोहराब बिस्तर से नीचे उतरा और उसने उमर फैज़ल से हाथ मिलाया। "सलाम अलैकुम," हाथ मिलाते समय उसने धीमी आवाज़ में कहा।

"अलेकुम सलाम, सोहराब," फैज़ल ने कहा। "तुम्हें पता है कि तुम्हारा नाम एक ज़बरदस्त जंगजू (योद्धा) के नाम पर रखा गया है?"

सोहराब ने हाँ में गर्दन हिलाई। इसके बाद वह फिर से अपने बिस्तर पर चढ़ गया और लेटकर टीवी देखने लगा।

"मुझे नहीं पता था कि आप इतनी अच्छी फारसी बोल लेते हैं," मैंने अंग्रेज़ी में कहा। "क्या आप काबुल में पले-बड़े हैं?"

"नहीं, मेरी पैदाईश कराची की है। मगर मैं काबुल में कई बरस रहा हूँ। शर-ए-नऊ, हाजी यागौब मस्जिद के पास," फैज़ल ने कहा। "मैं असल में बर्कले में पला-बढ़ा हूँ। मेरे अब्बा ने साठ के दशक के आख़िर में वहाँ एक म्यूज़िक स्टोर खोला था। फ्री सेक्स, हेडबैंड्स, टाई-डाईड शर्ट्स...क्या-क्या नहीं देखा और किया मैंने वहाँ ।" वह थोड़ा आगे झुका। "मैं वुडस्टॉक में था।"

"फैशनेबल और रोमांचक," मैंने कहा, जिसे सुनकर फैज़ल इतनी ज़ोर से हँसा कि फिर से पसीना-पसीना हो गया। "बहरहाल," मैंने आगे कहा, "मैंने मिस्टर एंड्रयूज़ को जो बताया, वह लगभग वही था जो सच है, एक या दो बातें छोड़कर। या शायद तीन बातें। मैं आपको पूरा वाला संस्करण सुनाता हूँ।"

उसने पैड को खोला और पन्ने पलटते हुए एक खाली पन्ने पर रुका। फिर अपना पेन खोला। "अगर आप ऐसा करेंगे तो यह बहुत अच्छा होगा, आमिर। और क्यों न आगे की बातचीत हम सिर्फ़ और सिर्फ़ अंग्रेज़ी में करें?"

"ठीक है।"

मैंने उसे वह सब बता दिया जो हुआ था। रहीम खान से अपनी मुलाक़ात के बारे में। काबुल जाने के बारे में। यतीमखाने के बारे में। गाज़ी स्टेडियम में हुए कत्लों के बारे में।

"गॉड," वह होंठों में बुदबुदाया। "माफ़ कीजिएगा, मेरे ज़ेहन में काबुल की इतनी अच्छी यादें हैं न कि यकीन करना मुश्किल हो रहा है कि यह वही जगह है जिसके बारे में अभी आप बता रहे हैं।"

"क्या हाल ही में आप वहाँ गए हैं?"

“नहीं।”

“मैं आपको बताना चाहूँगा कि वह बर्कले नहीं है,” मैंने कहा।

“आगे बताइए।”

मैंने उसे बाक़ी बातें भी बताईं – अस्सेफ़ से मुलाक़ात, लड़ाई, सोहराब और उसकी गुलेल, हमारा बचकर पाकिस्तान वापस आना। जब मैं अपनी बात कह चुका तब उसने नोटपैड में कुछ बातें नोट कीं, एक गहरी साँस ली, और संजीदा नज़र से मेरी तरफ़ देखा। “मैं कहूँगा, आमिर, आपके सामने एक कठिन लड़ाई है।”

“जिसे मैं जीत सकता हूँ?”

उसने पेन का ढक्कन बंद किया। “रेमंड एंड्रयूज़ की तरह लगने के जोखिम पर मैं कहूँगा, ऐसा मुमकिन होता दिखता तो नहीं है। नामुमकिन नहीं है, मगर मुमकिन होना भी बहुत मुश्किल है।” उसके चेहरे की मुस्कान, आँखों का खिलंदड़पन गायब हो चुका था।

“लेकिन सोहराब जैसे बच्चों को ही तो घर की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है,” मैंने कहा। “ये नियम-कानून मुझे समझ में नहीं आते।”

“मैं आपकी बात से पूरी तरह सहमत हूँ, आमिर,” उसने कहा। “मगर सच्चाई यह है कि चाहे आप मौजूदा आव्रजन कानूनों को ले लें, एडॉप्शन एजेंसियों की नीतियों को ले लें, और चाहे अफ़ग़ानिस्तान के सियासी हालात को ले लें, सारी चीज़ें आपके ख़िलाफ़ ही हैं।”

“मुझे यह बात समझ नहीं आती,” मैंने कहा। मेरा मन हो रहा था कि किसी चीज़ को ज़ोर से ठोकर लगाऊँ। “मेरा मतलब है, आती है, मगर नहीं आती।”

उमर ने सहमति में सिर हिलाया और उसकी भौंहें सिकुड़ गईं। “जो है, वो है, उसका तो हम कुछ कर नहीं सकते। और एक बात और भी है। किसी भी आपदा के बाद, चाहे वह प्राकृतिक हो या मानव निर्मित–और तालिबान एक आपदा है, आमिर, मेरा यकीन करो–यह पता लगाना हमेशा मुश्किल होता है कि कोई बच्चा यतीम है या नहीं। शरणार्थी शिविरों में बच्चे घरवालों से बिछड़ जाते हैं, या फिर उनकी देखभाल की हालत में न रहने पर माँ-बाप ख़ुद उन्हें छोड़ देते हैं। यह हमेशा होता है। इसलिए आईएनएस तब तक वीज़ा नहीं देगा जब तक यह क्लियर न हो जाए कि बच्चा वाक़ई यतीम है। माफ़ कीजिएगा, मुझे पता है कि यह बहुत ही बेढंगी बात है, मगर आपको डेथ सर्टिफिकेट्स तो चाहिए ही होंगे।”

“आप तो अफ़ग़ानिस्तान में रहे हैं,” मैंने कहा। “आपसे बेहतर कौन जान सकता है कि वहाँ किसी का डेथ सर्टिफिकेट मिलना कितना मुश्किल काम है।”

“मैं जानता हूँ,” उसने कहा। “मगर मुसीबत बस इतनी ही नहीं है। मान लीजिए कि

यह साबित हो भी जाए कि बच्चे के माँ-बाप ज़िन्दा नहीं हैं। तब भी, आइएनएस को लगता है कि गोद देने का सही तरीक़ा यही है कि बच्चे को उसके अपने वतन में ही किसी को दिया जाए, ताकि उसकी विरासत बरकरार रह सके।"

"कौन सी विरासत?" मैंने कहा। "अफ़ग़ानों की जो भी विरासत थी, उस सबको तालिबान ने ख़त्म कर दिया है। बामियान में बुद्ध की विशालकाय मूर्तियों के साथ उन्होंने क्या किया वह तो आपने देखा ही है न"

"माफ़ कीजिएगा, आमिर, मगर मैं आपको केवल यह बता रहा हूँ कि आईएनएस कैसे काम करता है," उमर ने नरमी से मेरी बाँह को छूते हुए कहा। उसने मुड़कर सोहराब को देखा और मुस्करा दिया। फिर वापस मेरी तरफ़ मुड़ा और अपनी बात जारी रखी। "अब तीसरी बात। किसी भी बच्चे को उसके अपने देश के नियम-कानूनों के हिसाब से ही गोद लिया जा सकता है, वहाँ की जो कानूनी औपचारिकताएँ होती हैं वे पूरी करनी पड़ती हैं। मगर जब कोई देश आपदा-ग्रस्त हो, जैसे कि अफ़ग़ानिस्तान, तो वहाँ की सरकारी मशीनरी पूरा समय आपात स्थितियों से निपटने में ही व्यस्त रहती है और गोद लेने की याचिकाओं पर काम करना उनकी सर्वोच्च प्राथमिकता नहीं होती।"

मैंने गहरी साँस छोड़ी और हथेलियों से अपनी आँखें रगड़ीं। उनके ठीक पीछे मुझे तेज़ सिरदर्द शुरू हो गया था।

"लेकिन चलो मान लेते हैं कि किसी तरह अफ़ग़ानिस्तान की सरकारी मशीनरी आपकी याचिका पर सुनवाई करने का वक़्त निकाल लेती है," उमर ने अपने उभरे हुए पेट पर हाथ रखते हुए कहा। "तब भी इस बात की खासी संभावना रहेगी कि वे आपको सोहराब को गोद लेने की मंज़ूरी न दें। हक़ीक़त यह है कि अफ़ग़ानिस्तान से कहीं ज़्यादा उदार मुस्लिम मुल्क भी गोद लेने-देने की मंज़ूरी देने से हिचकिचाते हैं, क्योंकि उनमें से कई मुल्कों में भी इस्लामी कानून, शरिया, गोद लेने-देने की बात को मंज़ूरी नहीं देता है।"

"आप कहना चाह रहे हैं कि मैं इसके लिए कोशिश करना छोड़ दूँ?" मैंने हथेलियों से अपना माथा दबाते हुए कहा। "मैं अमेरिका में पला-बढ़ा हूँ, आमिर। अगर अमेरिका ने मुझे कुछ सिखाया है, तो वो यह है कि हार मान लेना और कोई गुनाह करना, दोनों बातें एक बराबर हैं। मगर आपके वकील के तौर पर मुझे आपको तथ्य तो बताने ही होंगे," उसने कहा। "और आख़िरी मुश्किल यह है कि एडॉप्शन एजेंसियाँ अक्सर बच्चे के परिवेश का मूल्यांकन करने के लिए अपने एजेंट्स को भेजती हैं, मगर कोई भी समझदार एजेंसी अफ़ग़ानिस्तान में अपना एजेंट नहीं भेजेगी।"

मैंने सोहराब की तरफ़ देखा तो पाया कि अब भी उसकी एक आँख टीवी की तरफ़ और एक हमारी तरफ़ देख रही थी। वह अपने बाबा की तरह ही बैठा था, अपनी ठोड़ी एक घुटने पर टिकाकर।

"मैं उसका सौतेला चाचा हूँ, क्या इस बात से कोई फर्क पड़ता है?"

"पड़ता है, बशर्ते आप यह बात साबित कर सकें। माफ़ कीजिएगा, आपके पास कुछ ऐसे काग़ज़ात या कोई ऐसा आदमी है जो आपके दावे को सिद्ध कर सके?"

"ऐसा कोई काग़ज़ नहीं है," मैंने थकी हुई आवाज़ में कहा। "किसी को भी इसके बारे में पता नहीं था। सोहराब को तब तक नहीं पता था जब तक मैंने उसे नहीं बताया, और मुझे भी हाल ही में पता चला। इकलौता आदमी जो इस बारे में जानता था, वह कहीं चला गया है, शायद मर चुका है।

"मेरे पास क्या-क्या विकल्प हैं, उमर?"

"मैं साफ़ कहूँगा। बहुत कम।"

"ओह, जीसस! मैं क्या करूँ?"

उमर ने एक गहरी साँस भरी, पेन से अपनी ठुड्डी ठकठकाई, साँस छोड़ी। "आप अभी भी गोद लेने के लिए याचिका तो दायर कर ही सकते हैं, किसी सकारात्मक नतीजे की आस रखने में कोई बुराई तो नहीं। आप उसे स्वतंत्र रूप से भी गोद ले सकते हैं। उसके लिए आपको सोहराब के साथ दो साल तक यहीं पाकिस्तान में रहना होगा। इस बिनाह पर आपको पकिस्तान में शरण मिल जाएगी। मगर यह एक लंबी प्रक्रिया होगी और आपको राजनीतिक उत्पीड़न भी साबित करना होगा। आप मानवीय आधार पर वीज़ा की दरख़्वास्त कर सकते हैं। मगर यह अटॉर्नी जनरल के विवेक पर निर्भर करता है और आसानी से नहीं दिया जाता।" वह थोड़ी देर चुप रहा। "एक और विकल्प है, शायद आपका सबसे अच्छा विकल्प।"

"क्या?" मैंने आगे को झुकते हुए पूछा।

"आप इसे यहाँ किसी यतीमखाने में दाख़िल करा दीजिए, फिर गोद लेने के लिए याचिका दायर कर दीजिए। जब तक आपकी फॉर्म I-600 और होम स्टडी की प्रक्रिया पूरी होगी, तब तक यह आराम से वहाँ रहेगा।"

"ये फॉर्म I-600 और होम स्टडी क्या हैं?"

"माफ़ कीजिएगा, I-600 INS की औपचारिकता है। होम स्टडी आपकी चुनी हुई एडॉप्शन एजेंसी करती है," उमर ने कहा। "इसका मकसद यह पता करना होता है कि बच्चे को गोद लेने की याचिका लगाने वाले मियाँ-बीवी का दिमाग़ी तवाजन (मानसिक स्थिति) ठीक है।"

"मैं यह नहीं करना चाहता हूँ," मैंने सोहराब की ओर देखते हुए कहा। "मैंने उससे वादा किया था कि मैं उसे वापस यतीमखाने नहीं जाने दूँगा।"

"जैसा कि मैंने कहा, यह आपका सबसे अच्छा विकल्प हो सकता है।"

हमने कुछ देर और बातें कीं। फिर मैं उसे उसकी कार तक छोड़ने बाहर आया। उसके पास एक पुरानी वोक्स वैगन बग थी। तब तक सूरज ढलने लगा था और पश्चिम दिशा का आसमान लाल रंग में रंग गया था। उमर जैसे-तैसे करके कार में दाख़िल हुआ तो मैंने देखा कि उसके वज़न से कार एक ओर को झुक गई थी। उसने खिड़की का काँच नीचे गिराया। "आमिर?"

"हाँ।"

"मैं अन्दर भी आपसे कहना चाहता था। आप जो कर रहे हैं उसके बारे में। मेरे ख़याल में यह बहुत ही नेक काम है।"

उसने हाथ हिलाकर विदा ली और गाड़ी आगे बढ़ा दी। होटल के बाहर खड़े होकर, हाथ हिलाकर उमर को विदा करते हुए मैं सोच रहा था कि काश इस वक़्त सोराया मेरे साथ होती।

जब मैं कमरे में वापस पहुँचा तो देखा कि टीवी बंद था। मैं अपने बिस्तर के किनारे पर बैठ गया और सोहराब को अपने बग़ल में आकर बैठने को कहा। "मिस्टर फ़ैज़ल को लगता है कि एक तरीक़ा है जिससे मैं तुम्हें अपने साथ अमेरिका ले जा सकता हूँ," मैंने कहा।

"उनको लगता है?" सोहराब ने कहा। कई दिनों के बाद आज उसके चेहरे पर हल्की सी मुस्कान आई थी। "कब जा सकते हैं हम?"

"यहीं पर थोड़ी सी समस्या है। इसमें थोड़ा वक़्त लग सकता है। मगर उनका कहना है कि यह हो सकता है और इसमें वह हमारी मदद करेंगे।" मैंने अपना हाथ उसकी गर्दन के पीछे रख दिया। बाहर अज़ान की आवाज़ गूँज रही थी।

"कितना वक़्त?" सोहराब ने पूछा।

"मुझे नहीं पता। कुछ वक़्त।"

सोहराब ने कंधे उचकाए और मुस्करा दिया। इस बार उसकी मुस्कान पहले से ज़्यादा चौड़ी थी। "मुझे कोई दिक्कत नहीं है। मैं इंतज़ार कर सकता हूँ। यह भी उन खट्टे सेबों की तरह है?"

"खट्टे सेब?"

"एक बार, जब मैं बहुत छोटा था, तो मैं एक पेड़ पर चढ़ गया और हरे, खट्टे सेब खा लिए। बस फिर क्या था, मेरा पेट फूल गया और ड्रम की तरह सख्त हो गया, बहुत दर्द किया। तब अम्मी जान ने बताया कि अगर मैंने उन सेबों के पकने का इंतज़ार किया होता तो बीमार नहीं पड़ता। इसलिए अब जब भी मैं किसी चीज़ के लिए बहुत बेसब्र होने लगता हूँ तो अम्मी की सेबों के बारे में कही बात को याद कर लेता हूँ।"

"खट्टे सेब," मैंने कहा। "माशाअल्लाह, आपसे ज़्यादा अक्लमंद और दानिशमंद

बच्चे से तो मैं आज तक नहीं मिला हूँ, सोहराब जान।" सुनकर शर्म के मारे उसके कान लाल हो गए।

"क्या आप मुझे उस लाल पुल पर ले चलेंगे? वही पुल जो कोहरे में ढँका रहता है?" उसने कहा।

"बिल्कुल," मैंने कहा। "बिल्कुल।"

"और हम उन सड़कों पर भी चलेंगे, जहाँ आपको सिर्फ़ कार का हुड और आसमान ही दिखाई देता है?"

"उनमें से हर एक पर," मैंने कहा। मेरी आँखें डबडबा आईं और मैंने पलकें मूँद कर उन्हें बाहर आने से रोका।

"क्या अंग्रेज़ी सीखना बहुत मुश्किल है?"

"एक बरस के अन्दर तुम उतनी ही अच्छी अंग्रेज़ी बोलने लगोगे जितनी अच्छी फारसी बोलते हो।"

"सच में?"

"हाँ।" मैंने उसकी ठोड़ी के नीचे अपनी उंगली रखी और उसका चेहरा अपनी तरफ़ घुमाया। "एक और बात है, सोहराब।"

"क्या?"

"वो क्या है कि मिस्टर फैज़ल सोचते हैं कि अगर हम…अगर हम तुम्हें कुछ वक़्त के लिए किसी बच्चों के घर में रखें तो इससे तुम्हें अमेरिका ले जाने में बहुत मदद मिलेगी।"

"बच्चों के लिए घर?" उसने कहा, उसकी मुस्कान फीकी पड़ गई। "आपका मतलब है यतीमखाना?"

"बहुत थोड़े से वक़्त के लिए।"

"नहीं," उसने कहा। "नहीं, लोफ्तान।" प्लीज़।

"सोहराब, यह बहुत थोड़े-से दिनों की बात होगी। मैं वादा करता हूँ।"

"आपने वादा किया था, आमिर आगा, कि आप मुझे फिर कभी ऐसी किसी जगह नहीं डालेंगे," उसने कहा।

उसकी आवाज़ टूट रही थी, आँखों में आँसू छलछला आए थे। मुझे अपने सीने में शूल-सा चुभता मालूम हो रहा था।

"यह जगह अलग होगी। यह यहाँ, इस्लामाबाद में होगी, काबुल में नहीं। और यहाँ मैं हर समय तुमसे मिलने आऊँगा, तब तक जब तक कि हम तुम्हें वहाँ से निकालकर

अमेरिका नहीं ले जाते।"

"लोफ्तान! लोफ्तान, नहीं!" उसने बिलखते हुए कहा। "मुझे उस जगह से डर लगता है। वे मुझे चोट पहुँचाएँगे! मैं वहाँ नहीं जाना चाहता।"

"कोई भी तुम्हें चोट नहीं पहुँचाएगा। कभी नहीं।"

"हाँ, वे पहुँचाएँगे! वे हमेशा कहते हैं कि वे ऐसा नहीं करेंगे, मगर वे झूठ बोलते हैं। वे झूठ बोलते हैं! लोफ्तान, अल्लाह!"

मैंने अपने अंगूठे से उसके गाल पर बहते आँसू पोंछे। "खट्टे सेब, याद है? यह भी बिल्कुल खट्टे सेब जैसा ही है," मैंने धीरे से कहा।

"नहीं, यह नहीं है। उस जगह नहीं। अल्लाह, या अल्लाह। लोफ्तान, नहीं!" वह डर के मारे काँप रहा था, उसके चेहरे पर आँखों से बहते आँसू और नाक से बहता पानी मिलकर एक हो रहे थे।

"शश्श्श।" मैंने उसे अपने पास खींचा, अपनी बाँहें उसके काँपते छोटे शरीर के गिर्द लपेट लीं। "शश्श्श। सब ठीक हो जाएगा। हम साथ-साथ घर चलेंगे। तुम देखना, सब ठीक हो जाएगा।"

उसका चेहरा मेरी छाती में धँसा होने के कारण उसकी आवाज़ दबी हुई थी, मगर तब भी मुझे उसमें आतंक साफ़ सुनाई दिया। "लोफ्तान, वादा कीजिए कि आप ऐसा नहीं करेंगे! या अल्लाह, आमिर आगा! लोफ्तान, वादा कीजिए कि आप ऐसा नहीं करेंगे!"

मैं यह वादा कैसे कर सकता था? मैंने उसे अपने से सटाए रखा, कसकर सीने से लगाए रखा और आगे-पीछे झुलाता रहा। वह मेरे सीने से चिपका तब तक रोता रहा जब तक कि उसके आँसू सूख नहीं गए, उसका काँपना बंद नहीं हो गया और उसकी पागलों की तरह की जा रही दरख़्वास्त धीमी होकर समझ में न आने वाली बुदबुदाहट में नहीं बदल गई। मैंने इंतज़ार किया, तब तक उसे झुलाता रहा जब तक कि उसकी साँसें धीमी नहीं हो गईं और उसका शरीर ढीला नहीं पड़ गया। मुझे वह बात याद आ गई जो मैंने बहुत समय पहले कहीं पढ़ी थी: बच्चे इसी तरह आतंक से निपटते हैं। वे सो जाते हैं।

मैं उसे उसके बिस्तर तक ले गया और लिटा दिया। फिर मैं अपने बिस्तर पर लेट गया और खिड़की से बाहर दिखाई पड़ रहे इस्लामाबाद के बैंगनी आसमान को देखने लगा।

जब फोन की बजती हुई घंटी से मेरी नींद टूटी, तब तक आसमान गहरा काला हो चुका था। मैं आँखें मलते हुए उठकर बैठा और सिरहाने रखे टेबल लैंप का स्विच ऑन किया। 10.30 से थोड़ा ज़्यादा समय हुआ था; मैं तक़रीबन तीन घंटों से सो रहा था। मैंने फोन उठाया। "हैलो?"

"अमेरिका से कॉल।" मिस्टर फ़य्याज़ की ऊबी हुई आवाज़ आई।

"जी, शुक्रिया," मैंने कहा। बाथरूम की बत्ती जली हुई थी; सोहराब रोज़ की तरह सोने से पहले नहाने गया था। फोन पर दो-एक बार क्लिक की आवाज़ हुई और फिर सोराया। "सलाम!" उसकी आवाज़ में उत्साह साफ़ सुनाई दिया मुझे।

"वकील के साथ मुलाक़ात कैसी रही?"

उमर ने जो सुझाया था वो मैंने उसे बता दिया। "ये सब भूल जाओ," उसने कहा। "अब हमें ये सब करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।"

मैं उठकर बैठ गया। "क्यों, क्या हुआ?"

"काका शरीफ़ से मेरी दुबारा बात हुई। उन्होंने कहा कि सोहराब को अमेरिका में लाना ही सबसे अहम बात है। एक बार वह यहाँ आ गया, तो फिर उसे यहाँ रखने के कई तरीक़े हैं। इसी बात को मद्देनज़र रखते हुए उन्होंने अपने INS के दोस्तों को कुछ फ़ोन किए। कल रात उनका मेरे पास फोन आया और उन्होंने कहा कि अब यह लगभग पक्का है कि वह सोहराब को मानवीय आधार पर मिलने वाला वीज़ा दिलवाने में कामयाब रहेंगे।"

"तुम मज़ाक तो नहीं कर रही हो न?" मैंने कहा। "ओह थैंक गॉड! काका शरीफ़ ने तो कमाल ही कर दिया!"

"मुझे पता है। बहरहाल, यहाँ हम सोहराब को स्पॉन्सर करेंगे। इस सब में ज़्यादा देर नहीं लगेगी। काका ने बताया कि वीज़ा एक साल के लिए वैध होगा। गोद लेने की याचिका लगाने के लिए हमारे पास पर्याप्त समय होगा।"

"यह सच में होने वाला है, सोराया, हुह?"

"लगता तो यही है," उसने कहा। वह बहुत ख़ुश लग रही थी। मैंने उससे कहा कि मैं उससे प्यार करता हूँ और उसने भी कहा कि वह भी मुझसे प्यार करती है। इसके बाद मैंने फोन रख दिया।

"सोहराब!" मैंने बिस्तर से उठते हुए पुकारा। "मेरे पास एक बहुत अच्छी ख़बर है।" मैंने बाथरूम का दरवाज़ा खटखटाया। "सोहराब! सोराया जान ने अभी-अभी कैलिफ़ोर्निया से फ़ोन किया था। अब हमें तुम्हें यतीमखाने में नहीं डालना पड़ेगा, सोहराब। हम अमेरिका जा रहे हैं, तुम और मैं। सुना तुमने? हम अमेरिका जा रहे हैं!"

मैंने दरवाज़ा धकाया तो वह खुल गया। मैंने भीतर क़दम रखा।

अचानक मैं घुटनों के बल बैठ गया और चिल्लाने लगा। पूरी ताक़त से चिल्लाने लगा।

तब तक चिल्लाता रहा जब तक मुझे यह नहीं लगने लगा कि मेरा गला चिर जाएगा

और मेरी छाती फट जाएगी।

बाद में लोगों ने बताया कि जब एम्बुलेंस आई, तब भी मैं चिल्ला रहा था।

पच्चीस

वे मुझे अन्दर नहीं जाने दे रहे।

मैं उन्हें उसे दो पल्लों वाले उन दरवाज़ों से अन्दर-बाहर लाते-ले जाते देखता हूँ और उनके पीछे-पीछे जाने लगता हूँ। जैसे ही मैं दरवाज़े से अंदर घुसता हूँ, मेरे फेफड़े आयोडीन और पेरॉक्साइड की गंध से भर जाते हैं, मगर मैं बस इतना ही देख पाता हूँ कि सर्जिकल कैप पहने दो आदमी और हरे रंग का सर्जिकल गाऊन पहने एक मोहतरमा चक्कों वाले एक स्ट्रेचर के इर्द-गिर्द खड़े हैं। स्ट्रेचर के ऊपर डली सफ़ेद चादर साइड से नीचे फर्श तक लटक रही है। चादर के नीचे से दो छोटे-छोटे ख़ून से लथपथ पैर बाहर झाँक रहे हैं और मैं देख रहा हूँ कि बाएँ पैर का अँगूठा टूटा हुआ है। बस मैं इतना ही देख पाता हूँ कि तभी नीली वर्दी पहने एक लम्बा-मोटा आदमी मेरे सीने पर अपनी हथेली रखकर मुझे पीछे धकेलने लगता है और दरवाज़े से बाहर कर देता है। उसकी उंगली में मौजूद शादी की अँगूठी की ठंडक मुझे अपनी छाती पर महसूस होती है। मैं फिर से आगे बढ़ता हूँ और उसे कोसता हूँ, मगर वह मुझे अन्दर नहीं आने देता और अंग्रेज़ी में कहता है कि आप यहाँ नहीं रुक सकते। उसकी आवाज़ में विनम्रता मगर दृढ़ता है। “आपको बाहर इंतज़ार करना होगा,” कहकर वह मुझे वापस वेटिंग एरिया (प्रतीक्षा-क्षेत्र) में ले जाता है। और उसके वापस उस कमरे में जाते ही दो पल्लों वाला दरवाज़ा कराहते हुए बंद हो जाता है। अब मुझे दरवाज़े के दोनों पल्लों में बनीं दो छोटी-छोटी चौकौर खिड़कियों में से अन्दर मौजूद आदमियों की सर्जिकल टोपियों का सिर्फ़ ऊपरी हिस्सा ही दिखाई पड़ रहा है।

वेटिंग एरिया एक चौड़ा, बिना खिड़की वाला गलियारा है, जो लोगों से खचाखच भरा है। दीवारों के साथ लगकर स्टील की कुर्सियाँ रखी हैं, जिनमें से एक भी इस वक़्त खाली नहीं है। लोग बहुत ज़्यादा हैं और कुर्सियाँ बहुत कम, इसीलिए कई सारे लोग फर्श पर बिछे पतले फटे कालीन पर बैठे हैं। मैं ज़ोरों से चीखना चाहता हूँ, और मुझे याद है कि आख़िरी बार मैंने ऐसा कब महसूस किया था, तब जब मैं काबुल से भागते समय ईंधन लाने-ले जाने के लिए इस्तेमाल होने वाले ट्रक के घुप्प अँधेरे टैंकर में बाबा और बाक़ी शरणार्थियों के साथ भेड़-बकरियों की तरह भर दिया गया था। मैं इस जगह से, इस हक़ीक़त से कहीं दूर भाग जाना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मैं बादलों की तरह हल्का होकर इस जगह से, इस हक़ीक़त से ऊपर उठ जाऊँ और कहीं दूर उड़ जाऊँ। मैं चाहता हूँ कि मैं पिघलकर इस उमस भरी रात में मिल जाऊँ और कहीं दूर, पहाड़ियों के ऊपर की फ़िज़ां में घुल जाऊँ। मगर मेरे चाहने से कुछ नहीं होता। मेरी नियति है यहीं होना। मेरे पैर कंक्रीट के ब्लॉक हो गए हैं, मेरे फेफड़े हवा से खाली हो चुके हैं, और मेरा गला जल रहा है। मेरे लिए यहाँ से उड़ जाना किसी भी तरह मुमकिन

नहीं है। मेरे लिए आज रात कोई और हक़ीक़त नहीं हो सकती। मैं अपनी आँखें बंद कर लेता हूँ और गलियारे की, पसीने की, अमोनिया की, रबिंग अल्कोहल की और करी की गंध मेरे नथुनों में भरने लगती है। मैं छत की ओर देखता हूँ, जहाँ गलियारे की पूरी लम्बाई में जगह-जगह लगीं ट्यूबलाइट्स की मद्धम रोशनी के इर्द-गिर्द ढेर सारे पतंगे मंडरा रहे हैं, मैं उनके पँखों की फड़फड़ाहट सुनने लगता हूँ। इसके साथ-साथ मुझे लोगों के आपस में बतियाने की आवाज़, धीरे-धीरे सिसकने की आवाज़, नाक सुड़कने की आवाज़, किसी के कराहने की आवाज़, किसी के आहें भरने की आवाज़, लिफ्ट के दरवाज़े के खुलने की आवाज़, ऑपरेटर के उर्दू में किसी को पुकारने की आवाज़ भी सुनाई पड़ने लगती है।

मैं फिर से अपनी आँखें खोलता हूँ और अब मुझे पता है कि मुझे क्या करना है। मैं चारों तरफ़ नज़र घुमाता हूँ। मेरे सीने में मेरा दिल धाड़-धाड़ करके बज रहा है, मेरी कनपटियों की नसें ज़ोर-ज़ोर से फड़क रही हैं। अपनी बाईं ओर मुझे एक छोटा-सा, अंधेरे में डूबा सप्लाई रूम दिखाई पड़ता है। मैं उसके भीतर जाता हूँ, और मुझे वो मिल जाता है जो चाहिए था। इससे काम चल जाएगा। मैं तह करके रखे हुए चादरों के ढेर में से एक सफ़ेद चादर उठाता हूँ और उसे लेकर वापस गलियारे में आ जाता हूँ। मैं देखता हूँ कि रेस्टरूम के पास एक नर्स खड़ी किसी पुलिसवाले से बात कर रही है। मैं उसके पास जाता हूँ और उसकी कोहनी पकड़कर खींचता हूँ। मैं जानना चाहता हूँ कि वहाँ पश्चिम दिशा कौन सी है। मगर वह मेरी बात का मंतव्य समझ नहीं पाती और उसकी पेशानी पर बल पड़ जाते हैं। मेरा गला दर्द कर रहा है और मेरी आँखें पसीने से जल रही हैं, ऐसा लग रहा है जैसे साँस के साथ हवा नहीं बल्कि आग अन्दर आ रही हो, और मुझे लगता है कि मैं रो रहा हूँ। मैं फिर से पूछता हूँ। गिड़गिड़ाता हूँ। फिर वह पुलिसवाला उंगली के इशारे से मुझे बताता है।

मैं अपनी कामचलाऊ जाइ-नमाज़ (नमाज़ के लिए बैठते वक़्त बिछाया जाने वाला गलीचा) फ़र्श पर बिछाता हूँ और घुटनों के बल बैठ जाता हूँ, अपना माथा ज़मीन पर टिकाता हूँ। मेरी आँखों से आँसू बह-बहकर चादर को भिगोने लगते हैं। मैं पश्चिम की तरफ़ मुँह करके सजदा करता हूँ। तब मुझे याद आता है कि मैंने तक़रीबन पंद्रह बरसों से इबादत नहीं की थी। इबादत करते वक़्त क्या बोला जाता है, मैं भूल चुका था। मगर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, मैं वे ही लफ्ज़ बोल लूँगा जो मुझे याद हैं। ??ला इफलाहा इइ** अल्लाह, मुहम्मद उ रसूल उल्ला/ अल्लाह के अलावा और कोई ईश्वर नहीं है और मुहम्मद उसके हरकारे हैं, संदेशवाहक हैं। अब मुझे समझ में आया कि बाबा गलत थे; अल्लाह है, हमेशा से था। आज मैं उसे देख पा रहा था, यहाँ इस हताशा भरे गलियारे में मौजूद लोगों की आँखों में। यह अल्लाह का असली घर है। जिन लोगों ने उसे खो दिया था या उससे दूर चले गए थे, वे उसे यहीं पर वापस पाते हैं, न कि उस सफेद मस्जिद में जिसमें हीरे जैसी चमकीली रोशनी और ऊँची-ऊँची मीनारें हैं। अल्लाह है, होना ही चाहिए, और अब मैं इबादत करूँगा, अब मैं सजदा करूँगा, अब मैं अल्लाह से दुआ करूँगा कि इतने बरस जो मैं उसे अनदेखा करता रहा, उसके लिए

वह मुझे माफ कर दे; मैं उससे इल्तेज़ा करूँगा कि वह मुझे माफ़ कर दे इस बात के लिए कि अब तक मैं धोखा देता रहा, झूठ बोलता रहा, पाप करता रहा और उन पापों की सज़ा से भी बचता रहा, और अब जब मेरा सबकुछ दाँव पर लग गया है तो मैं मतलबियों की तरह उसका दरवाज़ा खटखटा रहा हूँ; मैं सजदे में झुककर उससे कहूँगा कि वह उतना ही रहमदिल, उतना ही खैरख्वाह और उतना ही बंदापरवर है, जितना उसकी किताब में लिखा है। मैं पश्चिम की तरफ़ मुँह करके झुकता हूँ और ज़मीन को चूमता हूँ और वादा करता हूँ कि मैं ज़कात करूँगा, नमाज़ पढ़ूँगा, रमज़ान के दौरान ही नहीं बल्कि उसके बाद भी रोज़ा रखूँगा, मैं उसकी पाक किताब के हर शब्द को याद रखूँगा, और हज के लिए मक्का जाऊँगा और काबा के सामने भी सजदा करूँगा। मैं यह सब करूँगा और आज से हर दिन उसके बारे में सोचूँगा, अगर वह मेरी यह एक इच्छा पूरी कर दे: मेरे हाथ पहले ही हसन के ख़ून से रँगे हुए हैं, मैं अल्लाह से दुआ करता हूँ कि अब उन पर हसन के बेटे का ख़ून न लगने दे।

मुझे किसी का हल्के-हलके सिसकना सुनाई देता है और फिर मैं महसूस करता हूँ कि मैं ही सिसक रहा हूँ, मेरी ही आँखों से आँसू बह-बहकर मेरे गालों और होंठों को भिगो रहे हैं। मैं महसूस करता हूँ कि गलियारे में मौजूद हर शख़्स की नज़र मुझ पर है, मगर मैं सजदे में झुकना जारी रखता हूँ। मैं दुआ करता हूँ। मैं दुआ करता हूँ कि मेरे गुनाहों की मुझे वैसी सज़ा न मिले जैसी सज़ा के ख़याल से मैं हमेशा डरता रहा हूँ।

इस्लामाबाद पर अमावस की रात का अँधेरा छा गया है। कुछ घंटे बीत चुके हैं। मैं अब वेटिंग एरिया से दूर आपातकालीन वार्ड की ओर जाने वाले एक छोटे से लाउंज के फर्श पर बैठा हूँ। मेरे सामने एक हल्के कत्थई रंग की कॉफी टेबल रखी है, जिस पर कई सारे अखबार और पत्रिकाएँ बिखरी पड़ी हैं–टाइम पत्रिका का अप्रैल 1996 का अंक; एक पाकिस्तानी अखबार, जिसमें एक जवान लड़के का चेहरा दिखाया गया है जिसे एक हफ्ते पहले ट्रेन ने टक्कर मार दी थी और जिससे उसकी मौत हो गई थी; एक फ़िल्मी पत्रिका, जिसके चमकदार कवर पर हॉलीवुड एक्टरों की मुस्कराती हुई तस्वीरें हैं। मेरे सामने एक बूढ़ी औरत, जिसने जेड ग्रीन रंग की सलवार-कमीज़ पर क्रोशिए से बुना हुआ शॉल ओढ़ रखा है, व्हीलचेयर पर बैठी सो रही है। थोड़ी-थोड़ी देर में वह जाग उठती है और अरबी में कोई दुआ बुदबुदाने लगती है। मैं थका-हारा उसके सामने फर्श पर बैठा सोच रहा हूँ कि आज रात किसकी दुआ कबूल होगी, उसकी या मेरी? मेरी आँखों के सामने सोहराब का चेहरा घूमने लगता है–नुकीली मांसल ठोड़ी, सीप के जैसे मुड़े हुए छोटे-छोटे कान, बाँस की पत्तियों जैसी तिरछी छोटी-छोटी आँखें; सबकुछ बिल्कुल उसके बाबा के जैसा। बाहर फ़ैली अमावस की रात जैसा स्याह गम मुझे जकड़ने लगता है, और मुझे लगता है जैसे मेरा दम घुट रहा हो।

मुझे हवा की ज़रूरत महसूस होने लगती है।

मैं उठकर खिड़कियाँ खोल देता हूँ। बासी और गर्म हवा, जिसमें पके खजूर और गोबर की गंध मिली हुई है, अन्दर आने लगती है। मैं ताक़त लगाकर ज़ोर-ज़ोर से साँस

लेकर इस हवा को अपने फेफड़ों में भरता हूँ, मगर इससे भी दम घुटने वाला अहसास कम नहीं होता। मैं दुबारा फर्श पर बैठ जाता हूँ। मैं टाइम पत्रिका उठाता हूँ और उसके पन्ने पलटता हूँ। लेकिन मैं कुछ भी पढ़ नहीं पाता, किसी भी चीज़ पर ध्यान नहीं लगा पाता। इसलिए मैं उसे टेबल पर फेंक देता हूँ और फिर से सीमेंट के फर्श पर बने दरारों के टेढ़े-मेढ़े पैटर्न को, छतों के कोनों पर बने मकड़ी के जालों को, और ख़िड़की की चौखटों पर बिख़री पड़ीं मरी हुई मक्खियों को देखने लगता हूँ। ज़्यादातर, मैं दीवार पर लगी घड़ी को देखता रहता हूँ। अभी सुबह के 4 बजे हैं। और उन लोगों को मुझे उस दो पल्ले वाले दरवाज़े से बाहर किए हुए पाँच घंटे से भी ज़्यादा हो गए हैं। मगर अभी तक भी मुझे कोई ख़बर नहीं मिली है।

जिस फर्श पर मैं बैठा हूँ, वह अब मुझे अपने शरीर का हिस्सा मालूम होने लगा है, और मेरी साँसें भारी और धीमी होती जा रही हैं। मैं सोना चाहता हूँ। अपनी आँखें बंद कर लेता हूँ और अपना सिर इस ठंडे, धूल भरे फर्श पर रखकर लेट जाता हूँ। नींद का इंतज़ार करता हूँ। इस उम्मीद में कि जब मैं जागूँगा तो पाऊँगा कि जो कुछ भी मैंने होटल के बाथरूम में देखा–नल से टपकती पानी की बूँदों का टप्प-टप्प की आवाज़ के साथ बाथटब में भरे ख़ून मिले पानी में गिरना; सोहराब के बाएँ हाथ का टब से बाहर लटकना; टॉयलेट टैंक पर रखा ख़ून से लथपथ उस्तरा –वही उस्तरा जिससे मैंने एक दिन पहले ही दाढ़ी बनायी थी– और उसकी आँखें, जो आधी खुली थीं मगर जिनमें रोशनी कम थी–वो सब एक भयानक सपना था। इन सब में से मैं सबसे ज़्यादा उन आँखों को भूलना चाहता हूँ।

जल्दी ही नींद मुझे अपने आगोश में ले लेती है और मैं ख़ुद को उसके हवाले कर देता हूँ। नींद में मुझे सपने आते हैं, मगर जागने के बाद कुछ भी याद नहीं रहता।

कोई मेरे कंधे को थपथपा रहा है। मैं आँखें खोलता हूँ। कोई घुटनों के बल मेरे बग़ल में बैठा है। उसने वैसी ही सर्जिकल कैप पहन रखी है जैसी उस दो पल्लों वाले दरवाज़े के पीछे मौजूद आदमियों ने पहन रखी थी, साथ ही उसके चेहरे पर पेपर सर्जिकल मास्क भी लगा हुआ है। जैसे ही मुझे उसके मास्क पर ख़ून की एक बूँद दिखाई पड़ती है, मेरा दिल बैठ जाता है। उसने अपने बीपर पर हिरनी जैसी आँखों वाली एक छोटी बच्ची की तस्वीर चिपका रखी है। वह कुछ कहने के लिए अपना मास्क उतारता है और इस बात से मुझे भारी राहत महसूस होती है कि अब मुझे सोहराब का ख़ून नहीं देखना पड़ेगा। उसकी रंगत गहरी है, उस स्विस चॉकलेट जैसी जो हसन और मैं शर-ए-नऊ के बाज़ार से ख़रीदते थे। उसके बालों से गंजापन झाँक रहा है और उसकी आँखें भूरी-हरी हैं। ब्रिटिश लहज़े में वह मुझे बताता है कि उसका नाम डॉ. नवाज़ है, और अचानक मेरे मन में उससे दूर भाग जाने का ख़याल आने लगता है, क्योंकि मुझे नहीं लगता कि जो वह मुझसे कहने आया है वो मैं सुन पाऊँगा। वह बताता है कि उस्तरे का घाव बहुत गहरा था और बहुत ज़्यादा ख़ून बह गया था। इतना सुनते ही मेरे मुँह से फिर वही दुआ निकलने लगती है:

ला इलाहा इल अल्लाह, मुहम्मद उ रसूल उल्लाह।

उन्हें कई बोतल ख़ून चढ़ाना पड़ा था–

किस मुँह से मैं सोराया को यह सब बताऊँगा?

दो बार उन्हें उसकी बंद हो रहीं धड़कनों को वापस लाने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाना पड़ा था–

मैं नमाज़ पढ़ूँगा, मैं ज़कत करूँगा।

वे शायद उसे बचा नहीं पाते अगर उसका दिल जवान और मज़बूत न होता–

मैं रोज़ा रखूँगा।

वह ज़िन्दा है।

डॉक्टर नवाज़ मुस्कराते हैं। अभी-अभी उन्होंने जो कहा, उसे सुनने-समझने में मुझे थोड़ा वक़्त लगता है। आगे अभी और भी कुछ कह रहे हैं, मगर मुझे सुनाई देना बंद हो गया है। मैंने उनके हाथों को अपने हाथों में ले लिया है और अपनी आँखों से लगा लिया है। मेरी आँखों से झर-झर आँसू बह रहे हैं, उनके हाथों को भिगो रहे हैं। उन्होंने भी बोलना बंद कर दिया है। वह भी इंतज़ार कर रहे हैं मेरे इस राहत को अच्छी तरह महसूस कर लेने का।

गहन देखभाल इकाई (ICU) अंग्रेज़ी के 'L' आकार की जगह है, जहाँ हल्की रोशनी रहती है और आवाज़ के नाम पर ज़्यादातर मॉनीटरों की बीप और मशीनों की घरघराहट ही सुनाई देती है। बिस्तरों की दो कतारें हैं आमने-सामने। दो बिस्तरों के बीच एक प्लास्टिक की शीट परदे का काम करती है। इन्हीं दोनों कतारों के बीच की जगह में, मैं डॉक्टर नवाज़ के पीछे-पीछे जा रहा हूँ। सोहराब का पलंग सबसे आख़िर में कोने के पास वाला है, जो कि नर्सों के बैठने की जगह से सबसे क़रीब पड़ता है। अभी वहाँ हरे रंग के सर्जिकल स्क्रब पहने दो नर्सें मौजूद हैं, जो क्लिप बोर्ड पर नोट्स लिखने के साथ-साथ धीमी आवाज़ में आपस में बातें भी कर रही हैं। डॉ. नवाज़ के साथ यहाँ आते वक़्त मैं सोच रहा था कि जब मैं सोहराब को देखूँगा तो शायद फिर से रो पड़ूँगा। मगर जब मैं उसके पैरों के पास रखी एक कुर्सी पर बैठा और मैंने चमचमाती प्लास्टिक ट्यूब्स और IV लाइनों के जाल के बीच से उसके सफ़ेद फक्क चेहरे को देखा, तो मेरी फटी-फटी आँखें बरसना भूल गईं। उसकी छाती को वेंटिलेटर की आवाज़ की लय के साथ ऊपर-नीचे होते देखकर मुझ पर एक अजीब-सा सुन्नपन छा गया, वैसा ही सुन्नपन जैसा किसी आदमी को तब महसूस होता है जब वह किसी मोड़ पर अपनी कार मोड़ता है और अचानक सामने से आ रही एक और तेज़ रफ़्तार गाड़ी से टकराने से बाल-बाल बचता है।

मैं कुर्सी पर बैठे-बैठे ही ऊँघने लगता हूँ, और जब जागता हूँ तो नर्सों के बैठने की जगह के बग़ल वाली खिड़की से बाहर सफ़ेद आसमान में सुबह के सूरज को उगता

देखता हूँ। सूरज की रोशनी मेरी दायीं ओर से आ रही थी, जिसके चलते मेरी परछाईं सोहराब के ऊपर पड़ रही थी। वह अभी भी बेहोश था।

"अच्छा होगा कि आप थोड़ा सो लें," एक नर्स ने मुझसे कहा। वह रात वाली नर्सों में से नहीं थी, शायद जब मैं झपकी ले रहा था तब शिफ़्ट बदल गई थी। वह मुझे आईसीयू के ठीक बाहर बने एक दूसरे लाउंज में ले जाती है। यह खाली है। एक तकिया और एक कम्बल मेरे हाथ में थमा देती है। मैं उसका शुक्रिया अदा करता हूँ और लाउंज के कोने में पड़े एक विनाइल सोफे पर लेट जाता हूँ। तत्काल ही मेरी नींद लग जाती है।

सपने में, मैं देखता हूँ कि मैं फिर से नीचे वाले लाउन्ज में हूँ। डॉक्टर नवाज़ अन्दर आते हैं और मैं उनसे मिलने के लिए उठ खड़ा होता हूँ। वह अपना सर्जिकल मास्क उतारते हैं और मैं देखता हूँ कि अब उनके हाथ कहीं ज़्यादा गोरे दिखाई देने लगे हैं, उनके नाख़ून मैनीक्योर किए हुए हैं, उन्होंने अपने बाल बीच में से माँग निकालकर बड़े क़रीने से जमाए हुए हैं, और मैं देखता हूँ कि वह डॉ. नवाज़ नहीं बल्कि रेमंड एंड्रयूज़ है, दूतावास में मिला गमले में लगे टमाटर के पौधों को धूप दिखाने वाला छोटे कद का आदमी। एंड्रयूज़ अपना सिर एक ओर झुकाता है। अपनी आँखें सिकोड़ता है।

दिन के उजाले में अस्पताल कुछ और नज़र आता था। दिन के समय वहाँ भरपूर चहल-पहल रहती थी। दिन के उजाले में मुझे इसका पूरा जुगराफिया पता चला। मुझे पता चला कि पूर्वी विंग की लिफ्ट में चौथी मंज़िल का बटन नहीं जलता था। उसी मंज़िल पर आदमियों के कमरे का दरवाज़ा जाम था और उसे खोलने के लिए आपको कंधे से धक्का देना पड़ता था। मुझे पता चला कि अस्पताल की ज़िन्दगी की अपनी एक अलग लय होती है। सुबह की शिफ्ट बदलने से ठीक पहले हलचल दिखाई पड़ती है, फिर दिन भर भागदौड़ लगी रहती है, और देर रात को एकदम सन्नाटा पसर जाता है, जो कभी-कभी डॉक्टरों और नर्सों की उस टीम की गहमागहमी से टूटता है जो डूबती साँसों वाले किसी मरीज़ को वापस जिलाने की कोशिश में दौड़ पड़ती है। अगले तीन दिनों तक मेरी यही दिनचर्या रही कि दिन में, मैं सोहराब के बिस्तर के पास बैठा रहता और रात को अस्पताल के चक्करदार गलियारों में घूमते-घूमते, अपने ही जूतों से फ़र्श पर होने वाली ठक-ठक की आवाज़ सुनते-सुनते सोचता कि जब सोहराब जागेगा तो मैं उससे क्या कहूँगा। घूमते-घूमते और सोचते-सोचते जब थक जाता तो वापस ICU में चला आता, बिना इस बात का जवाब पाए कि मैं सोहराब से क्या कहूँगा।

तीन दिन बाद उन्होंने वेंटिलेटर हटा दिया और सोहराब को ग्राउंड फ्लोर पर शिफ्ट कर दिया। जब उन्होंने ऐसा किया तब मैं वहाँ मौजूद नहीं था। मैं उस रात होटल चला गया था ताकि ठीक से सो सकूँ, मगर रात भर बिस्तर में करवट बदलते-बदलते ही बिताई थी। सुबह उठकर जब बाथरूम गया था तो कोशिश की थी कि बाथटब की तरफ़ न देखूँ। हालाँकि अब यह साफ़ था, किसी ने ख़ून पोंछ दिया था, फ़र्श पर नई मैट बिछा दी थी और दीवारों को भी साफ़ कर दिया था। मगर मैं ख़ुद को इसके चीनी-मिट्टी के ठंडे किनारे पर बैठने से रोक नहीं पाया। मैंने मन की आँखों से सोहराब को उसमें

गमे पानी भरते हुए देखा। कपड़े उतारते हुए देखा। उस्तरे के हैंडल को को खोलते, ब्लेड को बाहर निकालते, और उसे अंगूठे और तर्जनी के बीच में पकड़ते देखा। मैंने उसे टब के पानी में उतरते और आँखें बंद करके कुछ देर लेटे रहते देखा। मैं सोचने लगा कि ब्लेड को कलाई पर फेरने से ठीक पहले उसके ज़ेहन में आख़िरी ख़याल क्या आया होगा?

जब मैं लॉबी से बाहर निकल रहा था तो होटल के मैनेजर मिस्टर फ़य्याज़ मेरे पास आए। “मुझे आपके लिए बहुत अफ़सोस है,” उन्होंने कहा, “मगर बराए मेहरबानी आप मेरे होटल से चले जाएँ। जो कुछ भी हुआ है वह मेरे बिज़नेस के लिए अच्छा नहीं है, बिल्कुल भी नहीं।”

मैंने उनसे कहा कि मैं उनकी परेशानी समझ रहा था, और मैंने तत्काल वह होटल छोड़ दिया। उन्होंने उन तीन दिनों का किराया नहीं लिया जो मैंने अस्पताल में बिताए थे। टैक्सी के इंतज़ार में होटल की लॉबी के बाहर खड़े-खड़े मुझे मिस्टर फ़य्याज़ की वह बात याद हो आई जो उन्होंने उस शाम कही थी, जब हम सोहराब को ढूँढने गए थे। उन्होंने कहा था: “आप अफ़ग़ानियों के बारे में, मैंने एक बात नोट की है कि…कि आप लोग थोड़े लापरवाह किस्म के हैं।” उस वक़्त मैं उनकी बात पर ख़ूब हँसा था, मगर अब सोचने पर मजबूर हो गया था कि क्या यह बात वाक़ई सच थी? क्या वाक़ई मैं सोहराब को वह ख़बर देने के बाद, जिससे वह सबसे ज़्यादा डरता था, सो गया था? मैं इतना लापरवाह कैसे हो सकता था? टैक्सी में बैठने के बाद मैंने ड्राइवर से पूछा कि क्या उसे कोई ऐसी किताबों की दुकान पता थी जहाँ फ़ारसी किताबें मिलती हों? उसने बताया कि वहाँ से दक्षिण में तक़रीबन दो किलोमीटर दूर एक दुकान थी। हम अस्पताल जाते समय वहाँ रुके।

सोहराब के नए कमरे में वह अकेला नहीं था, वहाँ एक मरीज़ और भी था। एक नयी उम्र का पंजाबी लड़का, जिसके बारे में मुझे एक नर्स से पता चला था कि एक चलती हुई बस की छत पर से फिसल जाने के चलते उसका एक पैर टूट गया था। उसका वह पैर अब प्लास्टर में था और उसे ऊपर उठाकर, टाँगकर रखा गया था।

सोहराब का पलंग खिड़की के बग़ल में था। खिड़की से भीतर आ रही धूप उसके पलंग के निचले आधे हिस्से पर पड़ रही थी। एक वर्दीधारी सुरक्षा गार्ड खिड़की पर खड़ा था और पके हुए तरबूज के बीज चबा रहा था। आत्महत्या का मामला होने के चलते सोहराब पर चौबीसों घंटे निगरानी रखी जा रही थी। डॉक्टर नवाज़ के मुताबिक़ यह अस्पताल का कायदा था। गार्ड ने मुझे देखते ही अपनी टोपी उतारी और कमरे से बाहर चला गया। सोहराब अस्पताल के कपड़ों में पीठ के बल लेटा था, छाती तक कम्बल ओढ़े। उसका चेहरा खिड़की की तरफ़ था। मुझे लगा कि वह सो रहा था, मगर जब मैंने उसके सिरहाने बैठने के लिए एक कुर्सी खींची तो उसकी बंद पलकों के नीचे हलचल हुई और वे खुल गईं। उसने मेरी तरफ़ देखा, फिर परे देखने लगा। वह बहुत पीला पड़ गया था (अस्पताल वालों के इतना सारा ख़ून चढ़ाने के बाद भी) और उसकी

दाहिनी बाँह और कोहनी के जोड़ का एक बड़ा हिस्सा नीला पड़ा हुआ था।

"कैसे हो तुम?" मैंने पूछा।

उसने जवाब नहीं दिया। वह खिड़की से बाहर अस्पताल के बगीचे में बने बच्चों के खेल के मैदान को देख रहा था, जहाँ एक तारों से घिरा सैंडबॉक्स (रेत से भरी खंदक) और एक झूला मौजूद था। खेल के मैदान के पास, लाइन से लगे गुड़हल के पेड़ों की छाया में, मेहराब के आकार की लकड़ी की एक जाली थी, जिस पर कुछ हरी बेलें चढ़ी हुई थीं। कुछ बच्चे बाल्टियाँ लिए हुए सैंडबॉक्स में रेत से खेल रहे थे। उस दिन आसमान एकदम साफ़ था और मैंने एक छोटे-से जेट को अपने पीछे सफ़ेद धुएँ की दो लकीरें छोड़कर जाते देखा।

मैं वापस सोहराब की तरफ़ मुड़ा। "अभी कुछ मिनट पहले ही मैंने डॉ. नवाज़ से बात की थी और उन्हें लगता है कि तुम्हें कुछ ही दिनों में छुट्टी मिल जाएगी। यह कितनी अच्छी ख़बर है, है न?"

उसने फिर कोई जवाब नहीं दिया। कमरे के दूसरे छोर पर लेटा पंजाबी लड़का नींद में हिलने लगा और कुछ बड़बड़ाने लगा। "तुम्हारा कमरा अच्छा है," मैंने सोहराब की पट्टी बंधी हुई कलाईयों को न देखने की कोशिश करते हुए कहा। "यहाँ भरपूर रोशनी है, और इस खिड़की से बाहर का नज़ारा भी दिखाई पड़ता है।" ख़ामोशी। कुछ और मिनट इसी तरह असहजता में बीत गए और मेरे माथे और ऊपरी होंठ पर हल्का पसीना आने लगा। मैंने उसके नाइटस्टैंड पर रखे हरे मटर के कटोरे और प्लास्टिक के चम्मच की तरफ़ इशारा किया, जिसे उसने रात से अब तक हाथ भी नहीं लगाया था। "तुम्हें कुछ खाने की कोशिश करनी चाहिए। तुम्हें अपनी कुव्वत वापस लानी है। मैं तुम्हारी मदद करूँ?"

उसने मेरी तरफ़ देखा, फिर नज़रें फेर लीं। उसका चेहरा पत्थर की तरह सपाट था। उसकी आँखों में अब भी कोई चमक नहीं थी, वे अब भी वैसी ही खाली थीं, जैसी मैंने तब देखी थीं जब उसे बाथटब से बाहर निकाला था। मैंने अपने पैरों के बीच पड़े काग़ज़ के थैले में हाथ डाला और फ़ारसी किताबों की दुकान से ख़रीदी गई शाहनामा की सेकण्ड-हैण्ड कॉपी निकाली। फिर उसे इस तरह अपने सीने के सामने पकड़ा, जिससे कि उसका कवर सोहराब के सामने रहे। "बचपन में, मैं तुम्हारे बाबा को इसमें से कहानियाँ पढ़कर सुनाता था। तब जब हम लोग हमारे घर के पास वाली पहाड़ी पर जाकर वहाँ लगे अनार के पेड़ के नीचे बैठते थे..." मैं कहते-कहते चुप हो गया। सोहराब की नज़र फिर से खिड़की के बाहर भटकने लगी थी। मैंने मुस्कराने की कोशिश की। "इसमें से तुम्हारे बाबा की पसंदीदा कहानी 'रुस्तम और सोहराब' थी और इसी से तुम्हारा नाम पड़ा, मैं जानता हूँ कि तुम यह जानते हो।" मैं चुप हो गया। मुझे ऐसा महसूस हो रहा था जैसे मैं कोई अहमक हूँ। "बहरहाल, तुम्हारे बाबा ने अपने ख़त में लिखा था कि यह कहानी तुम्हारी भी पसंदीदा है, इसलिए मैंने सोचा कि मैं तुम्हें इसी के कुछ अंश पढ़कर सुनाऊँ। तुम्हें अच्छा लगेगा?"

सोहराब ने आँखें बंद कर लीं। अपना एक हाथ मोड़कर आँखों पर रख लिया। वही हाथ जिसमें नील पड़ा हुआ था। मैंने वह पन्ना खोला जिसके किनारे को मैंने टैक्सी में बैठे-बैठे मोड़ा था। “तो चलो शुरू करते हैं,” मैंने कहा। पहली बार मेरे दिमाग़ में यह बात आ रही थी कि जब पढ़ना सीखने के बाद हसन ने ख़ुद शाहनामा पढ़ी होगी तब यह जानकर उसके मन में कैसे ख़याल आए होंगे कि मैंने बचपन में इतनी बार उसे धोखा दिया था? मैंने खँखारकर गला साफ़ किया। “सोहराब और रुस्तम के बीच हुई इस लड़ाई को ध्यान से सुनो, भले ही यह आँसुओं से भरी कहानी हो,” मैंने पढ़ना शुरू किया। “ऐसा हुआ कि एक दिन रुस्तम अपने तख़्त से उठा और उसका मन आशंकाओं से भर गया। उसने सोचा...” मैंने उसे अध्याय-1 लगभग पूरा ही पढ़कर सुना दिया, उस भाग तक जहाँ युवा योद्धा सोहराब अपनी वालिदा, तहमीनेह, जो कि समेनगन की शहज़ादी हैं, के पास आता है और उनसे पूछता है कि उसके बाबा कौन हैं। इसके बाद मैंने किताब बंद का दी। “और आगे पढ़ँ? आगे रुस्तम और सोहराब के बीच लड़ाइयों का ज़िक्र आएगा, याद है न? सोहराब अपनी सेना लेकर ईरान के व्हाइट कैसल पर चढ़ाई करेगा? आगे पढ़ूँ?”

उसने धीरे से सिर हिलाकर मना कर दिया। मैंने किताब वापस काग़ज़ के थैले में रख दी। “कोई बात नहीं,” मैंने कहा। मैं इस बात से थोड़ा उत्साहित था कि आख़िर उसने मेरी किसी बात पर कोई तो प्रतिक्रिया दी। “बाक़ी हम कल पढ़ेंगे। अब कैसा लग रहा है?”

सोहराब का मुँह खुला और एक फुसफुसाती-सी आवाज़ निकली। डॉ. नवाज़ ने मुझे बताया था कि ऐसा होगा, क्योंकि उन्होंने उसकी वोकल कॉर्ड (स्वर-यंत्र) से होकर एक नली डाली थी साँस लेने के लिए। बहरहाल, सोहराब ने अपने होंठों पर ज़बान फेरी और फिर से कोशिश की। “थक गया हूँ।”

“मुझे पता है। डॉ. नवाज ने कहा था कि ऐसा होगा—” वह इंकार में सिर हिला रहा था।

“क्या, सोहराब?”

उसके गले से एक बार फिर वैसी ही फुसफुसाती-सी आवाज़ निकली, और इस बार शायद उसे गले में दर्द भी हुआ।

“हर चीज़ से थक गया हूँ।”मैंने एक आह भरी और धम्म से अपनी कुर्सी में धँस गया। खिड़की से आ रही धूप अब पलंग के बीच वाले हिस्से पर पड़ रही थी और हमारे बीच रोशनी की एक खिड़की जैसी बन गई थी। उस खिड़की के पार से जो राख जैसा सफ़ेद चेहरा मेरी ओर झाँक रहा था उसे देखकर अचानक एक पल को मुझे हसन याद आ गया, मगर वह हसन नहीं जिसके साथ मैं तब तक कंचे खेलता रहता था जब तक कि मस्जिद से अज़ान नहीं होने लगती थी और अली हमें बुलाने नहीं आ जाता था, वह हसन भी नहीं जिसके साथ मैं पहाड़ी पर जाता था, अनार के पेड़ पर चढ़ता था,

पकड़म-पकड़ाई खेलता था। यह वो हसन था जिसे मैंने आख़िरी बार देखा था, तब जब वह बरसते पानी में अली के साथ मिलकर अपना सामान बाबा की कार की डिक्की में रख रहा था, और जिसे मैं अपने कमरे की बारिश से भीगी खिड़की से जाते हुए देखता रहा था।

उसने धीरे-धीरे अपना सिर हिलाया और दोहराया, “मैं हर चीज़ से थक गया हूँ।”

“मैं क्या कर सकता हूँ, सोहराब? प्लीज़, मुझे बताओ।”

“मैं चाहता हूँ—“उसने बोलना शुरू किया, मगर फिर से शायद उसके गले में दर्द होने लगा था। वह अपना हाथ गले पर ले गया मानो उस अड़चन को हटाना चाह रहा हो जो उसके गले से आवाज़ नहीं निकलने दे रही थी। मेरी नज़रें फिर से उसकी उस कलाई पर जा टिकी थीं जो सफ़ेद पट्टियों से कसकर बंधी हुई थी। “मुझे अपनी पुरानी ज़िंदगी वापस चाहिए,” उसने मुश्किल से कहा।

“ओह, सोहराब।”

“मुझे बाबा और अम्मी जान चाहिए। मुझे सासा चाहिए। मैं फिर से रहीम खान साहब के साथ बगीचे में खेलना चाहता हूँ। मैं फिर से हमारे उसी घर में रहना चाहता हूँ।” उसने फिर से अपनी बाँह उठाकर अपनी आँखों पर रख ली। “मुझे अपनी पुरानी ज़िंदगी वापस चाहिए।”

मुझे समझ नहीं आया कि क्या कहूँ, किधर देखूँ, इसलिए मैं अपने हाथों की तरफ़ देखने लगा। ‘तुम्हारी पुरानी ज़िन्दगी,’ मैंने मन ही मन कहा, ‘मेरी भी पुरानी ज़िन्दगी है सोहराब। मैं भी उसी बाग़ीचे में खेला हूँ। उसी घर में रहा हूँ। मगर अब वह बाग़ीचा सूख चुका है और हमारे उस घर के ड्राइव-वे में अब किसी अजनबी की जीप खड़ी है, जो ड्राइव-वे पर काले तेल की उल्टी करती रहती है। हमारी पुरानी ज़िन्दगी ख़त्म हो चुकी है, सोहराब, और इसमें शामिल रहा हर शख़्स या तो मर चुका है या मर रहा है। अब सिर्फ़ तुम और मैं ही बचे हैं। सिर्फ़ तुम और मैं।’

“वो तो मैं तुम्हें नहीं दे सकता,” प्रत्यक्ष में, मैंने कहा।

“काश आपने मुझे न—”

“प्लीज़ ऐसा मत कहो।”

“…काश आपने मुझे न…काश आपने मुझे वहीं टब में पड़े रहने दिया होता।”

“ऐसा कभी मत कहना, सोहराब,” मैंने आगे झुकते हुए कहा। “मैं तुम्हें इस तरह बात करते नहीं सुन सकता।” मैंने उसके कंधे को छुआ तो वह चिंहुक गया। दूर हट गया। मैंने अपना हाथ पीछे खींच लिया। ग़मगीन होते हुए मैं सोचने लगा कि कैसे पिछले दिनों, मेरे वादाख़िलाफ़ी करने से पहले, वह मेरे स्पर्श से सहज हो चला था। “सोहराब, काश मैं तुम्हें तुम्हारी पुरानी ज़िन्दगी लौटा पाता, जो कि मुमकिन नहीं है।

मगर मैं तुम्हें अपने साथ ले जा सकूँ, यह अब मुमकिन है। यही बात बताने मैं उस रात बाथरूम में आया था। तुम्हें अमेरिका का वीसा मिल गया है, अब तुम अमेरिका चलकर मेरे और मेरी खानुम के साथ रह सकते हो। यह सच है। और यह सच अब नहीं बदलेगा, मैं वादा करता हूँ।"

उसने एक गहरी साँस छोड़ी और आँखें बंद कर लीं। मुझे अपनी गलती का अहसास हुआ, काश मैंने वह वादे वाली बात मुँह से न निकाली होती। "तुम्हें पता है, मैंने अपनी ज़िन्दगी में बहुत से ऐसे काम किए हैं जिनका मुझे पछतावा है," मैंने कहा। "मगर जिस काम का मुझे सबसे ज़्यादा पछतावा है, वह है तुमसे किए हुए वादे से मुकर जाना। लेकिन ऐसा फिर कभी नहीं होगा। मैं इसके लिए हद से ज़्यादा शर्मिंदा हूँ। मैं तुमसे बख्शीश माँगता हूँ, माफ़ी की दरख़्वास्त करता हूँ। मुझे यह बख्शीश दोगे न? मुझे माफ़ कर दोगे न? फिर से मुझ पर भरोसा दिखाओगे न?" मैंने आवाज़ धीमी की। "मेरे साथ चलोगे न?"

उसके जवाब का इंतज़ार करते हुए मेरे ज़ेहन में बहुत पहले की सर्दियों का वह दिन घूम गया जब हसन और मैं एक बिना पत्तों वाले खट्टी चेरी के पेड़ के नीचे बर्फ़ पर बैठे थे। मैंने उस दिन हसन के साथ एक बड़ा ही क्रूर खेल खेला था, बेजा खिलवाड़ किया था, मैंने उससे पूछा था कि क्या वह मेरे प्रति अपनी वफ़ादारी साबित करने के लिए मिट्टी भी खा सकता था? आज मैं ख़ुद को हसन की जगह पा रहा था। आज मैं ख़ुद माइक्रोस्कोप के नीचे था। आज मुझे अपनी लायकियत, अपनी वफ़ादारी साबित करनी थी। मेरे साथ यही होना चाहिए था।

सोहराब ने करवट ले ली, अब उसकी पीठ मेरी तरफ़ थी। बड़ी देर तक उसने कुछ नहीं कहा। और फिर, जैसे ही मैंने सोचा कि वह शायद सो गया था, उसने फुसफुसाती आवाज़ में कहा, "मैं बहुत खस्ता हूँ।" बहुत थका हुआ हूँ। जब तक वह सो नहीं गया, मैं उसके बिस्तर के पास बैठा रहा। सोहराब और मेरे बीच कुछ खो गया था। वकील उमर फैज़ल से मेरी मुलाक़ात से पहले तक सोहराब की आँखों में उम्मीद की एक किरण नज़र आने लगी थी, भले चौकन्नी चिड़िया सी हो, मगर नज़र आ रही थी। पर वह किरण अब खो चुकी थी, चिड़िया उड़ चुकी थी, और मुझे नहीं पता था कि अब वह कब वापस लौटने की हिम्मत करेगी। मुझे नहीं पता था कि सोहराब फिर से कब मुस्कराएगा। कब फिर से मुझे पर भरोसा करेगा। कभी करेगा भी या नहीं।

मैं उसके कमरे से बाहर निकल आया और एक नया होटल तलाशने चल पड़ा। उस वक़्त मुझे कहाँ पता था कि सोहराब को दुबारा बोलते सुनने के लिए मुझे तक़रीबन एक बरस का इंतज़ार करना पड़ेगा।

आख़िर में, सोहराब ने कभी भी 'हाँ' नहीं कहा। न ही उसने 'न' कहा। मगर वह जानता था कि अस्पताल से बाहर निकलने के बाद वह फिर से 'एक और बेघर यतीम हज़ारा' बन जाएगा। उसके पास कोई और चारा ही नहीं था। और कहाँ जाता वह। इसलिए मैंने जिसे उसकी 'हाँ' के तौर पर लिया, वह असल में 'हालात से एक ख़ामोश

समझौता' था; वह कोई स्वीकृति नहीं, बल्कि उस इंसान की उदासीनता थी जो कोई भी फैसला लेने की हालत में नहीं था, जिसका भरोसा इस कदर टूट चुका था कि वह अब किसी भी चीज़ पर यकीन करने को तैयार नहीं था। वह जिस चीज़ के लिए तरस रहा था, वह थी उसकी पुरानी ज़िंदगी। मगर उसे जो मिला, वो था मैं और अमेरिका। अगर सारी चीज़ों को ख़याल में लिया जाए तो इसे कोई इतनी बुरी नियति नहीं कहा जाएगा, मगर मैं उसे यह बात कह नहीं पाया। जब आपके ज़ेहन में लगातार नकारात्मक भावनाओं के बवंडर उठ रहे हों, तब चीज़ों को सही नज़रिये से देख पाना मुश्किल होता है।

और फिर ऐसा हुआ कि एक हफ्ते बाद हमने सात समंदर पार किए और मैं हसन के बेटे को अफ़ग़ानिस्तान से निकालकर अमेरिका ले आया। उसे उथल-पुथल की सुनिश्चितता से उठाकर अनिश्चितता की उथल-पुथल में डाल दिया।

एक दिन, शायद 1983 या 1984 की बात होगी, मैं फ्रेमोंट में एक वीडियो स्टोर में था। मैं पाश्चात्य (वेस्टर्न) फिल्मों के सेक्शन में खड़ा था। मेरे बग़ल में खड़े एक आदमी ने, जो एक 7-इलेविन कप हाथ में लिए कोक पी रहा था, 'द मैग्निफिसेंट सेवन' की सीडी की तरफ़ इशारा करके मुझसे पूछा कि क्या मैंने वह फ़िल्म देखी थी। "हाँ, तेरह बार," मेरे मुँह से ख़ुद-ब-ख़ुद निकल गया। "इसमें आख़िर में चार्ल्स ब्रोंसन मर जाता है, और जेम्स कोबर्न और रॉबर्ट वॉन भी।" उसका चेहरा ऐसे उतर गया जैसे किसी बच्चे के हाथ से आइसक्रीम छीन ली गई हो और उसने मुझे ऐसे देखा जैसे मैंने अभी-अभी उसके सोडा में थूक दिया हो। "बड़ी मेहरबानी की, मेरे दोस्त," उसने अविश्वास से सर हिलाते हुए कहा और कुछ बड़बड़ाते हुए चला गया। उस दिन मुझे पता चला कि अमेरिका में जब कोई आपसे किसी फ़िल्म के बारे में पूछे तो उसे अंत (क्लाइमेक्स) नहीं बताना होता है, क्योंकि ऐसा करने पर आपको 'आख़िर का मज़ा' ख़राब करने का गुनहगार मानकर तिरस्कार भरी नज़रों से देखा जाता है और आपसे शिद्दत के साथ माफ़ी माँगने की अपेक्षा रखी जाती है।

जबकि अफ़ग़ानिस्तान में तो अंत ही सबसे ज़्यादा मायने रखता था। जब भी हसन और मैं सिनेमा ज़ेनब में कोई हिंदी फिल्म देखकर घर आते थे तो अली, रहीम खान, बाबा, या बाबा के अनगिनत दोस्त –घर में आने-जाने वाले उनके छोटे चचेरे भाई लोग– बस यही जानना चाहते थे कि क्या फिल्म की हीरोइन को आख़िर में एक ख़ुशहाल ज़िन्दगी नसीब हुई? क्या फिल्म का हीरो आख़िर-कार कामयाब हुआ और अपने सपने पूरे कर पाया, या फिर नाकाम रहा और नाकामी के अंधेरों में डूबना ही उसका नसीब बन गया? क्या आख़िर में सबकुछ अच्छा हो गया? वे यही जानना चाहते थे।

अगर आज कोई मुझसे पूछे कि क्या हसन, सोहराब और मेरी कहानी का अंत सुखद है, तो मुझे समझ नहीं आएगा कि मैं क्या कहूँ।

क्या किसी की भी कहानी का अंत सुखद होता है? ज़िन्दगी कोई हिंदी फिल्म तो

नहीं है न। "ज़ेन्दगी मिगज़रा," अफ़ग़ान लोग अक्सर कहते हैं। ज़िन्दगी कभी रुकती नहीं, शुरुआत, खात्मा, कामयाबी, ना-कामी, विध्वंस, सृजन; किसी भी चीज़ की परवाह किए बिना, चरवाहों के धीरे-धीरे चलते रहने वाले धूल भरे कारवाँ की तरह लगातार आगे बढ़ती ही रहती है।

मैं नहीं जानता कि उस सवाल का क्या जवाब दूँ। बावजूद उस छोटे-से चमत्कार के, जो पिछले इतवार को घटा।

हम लगभग सात महीने पहले, अगस्त 2001 के एक गर्म दिन घर लौटे थे। सोराया हमें लेने हवाई-अड्डे आई थी। मैं कभी भी इतने लम्बे अरसे के लिए सोराया से दूर नहीं रहा था, और जब उसने अपनी बाँहें मेरे गले में डालीं, जब मैंने उसके बालों की वही जानी-पहचानी ख़ुश्बू एक बार फिर महसूस की, तब मुझे अहसाह हुआ कि मैंने उसे कितना ज़्यादा मिस किया था। "तुम अब भी मेरी येल्दा की सुबह का सूरज हो," मैंने फुसफुसाकर कहा।

"क्या?"

"जाने दो," कहकर मैंने उसका कान चूम लिया। उसके बाद, वह सोहराब के सामने घुटनों के बल बैठ गई। फिर उसने उसका हाथ पकड़ा और मुस्कराई।

"सलाम, सोहराब जान, मैं आपकी खाला सोराया हूँ। हम सब कब से आपका इंतज़ार कर रहे थे।"

सोहराब की ओर मुस्कुराती हुई उसकी आँखों में आँसू देखकर मैं सोचने लगा कि अगर उसकी कोख ने उसे धोखा न दिया होता तो वह एक बहुत ही अच्छी माँ साबित हो सकती थी।

सोहराब थोड़ा सा पीछे हटा और परे देखने लगा।

सोराया ने ऊपरी माले की स्टडी को सोहराब के लिए बेडरूम में बदल दिया था। वह उसे कमरे में ले गई और सोहराब चुपचाप पलंग के किनारे पर बैठ गया। पलंग पर जो चादरें बिछी थीं, उन पर चमकीले रंग की पतंगें नीले आसमान में उड़ती दिखाई दे रही थीं। उसने अलमारी के पास दीवार पर बच्चों की बढ़ती हुई ऊँचाई मापने के लिए फुट और इंच दर्शाने वाला स्केल बनवाया था। पलंग के सिरहाने पर एक बाँस की डलिया रखी थी जिसमें बच्चों की किताबें, ट्रेन का खिलौना इंजन, और एक वॉटर कलर सेट मौजूद था।

सोहराब ने एक सफ़ेद टी-शर्ट और जींस की पैंट पहनी हुई थी। ये दोनों चीज़ें मैंने उसे इस्लामाबाद से निकलने से ठीक पहले दिलाई थीं। उसका शरीर सूखकर हड्डियों के ढाँचे जैसा हो गया था, जिस पर टी-शर्ट ऐसी लग रही थी जैसे कि हैंगर पर टँगी हो। उसके चेहरे की रंगत अभी तक वापस नहीं लौटी थी और न ही आँखों के चारों ओर बने काले घेरे मिटे थे। वह अब हमें भी उसी भावशून्यता से देख रहा था जैसे वह

अस्पताल के अदेली द्वारा उसके सामने रखी जाने वाली उबले चावल की प्लेटों को देखता था।

सोराया ने उससे पूछा कि क्या उसे उसका कमरा पसंद आया? मैंने देखा कि इस दौरान पूरा समय सोराया कोशिश करती रही कि उसकी कलाई की तरफ़ न देखे, मगर उसकी आँखें बारम्बार उस कलाई पर बनीं उन गुलाबी रेखाओं पर जा रही थीं। सोहराब ने सिर झुका लिया। अपने हाथ अपनी जांघों के नीचे छिपा लिए और कुछ नहीं बोला। फिर उसने अपना सिर तकिए पर रख लिया। और पाँच मिनट से भी कम वक़्त बाद सोराया और मैं दरवाज़े पर खड़े उसे खर्राटे लेते देख रहे थे।

हम भी अपने कमरे में आकर लेट गए और सोराया मेरी छाती पर सिर रखकर सो गई। मगर मेरी आँखों में नींद नहीं थी, मैं एक बार फिर अनिद्रा का मरीज़ बन गया था। मैं कमरे के अँधेरे में उल्लुओं की तरह लेटा रहा। जागा हुआ। और अपने दिमाग़ में उथल-पुथल मचाए हुए अपने ही ख़यालों रूपी राक्षसों से अकेले लोहा लेता हुआ। आधी रात के क़रीब किसी वक़्त मैं बिस्तर से निकलकर सोहराब के कमरे में चला गया। उसके सिरहाने खड़े होकर उसे देखने लगा। मुझे उसके तकिए के नीचे से कुछ झाँकता नज़र आया। मैंने उसे बाहर निकाला। वह रहीम खान की खींची हुई वही पोलेरॉइड तस्वीर थी जो उस शाम शाह फैज़ल मस्जिद के सामने मैंने उसे दी थी। वही तस्वीर जिसमें हसन और सोहराब अगल-बग़ल खड़े हैं, चेहरे पर पड़ती सूरज की रोशनी के कारण आँखें सिकोड़े हुए और इस तरह मुस्कराते हुए जैसे कि यह दुनिया बहुत अच्छी और इन्साफ़-पसंद जगह हो। मैं सोचने लगा कि सोहराब पता नहीं कितनी देर तक बिस्तर पर लेटा इस फोटो को देखता रहा होगा, उसे अपने हाथों में घुमाता रहा होगा।

मैंने तस्वीर पर नज़र डाली। तुम्हारे बाबा दो हिस्सों में बँटे हुए इंसान थे, रहीम खान ने अपने ख़त में लिखा था। मैं बाबा का नाम पाने वाला, समाज की मंज़ूरी पाने वाला, वैध करार दिया गया हिस्सा था – बाबा के दबे-छिपे अपराध-बोध का साकार रूप। फिर मैंने तस्वीर में हसन की तरफ़ देखा, उसके सामने के दो दाँत गायब थे, उसके चेहरे पर सूरज की रोशनी पड़ रही थी। बाबा का दूसरा आधा हिस्सा। वह हिस्सा, जिसे न उनका नाम मिला, और न ही उनकी धन-दौलत और उसके बलबूते हासिल होने वाले अधिकार। वह हिस्सा, जिसके हिस्से में बाबा की वे चीज़ें आई थीं जो पाकीज़ा थीं, महान थीं। वह हिस्सा, जिसे शायद बाबा ने अपने दिल की अथाह गहराइयों में अपना सच्चा बेटा माना था।

मैंने तस्वीर वापस तकिए के नीचे सरका दी। तभी मुझे यह एहसास हुआ कि वह आख़िरी ख़याल (बाबा का हसन को अपना सच्चा बेटा मानने वाला ख़याल) अपने साथ कोई चुभन लेकर नहीं आया था। सोहराब के कमरे का दरवाज़ा बंद करते हुए मैंने सोचा कि क्या दिलों में बख्शीश (क्षमा) इसी तरह पनपती है, अचानक होने वाली किसी दैवीय अनुभूती की तरह नहीं बल्कि दर्द के एक-एक करके अपनी सब चीज़ें

इकट्ठी करते जाने और फिर अपना बोरिया-बिस्तर बाँधकर किसी दिन चुपचाप आधी रात को बिना बताए चले जाने के साथ?

हमारे लौटकर आने के बाद अगली रात जनरल साहब और खाला जमीला हमारे यहाँ रात के खाने पर आए। खाला जमीला ने साथ लाई हुई बादाम से बनी मगौट की प्लेट सोराया को थमा दी, जो वह डिनर के बाद मीठे के तौर पर खाने के लिए लाई थीं। उन्होंने अपने बाल छोटे करा लिए थे और पहले से भी ज़्यादा गहरे लाल रंग में रंगवाए हुए थे। उन्होंने सोहराब को देखा तो मुस्कराकर कहने लगीं, "माशाअल्लाह! सोराया जान ने हमें बताया था कि आप कितने ख़ोशतीप हैं, मगर अब देखती हूँ कि आप तो उससे भी ज़्यादा हैण्डसम हैं, सोहराब जान।" उन्होंने उसे एक नीले रंग का टर्टलनेक स्वेटर दिया और कहा, "मैंने इसे आपके लिए बुना है। अगली सर्दियों के लिए। इंशाअल्लाह, आपको फिट आएगा।"

सोहराब ने उनसे स्वेटर ले लिया।

"हैलो, यंग मैन।" जनरल ने बस इतना ही कहा और अपनी बेंत पर दोनों हाथ टिकाए सोहराब को ऐसे देखते रहे जैसे कोई किसी के घर के ड्राइंग रूम में सजी किसी अजीब-ओ-ग़रीब सजावटी चीज़ को देखता है।

खाला जमीला मेरी चोटों को लेकर तरह-तरह के सवाल करती रहीं और मैं उन्हें जवाब देता रहा। मैंने सोराया को कह दिया था कि वह खाला को यही बताए कि मुझ पर हमला हुआ था। सो मैं उन्हें यकीन दिलाता रहा कि ऐसी कोई चोट नहीं लगी थी जो कभी ठीक न हो, कि मेरे जबड़ों में लगे तार कुछ ही हफ़्तों में निकल जाएँगे और मैं फिर से उनके बनाए ज़ायकेदार खानों का लुत्फ़ ले पाऊँगा, और यह भी कि मैं अपनी चोटों के निशानों पर रूबर्ब का रस और चीनी मिलाकर लगाऊँगा ताकि वे जल्दी से मिट जाएँ।

जब तक सोराया और खाला टेबल पर खाना लगाने में व्यस्त रहीं, जनरल और मैं लिविंग रूम में बैठे वाइन की चुस्कियाँ लेते रहे। मैंने उन्हें काबुल और तालिबान के बारे में बताया। वह अपनी छड़ी गोद में रखे मेरी बातें सुनते रहे और गर्दन हिलाते रहे। जब मैंने उन्हें उस आदमी के बारे में बताया जो अपनी नकली टाँग बेच रहा था, तब उन्होंने उस आदमी के लिए हमदर्दी जताई। गाज़ी स्टेडियम में हुए कत्लों और अस्सेफ़ की बात मैंने नहीं बताई। उन्होंने रहीम खान के बारे में पूछा, जिनसे उनका कहना था कि वे काबुल में कई बार मिल चुके थे, और जब मैंने उन्हें रहीम खान की बीमारी के बारे में बताया तो उन्होंने अफ़सोस के अंदाज़ में सिर हिलाया। मगर मैंने गौर किया कि उनके कान तो मेरी आवाज़ की तरफ़ थे, मगर उनकी आँखें बार-बार उस सोफे की तरफ़ जा रही थीं जिस पर सोहराब सो रहा था। एक सवाल था जो बड़ी देर से उनकी ज़बान पर आने के लिए बेचैन था, और मुझे लग रहा था कि वह ज़्यादा देर तक उसे रोके नहीं रख पाएँगे।

जैसे ही हम लोग खाना खाने के लिए बैठे, वैसे ही उस सवाल की बेचैनी ने अपना रास्ता बना लिया। जनरल ने अपना छुरी-काँटा नीचे रखा और मुझे संबोधित करके कहा, "तो, आमिर जान, आप हमें बताएँगे कि आप इस लड़के को अपने साथ क्यों लाए हैं?"

"इकबाल जान! यह कैसा सवाल है?" खाला जमीला ने कहा।

"तुम तो स्वेटर बुनने में व्यस्त रहती हो, माई डिअर, तुम्हें क्या। हमारे परिवार को लेकर लोग जो बातें करेंगे उनका जवाब तो मुझे ही देना पड़ेगा न। लोग तो पूछेंगे न। वे जानना चाहेंगे कि यह हज़ारा लड़का हमारी बेटी के घर में क्यों रह रहा है। तो मैं क्या जवाब दूँगा उनको?"

सोराया ने अपना चम्मच टेबल पर पटका और जनरल पर भड़क गई। "आप उन्हें कह सकते हैं..."

"जाने दो, सोराया," मैंने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा। "जाने दो। जनरल साहब बिल्कुल सही कह रहे हैं। लोग पूछेंगे।"

"आमिर..." उसने कुछ कहना चाहा।

"कोई दिक्कत नहीं है।" यह कहकर मैं जनरल साहब की तरफ़ मुड़ा। "ऐसा है, जनरल साहब, कि मेरे बाबा अपने नौकर की बीवी के साथ सोए थे। उसने हसन नाम के एक लड़के को जन्म दिया। हसन अब मर चुका है। सोफे पर सोया हुआ वह लड़का हसन का बेटा है। मेरा भतीजा है। जब लोग पूछें तो आप उन्हें यही बताइएगा।"

एकदम सन्नाटा छा गया। सब लोग हैरानी से मेरी तरफ़ देखने लगे।

"और एक बात और, जनरल साहब," मैंने कहा। "मेरी मौजूदगी में फिर कभी आप उस बच्चे को 'हज़ारा लड़का' कहकर नहीं बुलाएँगे। उसका एक नाम है, सोहराब।"

उसके बाद जब तक डिनर चला, कोई कुछ नहीं बोला।

यह कहना गलत होगा कि सोहराब ख़ामोश था। ख़ामोशी का मतलब तो शान्ति होता है, शोर-शराबे का न होना।

ख़ामोशी का मतलब होता है ज़िन्दगी रूपी रेडियो के वॉल्यूम बटन को घुमाकर आवाज़ थोड़ी कम कर देना।

'सुन्न' होने का मतलब होता है रेडियो का ऑफ बटन दबा देना। रेडियो को बंद ही कर देना। पूरी तरह से।

सोहराब की चुप्पी उन लोगों की चुप्पी नहीं थी जो अपनी आत्म-शक्ति बढ़ाने या कोई मन्नत पूरी करने के लिए मौन-व्रत धारण कर लेते हैं। न ही यह उन प्रदर्शनकारियों की ख़ामोशी थी, जो बिना कुछ बोले अपनी बात कहना चाहते हैं। यह उस बच्चे का

सुन्नपन था जिसने एक अंधेरी जगह में शरण ले ली थी, जो अपने सभी सिरों को समेटकर एकदम सिकुड़ गया था। सोहराब ने ख़ुद को एक ऐसे सन्नाटे में कैद कर लिया था जहाँ आवाज़ का कोई वजूद ही नहीं था।

वह हमारे साथ रह नहीं रहा था, बस मौजूद था, उसी तरह जिस तरह घर में कोई फर्नीचर होता है। और फर्नीचर भी वह जो कम से कम जगह घेरता हो। कभी-कभी बाज़ार में या पार्क में, मैं देखता था कि लोगों की उसकी तरफ़ तवज्जो ही नहीं जाती थी, वे उसे देखकर भी देख नहीं पाते थे, मानो वह वहाँ था ही नहीं। मैं कोई किताब पढ़ रहा होता और बीच में कभी सिर ऊपर उठाता तो पाता कि पता नहीं कब सोहराब कमरे में आ गया था, मेरे सामने बैठ गया था। वह इस तरह चलता था मानो अपने पैरों के निशान छोड़ने से डर रहा हो। ऐसे हिलता-डुलता था कि आस-पास की हवा में ज़रा सी भी हलचल न हो जाए। ज़्यादातर वक्त वह सोता रहता था।

सोहराब की चुप्पी सोराया पर भी भारी पड़ रही थी। जब मैं पाकिस्तान से फोन पर सोराया के साथ बात करता था तो वह कितने उत्साह से उन तमाम चीज़ों के बारे में बताती थी जो उसने सोहराब को लेकर सोच रखी थीं। स्विमिंग क्लास। फुटबॉल। बॉलिंग लीग। अब जब वह सोहराब के कमरे के सामने से गुज़रती और देखती कि बेंत की डलिया में रखीं किताबों को अब तक खोला ही नहीं गया था, लम्बाई नापने के स्केल पर कोई निशान नहीं था, जिगसॉ पज़ल्स बिना जुड़े ही पड़े थे, और कमरे की हरेक चीज़ एक ऐसी ज़िंदगी की याद दिला रही थी जो हो सकती थी, तो उसका दिल टूट जाता। यह सबकुछ उसे एक ऐसे सपने की याद दिलाता जो खिलते हुए भी मुरझा रहा था। मगर सिर्फ़ उसी के साथ ऐसा नहीं हो रहा था। मैंने भी सोहराब के लिए कई सारे सपने देखे थे।

सोहराब ख़ामोश था, मगर दुनिया में भारी शोर मचा हुआ था। पिछले सितम्बर के एक मंगलवार की सुबह ट्विन टॉवर्स ढह गए, या कहें कि ढहा दिए गए और रातों-रात दुनिया बदल गई। अमरीकी झंडा अचानक हर जगह दिखाई देने लगा – सड़क पर चलने वालीं पीली टैक्सियों के एंटीना पर, फुटपाथ पर पैदल चलने वालों के लैपल्स (कोट की कॉलर) पर, यहाँ तक कि सैन फ्रांसिस्को में छोटी-छोटी आर्ट गैलरियों और दुकानों के शामियानों के नीचे बैठे रहने वाले भिखारियों की गंदी टोपियों पर भी। एक दिन जब मैं एडिथ (वह बेघर औरत जो हर दिन सटर एंड स्टॉकटन के मोड़ पर बैठकर अकॉर्डियन बजाती है) के पास से गुज़रा तो मैंने उसके पैरों के पास रखे अकॉर्डियन केस पर भी अमरीकी झंडे का स्टिकर देखा। ट्विन टॉवर्स पर हमले के कुछ ही समय बाद अमेरिका ने अफ़ग़ानिस्तान पर बमबारी की, उत्तरी गठबंधन अफ़ग़ानिस्तान की सीमाओं में दाख़िल हो गया, और तालिबान चूहों की तरह भागकर गुफ़ाओं में छिप गया। अचानक से मैंने पाया कि लोग किराने की दुकानों की लाइनों में खड़े होकर मेरे बचपन के शहरों कंधार, हेरात, मज़ार-ए-शरीफ़ के बारे में बात कर रहे थे। जब मैं बहुत छोटा था, तब बाबा हसन और मुझे कुंदुज़ ले गए थे। मुझे इस सफ़र के बारे में ज़्यादा कुछ याद नहीं है, सिवाए इसके कि हम सब (बाबा और हसन

और मैं) एक पेड़ की छाया में बैठे थे, बारी-बारी से एक मिट्टी के बर्तन में भरा ताज़ा तरबूज़ का रस पी रहे थे और इस बात की होड़ लगा रहे थे कि कौन तरबूज के बीजों को कितनी दूर तक थूक सकता था। अब डैन रादर, टॉम ब्रोकॉ, और स्टारबक्स में बैठकर कॉफ़ी पीते हुए लोग कुंदुज़, जो कि उत्तर में तालिबान का आख़िरी मज़बूत गढ़ था, की जंग के बारे में बात कर रहे थे। उसी बरस दिसंबर में पश्तून, ताजिक, उज़्बेक और हज़ारा प्रतिनिधि बॉन में इकट्ठे हुए और संयुक्त राष्ट्र की निगरानी में वह प्रक्रिया शुरू हुई जो शायद किसी दिन उनके वतन में बीस साल से चली आ रही नाख़ुशी को ख़त्म कर दे। हामिद करज़ई की कैराकुल टोपी और हरा चपन मशहूर हो गए थे।

इस सब के दौरान भी सोहराब वैसे ही जीता रहा, नींद में चलता हुआ-सा।

सोराया और मैं कुछेक अफ़ग़ान परियोजनाओं में शामिल हो गए, सिर्फ़ नागरिक होने का फ़र्ज़ निभाने की भावना के साथ नहीं बल्कि इसलिए भी क्योंकि हमें कुछ चाहिए था, कुछ भी, जो ऊपर के माले पर पसरे सन्नाटे को भर सके, उस सन्नाटे को जिसने एक ब्लैक होल की तरह सबकुछ निगल लिया था। पहले मैं इस तरह के कामों में भागीदारी रखने वाला इंसान नहीं था, मगर अब जब कबीर नाम के एक व्यक्ति ने (जो कि सोफिया में पूर्व अफ़ग़ान राजदूत रह चुके थे) फोन करके पूछा कि क्या मैं एक अस्पताल के प्रोजेक्ट में उनकी मदद करना चाहूँगा, तो मैंने हाँ कह दिया। यह एक छोटा-सा अस्पताल था जो अफ़ग़ानिस्तान-पाकिस्तान सीमा के पास बनाया गया था और जिसमें एक छोटी-सी सर्जिकल यूनिट थी जो बारूदी सुरंगें फटने से घायल अफ़ग़ान शरणार्थियों का इलाज करती थी। मगर पैसों की कमी के चलते अभी यह अस्पताल बंद था। मैं इसका प्रोजेक्ट मैनेजर बन गया और सोराया मेरी को-मैनेजर (सह-प्रबंधक)। मेरा ज़्यादातर वक़्त पढ़ने में, दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में मौजूद लोगों को ई-मेल्स भेजने में, ग्रांट्स (अनुदान) के लिए आवेदन करने में, और पैसे जुटाने के लिए तरह-तरह की गतिविधियाँ आयोजित करने में बीतने लगा। और ख़ुद से यह कहने में कि सोहराब को यहाँ लाने का फैसला सही था।

सोराया और मेरे लिए साल का समापन पैरों पर कम्बल बिछाए, साथ-साथ सोफे पर टीवी के सामने बैठकर डिक क्लार्क देखते हुए हुआ। जैसे ही घड़ी ने बारह बजाए, लोगों ने झूमना-गाना, ख़ुशियाँ मनाना और एक-दूसरे को चूमना शुरू कर दिया। मगर हमारे घर में नया साल लगभग उसी तरह शुरू हुआ जिस तरह पिछला साल ख़त्म हुआ था। ख़ामोशी में।

फिर, चार दिन पहले, मार्च 2002 की बारिश के एक ठंडे दिन एक छोटी सी, मगर कभी न भुलाई जा सकने वाली घटना घटी।

फ्रीमोंट के लेक एलिज़ाबेथ पार्क में अफ़ग़ान लोगों का मेल-मिलाप का एक कार्यक्रम था, तो मैं सोराया, खाला जमीला और सोहराब को लेकर वहाँ गया था। एक महीने पहले ही जनरल को, आख़िर-कार, अफ़ग़ानिस्तान से मंत्रालय में एक पद के लिए बुलावा आ गया था और वह तय समय से दो हफ्ते पहले ही वहाँ पहुँच गए थे।

मगर कमाल की बात यह थी कि वह अपना ग्रे सूट और जेब घड़ी यहीं छोड़ गए थे। योजना यह थी कि एक बार जनरल वहाँ पर सबकुछ जमा लें, फिर खाला जमीला भी उनके पास चली जाएँगी। वह जनरल को बहुत मिस कर रही थीं और उनकी सेहत को लेकर हमेशा फिक्रमंद रहती थीं, इसीलिए हमने उनसे गुज़ारिश की थी कि वह कुछ वक़्त हमारे साथ ही रहें। पिछला गुरुवार, वसंत का पहला दिन, अफ़ग़ान नववर्ष का दिन था–साल-ए-नऊ–और खाड़ी क्षेत्र के अफ़ग़ानों ने पूरे पूर्वी खाड़ी क्षेत्र और प्रायद्वीप में जश्न मनाने की योजना बनाई थी। यह कार्यक्रम उसी जश्न का हिस्सा था। कबीर, सोराया और मेरे पास ख़ुश होने का एक और कारण था: रावलपिंडी में हमारा छोटा-सा अस्पताल एक हफ़्ते पहले ही दुबारा शुरू हो गया था, सर्जिकल यूनिट नहीं, सिर्फ़ बच्चों का क्लिनिक। मगर हम सब इस बात से सहमत थे कि यह एक अच्छी शुरुआत थी। पिछले कई दिनों से धूप खिली हुई थी, मगर रविवार की सुबह जब मैं सोकर उठा तो मैंने खिड़की के शीशे पर बारिश की बूँदों के टकराने की आवाज़ सुनी। 'अफ़ग़ान लोगों की किस्मत बड़ी ज़ोरदार है,' यह सोचकर मुझे हँसी आ गई। फिर मैंने सुबह की नमाज़ पढ़ी। सोराया अभी नहीं जागी थी। अब मुझे नमाज़ के लिए उस काग़ज़ को देखने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी जो मैं मस्जिद से लेकर आया था और जिस पर तमाम आयतें लिखी हुई थीं, अब तो वे सब मुझे कंठस्थ हो गई थीं।

हम दोपहर के आसपास पहुँचे और देखा कि अभी कुछ ही लोग आए थे, जो बारिश के चलते छह खंभों पर खड़ी किए गए एक बड़ी-सी आयताकार प्लास्टिक शीट के अस्थायी शामियाने के नीचे शरण लिए हुए थे। कोई पहले से ही बोलानी तल रहा था, चाय के प्यालों और फूलगोभी के बर्तन से भाप उठ रही थी। एक कैसेट प्लेयर पर अहमद ज़हीर का एक पुराना गाना बज रहा था। कार से निकलकर जब हम चारों–आगे-आगे सोराया और मैं, बीच में खाला जमीला, और सबसे पीछे सोहराब, जिसके पीले रेनकोट का हुड उसकी पीठ पर उछल रहा था–भागते हुए, गीले घास के मैदान को पार करते हुए, अस्थायी शामियाने के नीचे शरण लेने जा रहे थे तो कुछ सोचकर मेरे होंठों पर मुस्कान खिल उठी।"किस बात का इतना मज़ा आ रहा है?" सोराया ने कहा, जिसने बारिश से बचने के लिए एक अखबार को मोड़कर सिर के ऊपर रखा हुआ था। "आप अफ़ग़ानों को पगमान से बाहर निकाल सकते हैं, मगर पगमान को अफ़ग़ानों के भीतर से नहीं निकाल सकते," मैंने कहा। भीगते-भागते हम उस प्लास्टिक शीट के बने अस्थायी शामियाने के नीचे पहुँच गए। सोराया और खाला जमीला को पालक बोलानी तलती एक भारी-भरकम औरत दिख गई, तो वे उसके पास चली गईं। सोहराब कुछ पल शामियाने के नीचे रुका, फिर वापस बारिश में चला गया। उसके हाथ रेनकोट की जेबों में थे। उसके बाल, जो अब हसन की तरह भूरे और सीधे हो गए थे, बारिश के कारण उसके सिर पर चिपक गए थे। एक गड्ढे में बारिश का पानी भरने से कॉफ़ी के रंग वाला छोटा-सा पोखर बन गया था, वह उसके पास गया और उसे देखने लगा। किसी का भी ध्यान उसकी तरफ़ नहीं था। किसी ने भी उसे वापस बुलाने के लिए आवाज़ नहीं लगाई। समय के साथ अब लोगों ने हमारे गोद लिए हुए–और निश्चित रूप से विलक्षण कहे जा सकने वाले–बालक के विषय में सवाल

करने बंद कर दिए थे, और, यह देखते हुए कि कभी-कभी अफ़ग़ानियों द्वारा किए जाने वाले सवाल कितने बेतुके हो सकते हैं, यह एक बड़ी राहत थी। लोगों ने अब पूछना बंद कर दिया था कि वह हमेशा चुप क्यों रहता था, दूसरे बच्चों के साथ खेलता क्यों नहीं था। और सबसे अच्छी बात यह कि उन्होंने ज़रूरत से ज़्यादा हमदर्दी जताना, अफ़सोस ज़ाहिर करना, और हमें बदकिस्मतों की तरह देखते हुए "ओह, गूँगा बेचारा" कहना छोड़ दिया था। यह मुद्दा अब पुराना हो गया था। सोहराब किसी बेरंग हो चुके वॉलपेपर की तरह बैकग्राउंड में घुल-मिल गया था। इधर मैं कबीर से हाथ मिला रहा था। कबीर बालों में सफेदी लिए ठिगने कद के व्यक्ति थे। उन्होंने मुझे तक़रीबन दर्जन भर लोगों से मिलवाया, जिनमें से एक रिटायर्ड टीचर थे, एक इंजीनियर थे, एक रिटायर्ड आर्किटेक्ट थे, एक सर्जन थे जो अब हेवार्ड में हॉट डॉग का एक स्टॉल चलाते थे। इन सभी लोगों ने बताया कि वे काबुल के दिनों से बाबा को जानते थे, और सभी ने उनके बारे में बहुत एहतिराम (आदर) से बात की। किसी न किसी तरीक़े से बाबा की उन सभी की ज़िंदगियों पर छाप थी। उन सभी का मानना था कि बाबा का बेटा होना मेरी ख़ुशकिस्मती थी। हम लोग कई सारे मसलों पर बातचीत करते रहे। मसलन, करज़ई ने किस तरह एक ऐसा काम हाथ में लिया था जो मुश्किल तो था ही, साथ ही उसके लिए उनका शुकराना भी शायद ही अदा किया जाए। हमने आगामी लोया जिरगा के बारे में बातें कीं, और अट्ठाईस साल के देश निकाले के बाद सुल्तान की अपने मादर-ए-वतन वापसी के बारे में भी चर्चा की। मुझे 1973 की वह रात याद आई, जब ज़हीर शाह के चचेरे भाई ने उनकी सत्ता को उखाड़ फेंका था; मुझे गोलियाँ चलने की आवाज़ और आसमान का तेज़ रोशनी से जगमगा उठना याद आया। कैसे अली ने मुझे और हसन को अपनी बाहों में ले लिया था और हमसे कहा था कि 'डरो मत, वे सिर्फ़ बत्तखों का शिकार कर रहे हैं।'

फिर किसी ने मुल्ला नसरुद्दीन का कोई चुटकुला सुनाया और हम सब हँस पड़े। कबीर ने कहा, "तुम्हें पता है, तुम्हारे बाबा में एक मज़ाकिया इंसान भी छिपा था।"

"बेशक," मैंने मुस्कुराते हुए कहा। मुझे याद आया कि कैसे अमेरिका आने के बाद से ही बाबा का अमरीकी मक्खियों को लेकर भुनभुनाना शुरू हो गया था। वह अपना मक्खी मारने का हथियार लेकर रसोई की मेज़ पर बैठे अपने शिकारों पर घात लगाने की कोशिश करते, मगर मक्खियाँ तो मक्खियाँ हैं, वे एक जगह कहाँ टिकती हैं, वे तो पलक झपकने की गति से इस जगह से उस जगह उड़ती-भिनभिनाती रहती हैं। जब बाबा के हाथ कोई शिकार न लगता तो वह भुनभुनाते हुए कहते, "इस देश में तो कमबख़्त मक्खियों के पास भी वक़्त की कमी है, वे भी दो मिनट आराम से एक जगह नहीं बैठ सकतीं!" उनकी यह बात सुनकर मैं कितना हँसता था। उस बात को याद करके फिर एक बार मेरे चेहरे पर मुस्कान तैर उठी।

तीन बजे तक बारिश रुक गई थी, मगर आसमान अब भी बादलों से भरा हुआ था। ठंडी हवा चल रही थी। और भी परिवार आ पहुँचे थे। सभी अफ़ग़ान एक-दूसरे से दुआ-सलाम कर रहे थे, गले मिल रहे थे, एक-दूसरे को चूम रहे थे, अपने-अपने साथ लाई

हुईं खाने-पीने की चीज़ें एक-दूसरे को खिला रहे थे। किसी ने बारबेक्यू में कोयला डालकर उसे सुलगा लिया और जल्द ही लहसुन और मुर्ग कबाब की महक मेरी भूख भड़काने लगी। वातावरण एक बार फिर संगीत की स्वर लहरियों से गूँज उठा था। अब किसी ऐसे नए गायक का गीत बज रहा था जिसे मैं नहीं जानता था। बच्चों की खिलखिलाहट चारों ओर गूँज रही थी। मैंने चारों ओर नज़रें दौड़ाकर सोहराब को देखा। पीला रेनकोट पहने सोहराब। वह एक डस्टबिन से टिका खड़ा था और पार्क के परले सिरे पर बनी बैटिंग केज (बेसबॉल खिलाड़ियों की प्रैक्टिस के लिए बाँधी गई चौकोर जाली) को देख रहा था।

थोड़ी देर बाद, जब मैं हॉटडॉग का स्टॉल लगाने वाले उन सर्जन महोदय से बात कर रहा था जो मुझे बता रहे थे कि वह और बाबा आठवीं क्लास में साथ-साथ पढ़ते थे, सोराया ने मेरी आस्तीन खींची। “आमिर, देखो!”

वह आसमान की ओर इशारा कर रही थी, जहाँ आधा दर्जन पतंगें ऊँची उड़ान भर रही थीं। ऐसा लग रहा था जैसे धूसर आसमान पर चमकीले पीले, लाल और हरे रंग के छोटे-छोटे धब्बे बन गए हों।

“और उसे देखो,” सोराया ने कहा, और इस बार वह पास के एक स्टैंड पर पतंग बेच रहे एक आदमी की तरफ़ इशारा कर रही थी।“इसे पकड़ो ज़रा,” मैंने अपना चाय का कप सोराया की ओर बढ़ाते हुए कहा। मैंने सर्जन महोदय से बातचीत बीच में छोड़ने के लिए माफ़ी माँगी और गीली घास पर लगभग फिसलते हुए पतंग स्टैंड की ओर चल दिया। मैंने एक पीले रंग के सेह-परचा (एक ख़ास तरह की बड़ी और रंगीन पतंग) की ओर इशारा किया। पतंग बेचने वाले ने पैसे लिए, पतंग और माँझे से भरी एक चरखी मेरे हवाले की, और बोला, “साल-ए-नऊ मुबारक।” मैंने उसका शुक्रिया अदा किया और उसे भी नए साल की मुबारकबाद दी। मैंने माँझे को परखने के लिए वही तरीक़ा अपनाया जो बचपन में हसन और मैं अपनाया करते थे; मैंने उसे अपने अँगूठे और पहली उंगली के बीच रखा और खींच दिया। वह ख़ून से लाल हो गया। यह देखकर पतंग बेचने वाला मुस्कराया। मैं भी मुस्करा दिया।

मैं पतंग लेकर सोहराब के पास पहुँच गया। वह अभी भी कूड़ेदान के सहारे टिककर खड़ा हुआ था और बाँहें छाती पर मोड़ रखी थीं। नज़र उसकी ऊपर आसमान में थी।

“तुम्हें सेह-परचा पसंद है?” मैंने कहा। मैंने पतंग को कमानी (क्रॉस बार) के दोनों सिरों से पकड़ा हुआ था। उसकी नज़रें आसमान से उतरकर मुझ पर पड़ीं, फिर पतंग पर, और फिर वापस आसमान की ओर उठ गईं। बारिश की कुछ बूँदें उसके बालों से होते हुए उसके चेहरे पर आ टपकीं।

“मैंने एक बार कहीं पढ़ा था कि मलेशिया में मछलियाँ पकड़ने के लिए पतंगों का इस्तेमाल किया जाता है,” मैंने कहा। “मुझे यकीन है कि तुम्हें यह बात नहीं पता होगी।

वे पतंगों के साथ एक फिशिंग लाइन बाँध देते हैं और उन्हें उथले पानी के ऊपर उड़ाते हैं, इससे छाया नहीं बनती और मछलियाँ डरकर भागती नहीं हैं। और प्राचीन चीन में सेनाओं के सेनापति युद्ध के मैदान में लड़ रहे अपने सैनिकों को संदेश भेजने के लिए भी पतंगों का उपयोग करते थे। यह सच है, मैं तुम्हें बेवक़ूफ़ नहीं बना रहा हूँ।" मैंने उसे अपना माँझे से कटा अंगूठा दिखाया। "मेरे ख़याल से माँझा भी बुरा नहीं है।"

मैंने आँखों की कोरों से देखा कि शामियाने के नीचे खड़ी सोराया हाथ छाती पर बाँधे हमारी ओर ही देख रही थी। मेरे उलट, उसने धीरे-धीरे सोहराब से जुड़ने की कोशिशें बंद कर दी थीं। सवालों के जवाब न मिलना, खाली-खाली नज़रों से देखा जाना, चुप्पी; यह सब उसके लिए बहुत दर्दनाक था। इसलिए उसने इंतज़ार करने और सोहराब की तरफ़ से कोई सकारात्मक संकेत मिलने के बाद ही क़दम आगे बढ़ाने की नीति अपना ली थी।

मैंने अपनी पहली उंगली (तर्जनी) गीली की और उसे ऊपर उठाया। "मुझे याद है कि तुम्हारे बाबा हवा का रुख पता करने के लिए अपनी सैंडल से धूल उड़ाया करते थे। उन्हें ऐसी बहुत सी छोटी-छोटी तरकीबें पता थीं," मैंने कहा। मैंने अपनी उंगली नीची की। "मेरे ख़याल से, पश्चिम।"

सोहराब ने बालों से कान पर टपक आई बारिश की एक बूँद को पोंछा और पैरों पर वज़न की अदला-बदली की। मगर कहा कुछ नहीं। मुझे याद आया कि कुछ महीनों पहले सोराया मुझसे पूछ रही थी कि सोहराब की आवाज़ कैसी थी। और मैंने जवाब दिया था कि अब तो मुझे भी याद नहीं।

"क्या मैंने तुम्हें कभी बताया कि तुम्हारे बाबा वज़ीर अकबर खान के सबसे अच्छे काईट रनर थे? बल्कि शायद पूरे काबुल में उनसे बेहतर कोई नहीं था," मैंने चरखी में लिपटे माँझे को पतंग की कन्नियों को आपस में जोड़ने वाले अर्ध-गोलाकार धागे के साथ गाँठ लगाते हुए कहा। "उनकी इस काबिलियत से आस-पास के सब बच्चे रश्क करते थे।

वह पतंग लूटने के लिए उसके पीछे भागते थे, मगर कभी भी ऊपर आसमान की तरफ़ नहीं देखते थे। लोग कहते थे कि वह पतंग की परछाईं देखकर पीछा करते थे, मगर मुझसे बेहतर उन्हें कोई नहीं जानता था। तुम्हारे बाबा ने कभी परछाइयों का पीछा नहीं किया। उन्हें बस…बस पता चल जाता था, पता नहीं कैसे, कि कौन सी पतंग कहाँ गिरेगी।" आसमान में और आधा दर्जन पतंगें उड़ान भरने लगी थीं। लोगों का मजमा जमने लगा था, लोग हाथों में चाय के कप लिए और आसमान में नज़रें गढ़ाए पतंगबाज़ी का मज़ा लेने के लिए जुटने लगे थे।

"क्या तुम इसे उड़ाने में मेरी मदद करोगे?" मैंने कहा।

सोहराब की नज़र आसमान में उड़ रहीं पतंगों से हटकर मुझ पर आई, फिर आसमान की ओर उठ गई।

"ठीक है।" मैंने कंधे उचका दिए। "लगता है मुझे इसे अकेले ही उड़ाना पड़ेगा।"

मैंने अपने बाएँ हाथ में चरखी पकड़ी और लगभग तीन फीट माँझा निकाला। उससे बंधी पीली पतंग गीली घास के ठीक ऊपर लटक रही थी। "आख़िरी मौका," मैंने कहा। मगर सोहराब पेड़ों के ऊपर पेंच लड़ा रहीं दो पतंगों की तरफ़ ही देखता रहा।

"ठीक है। तो फिर लो मैं चला।" मैंने दौड़ लगा दी। एक हाथ में चरखी पकड़े और दूसरे हाथ में तीन फीट लम्बी डोरी से जुड़ी पतंग को थामकर सर से ऊपर उठाए। बहुत लम्बा अरसा हो गया था, कई दशक शायद, मुझे इस तरह पतंग उड़ाए, और मैं सोच रहा था कि कहीं मेरा मज़ाक न बन जाए। मैं दौड़ता गया, मेरे हाथ में थमी चरखी घूमती गई, माँझा एक बार फिर मेरे अंगूठे और उंगली को काटता हुआ चरखी से बाहर आता गया। मेरे पीछे मेरी पतंग अब ऊपर को उठने लगी थी; गोल-गोल घूम रही थी, ऊपर उठ रही थी। मैं और भी तेज़ भागने लगा। चरखी और भी तेज़ी से घूमी और पैने माँझे ने मेरी दाहिनी हथेली में एक और लाल लाइन बना दी। मैं रुका और मुड़ा। ऊपर देखा। मुस्कराया। मेरी पतंग अच्छी खासी ऊँचाई हासिल कर चुकी थी और पेंडुलम की तरह इधर से उधर लहरा रही थी, और वैसी ही 'काग़ज़ की चिड़िया के पंख फड़फड़ाने' जैसी आवाज़ सुनाई पड़ने लगी थी जो काबुल में सर्दियों की सुबह सुनाई देती थी। मैंने एक चौथाई सदी से भी ज़्यादा वक़्त से पतंग नहीं उड़ाई थी, मगर अचानक आज मैं फिर से बारह साल का हो गया था और मेरी सारी पुरानी प्रवृत्तियाँ वापस आ गईं थीं।

तभी मुझे लगा कि कोई मेरे बग़ल में है और मैंने नीचे देखा। वह सोहराब था। उसके हाथ रेनकोट की जेबों में गहरे धँसे हुए थे। वह मेरे पीछे-पीछे आ गया था।

"तुम उड़ाओगे?" मैंने पूछा। उसने कुछ नहीं कहा। मगर जब मैंने डोर उसकी तरफ़ बढ़ाई तो उसके हाथ जेब से बाहर निकल आए। झिझके। मगर फिर डोर थाम ली। मेरा दिल तेज़ी से धड़कने लगा। मैंने पतंग उसे थमाकर ज़मीन पर बिखरी पड़ी माँझे की डोर को चरखी में लपेटना शुरू कर दिया। हम ख़ामोशी से अगल-बग़ल खड़े रहे। गर्दनें आसमान की ओर उठाए हुए।

हमारे आसपास बच्चे पकड़म-पकड़ाई खेल रहे थे, गीली घास पर फिसल रहे थे। कोई अब किसी पुरानी हिंदी फ़िल्म का गाना बजा रहा था। बुज़ुर्ग लोग ज़मीन पर एक प्लास्टिक की शीट बिछाकर और उस पर एक कतार में बैठकर दोपहर की नमाज़ पढ़ रहे थे। हवा में गीली घास, धुएँ और भुने हुए गोश्त की गंध तैर रही थी। मेरा मन किया कि काश वक़्त यहीं ठहर जाए, यहाँ से आगे न बढ़े।

तभी मैंने देखा कि आसमान में हमारी पतंग की एक जोड़ीदार नज़र आने लगी थी। एक हरी पतंग हमारी तरफ़ बढ़ रही थी। मैंने उसकी डोर का पीछा किया तो पाया कि उसे हमसे तक़रीबन तीस यार्ड दूर खड़ा एक लड़का थामे हुए था। उसके बाल फौजियों की तरह कटे हुए थे और उसने एक टी-शर्ट पहन रखी थी, जिस पर बड़े-बड़े

अक्षरों में लिखा था – द रॉक रूल्स। उसने मुझे अपनी तरफ़ देखते पाया तो मुस्करा दिया। हाथ हिलाया। बदले में, मैंने भी हाथ हिला दिया।

सोहराब पतंग की डोर वापस मेरी ओर बढ़ा रहा था।

“पक्का?” मैंने पूछा और डोर उसके हाथ से ले ली।

उसने मेरे हाथ से चरखी ले ली।

“यह हुई न बात,” मैंने कहा। “चलो अब हम मिलकर उसे सबक सिखाते हैं, ठीक है न?” कहने के साथ ही मैंने सोहराब की तरफ़ नज़र घुमाई। उसकी आँखों का सूनापन, खालीपन गायब हो चुका था। उसकी नज़र हमारी पतंग और उस हरी पतंग के बीच घूम रही थी। उसके चेहरे पर थोड़ी सी रंगत आ गई थी, आँखें अचानक चौकन्नी हो गईं थीं। सजग हो गई थीं। सजीव हो गईं थीं। मुझे इस बात पर हैरानी हुई कि मैं कब और कैसे यह बात भूल गया था कि चाहे कुछ भी हुआ हो, मगर वह अभी भी था तो एक बच्चा ही।

हरी पतंग अपनी चालें चल रही थी। “हम थोड़ा इंतज़ार करेंगे,” मैंने कहा। “उसे थोड़ा और क़रीब आने देंगे।” उसने दो बार गोता लगाया और हमारी तरफ़ बढ़ी। “आजा, आजा, मेरे पास आजा,” मैंने कहा।

हरी पतंग और भी क़रीब आ गई थी, और अब वह हमसे थोड़ा ऊपर उड़ रही थी, इस बात से अनजान कि मैंने उसके लिए क्या जाल बिछाया हुआ था। “देखो, सोहराब। मैं अब तुम्हें तुम्हारे बाबा की पसंदीदा तरकीबों में से एक दिखाने जा रहा हूँ, पुरानी लिफ्ट-एंड-डाइव तरकीब।” पहले पतंग को एकदम से ऊपर उठाओ और फिर एकदम से नीचे लाकर दूसरी पतंग को काट दो।

मेरे बग़ल में खड़े सोहराब की उत्तेजना के मारे साँसें तेज़ हो गई थीं। चरखी उसकी हथेलियों में घूम रही थी, उसकी ज़ख्मी कलाईयों की नसें रूबाब के तारों की तरह नज़र आ रही थीं। फिर मैंने पलक झपकाई और, एक पल के लिए मुझे लगा कि चरखी पकड़े हुए हाथ एक लबकटे लड़के के टूटे-फूटे नाख़ूनों वाले मेहनतकश हाथ थे। तभी मुझे किसी कौए की काँव-काँव सुनाई दी तो मैंने ऊपर देखा। अचानक पार्क ताज़ा-ताज़ा गिरी झक्क सफ़ेद बर्फ़ से चमक उठा, इतनी ताज़ा, इतनी चमकदार और झक्क सफेद बर्फ़ कि मेरी आँखें जलने लगीं। सभी पेड़ बर्फ़ की सफ़ेद चादर ओढ़े नज़र आने लगे। उनकी डालियों पर जमी बर्फ़ बिना आवाज़ किए नीचे ज़मीन पर बिखर रही थी। मुझे अब शलजम कुरिना की ख़ुशबू आ रही थी। सूखे शहतूत। खट्टे संतरे। लकड़ी का बूरा और अखरोट। सबकुछ बेआवाज़ हो रहा था। मगर वह बेआवाज़ सन्नाटा, बर्फ़-सा सफ़ेद सन्नाटा बहरा कर देने वाला था। फिर दूर कहीं से, सन्नाटे के उस पार कहीं से एक आवाज़ हमें घर वापस आने के लिए कहने लगी, उस आदमी की आवाज़ जो अपना दाहिना पैर घसीटकर चल रहा था।

हरी पतंग अब ठीक हमारे ऊपर उड़ रही थी। “वह अब हमला करने वाली है।

किसी भी वक़्त," मैंने कहा। मेरी नज़रें अब सोहराब से हटकर अपनी पतंग पर जम गई थीं। हरी पतंग थोड़ी हिचकिचाई। जहाँ की तहाँ रुकी रही। फिर नीचे आई। "वो आई!" मैंने कहा।

मैंने एकदम परफेक्ट तरीक़े से जाल बिछाया था। इतने सालों के बाद। वही पुराना लिफ्ट-एंड-डाइव जाल। मैंने ढील दी और अपनी पतंग को गोता खिलाकर हरी पतंग का वार नाकाम कर दिया। फिर कुछेक तेज़ साइडआर्म झटकों से ही हमारी पतंग एंटी-क्लॉकवाइज़ (घड़ी के काँटों की उल्टी दिशा में) अर्धवृत्त (सेमी-सर्किल) बनाती हुई अचानक से हरी पतंग के ऊपर आ गई। हरी पतंग को ख़तरे का आभास हो गया था, इसलिए वह बचने का रास्ता तलाशने लगी। मगर उसके लिए अब बहुत देर हो चुकी थी। मैं पहले ही उसे हसन के पसंदीदा जाल में फाँस चुका था। मैंने ज़ोर से डोर खींची और हमारी पतंग तेज़ी से नीचे आई। मैं लगभग महसूस कर सकता था कि हमारी डोरी उसकी डोरी को काट रही थी। कटने की आवाज़ भी तक़रीबन सुनाई दी मुझे।

और पलक झपकते ही हरी पतंग काबू से बाहर होकर गोल-गोल चक्कर काटने लगी, गोते खाने लगी।

हमें अपने पीछे से लोगों के ख़ुशी से चिल्लाने और सीटियाँ बजाने की आवाज़ें सुनाई पड़ने लगीं, तालियों की गड़गड़ाहट सुनाई देने लगी। मैं हाँफ रहा था। पिछली बार मुझे इस तरह की उत्तेजना 1975 की सर्दियों के उस दिन महसूस हुई थी जब मैंने आख़िरी पतंग काटी थी और जब मैंने बाबा को हमारी छत पर खड़े होकर मेरे लिए ताली बजाते और मुस्कराते देखा था।

मैंने सोहराब की तरफ़ देखा। उसके होंठों का एक कोना ज़रा-सा ऊपर को उठा हुआ था।

मुस्कान।

आधी-अधूरी।

बमुश्किल ज़रा सी।

मगर थी।

हमारे पीछे ख़ुशी से सराबोर बच्चे उछल-कूद मचा रहे थे। कटी पतंग को लूटने के तलबगार काईट रनर्स का एक झुंड चीखते-चिल्लाते हुए ऊपर आसमान में दिशाहीन होकर लहराती, यहाँ-वहाँ डोलती पतंग का पीछा करने निकल पड़ा था। मैंने दोबारा पलक झपकाई और वह मुस्कान गायब हो गई। लेकिन वह थी। मैंने देखी थी।

"तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारे लिए वह पतंग लूटकर लाऊँ?"

उसका टेंटुआ उठा और गिरा; उसने शायद अलफ़ाज़ को निगला था। उसके बाल

हवा में उड़े। मुझे लगा कि मैंने उसे हाँ में सिर हिलाते देखा।

"तुम्हारी ख़ातिर, एक बार नहीं हज़ारों बार," मैंने ख़ुद को कहते हुए सुना।

फिर मैं मुड़ा और पतंग की दिशा में दौड़ पड़ा।

यह बस एक मुस्कान थी, और कुछ नहीं। इससे सबकुछ ठीक नहीं हो गया था। इससे कुछ भी ठीक नहीं हुआ था। बस एक मुस्कान। एक ज़रा-सी चीज़। जंगल में एक पत्ता, चौंककर उड़े पक्षी की उड़ान के कारण हिलने वाला पत्ता।

मगर मेरे लिए यह बहुत बड़ी चीज़ थी। बहुत कीमती मौक़ा। और मैं इसे दोनों हाथों से लपक लेना चाहता था। क्योंकि जब वसंत आता है, तो बर्फ़ परत-दर-परत पिघलती है, और शायद मैंने अभी-अभी पहली परत पिघलते हुए देखी थी।

मैं भागा रहा था। एक वयस्क व्यक्ति चीखते-चिल्लाते बच्चों के झुंड के साथ भागा जा रहा था। मगर मुझे किसी बात की परवाह नहीं थी। मैं दौड़े जा रहा था, अपने चेहरे पर हवा के झोंके महसूस करते हुए, और अपने होठों पर पंजशेर घाटी जितनी चौड़ी मुस्कान लिए हुए।

मैं दौड़ा जा रहा था।

चलते-चलते

पिछले तक़रीबन तीन दशकों से अफ़ग़ान शरणार्थी संकट दुनिया के सबसे गंभीर संकटों में से एक बना हुआ है। पिछले तीस बरसों से अफ़ग़ानिस्तान में जो जंग, भूख, अराजकता और उत्पीड़न के हालात हैं, उसने लाखों लोगों को अपना घर-बार छोड़कर, अपना वतन छोड़कर भागने और पाकिस्तान और ईरान जैसे पड़ौसी मुल्कों में जा बसने को मजबूर कर दिया है। जिस वक़्त यह संकट चरम पर था, उस वक़्त तक़रीबन अस्सी लाख अफ़ग़ान लोग बाहर के मुल्कों में शरण लिए हुए थे। संयुक्त राष्ट्र की 'रिफ्यूजी'ज़ 2011 ग्लोबल ट्रेंड रिपोर्ट' के मुताबिक़, 27 लाख की तादाद के साथ अब भी अफ़ग़ानी लोग दुनिया में शरणार्थियों की सबसे बड़ी आबादी बने हुए हैं।

2002 से लेकर अब तक संयुक्त राष्ट्र की रिफ्यूजी एजेंसी UNHCR की मदद से तक़रीबन पचास लाख अफ़ग़ान शरणार्थियों की घर वापसी हुई है। 2007 और 2009 में, मैंने अफ़ग़ानिस्तान जाकर ऐसे ही कुछ लोगों से मुलाकात की। मगर घर लौटने के बाद वे वहाँ जिन हालात में रह रहे थे, उसे देखकर मेरा दिल दहल उठा था। मैं ऐसे परिवारों से मिला जो हर दिन 1 डॉलर से भी कम में गुज़ारा कर रहे थे। वे पूरी सर्दियाँ ज़मीन के नीचे खोदे गए गड्ढों में रहकर बिताते थे। मैं ऐसे गाँवों में गया जहाँ हर साल सर्दियों और गर्मियों का मौसम कई सारे परिवारों में दस से पंद्रह बच्चों की मौत का फरमान बनकर आता था। जिन लोगों से मैं मिला, वे कीचड़ भरी नदियों का गंदा पानी पीने को मजबूर थे और ऐसी बीमारियों से मर रहे थे जिनकी आसानी से रोकथाम की जा सकती थी। उनके सिरों पर न तो ठीक-ठाक छत थी, न बीमार होने पर इलाज की सहूलियत, न बच्चों के लिए स्कूल, न भरपेट खाना, और न ही रोज़गार का कोई स्थायी साधन। यह सब देख-सुनकर मैं भीतर तक हिल गया था।

अफ़ग़ानिस्तान के इस दौरे ने मेरी ज़िन्दगी को एक नयी दिशा दिखा दी थी, जिसके नतीजे में ख़ालिद हुसैनी फाउंडेशन अस्तित्व में आया। यह फाउंडेशन इस उम्मीद के साथ शुरू किया गया था कि हम एक सार्थक और स्थायी बदलाव लाने के लिए काम कर सकेंगे। 2009 से अब तक फाउंडेशन ने UNHCR के साथ मिलकर अफ़ग़ानिस्तान लौटने वाले बेघर लोगों के लिए घर बनाने के कई प्रोजेक्ट्स की फंडिंग (वित्त-पोषण) की है। इसके अलावा इस फाउंडेशन ने SOS (स्टूडेंट आउटरीच फॉर शेल्टर्स) प्रोग्राम के माध्यम से अमेरिका के तमाम राज्यों में कई सारे स्कूलों के साथ साझेदारी करके और वहाँ पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं के भीतर परोपकार की भावना जगाकर उनके माध्यम से अफ़ग़ानिस्तान वापस लौटने वालों के लिए मकानों की व्यवस्था करने वास्ते फंड इकठ्ठा करने का भी काम किया है। ख़ालिद हुसैनी फाउंडेशन इकठ्ठा किए हुए फंड को ख़ास तौर पर उन प्रोजेक्ट्स में लगाता है जिनसे

घर-वापसी करने वाले शरणार्थियों का भला होता हो, ख़ासकर औरतों और बच्चों का, क्योंकि यही दो तबके हैं, जो जंग, भूख, अराजकता और उत्पीड़न का सबसे ज़्यादा शिकार हुए हैं, और यही दो तबके हैं जो अफ़ग़ानिस्तान के भविष्य का आधार हैं।

अफ़ग़ानिस्तान को नए सिरे से खड़ा करने में बहुत ज़्यादा संसाधन लगेंगे और वहाँ के लोगों की तकलीफ़ों को कम करने के लिए भागीरथी प्रयासों की आवश्यकता होगी। इसके बारे में या ख़ालिद हुसैनी फाउंडेशन के बारे में और ज़्यादा जानने के लिए आप www.khaledhosseinifoundation.org पर जा सकते हैं।

शुक्रिया।

ख़ालिद हुसैनी

बहुत-बहुत शुक्रिया

मैं अपने साथ काम करने वाले साहिबान –डॉ. अल्फ्रेड लर्नर, डॉन वाकिस, रॉबिन हेक, डॉ. टॉड ड्रे, डॉ. रॉबर्ट टुल और डॉ. सैंडी चुन– का इनके बेशकीमती मशविरों और हर संभव मदद के लिए तहेदिल से शुक्रगुज़ार हूँ। ईस्ट सैन जोस कम्युनिटी लॉ सेंटर की लिनेट पार्कर ने बच्चों को गोद लेने की प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में जो ज़रूरी बातें बताईं, उसके लिए उनका और जनाब दाउद वहाब ने जो अफ़ग़ानिस्तान के अपने तजुर्बे मेरे साथ बाँटे, उसके लिए उनका भी बहुत-बहुत शुक्रिया। मैं अपने अज़ीज़ दोस्त तमीम अंसारी का उनकी रहबरी और हिमायत के लिए, जबकि सैन फ्रांसिस्को राइटर्स वर्कशॉप की अपनी गैंग का उनकी कीमती राय और हौसला-अफज़ाई के लिए शुक्रिया अदा करता हूँ। मैं शुक्रिया कहना चाहता हूँ अपने वालिद साहब को, जो कि मेरे सबसे पहले दोस्त और आमिर के बाबा के किरदार में मौजूद सभी अज़ीम बातों की प्रेरणा हैं; अपनी अम्मी जान को, जिन्होंने इस किताब को लिखे जाने और आपके हाथों में पहुँचने की प्रक्रिया के हर क़दम पर मेरे लिए दुआ और ‘नज्र’ की; और अपनी खाला जान को, जिन्होंने बचपन में मुझे ख़ूब सारी किताबें ख़रीद-ख़रीदकर दीं। मेरी कहानियाँ पढ़ने के लिए अली, सैंडी, दाउद, वालिद, राया, शाल्ला, ज़हरा, रॉब और कादर को भी मेरी तरफ़ से शुक्रिया। मैं अपने सास-ससुर डॉ. कय्यूमी और बेगम कय्यूमी का उनसे मिलने वाले भरपूर स्नेह और ‘कभी न डिगने वाले’ साथ के लिए तहेदिल से शुक्रगुज़ार हूँ।

मैं अपनी एजेंट और दोस्त एलेन कोस्टर का उनकी समझदारी, दूरंदेशी और धीरज भरे व्यवहार के लिए शुक्रगुज़ार हूँ। चीज़ों को बारीकी से देखने वाली नज़र और सही-गलत की पक्की समझ रखने वालीं अपनी सम्पादिका सिंडी स्पीगल को भी, जिन्होंने इस कहानी में कई सारे दरवाज़े खोलने में मेरी मदद की है, दिल से धन्यवाद देना चाहता हूँ। और मैं इस किताब को छापने का जोखिम उठाने के लिए सुसान पीटरसन कैनेडी का और इस पर मेहनत करके इसे इस रूप में लाने के लिए रिवरहेड के मेहनती स्टाफ का भी बेहद शुक्रगुज़ार हूँ।

और आख़िर में, मुझे समझ नहीं आ रहा कि मैं किन शब्दों में और किस तरह कहूँ, मगर मैं अपनी प्यारी खानुम रोया का उनकी रहमदिली और अनगिनत मेहरबानियों के लिए तहेदिल से शुक्रिया अदा करना चाहता हूँ। अगर मैं यह कहूँ कि मैं उनके मशविरों का आदी हो चुका हूँ, तो गलत नहीं होगा। उन्होंने इस किताब को बारम्बार पढ़ने और इसके हर ड्राफ्ट (मसौदे) को संपादित करने में मेरी भरपूर मदद की है। आपके प्यार, सब्र और समझदारी के लिए मैं हमेशा आपको चाहता रहूँगा, रोया जान।

इस पर एक कामयाब फ़िल्म भी बन चुकी है

द टाइम्स, डेली टेलीग्राफ़ और गार्डियन द्वारा
'दशक की सबसे उम्दा किताबों' में शामिल

'बेहद दिलचस्प अंदाज़ में लिखी गई प्यार और नफ़रत, वफ़ा और बेवफ़ाई, तथा पाने और खोने की एक दिल दहला देने वाली दास्तान, जो सख़्त से सख़्त दिल को भी पिघला देने की क़ाबिलियत रखती है'
इंडिपेंडेंट

अफ़ग़ानिस्तान, 1975: बारह बरस का आमिर अपने इलाक़े में होने वाले पतंगबाज़ी के मुक़ाबले को हर कीमत पर जीतने के लिए कमर कसे हुए है और उसके वफ़ादार दोस्त हसन ने इसमें उसकी मदद करने का वादा किया है। मगर उन दोनों में से किसी को भी नहीं पता था कि मुक़ाबले के ठीक बाद हसन के साथ कुछ ऐसा हादसा होने वाला था, जिससे उन दोनों की दोस्ती और ज़िन्दगी पर हमेशा-हमेशा के लिए ग्रहण लग जाने वाला था। फिर अफ़ग़ानिस्तान पर रूसियों का हमला होता है, जिसके चलते आमिर और उसके बाबा को अफ़ग़ानिस्तान छोड़कर भागना पड़ता है और आख़िरकार वे अमेरिका में शरण लेते हैं। वहाँ आमिर एक नई और ख़ुशहाल ज़िन्दगी की शुरुआत कर चुका होता है कि तभी एक दिन उसके पास एक फ़ोन आता है, जो उसे तालिबान-शासित अफ़ग़ानिस्तान लौटकर एक ऐसी चीज़ की तलाश के लिए मजबूर कर देता है, जो उसे उसकी इस नई दुनिया में रहते हुए हासिल नहीं हो सकती थी: अपने गुनाहों से निजात। फिर एक बार अच्छा बनने का मौक़ा।

'दिल निचोड़ देने वाली... भावनात्मक रूप से तोड़ देने वाली, मगर अच्छा और सच्चा बनने के लिए प्रेरित करने वाली' ***ऑब्ज़र्वर***

'हुसैनी सचमुच किस्सा-गोई के फ़न में माहिर हैं... वह आपके दिल के हरेक तार को छेड़कर उसे बज उठने के लिए मजबूर करने से डरते नहीं हैं'
द टाइम्स

'कोमल भावनाओं और कठोर सच्चाई से सामना कराती दास्तान' ***डेली मेल***

लेखक के द्वारा लिखी गई प्रस्तावना और नए लेखकीय के साथ

FSC

SANAGE
PUBLISHING HOUSE

ISBN 978-9362056979

Write to us: sanagepublishing@gmail.com

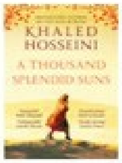

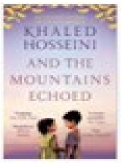

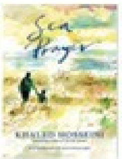

Also available by
Khaled Hosseini

www.bloomsbury.com